प्रकाशक—

राजमलजी बडजात्या

मंत्री, मुनि श्री अनंतकीर्ति ग्रन्थमाला समिति।

भूमिका ।

अनेक आनंदधाम अतिरमणीय इस पवित्र भारतीय वसुंधरामें स्वयं अहिंसात्मक तथा संतोष कर जीती है राग द्वेष परिणति जिनने ऐसे धर्मामृत पोपक अगणनीय ऋषिगणगणनीय भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यका शासन साक्षात्तीर्थेश पूज्य श्री १००८ भगवान् वर्द्धमान जिनके समान ही आज इस कलिकाल नाम पंचम कालमें मान्यगणना रूप परिणत हो रहा है क्योंकि उनके अमूल्य स्मृतिबोधक ग्रंथराज आज भी उनकी उस शान्तिस्राविणी दिव्य भव्य, तथा लोकान्त चिदानन्द प्रापयित्री पावना मूर्तिको प्रत्यक्ष भासुरीय आभामें नयन विषय कर रहे हैं।

यद्यपि इस दिगम्बर जैन समाजमें आत्मविज्ञान कर्मविज्ञान तथा तत्साधक अनेक करणात्मक ऐसे ग्रंथराज हैं कि जिनके अंशमात्र ज्ञानसे ही आज कल धुरंधर विद्वत् श्रेणिकी गणना प्राप्त हो जाती है इसी सबब यदि अगाधतामें रत्नाकर इनका प्रतिस्पर्धा हो तो विशेप अतिशयोक्ति न होगी क्यों कि गुणरत्न समुद्ररत्नवत् इनमें भी भरे हैं। और वे बड़े ही प्रज्ञाशील कर्मशूरको प्राप्त हो सकते हैं। इसी कारण इनका रचयिता यदि ब्रह्मदेव सर्वज्ञके अनुरूप हो तो वह अंशकतामें सत्यही है। क्यों कि हमारे जैसेके लिये तो यहां भी वही वात है। अतएव इनकी वाणी साक्षात् तीर्थेशकी वाणी और ये साक्षात्तीर्थेशके समानही हमारे लिये हितावह हैं। इनके विपयमें तथा इनकी सर्वज्ञ परंपरागत कृतिके विपयमें यदि किसीकी आक्षेप विक्षेपता होगी वह केवल अगाधजल–आभात्मक मृगतृष्णाके समानही उसके लिये होगी। स्वामी कुंदकुंद सरीखे ग्रंथकार तथा उनके ग्रंथमें कहीं भी ऐसा अंश नहीं है कि जिसमें किसीका आक्षेप विक्षेप हो क्योंकि उनकी ग्रंथशैली आध्यात्म प्रधानता से मुनि मार्गानुशासिनी है फिर भी यहां सर्वत्र इस प्रकारका गुंठन है कि किसी भी प्रतिपक्षी तथा परीक्षकको आदिसे अंततक कहीं भी ऐसा अंश न मिलेगा कि जिसमें आक्षेप विक्षेपको जगह हो। इसीलिये इनको प्रधान तथा पूज्य प्रमाण कोटीमें भगवान् महावीर तथा गौतमगणीके तुल्य माना है क्योंकि शास्त्रकी आदिमें शास्त्र वांचने वाले मंगला-

चरण में '**मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गोतमो गणी मंगलं कुंदकुंदार्यो जैनधर्मोस्तु मंगलं**' यह पाठ हमेशह ही पढ़ते हैं।

इसीसे पता लगता है कि स्वामी कुन्दकुन्दाचार्यका आसन इस दिगम्बर जैन समाजमें कितना ऊंचा है ये आचार्य मूलसंघके बड़ेही प्राभाविक आचार्य माने गये हैं अतएव हमारे प्रधानवर्ग मूलसंघके साथ कुन्दकुन्दाम्नायमें आज भी अपनेको प्रगट कर धन्य मानते हैं, वास्तवमें देखा जाय तो जो कुन्दकुन्दाम्नाय है वही मूलसंघ है फिर भी मूलसंघकी असलियत कहाँ है यह प्रगट करनेके लिये कुंद-कुंदआम्नायको प्रधान माना है और इसी हेतुसे मूलसंघके साथ जो कुंदकुंदआम्नायके लिखने बोलने की शैली है वह योग्य भी है क्योंकि मूलसंघता कुंदकुंदाम्नायमें ही प्रधानतासे मानी जाती है। और इसकी प्रसिद्धि दिगम्बर प्रमुख समाजमें सर्वत्र ही है। अतः किसीके विवाद और संदेहको यहां जगह नहीं है।

श्रीश्रुतसागरसूरिने इनके **षट्पाहुड** ग्रंथकी संस्कृत टीकाके प्रत्येक पाहुडके अंतमें इनके पांच नाम लिखे हैं जो कि वे इस प्रकार हैं—**श्री पद्मनंदिकुन्दकुन्दाचार्यवक्रग्रीवाचार्यैलाचार्यगृद्धपृच्छाचार्यनामपंचकविराजितेन,** इससे यह पता लगता है कि तत्वार्थ सूत्रके कर्ता श्री उमास्वामी और ये एक ही व्यक्ति हों। क्योंकि तत्वार्थ–मोक्षशास्त्र के दशाध्यायके अन्तमें भी **तत्वार्थ-सूत्रकर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितं। वंदे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरं;** इसश्लोकमें भी **गृद्धपिच्छ** ऐसा उमास्वामीजीका विशेषण दिया है इससे तथा विदेहक्षेत्रमें भगवान् श्री१००८ सीमंधरस्वामीद्वारा संबोधित होनेकी कथामेंभी गृद्धपिच्छका विषय आता है तथा कुछ एक विद्वान् द्वारा उमास्वामीजीकी

---

१ दिगम्बरजैन नामक पत्रके वर्ष १४ वां वीर सं २४४७ वि. सं. १९७७ सन् १९२१ इसवी के पं. नंदलालजी ईडर (चावली–आगरा) द्वारा भेजे गये **आचार्योंकी पट्टावली और इतिहास** नामक लेखकी टिप्पणीस्थ नं. **ग** की ईडर भंडार वाली पट्टावली में भी कुंदकुंद के पांच नामका श्लोक इस प्रकार मिलता है।

पट्टावली ग.

आचार्यकुंदकुंदाख्यो
वक्रग्रीवो महामुनिः।
एलाचार्यो गृद्धपृच्छः
पद्मनंदीति तन्नुतिः॥ ५॥

कथाभी वैसीही सुनी जाती है जैसी कि गृद्धपिच्छके विषयमें कुन्दकुन्दाचार्य की है। और कुंदकुंदाचार्य सीमंधर स्वामीसे संवोधित हए इस विषयमें भी श्रीश्रुतसागरसूरिने लिखा है कि—**सीमंधरस्वामिज्ञानसंबोधितभव्यजनेन,** इस से हम कुछ संदिग्ध होते हैं कि शायद दोनों व्यक्ति एकही हों परंतु जवतक कोई पुष्ट प्रमाण न मिलै तबतक हम संदिग्धावस्थामें रहनेके सिवाय और कर ही क्या सकते हैं। यदि कहीं कुंदकुंदके नामों में उमास्वामि नामभी होता तव तो फिर सन्देह-को भी स्थान न मिलता फिरभी इतना जरूर है कि इनका कोइ न कोइ गुरु शिष्यपनेका सम्वध परस्परमें अवश्य होगा।

गृद्धपृच्छ कुंदकुंद हों या उमास्वामि हों दोनोंका ही यशोगान इस दि० जैन समाजमें पूर्ण रीतिसे वडी भक्ति तथा श्रद्धासे जुदे २ नाम द्वारा गाया जाता है तथा गृद्धपृच्छ नामसे भी किसी किसी ग्रंथकर्ताने अपनी आन्तरिक भक्ति प्रदर्शित की है जैसे कि वादिराज सूरिने अपने पार्श्वचरित्र ग्रंथमें सव आचार्योंसे प्रथम गृद्धपृच्छस्वामीका क्या ही अपूर्व शब्दोंमें गुणानुवाद पूर्वक नमस्कार किया है—

अतुच्छगुणसंपातं गृद्धपिच्छं नतोऽस्मि तं।
पक्षीकुर्वंति यं भव्या निर्वाणायोत्पतिष्णवः॥ १॥

जो प्रधान २ गुणोंका आश्रय दाता है तथा मोक्ष जानेके इच्छुक उड़नेवाले पक्षियोंके पांखकी तरह जिसका आश्रय लेते हैं उस गृद्धपृच्छको मैं नमस्कार करता हूं।

कुंदकुंदके विषयमें भाषाटीकाकार पंडित जयचंद्रजी छावड़ा तथा पं० वृंन्दावनदासजी वगैरः अनेक विद्वानोंने भी बहुतसे अभ्यर्थनीय वाक्योंसे स्तुतिगान

---

१ जासके मुखारविंदतैं प्रकाश भासवृंद
स्यादवादजैनवैन इंदु कुंदकुंदसे।
तासके अभ्यासतैं विकाश भेदज्ञान होत,
मूढ़ सो लखे नहीं कुवुद्धि कुंदकुंदसे॥
देत हैं अशीस शीसनाय इंदु चंद जाहि,
मोह-मार-खंड मारतंड कुंदकुंदसे।
विशुद्धिवुद्धिवृद्धिदा प्रसिद्ध ऋद्धिसिद्धिदा
हुए न, हैं न, होंहिं गे, मुनिंद कुंदकुंदसे॥

कविवर वृन्दावनदासजी.

किया है जो कि अद्यावधि उसी रूपमें प्रवाहित होकर चला आरहा है। वह स्वामीजीके अलौकिक पांडित्य तथा उनकी पवित्र आत्मपरिणति का ही प्रभाव है स्वामीकुन्दकुन्दाचार्यने अवतरित होकर इस भारतभूमिको किस समय भूषित तथा पवित्रित किया इस विषयका निश्चितरूपसे अभीतक किसी विद्वान्ने निर्णय नहीं किया क्योंकि कितने ही विद्वानोंने सिर्फ अन्दाजेसे इनको विक्रमकी पांचवी और कितनेही विद्वानोंने तीसरी शताब्दिका होना लिखा है तथा बहुतसे विद्वानोंने इनको विक्रमकी प्रथम शताब्दिमें होना निश्चित किया है और इस मत परही प्रायःप्रधान विद्वानोंका झुकाव है। संभव है कि यही निश्चित रूपमें परिणत हो। परंतु मेरा दिल इनको विक्रमकी पहली शताब्दिसे भी बहुत पहलेका कबूल करता है कारण कि स्वामीजीने जितने ग्रंथ बनाये हैं उन किसीमें भी द्वादशानुप्रेक्षाके अंतमें नाममात्रके सिवाय आपना परिचय नहीं दिया है परंतु बोध पाहुडके अंतमें नंबर ६१ की एक यह गाथा उपलब्ध है—

सद्दवियारो भूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो.तह.कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स॥

बोधपाहुड़ ॥ ६१ ॥

मुझे इस गाथाका अर्थ गाथाकी शब्द रचनासे ऐसा भी प्रतीत होता है।

जं–यत् जिणे–जिनेन, कहियं–कथितं, सो–तत्, भासासुत्तेसु–भाषासूत्रेषु (भाषारूपपरिणतद्वादशांगशास्त्रेषु), सद्दवियारोभूओ–शब्दविकारो भूतः (शब्दविकाररूपपरिणतः) भद्दबाहुस्स–भद्रबाहोः सीसेणय–शिष्येनापि। तह–तथा, णायं–ज्ञातं, कहियं–कथित्तं।

जो जिनेन्द्रदेवने कहा है वही द्वादशांगमें शब्दविकारसे परिणत हुआ है और भद्रबाहुके शिष्यने उसी प्रकार जाना है तथा कहा है।

इस गाथा में जिन भद्रबाहुका कथन आया है वे भद्रबाहु कोन हैं, इसका निश्चय करनेके लिये उनके आगेकी नं ६२ की गाथा इस प्रकार है।

बारस अंगवियाणं चउदस पुवंग विउल वित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयओ॥

बोधपाहुड़ ॥ ६२ ॥

द्वादशाङ्गके ज्ञाता तथा चौदह पूर्वांगका विस्तार रूपमें प्रसार करनेवाले गमकगुरू श्रुतज्ञानी भगवान भद्रबाहु जयवंते रहो।

इन दोनों गाथाओंके पढ़नेसे पाठकोंको अच्छी तरह विदित होगा कि ये बोध पाहुडकी गाथायें श्रुतकेवली भद्रबाहुके शिष्यकी कृति है। और ये अष्ट पाहुड ग्रंथ निर्विवाद अवस्थामें कुंदकुंदस्वामीजीके बनाये हुए हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि स्वामी कुंदकुंद श्रुतकेवलीभद्रबाहुके शिष्य थे ऐसी अवस्थामें कुंदकुंदका समय विक्रमसे बहुत पहलेका पड़ता है।

परंतु इस गाथाका अर्थ मान्यवर श्री श्रुतसागर सूरिने दूसरेही प्रकार किया है और उसीके आधार पर जयपुरनिवासी पं. जयचंद्रजी छावड़ाने भी किया है इससे हम पूर्ण रूपमें यह निश्चय नहीं लिख सकते कि स्वामीजीका समय विक्रम शताब्दिसे पहलेका होगा क्योंकि श्रुतसागर सूरिने जो अर्थ लिखा है वह किसी विशेष पट्टावली वगैरःके आधारसे लिखा होगा दुसरे वे एक प्रमाणीक तथा प्रतिभाशाली विद्वान् थे इस वजह उनके अर्थको अमान्य ठहराया जाय यह इस तुच्छ लेखकी शक्तिसे बाह्य है। फिर भी मुझे उस गाथाका जो अर्थ सूझा है वह स्पष्टतासे ऊपर लिखदिया है विद्वान् पाठक इसका समुचित विचार कर स्वामीजीके समय निर्णयकी गहरी गवेषणामें उतरकर समाजकी एक खास त्रुटिको पूरा करेंगे।

भगवत्कुन्दकुन्दस्वामीके बनाये हुये ग्रंथोंमें समयसार १ प्रवचनसार २ पंचास्तिकाय ३ नियमसार ४ रयणसार ५ अष्टपाहुड ६ द्वादशानुप्रेक्षा ७ ये सात ग्रंथ देखनेमें आते हैं और ये सभी ग्रंथ छप भी गये हैं। अष्टपाहुडमें षट्पाहुडके ऊपर संस्कृत टीका श्री श्रुतसागरजीसूरिकी है जोकि बहुतही मनोज्ञ है जिसमें ग्रंथका भाव बहुतही अच्छी तरहसे दर्शित किया है और वह माणिकचंद्र दिगम्बर जैन ग्रंथमालाके षट् प्राभृतादिसंग्रहमें प्रकाशित हो चुकी है। इस अष्टपाहुडग्रंथके ऊपर पं० जयचंद्रजी छावड़ा जयपुर निवासीकृत दूसरी देशभाषामय वचनिका है जिसमें कि षट्पाहुड तक श्री श्रुतसागरसूरिकी टीकाका आश्रय है और दूसरे पाहुडों की उनने खुद लिखी है जिसका कि वर्णन उन्होंने खुद अपनी प्रशस्तिमें लिखा है और वह प्रशस्ति इस ग्रंथके अंतमें उनकी ज्यों की त्यों लगादी है उससे पाठक विशेषज्ञान इस विषयमें कर सकेंगे। पंडित जयचंद्रजी छावड़ाके विषयमें हम—इस संस्थासे प्रकाशित प्रमेय रत्नमाला तथा आप्तमीमांसाकी भूमिकामें पहले लिखचुके हैं वहांसे पाठक उनके संबंधका कुछ विशेष परिचय कर सकते हैं। आप १९०० शताब्दीके एक प्रतिभाशाली विद्वान् थे

जिनका कि इस दिगम्बर समाजमें आज भी वैसाही आदर होता है जैसा कि प्रसिद्ध विद्वान् टोडरमलजीका होता है। पं० टोडरमलजीने थोड़े ही समयमें अपनी प्रतिभा शालिनी अलौकिक बुद्धि से इस दि. जैन समाजका वह कल्याण किया है कि जिसका प्रतिफल स्वरूप यशोगान यह समाज आज तक गा रहा है। उसी प्रकार टोडरमलजीके समकक्ष पंडित जयचंद्रजीका भी समाजके ऊपर वैसाही उपकार है इसीसे समाजकी दृष्टिमें ये भी मान्य हैं। पंडित जयचंद्रजीका पांडित्य हरएक विषयमें अपूर्व ही था यह उनकी ग्रंथरूप कृति से पाठकों को स्वयमेव ही विदितहो सकता है। तथा ये निरपेक्ष परोपकाररत ऐसे विद्वान थे कि जिनकी बरावरीका उस समय जयपुर भरमें किसी धर्मका भी वैसा कोई विद्वान् नहीं था। तथा भाषा सर्वार्थसिद्धिकी प्रशस्ति पढ़ने से मालूमहोता है कि आपके पुत्र नंदलालजी भी बड़े विद्वान थे। उनकी प्रेरणासे तथा भव्य जनोंकी विशेष प्रेरणा से ही उन्होंने सर्वार्थसिद्धि वगैरः ग्रंथोंकी देशभाषामय वचनिका लिखी है। आपके विषयमें वृद्ध पुरुषों द्वारा आज तक भी एक प्रसिद्ध कहावत सुनने में आती है कि एक समय जयपुर नगरमें शास्त्रार्थी अन्यधर्मी एक बड़ा विद्वान् जयपुरनगरके विद्वानोंको शास्त्रार्थ में जीतनेकी इच्छा से आया था उस समय उस विद्वान् से शास्त्रार्थ करनेके लिये जयपुरनिवासी कोई भी विद्वान् उसके सन्मुख नहीं गया, ऐसी हालतमें नगरके विद्वानोंकी तथा नगरकी विद्वत्ताके विना अकीर्ति न हो जाय इस हेतु से तथा राज्यकी कीर्ति वांच्छक नगरके विद्वान् पंच तथा राज्य कर्मचारी वर्गने पं. जयचंद्रजी छावड़ासे जाकर सविनय निवेदन किया था कि इस विद्वान्को शास्त्रार्थ में आपही जीत सकते हैं अतः इस नगरकी प्रतिष्ठा आप परही निर्भर है इसलिये शास्त्रार्थ करनेके निमित्त आप पधारें अन्यथा नगरकी बड़ीवदनामी होगी कि बड़े बड़े पंडितोंकी खानि इस विशाल नगरको एक परदेशी विद्वान् जीतगया। इस वातको सुनकर पंडित जयचंद्रजी छावड़ाने जवाव दिया कि मैं तो जयपराजयकी अपेक्षासे शास्त्रार्थ करने किसीसे जाता नहीं फिर भी आपलोगोंका ऐसाही आग्रह है तो मेरे इस पुत्र नंदलालको ले जाइये यह उससे शास्त्रार्थ कर सकेगा। इस पर राजी हो कर सब लोग पं. नंदलालजीको ले गये और पं. नंदलालजीने शास्त्रार्थ कर विदेशी विद्वान्को पराजित किया उसके प्रतिफल राज्य तथा नगरपंचकी तरफ से पं. नंदनलालजी को कुछ उपाधि मिली थी उसके विषयमें पं. जयचंद्रजीने अवश्य कर्तव्य में उपकार मान कर उसका प्रतिफल स्वरूप ले ना मानों

अवश्य कर्तव्य तथा उपकारको नीचे गिराना है, इत्यादि वाक्य कह कर उस पदवीको वापिस करा दिया था।

इस कथानकसे पूरी तौर पता चलता है कि आप तथा आपके पुत्र कितने बड़े विद्वान् थे और आप ऐहिक आकांक्षासे कितने निर्पेक्ष थे। आपके पिताका नाम मोतीरामजी था जातिके खंडेलवाल श्रावक थे तथा छावड़ा गोत्र में आपका जन्म हुआ था आपकी जिस समय ११ वर्षकी अवस्था थी उस समय से जैन धर्मकी तरफ आपका विशेष चित्त आकर्षित हुआ। आप तेरह पंथके अनुयायी थे। तथा आप परकृत उपकारको विशेप मानते थे इसलिये आप में कृतज्ञता भी भरपूर थी क्यों कि पं. वंशीधरजी पं. टोडरमलजी पं. दौलतरामजी त्यागी रायमल्लजी व्रती मायारामजी वगैरःकी कृति तथा इनका उपकार रूप वखान आपने वड़ेही मनोज्ञ शब्दोंमें किया है। आपने गोमठसार, लब्धिसार, क्षपणासार, समयसार, अध्यात्मसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, राजवार्तिक श्लोकवार्तिक, अष्ट सहस्री, परीक्षामुख प्रमुख अनेक ग्रंथोंका पठन तथा मनन किया था जिनका कि सब विपयक खुलासा भापा सर्वार्थसिद्धि वगैरःकी प्रशस्ति पढ़नेसे हो जाता है।

आपने जो जो अनुवादरूप ग्रंथ कृति की है उसका खुलासा हम प्रमेय रत्नमाला की भूमिकामें कर ही चुके हैं। सर्वार्थसिद्धि वगैरःके समान आपने इस अष्टपाहुडमें भी बहुत ही भव्य प्रयास किया है। आपने अति कठिन ग्रंथोंका भी सीधी हृदयग्राही भापामें अनुवाद कर एक बहुत वड़ी समाजकी त्रुटिको पूरा किया है। इस कारण आपके विपयमें समाजका आभारी होना योग्य ही है।

यह पाहुड ग्रंथ यथा नाम तथा विपयसे आठ अंशोंमें विभक्त है जैसे कि दर्शन पाहुडमें-दर्शन विपयक कथन, सूत्र पाहुडमें-सूत्र (शास्त्र) संबंधी कथन, इत्यादि। पंडितजीने इस ग्रंथकी टीकाकी समाप्ति विक्रम सम्वत् १८६७ भाद्रपद सुदि १३ को की है-जैसाकि आपने इस ग्रंथकी प्रशस्तिमें लिखा है—

सवंत्सर दश आठ सत सतसठि विक्रमराय।
मास भाद्रपद शुक्ल तिथि तेरसि पूरन थाय॥

पंडितजीके ग्रंथों में आदि तथा अंतके मंगलाचरणसे पता लगता है कि आप परम आस्तिक तथा देव गुरु शास्त्रमें पूर्ण भक्ति रखते थे। सत्यतो यह है कि जहां आस्तिकता तथा भक्ति है वहां सर्वकी उपकार कर्त्री बुद्धि भी है यही वात

उक्त पंडितजीमें थी इसलिये उनमें भी ऐसी उपकर्त्री बुद्धि तथा अन्य मान्य गुण थे। इसीसे आप हमारे तथा सब समाजके मान्य हैं अब हम आकांक्षा करते हैं कि आप शीघ्रही अनंत तथा अक्षय सुखके अनंत काल भोगी हों। इस ग्रंथकी भूमिकाके साथ भी हमने पाठकोंके सुभीते के लिये गाथा तथा विषय सूची भी लगादी है। अब अन्तिम हमारा निवेदन है कि अल्पज्ञता वश इस भूमिका तथा ग्रंथ संशोधन में हमारी बहुतसी त्रुटि रह गई होंगी जिसका आप सुज्ञ मार्जन कर हमें क्षमा करेंगे।

मिती मगसिरसुदि ८
सं. १९८० विक्रम.
ता. १५-१२-१९२३ ईसवीसन

विनीत
रामप्रसाद जैन,
बम्बई।

श्रीवीतरागाय नमः ।

नियमावली

मुनि श्रीअनन्तकीर्ति ग्रंथमाला ।

१ यह ग्रन्थमाला श्री अनन्तकीर्ति मुनिकी स्मृतिमें स्थापित हुई है जो कि दक्षिण कनड़ाके निवासी दिगम्बर साधु चारित्रके तत्व ज्ञानपूर्वक पालनेवाले थे और जिनका देहत्याग श्री गो० दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय मुरैना (गवालियर) में हुआ था ।

२ इस ग्रन्थमाला द्वारा दिगम्बर जैन संस्कृत व प्राकृत ग्रन्थ भाषाटीका सहित तथा भाषाके ग्रन्थ प्रबंधकारिणी कमेटीकी सम्मतिसे प्रकाशित होंगे ।

३ इस ग्रन्थमालामें जितने ग्रन्थ प्रकाशित होंगे उनका मूल्य लागत मात्र रक्खा जायगा लागतमें ग्रन्थ सम्पादन कराई संशोधन कराई छपाई जिल्द बंधाई आदिके सिवाय आफिस खर्च भाड़ा और कमीशन भी सामिल समझा जायगा ।

४ जो कोई इस ग्रन्थमालामें रु. १००) व अधिक एकदम प्रदान करेंगे उनको ग्रन्थमालाके सब ग्रन्थ विना न्योछावरके भेट किये जाँयगे यदि कोई धर्मात्मा किसी ग्रन्थकी तैयारी कराईमें जो खर्च पड़े वह सब देवेंगे तो ग्रन्थके साथ उनका जीवन चरित्र तथा फोटो भी उनकी इच्छानुसार प्रकाशित किया जायगा यदि कमती सहायता देंगे तो उनका नाम अवश्य सहायकोंमें प्रगट किया जायगा इस ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित सब ग्रन्थ भारतके प्रान्तीय सरकारी पुस्तकालयोंमें व म्यूजियमोंकी लायब्रेरियोंमें व प्रसिद्ध २ विद्वानों व त्यागियोंके भेटस्वरूप भेजे जायंगे जिन विद्वानोंकी संख्या २५ से अधिक न होगी ।

५ परदेशकी भी प्रसिद्ध लायब्रेरियों व विद्वानोंको भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ मंत्री भेट स्वरूपमें भेज सकेंगे जिनकी संख्या २५ से अधिक न होगी ।

६ इस ग्रन्थमालाका सर्व कार्य एक प्रबंधकारिणी सभा करेगी जिसके सभासद ११ व कोरम ५ का रहेगा इसमें एक सभापति एक कोषाध्यक्ष एक मंत्री तथा एक उपमंत्री रहेंगे ।

७ इस कमेटीके प्रस्ताव मंत्री यथा संभव प्रत्यक्ष व परोक्ष रूपसे स्वीकृत करावेंगे ।

८ इस ग्रन्थमालाके वार्षिक खर्चका बजट बन जायगा उससे अधिक केवल १००) मंत्री सभापतिकी सम्मतिसे खर्च कर सकेंगे ।

९ इस ग्रन्थमालाका वर्ष वीर सम्वत्से प्रारम्भ होगा तथा दिवाली तककी रिपोर्ट व हिसाब आडीटरका जचा हुआ मुद्रित कराके प्रति वर्ष प्रगट किया जायगा ।

१० इस नियमावलीमें नियम नं. १–२–३ के सिवाय शेषके परिवर्तनादिपर विचार करते समय कमसे कम ७ महाशयोंकी उपस्थिति आवश्यक होगी ।

श्री दि० जैन मुनि अनंतकीर्तिग्रंथमालाके मुख्यसहायक महाशय ।

२२०२) सेठ गुरुमुखरायजी सुखानंदजी-बम्बई.

 ११०१) मुनिमहाराजके आहार दान समय.

 ११०१) यात्रार्थ आये हुए दिल्लीके संघके समय.

११०१) से. हुकमचंदजी जगाधरमलजी-दिल्ली.

११०१) से. उम्मेदसिंहजी मुसद्दीलालजी-अमृतसर.

५०१) श्री जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय-बम्बई.

४११) श्री धर्मपत्नी लाला रायबहादुर हजारीलालजी-दानापुर.

२५१) से. नाथारंगजी वाले-बम्बई.

२०१) से. चुन्नीलाल हेमचंदजी-बम्बई.

१०१) साहु सुमतिप्रसादजी-नजीबाबाद.

१०१) लाला जुगलकिशोरजी-हिसार.

१०१) श्री जैनधर्मवर्धिनी सभा-बम्बई ।

१०१) राजमलजी बड़जात्या-बम्बई ।

१०१) से. बैजनाथजी सरावगी-हाथरस ।

१०१) से. कस्तूरचंद बेचरदासजी-बम्बई ।

१०१) लाला जैनेन्द्रकिशोरजी-आगरा ।

॥ श्री ॥

विषयसूची ।

विषय. पृ.

दर्शनपाहुड ।

चरण में 'मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गोतमो गणी मंगलं कुंदकुंदार्यो जैनधर्म्मोस्तु मंगलं ' यह पाठ हमेशह ही पढ़ते हैं।

इसीसे पता लगता है कि स्वामी कुन्दकुन्दाचार्यका आसन इस दिगम्बर जैन समाजमें कितना ऊंचा है ये आचार्य मूलसंघके बड़ेही प्राभाविक आचार्य माने गये हैं अतएव हमारे प्रधानवर्ग मूलसंघके साथ कुन्दकुन्दाम्नायमें आज भी अपनेको प्रगट कर धन्य मानते हैं, वास्तवमें देखा जाय तो जो कुन्दकुन्दाम्नाय है वही मूलसंघ है फिर भी मूलसंघकी असलियत कहाँ है यह प्रगट करनेके लिये कुंद-कुंदआम्नायको प्रधान माना है और इसी हेतुसे मूलसंघके साथ जो कुंदकुंदआम्नायके लिखने बोलने की शैली है वह योग्य भी है क्योंकि मूलसंघता कुंदकुंदाम्नायमें ही प्रधानतासे मानी जाती है। और इसकी प्रसिद्धि दिगम्बर प्रमुख समाजमें सर्वत्र ही है। अतः किसीके विवाद और संदेहको यहां जगह नहीं है।[१]

श्रीश्रुतसागरसूरिने इनके षट्पाहुड ग्रंथकी संस्कृत टीकाके प्रत्येक पाहुडके अंतमें इनके पांच नाम लिखे हैं जो कि वे इस प्रकार हैं–श्री पद्मनंदिकुन्दकुन्दाचार्यवक्रग्रीवाचार्यैलाचार्यगृद्धपृच्छाचार्यनामपंचकविराजितेन, इससे यह पता लगता है कि तत्वार्थ सूत्रके कर्ता श्री उमास्वामी और ये एक ही व्यक्ति हों। क्योंकि तत्वार्थ–मोक्षशास्त्र के दशाध्यायके अन्तमें भी तत्वार्थ-सूत्रकर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितं। वंदे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरं; इसश्लोकमें भी गृद्धपिच्छ ऐसा उमास्वामीजीका विशेषण दिया है इससे तथा विदेहक्षेत्रमें भगवान् श्री१००८ सीमंधरस्वामीद्वारा संबोधित होनेकी कथामेंभी गृद्धपिच्छका विषय आता है तथा कुछ एक विद्वान् द्वारा उमास्वामीजीकी

---

१ दिगम्बरजैन नामक पत्रके वर्ष १४ वां वीर सं २४४७ वि. सं. १९७७, सन् १९२१ इसवी के पं. नंदलालजी ईडर (चावली–आगरा) द्वारा भेजे गये आचार्योंकी पट्टावली और इतिहास नामक लेखकी टिप्पणीस्थ नं. ग की ईडर भंडार वाली पट्टावली में भी कुंदकुंद के पांच नामका श्लोक इस प्रकार मिलता है।

पट्टावली ग.

आचार्यकुंदकुंदाख्यो
वक्रग्रीवो महामुनिः।
एलाचार्यो गृद्धपृच्छः
पद्मनंदीति तन्नुतिः॥ ५॥

चारित्र पाहुड

बोधपाहुड

भावपाहुड

विषय — पत्र

मोक्षपाहुड।

लिंगपाहुड।

विषय | पत्र

शील पाहुड ।

इति ।

निवेदन ।

इस ग्रंथका निर्माण समाजके उस महात्मा व्यक्ति द्वारा हुआ है कि जिसके नामोच्चारणसेही आत्मा भव्य पवित्रतारूप सुगंधसे सुवासित हो जाता है। ऐसे महात्माका कुछ परिचय पाठकोंको इस ग्रंथकी भूमिकासे होगा। उन्ही महात्माके घड़ेमें भरे हुए समुद्रकी कहावतको चरितार्थ करनेवाले इस अमूल्य ग्रंथराज अष्टपाहुड़को लागत मात्र अल्पमूल्यमें प्रदान करनेके लिये जो इस-**मुनि श्री अनंतकीर्ति ग्रंथमाला,** नाम समितिनें प्रयास किया है वह सिर्फ आपकी भव्य नैष्ठय तथा पवित्र आदर्श चर्या-निमित्त ही है। तथा संस्थाने जो इससे पहले ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं तथा प्रकाशित करेंगी उसका भी उद्देश्य वही पवित्र आदर्शता है। जिसको कि प्राप्त करना हमारा एक स्वाभाविक कर्तव्य है। उसके इस निमित्तको यथासाध्य कायम रखनेके लिये मंत्री महोदय तथा समति यथाशक्ति प्रयत्नशील है और आशा करता हूं कि आप भी इस प्रयत्नमें भरकस रूपसे सहायक हों जिससे कि अबाधित कार्यसिद्धि हो। इस ग्रन्थका संशोधन, जो किया गया है उसमें अल्पज्ञतासे बहुतसी त्रुटियां होंगी उसके लिये विज्ञ पाठक क्षमा प्रदान करेंगे।

इस ग्रंथके साथ भूमिका, विषय-सूची तथा गाथा-सूची भी पाठकोंके सुभीते लिये लगादी है उसमें भी प्रमादजन्य बहुतसी त्रुटियोंकी संभावना है। अतः यहां भी विज्ञपाठकोंसे वैसाही क्षमार्थ निवेदन है। पं. इन्द्रलालजी शास्त्री जयपुरका कापीरूप कार्य सराहनीय है आपने गाथाके पाठभेदको टिप्पणीमें लगा कर बहुत कुछ सुभीता कर दिया है।

मुंबई वसंत पंचमी
१९८०

निवेदक—
रामप्रसाद जैन
बम्बई.

श्रीअष्टपाहुडकी अकारआदि-अनुक्रमसे गाथासूची

क्रय्य पुस्तकें.

	किंमत
मूलाचार भाषाटीकासहित	३)
अमितगतिश्रावकाचार— भा. टी.	१॥≈
प्रमेयरत्नमाला— ,,	१)
आप्तमीमांसा— ,,	॥-

। नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ अष्टपाहुड ग्रंथकी पंडित जयचंद्रजी छावड़ा विरचित

देशभाषामय वचनिका ।

(दोहा.)

श्रीमत वीरजिनेशरवि मिथ्यातम हरतार ।
विघनहरन मंगलकरन वंदूं वृषकरतार ॥ १ ॥
वानी वंदूं हितकरी जिनमुखनभतैं गाजि ।
गणधरगणश्रुतभूझरी वूंदवर्णपद साजि ॥ २ ॥
गुरु गौतम वंदूं सुविधि संयमतपधर और ।
जिनितैं पंचमकालमैं वरत्यो जिनमत दौर ॥ ३ ॥
कुन्दकुन्दमुनिकूं नमूं कुमतध्वांतहर भान
पाहुड ग्रंथ रचे जिनहिं प्राकृत वचन महान ॥ ४ ॥
तिनिमैं कई प्रसिद्ध लखि करूं सुगम सुविचार ।
देशवचनिकामय लिखूं भव्यजीवहितधार ॥ ५ ॥

ऐसैं मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृत प्राकृतगाथाबंध पाहुडग्रंथ हैं तिनिमैंसूं केईकनिकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है;—

तहां प्रयोजन ऐसा है जो इस हुंडावसर्पिणी काल विषैं मोक्षमार्गकूं अन्यथा प्ररूपण करनहारे अनेक मत प्रवर्त्तैं हैं तहां भी इस पंचमकालमैं केवली श्रुतकेवलीका व्युच्छेद होनेतैं जिनमतमैं भी जड वक्र जीवनिके निमित्त करि परंपरामार्गकूं उलंघि बुद्धिकल्पित मत श्वेताम्बर आदिक भये हैं, तिनिका निराकरण करि यथार्थ स्वरूप स्थापनेकै अर्थि दिगंबर आम्नाय मूलसंघमैं आचार्य भये तिनिनैं सर्वज्ञकी परंपराका अव्युच्छेदरूप प्ररूपणाके अनेक ग्रंथ रचे हैं, तिनिमैं दिगंवर संप्रदाय मूलसंघ नंदिआम्नाय सरस्वतीगच्छमैं श्रीकुन्दकुन्द मुनि भये तिनिनैं पाहुड ग्रंथ रचे तिनिकूं संस्कृतभाषामैं प्राभृतनाम कहिये, ते प्राकृत गाथाबंध हैं सो कालदोषतैं जीवनिकी बुद्धि मंद होय है सो अर्थ समझ्या जाता नांही, तातैं देशभाषामय वचनिका होय तौ सर्व ही वांचैं अर्थ समझैं श्रद्धान दृढ होय, यह प्रयोजन विचारि वचनिका लिखिये है, अन्य किछू ख्याति बड़ाई लाभका प्रयोजन है नांही। यातैं भव्यजीव ताकूं वांचि अर्थ समझि चित्तमैं धारण करि यथार्थमतका बाह्यलिंग तथा तत्वार्थका दृढ़ श्रद्धान करियो। यामैं किछू बुद्धिकी मंदतातैं तथा प्रमादके वशतैं अर्थ अन्यथा लिखूं तौ बड़े बुद्धिवान मूल ग्रंथ देखि शुद्धकरि वांचियो, मोकूं अल्पबुद्धि जानि क्षमा कीजियो।

अब इहां प्रथम ही दर्शनपाहुडकी वचनिका लिखिये है;—

(दोहा)

वंदूं श्रीअरहंतकूं मन वच तन इकतान।
मिथ्याभाव निवारिकैं करैं सुदर्शन ज्ञान॥

सामर्थ्यतैं जाननां। वहुरि तीर्थंकर सर्वज्ञ वीत रागकूं तौ परमगुरु कहिये, अर इनिकी परिपाटीतैं चले आए गौतमादिक मुनि भये तिनिका नाम जिनवर वृषभ इस विशेपणमैं जनाया तिनिकूं अपरगुरु कहिये; ऐसैं परापर गुरुका प्रवाह जाननां ते शास्त्रकी उत्पात्ति तथा ज्ञानकूं कारण हैं। तिनिकूं ग्रंथकी आदिविपैं नमस्कार किया॥ १॥

आगैं धर्मका मूल दर्शन है तातैं दर्शनतैं रहित होय ताकूं नहीं वंदनां, ऐसैं कहैं हैं;—

गाथा—दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो॥ २॥

छाया—दर्शनमूलो धर्मः उपदिष्टः जिनवरैः शिष्याणाम्।
तं श्रुत्वा स्वकर्णे दर्शनहीनो न वन्दितव्यः॥ २॥

अर्थ—जिनवर जे सर्वज्ञदेव तिननैं शिष्य जे गणधर आदिक तिनिकूं धर्म उपदेश्या है सो कैसा उपदेश्या है, दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म उपदेस्या है। सो मूल कहां कहिए—जैसैं मन्दिरकै नींव अथवा वृक्षकै जड़ तैसैं धर्मका मूल दर्शन है। तातैं आचार्य उपदेश करैं हैं—जो हे सकर्णा! कहिये पंडित सतपुरुषहौ! तिस सर्वज्ञके कहे दर्शन मूल रूप धर्मकूं अपनें काननिविषैं सुनिकरि, अर जो दर्शनकरि रहित है सो वंदिवे योग्य नांही है, दर्शनहीनकूं मति वंदौ। जाकैं दर्शन नांही ताकैं धर्म भी नांही, मूल विना वृक्षकै स्कंध शाखा पुष्प फलादिक कहांतैं होय, तातैं यह उपदेश है—जाकैं धर्म नांही तिसतैं धर्मकी प्राप्ति नांही, ताकूं धर्मनिमित्त काहेकूं वन्दिए, ऐसा जाननां।

अब इहां धर्मका तथा दर्शनका स्वरूप जान्या चाहिये, सो स्वरूप तौ संक्षेपकरि ग्रंथकार ही आगैं कहसी तथापि किछूक अन्य ग्रंथनिकै अनुसार इहां भी लिखिए है;—तहां 'धर्म' ऐसा शब्दका अर्थ यह, जो आत्माकूं संसार तैं उद्धारि सुखस्थानविषैं स्थापै सो धर्म है। बहुरि दर्शन नाम देखनेंका है। ऐसैं धर्मकी मूर्त्ति देखनेंमैं आवै सो दर्शन है सो प्रसिद्धतामैं जामैं धर्मका ग्रहण होय ऐसा मतकूं 'दर्शन' ऐसा नाम कहिए है। सो लोकमैं धर्मकी तथा दर्शनकी सामान्य पणैं मान्यता तौ सर्वकैं है परन्तु सर्वज्ञ विना यथार्थ स्वरूपका जाननां होय नांही, अर छद्मस्थ प्राणी अपनी बुद्धितैं अनेक स्वरूप कल्पनां करि अन्यथा स्वरूप स्थापि तिसकी प्रवृत्ति करैं हैं। सो जिनमत सर्वज्ञकी परंपरायतैं प्रवर्त्तै है सो यामैं यथार्थ स्वरूपका प्ररूपण है। तहां धर्म निश्चय व्यवहार करि दोय प्रकार करि साध्या है। ताकी च्यार प्रकार प्ररूपणा है—प्रथम तौ वस्तुस्वभाव, तथा उत्तम क्षमादिक दश प्रकार, तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप, तथा जीवनिकी रक्षारूप, ऐसैं च्यार प्रकार है। तहां निश्चय करि साधिए तब तौ सर्वमैं एक ही प्रकार है जातैं वस्तुस्वभाव कहनेंतैं जो जीवनामा वस्तुका परमार्थरूप दर्शन ज्ञान परिणाममयी चेतना है, सो यहु चेतना सर्व विकारनितैं रहित शुद्धस्व-भाव रूप परिणमै सो ही याका धर्म है। बहुरि उत्तमक्षमादिक दश प्रकार कहनेंतैं क्रोधादिककषायरूप आत्मा न होय अपने स्वभावमैं स्थिर होय सो ही धर्म है, यह भी शुद्धचेतनारूपही भया। बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्र कहनेंतैं तीनूं एक ज्ञानचेतनाहीके परिणाम हैं, सो ही ज्ञानस्वभावरूप धर्म है। बहुरि जीवनिकी रक्षा कहनेंतैं जीवकैं आपकैं तथा परकैं क्रोधादि कषायनिके वशतैं पर्यायका विनाशरूप मरण तथा दुःख संक्लेश परिणाम न करनां ऐसा अपना स्वभाव, सो

ही धर्म है। ऐसैं शुद्ध द्रव्यार्थिक रूप निश्चय नय करि साध्या हुवा धर्म एकही प्रकार है। वहुरि व्यवहारनय है सो पर्यायाश्रित है सो यह भेद-रूप है, सो याकरि विचारिए तव जीवके पर्यायरूप परिणाम अनेक -प्रकार हैं तातैं धर्म भी अनेक प्रकार करि वर्णन किया है। तहां एक-देशकूं प्रयोजनके वशतैं सर्वदेश करि कहिए सो व्यवहार है। वहुरि अन्य वस्तुविषैं अन्यका आरोपण अन्यके निमित्ततैं तथा प्रयोजनके वशतैं करिये सो भी व्यवहार है। तहां वस्तुस्वभाव कहनेमैं तौ जे निर्विकार चेतनाके शुद्ध परिणामके साधकरूप मंदकषायरूप शुद्ध परिणाम हैं तथा वाह्य क्रिया हैं ते सर्वही व्यवहारधर्मकरि कहिये है। वहुरि तैसैंही रत्नत्रय कहनेतैं स्वरूपके भेद दर्शन ज्ञान चारित्र तथा तिनिके कारण वाह्यक्रियादिक हैं ते सर्वही व्यवहारधर्मकरि कहिए है। तथा तैसैंही जीवनिकी दया कहनेतैं क्रोधादि कषाय मंद होनेतैं अपने वा परके मरण दुःख क्लेश आदि न करना, तिसके साधक वाह्यक्रियादिक ते सर्वही धर्मकरि कहिए हैं। ऐसैं निश्चय व्यवहार नय करि साध्या हुवा जिनमतमैं धर्म कहिए है। तहां एक स्वरूप अनेकस्वरूप कहनेतैं स्याद्वादकरि विरोध नांही आवै है, कथंचित् विवक्षातैं सर्व प्रमाणसिद्ध है। वहुरि ऐसे धर्मका मूल दर्शन कह्या सो ऐसे धर्मका श्रद्धा प्रतीति रुचि सहित आचरण करनां सो ही दर्शन है, यह धर्मकी मूर्ति है, याहीकूं मत कहिए सो यह ही धर्मका मूल है। वहुरि ऐसे धर्मकी पहलै श्रद्धा प्रतीति रुचि न होय तौ धर्मका आचरण भी न होय, जैसैं वृक्षकै मूल विना स्कंधादिक न होय तैसैं सो दर्शनकूं धर्मका मूल कहना युक्त है। सो ऐसे दर्शनका जैसैं सिद्धांतनिमैं वर्णन है तैसैं किछूक लिखिए है।

तहां अन्तरंग सम्यग्दर्शन है सो तौ जीवका भाव है सो निश्चय-करि उपाधितैं रहित शुद्धजीवका साक्षात् अनुभव होनां ऐसा एक

प्रकार है। सो ऐसा अनुभव अनादिकालतैं मिथ्यादर्शन नामा कर्मके उदयतैं अन्यथा होय रह्या है। या मिथ्यात्वकी सादि मिथ्यादृष्टीकैं तीन प्रकृति सत्तामैं होय है—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति ऐसैं। अर याकी सहकारिणी अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ भेदकरि च्यार कषाय नामा प्रकृति हैं। ऐसैं ये सात प्रकृति ही सम्यग्दर्शनके घात करनेंवाली हैं; सो इनि सातनिका उपशम भये पहले तौ इस जीवकैं उपशम सम्यक्त्व होय है। इनि प्रकृतिनिके उपशम होनेके बाह्य कारण सामान्यकरि द्रव्य क्षेत्र काल भाव हैं, तिनिमैं प्रधान द्रव्यमैं तौ साक्षात् तीर्थंकरका देखना आदिक हैं, क्षेत्रमैं प्रधान समवसरणादिक हैं, कालमैं अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन संसारका भ्रमण बाकी रहै सो, भावमैं अधःप्रवृत्त करण आदिक हैं। बहुरि विशेषकरि अनेक हैं, तिनिमैं केई-कनिकैं तौ अरहंतके बिंबका देखना है, अर केईकनिकैं जिनेन्द्रके कल्याण आदिकी महिमाका देखना है, केईकनिकैं जातिस्मरण है, अर केईकनिकैं वेदनाका अनुभव है, अर केईकनिकैं धर्मश्रवण है, अर केई-कनिकैं देवनिकी ऋद्धिका देखना है, इत्यादिक बाह्य कारणनितैं मिथ्या-त्वकर्मका उपशम भये उपशमसम्यक्त्व होय है। बहुरि इनि सात प्रकृ-तिनिमैं छहका तौ उपशम अथवा क्षय होय अर एक सम्यक्त्व प्रकृ-तिका उदय होय तब क्षयोपशम सम्यक्त्व होय है, इस प्रकृतिके उदयतैं किछू अतीचार मल लागै। बहुरि इनि सात प्रकृतिनिका सत्तामैंसूं नाश होय तब क्षायिक सम्यक्त्व होय है। सो ऐसैं उपशम आदिक भये जीवका परिणाम भेदकरि तीन प्रकार होय है, ते परिणाम होंय सो अतिसूक्ष्म हैं केवलज्ञानगम्य हैं जातैं इनि प्रकृतिनिका द्रव्य पुद्गल पर-माणूनिके स्कंध हैं ते अतिसूक्ष्म हैं, अर तिनिमैं फल देनेकी शक्तिरूप अनुभाग है सो अतिसूक्ष्म है सो छद्मस्थके ज्ञान गम्य नांही। अर इनिका

उपशमादिक होतैं जीवके परिणाम भी सम्यक्त्वरूप होय ते भी अति-सूक्ष्म हैं ते भी केवलज्ञानगम्य हैं। तथापि किछू छद्मस्थके ज्ञानमैं आवनें योग्य जीवका परिणाम होय हैं ते ताके जनावनेंके वाह्यचिह्न हैं तिनिकी परीक्षाकरि निश्चय करनेका व्यवहार है, ऐसैं नहीं होय तौ छद्मस्थ व्यवहारी जीवकैं सम्यक्त्वका निश्चय नहीं होय तब आस्तिक्यका अभाव ठहरै, व्यवहारका लोप होय यह बडा दोष आवै। तातैं वाह्य चिह्ननिका आगम अनुमान स्वानुभवतैं परीक्षाकरि निश्चय करनां।

ते चिह्न कौन, सो लिखिये है;—तहां मुख्य चिह्नतौ यह है जो उपाधिरहित शुद्ध ज्ञान चेतनास्वरूप आत्माकी अनुभूति है सो यद्यीप यह अनुभूति ज्ञानका विशेष है तथापि सम्यक्त्व भये यह होय है तातैं याकूं वाह्यचिह्न कहिए है। ज्ञान है सो आपका आपकैं स्वसंवेदनरूप है ताका रागादि विकाररहित शुद्ध ज्ञानमात्रका आपकै आस्वाद होय "जो यह शुद्धज्ञान है सो मैं हूं अर ज्ञानमैं रागादि विकार हैं ते कर्मके निमित्ततैं उपजै हैं ते मेरा रूप नांही हैं" ऐसैं भेदज्ञान करि ज्ञानमात्रका आस्वादकूं ज्ञानकी अनुभूति कहिये यह ही आत्मा अनुभूति है शुद्धनयका यहही विषय है। ऐसी अनुभूतितैं शुद्धनयकै द्वारै ऐसा भी श्रद्धान होय है जो सर्व कर्मजनित रागादिक भावतैं रहित अनंत चतुष्टय मेरा रूप है, अन्य भाव सर्व संयोग जनित हैं, ऐसी आत्माकी अनुभूति सो सम्यक्त्वका मुख्यचिह्न है। यह मिथ्यात्व अनंतानुबंधीका अभावकरि सम्यक्त्व होय ताका चिह्न है, सो चिह्नकूं ही सम्यक्त्व कहनां यह व्यवहार है। बहुरि याकी परीक्षा सर्वज्ञके आगम-करि तथा अनुमानकरि तथा स्वानुभव प्रत्यक्षकरि इनि प्रमाणनिकरि कीजिये है। वहुरि याहीकूं निश्चय तत्वार्थश्रद्धान भी कहिए है। तहां आपकैं तौ आपका स्वसंवेदनकूं प्रधानकरि होय है, अर परकैं परकी

परीक्षा परके वचन कायकी क्रियाकी परीक्षातैं अंतरंगमें भयेकी परीक्षा होय है, यह व्यवहार है, परमार्थ सर्वज्ञ जानैं है। व्यवहारी जीवकै सर्वज्ञनैं भी व्यवहारहीका शरणां उपदेश्या है। केई कहैं हैं—जो सम्यक्त्व तौ केवलीगम्य है यातैं आपकैं सम्यक्त्व भयेका निश्चय नहीं होय तातैं आपकूं सम्यग्दृष्टी नहीं माननां ?। सो ऐसैं सर्वथा एकान्त करि कहनां तौ मिथ्या दृष्टि है, सर्वथा ऐसैं कहे व्यवहारका लोप होय, सर्व मुनि श्रावककी प्रवृत्ति मिथ्यात्वसहित ठहरै। तब सर्वही मिथ्यादृष्टी आपकूं मानैं तब व्यवहार काहेका रह्या, तातैं परीक्षा भये पीछैं यह श्रद्धान नांही राखणां जो मैं मिथ्यादृष्टीहीहूं, मिथ्यादृष्टी तौ अन्यमतीकूं कहिए है तब तिस समान आप भी ठहरै, तातैं सर्वथा एकान्तपक्ष ग्रहण नहीं करनां। बहुरि तत्त्वार्थका श्रद्धान है सो बाह्य चिह्न है, तहां तत्त्वार्थ तौ जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष ऐसैं सात हैं, बहुरि इनिमैं पुण्य पापका विशेष करिए तब नव पदार्थ होय हैं, सो इनिकी श्रद्धा कहिये इनिकै सन्मुख बुद्धि अरु रुचि कहिए इनि रूप अपना भाव करनां बहुरि प्रतीति कहिये जैसैं सर्वज्ञ भाषे तैसैं ही हैं ऐसैं अंगीकार करनां, बहुरि इनिका आचरणरूप क्रिया, ऐसैं श्रद्धानादिक होनां सो सम्यक्त्वका बाह्य चिह्न है। बहुरि प्रशम संवेग अनुकंपा आस्तिक्य ये सम्यक्त्वके बाह्य चिह्न हैं। तहां अनंतानुबंधी क्रोधादिक कषायका उदयका अभाव सो प्रशम है; ताका बाह्य चिह्न ऐसा—जो सर्वथा एकान्त तत्वार्थके कहनेंवाले जे अन्यमत जिनका श्रद्धान तथा बाह्यभेष तानिविषैं सत्यार्थपणांका अभिमान करनां तथा पर्यायनिविषैं एकान्ततैं आत्मबुद्धिकरि अभिमान तथा प्रीति करनी ये अनंतानुबंधीका कार्य है, सो ये जाकै न होय तथा अपनां काहूनैं बुरा किया ताका घात करनां आदि विकारबुद्धि मिथ्यादृष्टिकी ज्यौं आपकै

नहीं उपजै। अर ऐसैं विचारै जो मेरा बुरा करनेंवाला मेरा परिणामकरि मैं बांध्याथा जो कर्म, सो है, अन्य तौ निमित्तमात्र हैं, ऐसी बुद्धि आपकैं उपजै, ऐसैं मंदकषाय होय। अर अनंतानुबंधीविना अन्य चारित्रमोहकी प्रकृतिनिके उदयतैं आरंभादिक क्रियामैं हिंसादिक होय है तिनिकूं भी भला नहीं जानैं है यातैं तिससैं प्रशमका अभाव नहीं कहिए। बहुरि धर्मविषैं अर धर्मका फलविषैं परम उत्साह होय सो संवेग है, तथा साधर्मीनितैं अनुराग तथा परमेष्टीनिविषैं प्रीति सो भी संवेगही है। अर इस धर्मविषैं अर धर्मका फलविषैं अनुरागकूं अभिलाष न कहनां जातैं अभिलाष तौ इन्द्रियनिके विषयनिविषैं चाह होय ताकूं कहिये है, अपनां स्वरूपकी प्राप्तिविषैं अनुरागकूं अभिलाष नहीं कहिये। बहुरि इस संवेगहीमैं निर्वेद भी भया जाननां जातै अपने स्वरूपरूप धर्मकी प्राप्तिविषैं अनुराग भया तब अन्यत्र सर्वही अभिलाषका त्याग भया सर्व परद्रव्यानिसूं वैराग्य भया, सो ही निर्वेद है। बहुरि सर्व प्राणीनिविषैं उपकारकी बुद्धि तथा मैत्रीभाव सो अनुकंपा है तथा माध्यस्थ्यभाव होय तातैं सम्यग्दृष्टिकैं शल्य नांही है काहूसूं वैरभाव न होय है, सुख दुःख मरण जीवन आपकै परकरि अर परकै आपकरि नांही श्रद्धै है। बहुरि जो परविषैं अनुकंपा है सो आपहीविषैं अनुकंपा है जातैं परका बुरा करनां विचारै तब अपनें कषायभावतैं अपनां बुरा स्वयमेव भया, परका बुरा न विचारै तब अपनें कषायभाव न भये तब अपनी अनुकंपाही भई। बहुरि जीव आदि पदार्थनिविषैं अस्तित्वभाव सो आस्तिक्यभाव है सो जीव आदिका स्वरूप सर्वज्ञके आगमतैं जानि तिनिविषैं ऐसी बुद्धि होय जो ये जैसैं सर्वज्ञ भाषे तैसैंही हैं अन्यथा नांही है, ऐसा अस्तिक्यभाव होय है। ऐसैं ये सम्यक्त्वके बाह्य चिह्न हैं।

बहुरि सम्यक्त्वके आठ गुण हैं;—संवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य, अनुकंपा। सो ये प्रशमादिक च्यार हीमैं

आगये। संवेगमैं तौ निर्वेद, वात्सल्य, अर भक्ति ये आगये। बहुरि प्रशममैं निन्दा, गर्हा आगई।

बहुरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे हैं तिनिकूं लक्षण भी कहिये गुण भी कहिये, तिनिके नाम—निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितीकरण, वात्सल्य, प्रभावना ऐसैं आठ।

तहां शंकानाम संशयका भी है अर भयका भी है। तहां धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य कालाणुद्रव्य परमाणु इत्यादि तौ सूक्ष्म वस्तु हैं, बहुरि द्वीप समुद्र मेरु पर्वत आदि दूरवर्त्ती पदार्थ हैं, बहुरि तीर्थंकर चक्रवर्त्ती आदि अंतरित पदार्थ हैं; ते सर्वज्ञके आगमविषैं जैसैं कहे हैं तैसैं हैं कि नाही हैं? अथवा सर्वज्ञदेवनैं वस्तुका स्वरूप अनेकान्तात्मक कह्या है सो सत्य है कि असत्य है? ऐसैं संदेह करनां सो शंका कहिये। यह न होय तौ ताकूं निःशंकित अंग कहिये। बहुरि यहु शंका होय है सो मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं होय है, ताका परविषैं आत्मबुद्धि होना कार्य है। सो यह परविषैं आत्मबुद्धि है सो पर्यायबुद्धि है, यह पर्यायबुद्धि भय भी उपजावै है। शंका नाम भयका भी है, ताके सात भेद हैं;—इस लोकका भय, परलोकका भय, मरणका भय, अन्नरक्षाका भय, अगुप्तिभय, वेदनाका भय, अकस्मात् भय। ऐसैं ये भय होय तब जानिये याकै मिथ्यात्वकर्मका उदय है; सम्यग्दृष्टि भये ये होय नांही। इहां प्रश्न—जो भय प्रकृतिका उदय तौ आठमा गुणस्थान तांई है ताके निमित्ततैं सम्यग्दृष्टीकैं भय होय ही है, भयका अभाव कैसैं? ताका समाधानः—जो यद्यपि सम्यग्दृष्टीकैं चारित्रमोहके भेदरूप भयप्रकृतिके उदयतैं भय होय है तथापि ताकूं निर्भय ही कहिये जातैं याकै कर्मके उदयका स्वामीपणां नांही है अर परद्रव्यतैं अपनां द्रव्यत्वभावका नाश नहीं मानैं है,

पर्यायका स्वभाव विनाशीक मानैं है, तातैं भय होतैं भी निर्भय ही कहिये। भय होतैं ताका इलाज भागनां इत्यादि करै है, तहां वर्त्तमानकी पीडा नहीं सही जाय तातैं इलाज करै है यह निबलाईका दोप है। ऐसैं संदेह अर भयरहित सम्यग्दृष्टी होय ताकैं निःशंकित अंग होय है ॥ १ ॥

वहुरि कांक्षा नाम भोगनिकी इच्छा अभिलाषका है। तहां पूर्वैं किये भोग तिनिकी वांछा तथा तिनि भोगनिकी मुख्य क्रिया विषैं वांछा तथा कर्म अर कर्मके फलविषैं वांछा तथा मिथ्यादृष्टीनिकैं भोगनिकी प्राप्ति देखि तिनिकूं अपनें मनमैं भला जाननां, अथवा इंद्रियनिकूं नहीं रुचै ऐसे विषयनिविषैं उद्वेग होनां; ये भोगाभिलाषके चिह्न हैं। सो यह भोगाभिलाष मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं होय है। सो यह जाकैं नहीं होय सो निःकांक्षित अंगयुक्त सम्यग्दृष्टी होय है। यह सम्यग्दृष्टी यद्यपि शुभक्रिया व्रतादिक आचरण करै है ताका फल शुभकर्मबंध है ताकूं भी नांही वांछै है व्रतादिककूं स्वरूपके साधक जानि आचरै है कर्मके फलकी वांछा नांही करै है। ऐसैं निःकांक्षित अंग है ॥ २ ॥

वहुरि आपविषैं अपने गुणकी महंतताकी बुद्धिकरि आपकूं श्रेष्ठ मांनि परविषैं हीनताकी बुद्धि होय ताकूं विचिकित्सा कहिये, यह जाकै नहीं होय सो निर्विचिकित्सा अंगयुक्त सम्यग्दृष्टी होय है। याके चिह्न ऐसैं—जो कोई पुरुष पापके उदयतैं दुःखी होय, असाताके उदयतैं ग्लानियुक्त शरीर होय ताविषैं ग्लानिबुद्धि नहीं करै। ऐसी बुद्धि नहीं करै—जो मैं संपदावान हूं सुन्दरशरीरवान हूं, यह दीन रांक मेरी बरावरी नांही करि सकै। उलटा ऐसैं विचारै जो प्राणीनिकै कर्मउदयतैं विचित्र अनेक अवस्था होय है, मेरे कर्मका उदय ऐसा आवै तब मैं भी ऐसा ही होजाऊं। ऐसैं विचारतैं निर्विचिकित्सा अंग होय है ॥३॥

बहुरि अतत्वविषैं तत्वपणांका श्रद्धान सो मूढदृष्टि है। ऐसैं मूढदृष्टि जाकैं नहीं होय सो अमूढदृष्टि है। तहां मिथ्यादृष्टीनिकरि खोटे हेतु दृष्टांतकरि साध्या पदार्थ है सो सम्यग्दृष्टीकूं प्रीति नांही उपजावै है। बहुरि लौकिक रूढी अनेक प्रकार है सो यह निःसार है, निःसार पुरुषनिकरि ही आचरिए है, अनिष्ट फलकी देनहारी हैं तथा निष्फल है तथा जाका खोटा फल है तथा ताका किछू हेतु नांही ताका किछू अर्थ नांही, जो किछू लोक रूढ़ि चलिपड़ै सो लोक आदरिले फेरि ताका त्यजनां कठिन होय जाय इत्यादि लोकरूढि हैं। बहुरि अदेवविषैं तौ देवबुद्धि अधर्मविषैं धर्मबुद्धि, अगुरुविषैं गुरुबुद्धि इत्यादि देवादिक मूढता हैं सो यह कल्याणकारी नांही। सदोष देवकूं देव माननां, बहुरि तिनिके निमित्त हिंसादिकरि अधर्मकूं धर्म माननां, बहुरि खोटा आचारवान शल्यवान परिग्रहवान सम्यक्त्वव्रतरहितकूं गुरु माननां इत्यादि मूढ़ दृष्टिके चिह्न हैं। अब इहां देव धर्म गुरु कैसे होय तिनिका स्वरूप जान्या चाहिये, सो ही कहिये है—तहां रागादिक दोष अर ज्ञानावरणादिक कर्म सो ही आवरण, ये दोऊ जाकै नांही सो देव है; ताकै केवलज्ञान केवलदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्य ये अनंतचतुष्टय होय हैं। सो सामान्यतैं तौ देव ऐसा एक है अर विशेषकरि अरहंत सिद्ध ऐसैं दोय भेद हैं, बहुरि इनिके नामभेदके भेदकरि भेद करिये तब हजारां नाम हैं। बहुरि गुणभेद करिए तब अनंत गुण हैं। तहां परम औदारिक देह विषैं तिष्ठ्या घातियाकर्मरहित अनंतचतुष्टयसहित धर्मका उपदेश करनहारा ऐसा तौ अरहंत देव है। बहुरि पुद्गलमयी देहसूंरहित लोकके शिखर तिष्ठया सम्यक्त्वादिक अष्टगुणमंडित अष्टकर्मरहित ऐसा सिद्ध देव है, इनिके अनेक नाम हैं—अरहंत, जिन, सिद्ध, परमात्मा, महादेव, शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, हरि, बुद्ध, सर्वज्ञ, वीतराग परमात्मा

इत्यादि अर्थसहित अनेक नाम हैं; ऐसा तौ देव जाननां। बहुरि गुरु भी अर्थ थकी विचारिये तौ अरहंत देवही है जातैं मोक्षमार्गका उपदेश करनहारा अरहंतही है साक्षात् मोक्षमार्ग यहही प्रवर्त्तावै है, बहुरि अरहंतकै पीछै छद्मस्थ ज्ञानके धारक तिनिहीका निर्ग्रंथ दिगंबर रूप धारनेवाले मुनि हैं ते गुरु हैं जातैं अरहंतका एकदेशशुद्धपणां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका तिनिकैं पाइये सोही संवर निर्जरा मोक्षके कारण हैं तातैं अरहंतकी ज्यों एकदेशपणैं निर्दोष हैं ते मुनि भी गुरु हैं, मोक्षमार्गके उपदेश करनहारे हैं। बहुरि ऐसा मुनिपणां सामान्यकरि एकप्रकार है, बहुरि विशेषकरि सो ही तीन प्रकार है—आचार्य, उपाध्याय, साधु। ऐसैं यह पदवीका विशेष है, तिनिकै मुनिपणांकी क्रिया एकही है, बाह्य लिंग भी समान है, पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्ति ऐसैं तेरह प्रकारका चारित्र भी समानही है, तप भी शक्तिसारू समानही हैं, साम्यभाव भी समान है, मूलगुण उत्तरगुण भी समान हैं, परीषह उपसर्गनिका सहना भी समान है, आहार आदिकी विधि भी समान है, चर्या स्थान आसन आदि भी समान हैं, मोक्षमार्गका साधनां सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र भी समान हैं। ध्याता ध्यान ध्येयपणां भी समान है, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयपणां भी समान है, च्यार आराधनांका आराधना क्रोधादिक कषायनिका जीतनां इत्यादि मुनिनिकी प्रवृत्ति है सो सर्व समान है। इहां विशेष यहु है—जो आचार्य है सो तौ पंच आचार अन्यकूं अंगीकार करावै है, बहुरि अन्यकूं दोष लागै ताका प्रायश्चित्तकी विधि बतावै है, धर्मोपदेश दीक्षा शिक्षा दे सो तौ आचार्य होय है सो ऐसा आचार्य गुरु वंदने योग्य है। बहुरि उपाध्याय है सो वादित्व वाग्मित्व कवित्व गमकत्व ये च्यार विद्या हैं तिनिमैं प्रवीण होय हैं, इस विषै शास्त्रका अभ्यास प्रधान कारण है आप शास्त्र पढै अन्यकूं पढावै, ऐसा उपाध्याय गुरु वंदने

योग्य है, याकै अन्य मुनिव्रत मूलगुण उत्तरगुणकी क्रिया आचार्यसमान ही होय है। बहुरि साधु है सो रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गकूं साधै सो साधु है याकैं दीक्षा शिक्षा उपदेशादिक देनेंकी प्रधानता नांही अपनें स्वरूपके साधनविषैं ही तत्पर होय है, निर्ग्रंथ दिगंवर मुनिकी प्रवृत्ति जैसी जिनागममैं वर्णन करी है तैसी सर्वही होय है; ऐसा साधु वंदनेयोग्य है। अन्यलिंगी भेषी व्रतादिकतैं रहित परिग्रहवान विषयनिमैं आसक्त गुरु नाम धरावैं ते वंदनेयोग्य नांही हैं। इस पंचकालमैं भेषी जिनमतमैं भी भये हैं ते श्वेतांबर, यापनीयसंघ, गोपुच्छपिच्छसंघ, निःपिच्छसंघ, द्राविड़संघ आदि लेय अनेक भये हैं सो ये सर्वही वंदनेयोग्य नांही हैं। मूलसंघ, नग्नदिगंबर, अट्ठाईस मूलगुणनिके धारक, मयूरपिच्छक कमंडलु दयाका अर शौचका उपकरण धारैं यथोक्तविधि आहार करनेंवाले गुरु वंदनेयोग्य हैं जातैं तीर्थंकर देव दीक्षा धारैं हैं तब ऐसाही रूप धारैं हैं अन्य भेष नांही धारैं हैं, याहीकूं जिनदर्शन कहिए है। बहुरि धर्म जाकूं कहिए जो जीवकूं संसारके दुःखरूप नीचा पदतैं मोक्षका सुखरूप ऊंचा पदमैं धारै, ऐसा धर्म मुनिश्रावकके भेदकरि दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक एकदेश सर्वदेशरूप निश्चय व्यवहार करि दोय प्रकार कह्या है ताका मूल सम्यग्दर्शन है या बिनां धर्मकी उत्पत्ति नांही है। ऐसैं देव गुरु धर्म विषैं अर लोकविषैं यथार्थ दृष्टि होय अर मूढता नहीं होय सो अमूढ दृष्टि अंग है ॥ ४ ॥

बहुरि अपने आत्माकी शक्तिका वधावना सो उपबृंहण अंग है सो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका अपनां पौरुषकरि वधावनां सो ही उपबृंहण है। याकूं उपगूहन भी कहिये है, तहां ऐसा अर्थ जाननां जो स्वयंसिद्ध जिनमार्ग है ताकै बालकके तथा असमर्थ जनके आश्रयतैं जो न्यूनता होय ताकूं अपनी बुद्धितैं गोप्यकरि दूरिही करै सो उपगूहन अंग है ॥ ५ ॥

बहुरि धर्मतैं जो च्युत होता होय ताकूं दृढ करनां सो स्थितीकरण अंग है सो जो आप कर्मके उदयके वशतैं कदाचित् श्रद्धानतैं तथा क्रिया आचारतैं छूटै तौ आपकूं फेरि पौरुप करि श्रद्धानमैं दृढ करनां। बहुरि तैसैं ही अन्य धर्मात्मा धर्मतैं च्युत होता होय तौ ताकूं उपदेशादिक करि धर्म विषैं स्थापनां, ऐसैं स्थितीकरण अंग होय है ॥ ६ ॥

बहुरि अरहंत सिद्ध तथा तिनिके बिंब तथा चैत्यालय तथा चतुर्विधसंघ तथा शास्त्र इनिविषैं दासपणां होय जैसैं स्वामीका भृत्य दास होय तैसैं, सो वात्सल्य अंग है। तहां धर्मके स्थानकनिकैं उपसर्गादिक आवै ताकूं अपनी शक्तिसारू मेटै अपनीं शक्तिकूं छिपावै नांहीं, यह धर्मतैं अतिप्रीति होय तब होय है ॥ ७ ॥

बहुरि धर्मका उद्योत करनां सो प्रभावना अंग है। तहां अपने आत्माका रत्नत्रयकरि उद्योत करनां अर दान तप पूजा विधानकरि तथा विद्या अतिशय चमत्कारादिककरि जिनधर्मका उद्योत करनां, ऐसैं प्रभावना अंग होय है ॥ ८ ॥

ऐसैं ये आठ अंग सम्यक्त्वके हैं जाकैं ये प्रकट होय ताकैं जानिये सम्यक्त्व है। इहां प्रश्न—जो ये सम्यक्त्वके चिह्न कहे तैसैंही मिथ्यादृष्टीकैं भी देखैं तब सम्यक् मिथ्याका विभाग कैसैं होय?। ताका समाधान—जो जैसैं सम्यक्त्वीकै होय तैसैं तौ मिथ्यात्वीकै कभीही नहीं होय है तौ हू अपरीक्षककूं समान दीखैं तहां परीक्षा किये भेद जान्या जाय है। बहुरि परीक्षाविषैं अपना स्वानुभव प्रधान है सर्वज्ञके आगममें जैसा आत्माका अनुभव होना कह्या है तैसा आपकैं होय तब ताकै होतैं अपनी वचन कायकी प्रवृत्ति भी तिस अनुसार होय है, तिस प्रवृत्तिकै अनुसार अन्यकी भी वचन कायकी प्रवृत्ति पहचानिये

है, ऐसैं परीक्षा किये विभाग होय है । बहुरि यह व्यवहार मार्ग है, सो व्यवहारी छद्मस्थ जीवनिकैं अपने ज्ञानकै अनुसार प्रवृत्ति है, यथार्थ सर्वज्ञदेव जानैं हैं, व्यवहारीकूं सर्वज्ञदेव व्यवहारहीका आश्रय बताया है । यह अंतरंग सम्यक्त्वभावरूप सम्यक्त्व है सो ही सम्यग्दर्शन है, बहुरि बाह्यदर्शन व्रत समिति गुप्तिरूप चारित्र अर तपसहित अट्ठाईस मूल्यगुणसहित नग्न दिगंबर मुद्रा याकी मूर्ति है ताकूं जिन दर्शन कहिये । ऐसैं धर्मका मूल सम्यग्दर्शन जानि जे सम्यग्दर्शनरहित हैं तिनिका वंदना पूजनां निषेध्या है, सो भव्य जीवनिकूं यह उपदेश अंगीकार करने योग्य है ॥ २ ॥

आगैं अंतरंग सम्यग्दर्शनविना बाह्य चारित्रतैं निर्वाण नांही है, ऐसैं कहैं हैं;—

गाथा—दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं ।
सिज्झंति चरियभट्टा दंसणभट्टा ण सिज्झंति ॥ ३ ॥

छाया—दर्शनभ्रष्टाः भ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टस्य नास्ति निर्वाणम् ।
सिध्यन्ति चारित्रभ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टाः न सिध्यन्ति ॥३॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनतैं भ्रष्ट हैं ते भ्रष्ट हैं जे दर्शनतैं भ्रष्ट हैं तिनिकैं निर्वाण नांही होय है जातैं यह प्रसिद्ध है जे चारित्रतैं भ्रष्ट हैं ते तौ सिद्धिकूं प्राप्त होय हैं अर दर्शन भ्रष्ट हैं ते सिद्धिकूं प्राप्त नांही होय हैं ॥

भावार्थ—जे जिनमतकी श्रद्धातैं भ्रष्ट हैं तिनिकूं भ्रष्ट कहिये अर श्रद्धातैं भ्रष्ट नांही है अर कदाचित् चारित्रभ्रष्ट कर्मके उदयतैं भये हैं तिनिकूं भ्रष्ट नहीं कहिये जातैं जो दर्शनतैं भ्रष्ट है ताकै निर्वाणकी प्राप्ति नांही होय है, जे चारित्रतैं भ्रष्ट होय हैं अर श्रद्धानदृढ रहै हैं

तिनिकै तौ शीघ्रहीं फेरि चारित्रका ग्रहण होय है मोक्ष होय है, बहुरि दर्शन श्रद्धातैं भ्रष्ट होय हैं तिनिकै फेरि चारित्रका ग्रहण कठिन होय है तातैं निर्वाणकी प्राप्ति दुर्लभ होय है, जैसैं वृक्षका स्कंधादिक कटि जाय अर मूल वण्या रहै तौ स्कंधादिक शीघ्रहीं फेरि होय फल लागै, अर मूल उपडि जाय तब स्कंधादिक कैसैं होय; तैसैं धर्मका मूल दर्शन जाननां ॥ ३ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनतैं भ्रष्ट हैं अर शास्त्रनिकूं वहोत प्रकार जानैहैं तौ हू संसारमैं भ्रमै हैं, ऐसैं ज्ञानतैं भी दर्शनकूं अधिक कहैं हैं;—

गाथा—सम्मत्तरयणभट्ठा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं ।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव ॥ ४ ॥

छाया—सम्यक्त्वरत्नभ्रष्टाः जानंतो बहुविधानि शास्त्राणि ।
आराधनाविरहिताः भ्रमंति तत्रैव तत्रैव ॥ ४ ॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्वरूप रत्नकरि भ्रष्ट हैं अर बहुत प्रकारके शास्त्रनिकूं जानैं हैं तौऊ ते आराधनाकरि रहित भये संते जिस संसार-विषैंही भ्रमैं हैं। दोय वार कहनेंतैं बहुत भ्रमणां जनाया हैं ॥

भावार्थ—जे जिनमतकी श्रद्धातैं भ्रष्ट हैं अर शब्द न्याय छंद अलंकार आदि अनेक प्रकारके शास्त्रनिकूं जानैं हैं तौ हू सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपरूप आराधनां तिनिकैं नांही होय है यातैं कुमरणकरि चतुर्गतिरूप संसारविषैं ही भ्रमण करैं हैं मोक्ष नांहीं पावै हैं जातैं सम्यक्त्व विना ज्ञानकूं आराधना नाम नहीं कहिये ॥ ४ ॥

आगैं कहैं हैं, तप हू करै अर सम्यक्त्वरहित होय तौ तिनिकैं स्व-रूपका लाभ नहीं होय;—

गाथा—सम्मत्तविरहिया णं सुट्ठ वि उग्गं तवं चरंता णं।
ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं ॥५॥

छाया—सम्यक्त्वविरहिता णं सुष्ठु अपि उग्रं तपः चरंतो णं।
न लभन्ते बोधिलाभं अपि वर्षसहस्रकोटिभिः ॥ ५ ॥

अर्थः—जे पुरुष सम्यक्त्वकरि विरहित हैं ते सुष्ठु कहिये भलै प्रकार उग्र तपकूं आचरते हैं तौऊ ते बोधि कहिये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयी अपनां स्वरूप ताका लाभकूं नांही पावैं हैं, जो हजार कोडि वर्ष तांई तप करै तौऊ स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होय। इहां गाथामैं 'णं' ऐसा शब्द दोय जायगां है सो प्राकृतमैं अव्यय है, याका अर्थ वाक्यका अलंकार है॥

भावार्थ—सम्यक्त्व विना हजार कोडि वर्ष तप करै तौऊ मोक्षमार्गकी प्राप्ति नांही। इहां हजार कोडि कहनेंतैं एतेही वर्ष नहीं जाननें, कालका बहुतपणां जणाया है। तप मनुष्यपर्यायहीमैं होय है तातैं मनुष्यकालभी थोडा है तातैं तप कहनेंतैं ये भी वर्ष बहुतही कहिये॥ ५॥

आगैं ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व विना चारित्र तप निष्फल कहे, अब सम्यक्त्वसहित सर्वही प्रवृत्ति सफल है ऐसैं कहैं हैं;—

गाथा—सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया वरणाणी होंति अइरेण ॥ ६ ॥

छाया—सम्यक्त्वज्ञानदर्शनबलवीर्यवर्द्धमानाः ये सर्वे।
कलिकलुषपापरहिताः वरज्ञानिनः भवंति अचिरेण ॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन बल वीर्य इनि करि वर्द्धमान हैं अर कलिकलुषपाप कहिए इस पंचमकालके मलिन पापकरि

रहित हैं ते सर्व ही थोडे ही कालमैं वरज्ञानी कहिये केवल ज्ञानी होय हैं ॥

भावार्थ—इस पंचमकालमैं जड वक्र जीवनिके निमित्त करि यथार्थ मार्ग अपभ्रंश भया है तिसकी वासनातैं रहित भये जे जीव यथार्थ जिनमार्गके श्रद्धानरूप सम्यक्त्वसहित ज्ञान दर्शन अपना पराक्रम बलकूं न छिपाय करि अर अपनां वीर्य जो शक्ति ताकरि वर्द्धमान भये संते प्रवर्त्तैं हैं ते थोडे ही कालमैं केवलज्ञानी होय मोक्ष पावैं हैं ॥ ६ ॥

आगैं कहैं हैं, जो सम्यक्त्वरूप जलका प्रवाह आत्माकैं कर्मरज नांही लागनें दे है;—

गाथा—सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियए पवट्टए जस्स ।
कम्मं वालुयवरणं वंधुच्चिय णासए तस्स ॥ ७ ॥

छाया—सम्यक्त्वसलिलप्रवाहः नित्यं हृदये प्रवर्त्तते यस्य ।
कर्म वालुकावरणं वद्धमपि नश्यति तस्य ॥ ७ ॥

अर्थ—जा पुरुषका हृदयकै विषैं सम्यक्त्वरूप जलका प्रवाह निरन्तर प्रवर्त्तैं है तापुरुषकैं कर्म सो ही भया वालूरजका आवरण सो नांही लागै है, वहुरि ताकै पूर्वैं लग्या कर्मका वंध सो भी नाशकूं प्राप्त होय है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्व सहित पुरुषकै कर्मके उदयतैं भये जे रागादिक भाव तिनिका स्वामीपणां नांही है तातैं कपायनिकी तीव्र कलुपतातैं रहित परिणाम उज्ज्वल होय हैं, ताकूं जलकी उपमा है । जैसैं जलका प्रवाह जहां निरन्तर वहै तहां वालू रेत रज लागै नांही जैसैं सम्यक्त्ववान जीव कर्मके उदयकूं भोगता भी कर्मतैं नांही लिपै है । अर वाह्य व्यवहार अपेक्षा ऐसा भी भावार्थ जाननां—जाकै निरंतर हृदयमैं

सम्यक्त्वरूप जलप्रवाह वहै है सो सम्यक्त्ववान पुरुष इस कलिकाल-संबंधी वासना जो कुदेव कुशास्त्र कुगुरु इनके नमस्कारादिरूप अती-चाररूप रज भी नांही लगावै है, अर ताकै मिथ्यात्वसंबंधी प्रकृतिनिका आगामी बंध भी नांही होय है ॥ ७ ॥

आगैं कहैं हैं, जे दर्शनभ्रष्ट हैं अर ज्ञान चारित्रतैं भी भ्रष्ट हैं ते आप तौ भ्रष्ट हैं ही परन्तु अन्यकूं भ्रष्ट करैं हैं, यह अनर्थ है,—

गाथा—जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।
एदे भट्ठ वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति ॥ ८ ॥

छाया—ये दर्शनेषु भ्रष्टाः ज्ञाने भ्रष्टाः चारित्रभ्रष्टाः च।
एते भ्रष्टात् अपि भ्रष्टाः शेषं अपि जनं विनाशयंति ॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनविषैं भ्रष्ट हैं बहुरि ज्ञान चारित्रतैं भी भ्रष्ट हैं ते पुरुष भ्रष्टनिविषैं भी विशेष भ्रष्ट हैं। केई तौ दर्शनसहित हैं अर ज्ञान चारित्र जिनकै नांही है, बहुरि केई अंतरंग दर्शनतैं भ्रष्ट हैं तौऊ ज्ञान चारित्र नीकैं पालै हैं, अर जे दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीननितैं भ्रष्ट हैं ते तौ अत्यंत भ्रष्ट हैं, ते आपतौ भ्रष्ट हैं ही परन्तु शेष कहिये आप सिवाय अन्य जन हैं तिनिकूं भी नष्ट करैं हैं ॥

भावार्थ—इहां सामान्य वचन है तातैं ऐसा भी आशय सूचै है जो सत्यार्थ श्रद्धान ज्ञान चारित्र तौ दूरिही रहो जो अपने मतकी श्रद्धा ज्ञान आचरणतैं भी भ्रष्ट हैं ते तौ निरर्गल स्वेच्छाचारी हैं ते आप भ्रष्ट हैं तैसैं ही अन्य लोककूं उपदेशादिक करि भ्रष्ट करै हैं तथा तिनिकी प्रवृत्ति देखि स्वयमेव लोक भ्रष्ट होय हैं तातैं ऐसे तीव्रकषायी निषिद्ध हैं तिनिकी संगति करनां भी उचित नांहीं ॥ ८ ॥

आगैं कहैं है, जो ऐसे भ्रष्ट पुरुष आप भ्रष्ट हैं ते धर्मात्मा पुरुषनिकूं दोष लगाय भ्रष्ट बतावैं हैं;—

गाथा—जो कोवि धम्मसीलो संजमतवणियमजोयगुणधारी।
तस्स य दोस कहंता भग्गा भग्गत्तणं दिंति ॥ ९ ॥

छाया—यः कोऽपि धर्मशीलः संयमतपोनियमयोगगुणधारी।
तस्य च दोषान् कथयंतः भग्ना भग्नत्वं ददति ॥ ९ ॥

अर्थ—जो कोई पुरुष धर्मशील कहिये अपनां स्वरूपरूप धर्म साधनेंका जाका स्वभाव है तथा संयम कहिये इन्द्रिय मनका निग्रह षट् कायके जीवनिकी रक्षा, अर तप कहिये बाह्य आभ्यंतर भेदकरि बारह प्रकार तप, नियम कहिये आवश्यक आदि नित्य कर्म, योग कहिए समाधि ध्यान तथा वर्षाकाल आदि कालयोग, गुण कहिये मूलगुण उत्तरगुण, इनिका धारनेवाला है ताकैं केई मततैं भ्रष्ट जीव दोषनिका आरोपण करि कहैं हैं—जो ये भ्रष्ट हैं दोषनिसहित हैं ते पापात्मा जीव आप भ्रष्ट हैं तातैं अपना अभिमान पोषनेकूं अन्य धर्मात्मा पुरुषनिकूं भ्रष्टपणां दे हैं ॥

भावार्थ—पापीनिका ऐसा ही स्वभाव होय है जो आप पापी है तैसैं ही धर्मात्मामैं दोष बताय आप समान किया चाहै है, ऐसे पापीनिकी संगति नहीं करनीं ॥ ९ ॥

आगैं कहैं हैं—जो दर्शनभ्रष्ट है सो मूलभ्रष्ट है ताकै फलकी प्राप्ति नांही;—

गाथा—जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।
तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणट्ठा ण सिज्झंति ॥ १० ॥

छाया—यथा मूले विनष्टे द्रुमस्य परिवारस्य नास्ति परिवृद्धिः।
तथा जिनदर्शनभ्रष्टाः मूलविनष्टाः न सिद्ध्यन्ति॥१०॥

अर्थ—जैसैं वृक्षका मूल विनष्ट होतैं संतैं ताके परिवार कहिये स्कंध शाखा पत्र पुष्प फल ताकी वृद्धि नहीं होय है तैसैं जे जिनदर्शनतैं भ्रष्ट हैं बाह्य तौ निर्ग्रंथ लिंग नग्न दिगंबर यथाजातरूप मूलगुणका धारण मयूरपुच्छिकापींछी अर कमंडलु धारनां यथाविधि दोप टालि शुद्ध खडा भोजन करनां इत्यादि बाह्य शुद्ध भेष धारनां अर अंतरंग जीवादि षट् द्रव्य नव पदार्थ सप्त तत्वका यथार्थ श्रद्धान तथा भेदविज्ञानकरि आत्मस्वरूपका अनुभवन ऐसा जो दर्शन मत तातैं बाह्य हैं ते मूलविनष्ट हैं तिनिकै सिद्धि नांही होय है, मोक्षफलकूं नांही पावैं हैं॥ १०॥

आगैं कहैं हैं, जो जिनदर्शन है सो ही मूल मोक्षमार्ग है;—

गाथा—जह मूलाओ खंधो साहापरिवार बहुगुणो होइ।
तह जिणदंसण मूलो णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस्स॥११॥

छाया—यथा मूलात् स्कंधः शाखापरिवारः बहुगुणः भवति।
तथा जिनदर्शनं मूलं निर्दिष्टं मोक्षमार्गस्य॥ ११॥

अर्थ—जैसैं वृक्षकै मूलतैं स्कंध होय है, सो कैसाक स्कंध होय है—शाखा आदि परिवार बहुत हैं गुण जाकै, इहां गुण शब्द बहुतका वाचक है तैसैं ही मोक्षमार्गका मूल जिनदर्शन गणधर देवादिकनैं कह्या है॥

भावार्थ—इहां जिनदर्शन कहिये जो भगवान तीर्थंकरपरमदेवदर्शन ग्रहण किया सो ही उपदेश्या सो ऐसा मूलसंघ है अट्ठाईस मूलगुणसहित कह्या है। पंच महाव्रत, पंच समिति, षट् आवश्यक पांच इंद्रियनिका वश करनां, स्नान न करनां, वस्त्रादिकका त्याग, दिगम्बर

मुद्रा, केशलौंच करनां, एक वार भोजन करनां, खडा भोजन करनां, दंतधावन न करनां ये अठ्ठाईस मूलगुण हैं। वहुरि छियालीस दोष टालि आहार करनां सो एषणा समितिमैं आगया। ईर्यापथ सोधि चालनां सो ईर्यासमितिमैं आय गया। अर दयाका उपकरण तौ मोर पुच्छकी पींछी अर शौचका उपकरण कमंडलुका धारण ऐसा तौ बाह्य भेष है। वहुरि अंतरंग जीवादिक षट् द्रव्य पंचास्ति काय सप्त तत्त्व नव पदार्थनिकूं यथोक्त जानि श्रद्धान करनां अर भेदविज्ञानकरि अपनां आत्मस्वरूपका चिंतवन करनां अनुभव करनां, ऐसा दर्शन जो मत सो मूलसंघका है। ऐसा जिनदर्शन है सो मोक्षमार्गका मूल है, इस मूलतैं मोक्षमार्गकी सर्व प्रवृत्ति सफल होय है। वहुरि जे इसतैं भ्रष्ट भये हैं ते इस पंचमकालके दोषतैं जैनाभास भये हैं, ते श्वेतांवर द्राविड यापनीय गोपुच्छपिच्छ निपिच्छ पांच संघ भये हैं तिनिनैं सूत्र सिद्धांत अपभ्रंश किये हैं बाह्य भेष पलटि विगाड्या है आचरण जिनूंनै ते जिनमतके मूलसंघतैं भ्रष्ट हैं तिनिकैं मोक्षमार्गकी प्राप्ति नांही है। मोक्षमार्गकी प्राप्ति मूलसंघके श्रद्धान ज्ञान आचरणहीतैं है ऐसा नियम जाननां ॥ ११ ॥

आगैं कहैं हैं जो, जे यथार्थ दर्शनतैं भ्रष्ट हैं अर दर्शनके धारकनितैं आप विनय कराया चाहै है ते दुर्गति पावैं हैं;—

गाथा—[1]जे दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥ १२ ॥

---

१ मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें इस गाथाका पूर्वार्द्ध इस प्रकार है जिसका यह अर्थ है कि "जो दर्शन भ्रष्ट पुरुष दर्शन धारियोंके चरणोंमें नहीं गिरते है"–
"जे दंषणेसु भठ्ठा पाए न पडंति दंसणधराणं"–
उत्तरार्द्ध समान है।

छाया—ये दर्शनेषु भ्रष्टाः पादयोः पातयंति दर्शनधरान्।
ते भवंति लल्लमूकाः बोधिः पुनः दुर्लभा तेषाम् ॥१२

अर्थ—जे पुरुष दर्शनविषैं भ्रष्ट हैं अर अन्य जे दर्शनके धारक हैं तिनिकूं अपनें पगनि पडावैं हैं नमस्कारादि करावै हैं ते परभव विषैं लूला मूका होय हैं अर तिनिकै बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति सो दुर्लभ होय है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जे दर्शनभ्रष्ट हैं ते मिथ्यादृष्टी हैं अर दर्शनके धारक हैं ते सम्यग्दृष्टी हैं, सो मिथ्यादृष्टी होय करि सम्यग्दृष्टीनितैं नमस्कार चाहैं हैं ते तीव्र मिथ्यात्वके उदयसहित हैं ते परभवविषैं लूला मूका होय हैं, भावार्थ—एकेंद्रिय होय हैं तिनिकै पग नांही ते परमार्थतैं लूला मूका हैं ऐसैं एकेंद्रियस्थावर होय निगोदमैं वास करैं हैं तहां अनंतकाल रहैं हैं, तिनिकै दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति दुर्लभ होय है, मिथ्यात्वका फल निगोदही कह्या है। इस पंचम कालमैं मिथ्या मतके आचार्य बनि लोकनितैं विनयादिक पूजा चाहैं हैं तिनिकै जानिये है कि त्रसराशिका काल पूरा हुआ अब एकेंद्रिय होय निगोदमैं वास करैंगे, ऐसैं जान्या जाय है ॥ १२ ॥

आगै कहैं है जो जे दर्शनभ्रष्ट हैं तिनिकै लज्जादिकतैं भी पगां पडै हैं ते भी तिनि सारिखे ही हैं;—

गाथा—जे वि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जगारवभयेण ।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ॥ १३॥

संस्कृत—येऽपि पतन्ति च तेषां जानंतः लज्जागारवभयेन ।
तेषामपि नास्ति बोधिः पापं अनुमन्यमानानाम् ॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनसहित हैं ते भी दर्शनभ्रष्ट हैं तिनिकूं मिथ्यादृष्टी जानते संते भी तिनिके पगां पडैं हैं तिनिका लज्जा भयगारव करि

विनयादि करैं हैं तिनिकै भी बोधि कहिकै दर्शन ज्ञान चरित्र ताकी प्राप्ति नांही है जातैं ते भी पाप जो मिथ्यात्व ताकी अनुमोदन करते हैं, करनां करावनां अनुमोदनां करनां समान कह्या है। इहां लज्जा तौ ऐसैं–जो हम काहूका विनय नांहीं करैंगे तौ लोक कहैंगे ये उद्धत है मानी हैं तातैं हमकूं तौ सर्वका साधन करनां, ऐसैं लज्जाकरि दर्शनभ्रष्टका भी विनयादिक करै। बहुरि भय ऐसैं–जो ये राज्यमान्य है तथा मंत्र विद्यादिककी सामर्थ्ययुक्त है याका विनय नहीं करैंगे तौ कछू हमारे ऊपरि उपद्रव करैगा, ऐसैं भय करि विनय करै। बहुरि गारव तीन प्रकार कह्या है; रसगारव ऋद्धिगारव सातगारव। तहां रसगारव तो ऐसा जो मिष्ट इष्ट पुष्ट भोजनादि मिलिबो करै तब ताकरि प्रमादी रहै। बहुरि ऋद्धिगारव ऐसा जो कछू तपके प्रभाव आदिकरि ऋद्धिकी प्राप्ति होय ताका गौरव आय जाय, ताकरि उद्धत प्रमादी रहै। बहुरि सात-गौरव ऐसा जो शरीर नीरोग होय कछू क्लेशका कारण नहीं आवै तव सुखियापणां आय जाय, ताकरि मग्न रहै। इत्यादिक गारवभाव मस्ता-ईतैं किछू भले बुरेका विचार नहीं करै तव दर्शनभ्रष्टका भी विनय करिबा लगिजाय इत्यादि निमित्ततैं दर्शनभ्रष्टका विनय करैं तौ यामैं मिथ्यात्वकी अनुमोदना आवै ताकूं भला जानैं तव आप भी ता समान भया तव ताकै बोधि काहेकी कहिये ? ऐसैं जाननां ॥ १३ ॥

गाथा—दुविहं पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि ।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होई ॥ १४ ॥

संस्कृत—द्विविधः अपि ग्रंथत्यागः त्रिषु अपि योगेषु संयमः तिष्ठति ।
ज्ञाने करणशुद्धे उद्भभोजने दर्शनं भवति ॥ १४ ॥

अर्थ—जहां बाह्य आभ्यंतर भेदकरि दोय प्रकार परिग्रहका त्याग होय अर मन वचन काय ऐसें तीनूं योगनिविषैं संयम तिष्टै बहुरि कृत कारित अनुमोदना ऐसें तीन करण जामें शुद्ध होय ऐसा ज्ञान होय बहुरि निर्दोष जामैं कृत कारित अनुमोदना आपका नहीं लागै ऐसा खडा पाणिपात्र आहार करै, ऐसें मूर्तिमंत दर्शन होय है॥

भावार्थ—इहां दर्शन नाम मतका है तहां बाह्य भेष शुद्ध दीखै सो दर्शन सो ही ताके अंतरंग भावकूं जनावै, तहां बाह्य परिग्रह तौ धनधान्यादिक अर अन्तरंग परिग्रह मिथ्यात्व कषायादिक सो जहां नहीं होय यथाजात दिगंवर मूर्त्ति होय, बहुरि इन्द्रिय मनका वश करनां त्रस थावर जीवनिकी दया करनी ऐसा संयम मन वचन काय करि शुद्ध पालनां जहां होय, अर ज्ञान विषैं विकार करनां करावनां अनुमोदनां ऐसैं तीन करणनिकरि विकार नहीं होय, अर निर्दोष पाणिपात्र खडा-रहि भोजन करनां, ऐसैं दर्शनकी मूर्त्ति है सो जिनदेवका मत है सो ही वंदने पूजने योग्य है, अन्य पाखंड भेष वंदनें पूजनें योग्य नांही हैं॥ १४॥

आगैं कहैं हैं जो इस सम्यग्दर्शनतैं ही कल्याण अकल्याणका निश्चय होय है;—

गाथा—सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी।
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि॥ १५॥

संस्कृत—सम्यक्त्वात् ज्ञानं ज्ञानात् सर्वभावोपलब्धिः।
उपलब्धपदार्थे पुनः श्रेयोऽश्रेयो विजानाति॥१५॥

अर्थ—सम्यक्त्वतैं तौ ज्ञान सम्यक् होय है, बहुरि सम्यक् ज्ञानतैं सर्व पदार्थनिकी उपलब्धि कहिये प्राप्ति तथा जाननां होय है, बहुरि

पदार्थनिकी उपलब्धि होतैं श्रेय कहिये कल्याण अर अश्रेय कहिये अकल्याण इनि दोऊनिकूं जानिये हैं ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन विना ज्ञानकूं मिथ्याज्ञान कह्या है तातैं सम्यग्दर्शन भये ही सम्यग्ज्ञान होय है अर सम्यग्ज्ञानतैं जीव आदि पदार्थनिका स्वरूप यथार्थ जानिये है, वहुरि जब पदार्थनिका यथार्थ स्वरूप जानिये तब भला बुरा मार्ग जानिये है। ऐसैं मार्गके जाननेंमैं भी सम्यग्दर्शनही प्रधान है ॥ १५ ॥

आगैं कल्याण अकल्याणकूं जानें कहा होय है, सो कहैं हैं;—

गाथा—सेयासेयविदण्हू उध्दुददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं ॥ १६ ॥

संस्कृत—श्रेयोऽश्रेयवेत्ता उद्धृतदुःशीलः शीलवानपि।
शीलफलेनाभ्युदयं ततः पुनः लभते निर्वाणम् १६

अर्थ—कल्याण अर अकल्याण मार्गका जाननेवाला पुरुष है सो 'उद्धुदद्दुस्सील' कहिये उडाया है मिथ्यात्वस्वभाव जानैं ऐसा होय है, वहुरि 'सीलवंतो वि' कहिये सम्यक् स्वभावयुक्त भी होय है, वहुरि तिस सम्यक् स्वभावका फलकरि अभ्युदय पावै है तीर्थंकर आदि पद पावै है, वहुरि अभ्युदय भये पीछैं निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—भला बुरा मार्ग जानैं तब अनादि संसारतैं लगाय मिथ्याभावरूप प्रकृति है सो पलटि सम्यक्स्वभावस्वरूप प्रकृति होय, तिस प्रकृतितैं विशिष्ट पुण्य बांधै तब अभ्युदयरूप पदवी तीर्थंकर आदिकी पाय निर्वाण पावै है ॥ १६ ॥

आगैं कहैं हैं जो ऐसा सम्यक्त्व जिनवचनतैं पाइये है तातैं ते ही सर्व दुःखके हरण हारे हैं;—

गाथा—जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं ।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥ १७ ॥

संस्कृत—जिनवचनमौपधमिदं विपयसुखविरेचनममृतभूतम् ।
जरामरणव्याधिहरणं क्षयकरणं सर्वदुःखानाम्॥१७॥

अर्थ—यह जिनवचन है सो औपध है, सो कैसा औपध है विषय जो इंद्रियनिके विपय तिनतैं मान्या सुख ताका विरेचन कहिये दूरि करन हारा है, वहुरि कैसा है—अमृतभूत कहिये अमृतसारिखा है याहीतैं जरा मरण रूप रोग ताका हरन हारा है, वहुरि सर्व दुःखनिका क्षय करन हारा है ॥

भावार्थ—या संसारविपैं प्राणी विपयसुख, सेवै है तिसतैं कर्म वंधैं हैं तिसतैं जन्म जरा मरणरूप रोगनिकरि पीडित होय है, तहां जिनवचनरूप औपध ऐसा है जो विपयसुखतैं अरुचि उपजाय तिसका विरेचन करै है। जैसैं गरिष्ट आहारतैं मल वधै तव ज्वर आदि रोग उपजै तव ताके विरेचनकूं हरड़े आदिक औपधि उपकारी होय तैसैं है। सो विपयनितैं वैराग्य होय तब कर्मवंध नहीं होय तब जन्म जरा मरण रोग नहीं होय तव संसारका दुःखका अभाव होय। ऐसैं जिनवचनकूं अमृत सारिखे जांनि अंगीकार करनें ॥ १७ ॥

आगैं जिनवचनविपैं दर्शनका लिंग जो भेप सो कै प्रकार कह्या है, सो कहैं हैं;—

गाथा—एगं जिणस्स रूवं वीयं उक्किट्ठसावयाणं तु ।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंगदंसणं णत्थि ॥१८

संस्कृत—एक जिनस्य रूपं द्वितीयं उत्कृष्टश्रावकाणां तु ।
अवरस्थितानां तृतीयं चतुर्थं पुनः लिंगदर्शनं नास्ति ॥

अर्थ—दर्शनविषैं एक तौ जिनका स्वरूप है सो जैसा लिंग जिन-देव धाऱ्या सो लिंग है, बहुरि दूजा उत्कृष्ट श्रावकनिका लिंग है, बहुरि तीजा 'अवरट्ठिय' कहिये जघन्य पद विषैं स्थित ऐसीं आर्यिका-निका लिंग है, बहुरि चौथा लिंग दर्शन विषैं नांही है ॥

भावार्थ—जिनमत विषैं तीन ही लिंग कहिये भेष कहैं हैं। एक तौ यथाजातरूप जिनदेव धाऱ्या सो है, बहुरि दूजा उत्कृष्ट श्रावक ग्यारमी प्रतिमा धारकका है, बहुरि तीजा स्त्री आर्यिका होय ताका है, बहुरि चौथा अन्य प्रकारका भेष जिनमतमैं नांही है जे मानैं हैं ते मूलसंघतैं बाह्य हैं ॥ १८ ॥

आगैं कहैं हैं—ऐसा बाह्य लिंग होय ताकै अंतरंग श्रद्धान ऐसा होय है सो सम्यग्दृष्टी है;—

गाथा—छह दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥ १९ ॥

संस्कृत—षट् द्रव्याणि नव पदार्थाः पंचास्तिकायाः सप्त तत्वानि निर्दिष्टानि।
श्रद्धाति तेषां रूपं सः सद्दृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ १९ ॥

अर्थ—छह द्रव्य नव पदार्थ पांच अस्तिकाय सप्त तत्व ये जिनव-चनमैं कहे हैं तिनिका स्वरूपकूं जो श्रद्धान करै सो सम्यग्दृष्टी जाननां ॥ १९ ॥

भावार्थ—जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये तो छह द्रव्य हैं, बहुरि जीव अजीव अश्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप ये नव पदार्थ हैं, छह द्रव्य काल विना पंचास्तिकाय हैं। पुण्य पाप विना नव पदार्थ सप्त तत्व हैं। इनिका संक्षेप स्वरूप ऐसा—जो जीवन तै

चेतनास्वरूप है सो चेतना दर्शनज्ञानमयी है; पुद्गल स्पर्श रस गंध वर्ण गुणमयी मूर्त्तीक है, याके परमाणु अर स्कंध ऐसैं दोय भेद हैं; बहुरि स्कंधके भेद शब्द बंध सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया आतप उद्योत इत्यादि अनेक प्रकार है; धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य ये एक एक हैं अमूर्त्तीक हैं निष्क्रिय है, अर कालाणुअसंख्यात द्रव्य है। काल विना पांच द्रव्यनिकै बहुप्रदेशीपणां है यातैं पांच अस्तिकाय हैं काल द्रव्य बहुप्रदेशी नांहीं तातैं अस्तिकाय नांहीं; इत्यादिक इनिका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्रकी टीकातैं जाननां। बहुरि एक तौ जीव पदार्थ है अर अजीव पदार्थ पांच हैं, बहुरि जीवकै कर्मबंध योग्य पुद्गल होय सो आश्रव है बहुरि कर्म बंधै सो बंध है, बहुरि आश्रव रुकै सो संवर है, कर्मबंध झडै सो निर्जरा है संपूर्ण कर्मका नाश होय सो मोक्ष है जीवनिकूं सुखका निमित्त सो पुण्य है, बहुरि दुःखका निमित्त सो पाप है; ऐसैं सप्त तत्व नव पदार्थ हैं। इनिका आगमकै अनुसार स्वरूप जानि श्रद्धान करै सो सम्यग्दृष्टी होय है॥ १९॥

आगैं व्यवहार निश्चय करि सम्यक्त्व दोय प्रकार करि कहै हैं;—

गाथा—जीवादी सद्दहणं सम्मत्त जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं॥ २०॥

संस्कृत—जीवादीनां श्रद्धानं सम्यक्त्वं जिनवरैः प्रज्ञप्तम्।
व्यवहारात् निश्चयतः आत्मैव भवति सम्यक्त्वम्॥

अर्थ—जीव आदि कहे ज पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो तौ व्यवहारतैं सम्यक्त्व जिनभगवाननैं कह्या है, बहुरि निश्चयतैं अपनां आत्माहीका श्रद्धान सो सम्यक्त्व है॥ २०॥

भावार्थ—तत्वार्थका श्रद्धान सो तौ व्यवहारतैं सम्यक्त्व है, बहुरि अपना आत्मस्वरूपका अनुभव करि तिसकी श्रद्धा प्रतीति रुचि आचरण सो निश्चयतैं सम्यक्त्व है, सो यह सम्यक्त्व आत्मातैं जुदा वस्तु नांही है आत्माहीका परिणाम है सो आत्माही है। ऐसै सम्यक्त्व अर आत्मा एकही वस्तुहै यह निश्चयका आशय जाननां॥ २ ॥

आगैं कहैं हैं जो यह सम्यग्दर्शन है सो सर्व गुणनिमैं सार है ताहि धारण करो;—

गाथा—एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥ २१ ॥

संस्कृत—एवं जिनप्रणीतं दर्शनरत्नं धरत भावेन।
सारं गुणरत्नत्रये सोपानं प्रथमं मोक्षस्य ॥ २१ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार जिनेश्वर देवनैं कह्या दर्शन है सो गुणनिविषैं अर दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीन रत्ननिविषैं सार है उत्तम है, बहुरि मोक्षमंदिरके चढ़नेकूं प्रथम पैडी है, सो आचार्य कहैं हैं—हे भव्य जीव हो! तुम याकूं अंतरंग भावकरि धारण करो, बाह्य क्रियादिक करि धारण किया तौ परमार्थ नांहीं अंतरंगकी रुचिकरि धारणां मोक्षका कारण है ॥ २१ ॥

आगैं कहैं हैं—जो श्रद्धान करै ताहीकै सम्यक्त्व होय है;—

गाथा—जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं ॥ २२ ॥

संस्कृत—यत् शक्नोति तत् क्रियते यत् च न शक्नुयात् तस्य च श्रद्धानम्।
केवलिजिनैः भणितं श्रद्धधानस्य सम्यक्त्वम् ॥२२॥

अर्थ—जो करनेंकूं समर्थ हूजे सो तौ कीजिये बहुरि जो करनैकूं नहीं समर्थ हूजिये सो श्रद्धिए जातैं केवली भगवाननैं श्रद्धान करनेंवालैकैं सम्यक्त्व कह्याहै ॥ २२ ॥

भावार्थ—इहां आशय ऐसा है जो कोऊ कहै सम्यक्त्व भये पीछैं तौ सर्व परद्रव्य संसारकूं हेय जानियेहै सो जाकूं हेय जानैं ताकूं छोड़ै मुनि होय चारित्र आचरै तब सम्यक्त्व भया जानिये, ताका समाधानरूप यह गाथा है जो सर्व परद्रव्यकूं हेय जानि निज स्वरूपकूं उपादेय जान्यां श्रद्धान किया तव मिथ्याभावतौ मिट्या परंतु चारित्रमोहकर्मका उदय प्रवल होय जेतैं चारित्र अंगीकार करनेंकी सामर्थ्य नहीं होय तेतैं जेती सामर्थ्य होय तेता तौ करै तिस सिवायका श्रद्धानकरै, ऐसें श्रद्धान करनेंवालाहीकैं भगवाननैं सम्यक्त्व कह्या है ॥२२॥

आगैं कहैं हैं, जो ऐसैं दर्शन ज्ञान चारित्र विषैं तिष्ठैं है ते वंदिवे योग्य हैं;—

गाथा—दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकालसुपसत्था।
एदे दु वंदणीया जे गुणवादी गुणधराणं ॥ २३ ॥

संस्कृत—दर्शनज्ञानचारित्रे तपोविनये नित्यकालसुप्रस्वस्थाः।
एते तु वन्दनीया ये गुणवादिनः गुणधराणाम् २३

अर्थः—दर्शन ज्ञान चारित्र तथा तप विनय इनिविषैं जे भले प्रकार तिष्ठैं है ते प्रशस्तहैं सराहने योग्य है अथवा भलै प्रकार स्वस्थ हैं लीन हैं, वहुरि गणधर आचार्य हैं तिनिके गुणानुवाद करनेवाले हैं ते वन्दने योग्य हैं। अन्य जे दर्शनादिक तैं भ्रष्ट हैं अर गुणवाननितैं मत्सरभाव राखि विनयरूप नहीं प्रवर्तैं हैं ते वन्दिवेयोग्य नाहींहैं ॥२३॥

आगैं कहैं हैं जो याथाजात रूपकूं देखि मत्सरभाव करि वन्दना नहीं करैं हैं ते मिथ्या दृष्टी ही हैं;—

गाथा—सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठुं जो मण्णएण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो ॥ २४ ॥

संस्कृत—सहजोत्पन्नं रूपं दृष्ट्वा यः मन्यते न मत्सरी।
सः संयमप्रतिपन्नः मिथ्यादृष्टिः भवति एषः ॥२४॥

अर्थ—जो सहजोत्पन्न यथाजात रूपकूं देखि करि न मानैं हैं तिसका विनय सत्कार प्रीति नाहीं करैहै अर मत्सरभाव करै है सो संयमप्रतिपन्न है दीक्षाग्रहण करी है तौऊ प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टीहै ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो यथाजातरूपकूं देखि मत्सरभावकरि ताका विनय नहीं करै तौ जानिये याकै इस रूपकी श्रद्धा रुचि नांहीं ऐसैं श्रद्धा रुचि विना तौ मिथ्यादृष्टीही होय। इहां आशय ऐसा जो श्वेतांवरादिक भये ते दिगम्बररूपतैं मत्सरभाव राखैं अर तिसका विनय नहीं करैं तिनिका निषेध है ॥ २४ ॥

आगैं याहीकूं दृढ करैं हैं;—

गाथा—अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति ॥ २५ ॥

संस्कृत—अमरैः वंदितानां रूपं दृष्ट्वा शीलसहितानाम्।
ये गौरवं कुर्वन्ति च सम्यक्त्वविवर्जिताः भवंति ॥

अर्थ—शीलकरि सहित देवनिकरि वंदनेंयोग्य जो जिनेश्वर देवका यथाजात रूपकूं देखिकरि गौरव करैं हैं विनयादिक नहीं करैं हैं ते सम्यक्त्वकरि वर्जित हैं ॥

भावार्थ—जा रूपकूं अणिमादिक ऋद्धिनिके धारी देवभी पगां पड़ैं ताकूं देखि मत्सरभावकरि नहीं वंदैं हैं तिनिकै सम्यक्त्व काहेका? ते सम्यक्त्वतैं रहितही हैं ॥ २५ ॥

आगैं कहैं हैं जो असंयमी वंदवे योग्य नांहीं हैं;—

गाथा—अस्संजदं ण वंदे वच्छविहीणोवि तो ण वंदिज्ज।
दोण्णि वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि २६

छाया—असंयतं न वन्देत वस्त्रविहीनोऽपि स न वन्द्येत।
द्वौ अपि भवतः समानौ एकः अपि न संयतः भवति ॥ २६ ॥

अर्थ—असंयमीकूं नांही वंदिये बहुरि भावसंयम नहीं होय अर वाह्य वस्त्ररहित होय सो भी वंदिवे योग्य नांही जातैं ये दोऊ ही संयमरहित समान हैं, इनिमैं एकभी संयमी नांही ॥

भावार्थ—जो गृहस्थ भेष धाऱ्या है सो तौ असंयमी है ही, बहुरि जो बाह्य नग्नरूप धारण किया अर अंतरंग भावसंयम नांही हैं तौ वह भी असंयमीही है, तातैं ये दोऊही असंयमी है, तातैं दोऊ ही वंदवे योग्य नांहीं। इहां आशय ऐसा है जो ऐसै मति जानियो–जो आचार्य यथाजातरूपकूं दर्शन कहते आवैं हैं सो केवल नग्नरूपही यथाजातरूप होगा, जातैं आचार्य तौ बाह्य अभ्यंतर सर्व परिग्रहसूं रहित होय ताकूं यथाजातरूप कहै हैं। अभ्यंतर भावसंयम विना बाह्य नग्न भये तौ किछू संयमी होयहैं नांही ऐसैं जानानां। इहां कोई पूछै—बाह्य भेष शुद्ध होय आचार निर्दोष पालताकैं अभ्यंतर भावमैं कपट होय ताका निश्चय कैसैं होय, तथा सूक्ष्म भाव केवलीगम्यहैं, मिथ्यात्व होय ताका निश्चय कैसैं होय, निश्चयविना वंदनेकी कहा रीति? ताका समाधान

ऐसा जो कपटका जेतैं निश्चय नहीं होय तेतैं आचार शुद्ध देखि वंदे तामैं दोष नांही, अर कपटका कोई कारणतैं निश्चय होजाय तब नहीं वंदै, बहुरि केवलीगम्य मिथ्यात्वकी व्यवहारमैं चर्चा नांही छद्मस्थके ज्ञान गम्यकी चर्चा है। जो अपनें ज्ञानका विपयही नांही ताका बाध निर्बाध करनेका व्यवहार नांही सर्वज्ञ भगवानकी भी यह ही आज्ञाहै, व्यवहारी जीवकूं व्यवहारकाही शरणहै ॥ २६ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ़ करता संता कहैं हैं;—

गाथा—णवि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ ॥२७॥

संस्कृत—नापि देहो वंद्यते नापि च कुलं नापिच जातिसंयुक्तः।
कः वंद्यते गुणहीनः न खलु श्रमणः नैव श्रावकः भवति २७

अर्थ—देहकूं भी नांही वंदियेहै बहुरि कुलकूं भी नांही वंदियेहै बहुरि जातियुक्तकूं भी नांही वंदियेहै जातैं गुणरहित होय ताकूं कौन वंदे गुण विना प्रकट मुनि नहीं श्रावक भी नाहीं है ॥

भावार्थ—लोकमैं भी ऐसा न्याय है जो गुणहीन होय ताकूं कोऊ श्रेष्ठ मानैं नांहीं, देह रूपवान होय तौ कहा, कुल वडा होय तौ कहा, जाति वड़ी होय तौ कहा, जातैं मोक्षमार्गमैं तौ दर्शन ज्ञान चारित्र गुण हैं इनिविनां जाति कुल रूप आदिक वंदनीक नांही हैं, इनि तैं मुनि-श्रावकपणां आवै नांही, मुनिश्रावकपणां तौ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तैं होय है, तातैं इनिके धारक हैं तेही वंदिवे योग्य हैं जाति कुल आदि वंदिवे योग्य नांही हैं ॥ २७ ॥

आगैं कहैं हैं जे तप आदिकरि संयुक्त हैं नितिकूं वंदूं हूं;

१ 'कं वन्देगुणहीनं' षट्पाहुडमें ऐसी है।

गाथा—वंदमि तवसावण्णा[1] सीलं च गुणं च बंभचेरं च।
सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण[2] सुद्धभावेण ॥ २७ ॥

संस्कृत—वन्दे तपःश्रमणान् शीलं च गुणं च ब्रह्मचर्यं च।
सिद्धिगमनं च तेषां सम्यक्त्वेन शुद्धभावेन ॥२७॥

अर्थ—आचार्य कहैं हैं जो—जे तपकरि सहित श्रमणपणां धारैं हैं तिनिकूं तथा तिनिके शीलकूं बहुरि तिनिके गुणकूं बहुरि ब्रह्मचर्यकूं मैं सम्यक्त्वसहित शुद्धभावकारि वंदूं हूं जातैं तिनिकै तिनि गुणनिकरि सम्यक्त्वसहित शुद्धभावकरि सिद्धि कहिये मोक्ष ता प्रति गमन होय है ॥

भावार्थ—पहलैं कह्या जो–देहादिक वंदिवे योग्य नांही, गुण वंदिवे योग्य हैं। अब इहां गुणसहितकूं वंदना करी है तहां जे तप धारि गृहस्थपणां छोड़ि मुनि भये हैं तिनिकूं तथा तिनिके शीलगुण ब्रह्मचर्य सम्यक्त्व सहित शुद्धभावकरि संयुक्त होय तिनिकूं वंदना करी है। तहां शीलशब्दकरि तौ उत्तरगुण लेना, बहुरि गुणशब्दकरि मूलगुण लेनें, बहुरि ब्रह्मचर्य शब्दकरि आत्मस्वरूपविषैं लीनपणां लेनां ॥ २८ ॥

आगैं कोई आशंका करै जो संयमी वंदनें योग्य कह्या तौ समवसरणादि विभूति सहित तीर्थकरहैं ते वंदिवे योग्य हैं कि नांही ताका समाधानकूं गाथा कहैं हैं–जो तीर्थंकर परमदेव हैं ते सम्यक्त्वसहित तपके माहात्म्यकरि तीर्थंकर पदवी पावैंहैं सोभी बंदिबे योग्य हैं;

गाथा—चउसट्ठिचमरसहिओ चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो।
अणवरबहुसत्तहिओ कम्मक्खयकारणणिमित्तो ॥२९॥

---

१ 'तवसमण्णा, छाया–(तपःसमापन्नात्) 'तवसउण्णा' 'तवसमाणं' येतीन पाठ मुद्रित षट्प्राभृतकी पुस्तक तथा उसकी टिप्पणीमें हैं। २ 'सम्मत्तेणेव' ऐसा पाठ होनेसे पादभंग नहीं होता।

संस्कृत—चतुःषष्टिचमरसहितः चतुस्त्रिंशद्भिरतिशयैः संयुक्तः।
अनवरतबहुसत्त्वहितः कर्मक्षयकारणनिमित्तः ॥२९॥

अर्थ—जो चौसठि चमरनिकरि सहित हैं, बहुरि चौंतीस अतिशयनिकरि सहित हैं, बहुरि निरन्तर बहुत प्राणीनिका हित जाकरि होय है, ऐसे उपदेशके दाताहैं बहुरि कर्मका क्षयका कारण हैं ऐसे तीर्थंकर परमदेव हैं ते वंदिवे योग्य हैं ॥

भावार्थ—इहां चौसठि चमर चौतीस आतिशय सहित विशेपणनिकरि तौ तीर्थंकरका प्रभुत्व जनाया है, अर प्राणीनिका हित करनां अर कर्मका क्षयका कारण विशेषणतैं परका उपकारकरनहारापणां जनाया है, इनि दोऊही कारणनितैं जगत मैं वंदवे पूजवे योग्य हैं। यातैं ऐसा भ्रम नहीं करनां जो तीर्थंकर कैसैं पूज्य हैं, ये तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग हैं। तिनिकै समवसरणादिक विभूति राचि इन्द्रादिक भक्तजन महिमा करैं हैं। इनिकैं कछू प्रयोजन नांही है आप दिगंवरताकूं धारें अंतरीख तिष्ठैं हैं, ऐसा जाननां ॥ २९ ॥

आगैं मोक्ष काहे तैं होय है सो कहैं हैं;—

गाथा—णाणेण दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥३०॥

संस्कृत—ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्रेण संयमगुणेन।
चतुर्णामपि समायोगे मोक्षः जिनशासने दृष्टः॥३०॥

अर्थ—ज्ञान करि दर्शनकरि तपकरि अर चारित्रकरि इनि च्यारनिका समायोग होतैं जो संयमगुण होय ताकरि जिनशासनविषैं मोक्ष होनां कह्या है ॥ ३० ॥

---

१ 'अणुचरबहुसत्तहिओ' (अनुचरबहुसत्वहितः) मुद्रित षट्प्राभृतमें यह पाठ है। २ 'निमित्ते' मुद्रित षट्प्राभृतमें ऐसा पाठ है

आगैं इनि ज्ञान आदिकै उत्तरोत्तर सारपणां कहैं हैं;—

गाथा—णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं ।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं ॥ ३१ ॥

संस्कृत—ज्ञानं नरस्य सारः सारः अपि नरस्य भवति सम्यक्त्वम्
सम्यक्त्वात् चरणं चरणात् भवति निर्वाणम् ॥३१॥

अर्थ—प्रथम तौ या पुरुष कै ज्ञान सार है जातैं ज्ञानतैं सर्व हेय उपादेय जानें जाय हैं, बहुरि या पुरुषकैं सम्यक्त्व निश्चय करि सार है जातैं सम्यक्त्व विना ज्ञान मिथ्या नाम पावै है, सम्यक्त्वतैं चारित्र होय है जातैं सम्यक्त्व विना चारित्र भी मिथ्याही है, बहुरि चारित्र तैं निर्वाण होय है ॥

भावार्थ—चारित्र तैं निर्वाण होय है अर चारित्र ज्ञानपूर्वक सत्यार्थ होय है अर ज्ञान सम्यक्त्वपूर्वक सत्यार्थ होय है ऐसैं विचार किये सम्यक्त्व कै सारपणां आया । यातैं पहलैं तौ सम्यक्त्व सारहै पीछैं ज्ञान चारित्र सार हैं । पहलैं ज्ञान तैं पदार्थनिकूं जानिये हैं यातैं पहलैं ज्ञान सार है तौऊ सम्यक्त्व विना ताकाभी सारपणां नांही, ऐसा जाननां ॥३२॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ़ करैं हैं; —

गाथा—णाणम्मि दंसणम्मि य तवेण चरिएण सम्मसहिएण ।
चोण्हं पि समाजोगे सिद्धा जीवा ण सन्देहो ॥३२॥

संस्कृत—ज्ञाने दर्शनेच तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन ।
चतुर्णामपि समायोगे सिद्धा जीवा न सन्देहः ॥३१॥

अर्थ—ज्ञान होतैं दर्शन होतैं सम्यक्त्वसहित तपकरि चारित्र करि इनि च्यारानिका समायोग होतैं जीव सिद्ध भये हैं, यामैं संदेह नांही है ॥

भावार्थ—पूर्वैं जे सिद्ध भये हैं ते सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारानिके संयोगहीतैं भये हैं यह जिनवचन है, यामैं संदेह नांही ॥ ३२ ॥

आगैं कहैं हैं जो लोक विषैं सम्यग्दर्शनरूप रत्न अमोलक है जो देव दानवनिकरि पूज्य है;—

गाथा—कल्लाणपरंपरया लहंति जीवा विसुद्धसम्मत्तं ।
सम्मद्दंसणरयणं अग्घेदि सुरासुरे लोए ॥ ३३ ॥

संस्कृत—कल्याणपरंपरया लभंते जीवाः विशुद्धसम्यक्त्वम् ।
सम्यग्दर्शनरत्नं अर्घ्यते सुरासुरे लोके ॥ ३३ ॥

अर्थ—जीव हैं ते विशुद्ध सम्यक्त्व है ताहि कल्याणकी परंपरा सहित पावैं हैं तातैं सम्यग्दर्शन रत्न है सो इस सुर असुरनि करि भऱ्या लोकविषैं पूज्य है ॥

भावार्थ—विशुद्ध कहिये पच्चीस मलदोषनिकरि रहित निरतिचार सम्यक्त्वतैं कल्याणकी परंपरा कहिये तीर्थंकर पदवी पावै है सो यातैं यह सम्यक्त्व रत्न सर्व लोक देव दानव मनुष्यनिकरि पूज्य होय है। तीर्थंकर प्रकृतिके बंधके कारण सोलह कारण भावना कही हैं तिनिमैं पहलै दर्शनविशुद्धि है सो ही प्रधान है, ये ही विनयादिक पंदरह भावनानिका कारण है, यातैं सम्यग्दर्शनकै ही प्रधानपणां है ॥ ३३ ॥

आगैं कहैं हैं जो उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपणांकूं पाय सम्यक्त्व पाय मोक्ष पावै है यह सम्यक्त्वका माहात्म्य है;—

गाथा—लद्धूण[1] य मणुयत्तं सहियं तह उत्तमेण गुत्तेण ।
लद्धूण य सम्मत्तं अक्खयसुक्खं[2] च मोक्खं च ॥३४॥

---

१ 'दद्दूण' मुद्रित प्रतिमें ऐसा पाठ है।

२ 'अक्खयसोक्खं लहदि मोक्खं च' मुद्रितप्रतिकी टिप्पणीमें ऐसा पाठ भी है।

संस्कृत—लब्ध्वा च मनुजत्वं सहितं तथा उत्तमेन गोत्रेण।
लब्ध्वा च सम्यक्त्वं अक्षयसुखं च मोक्षं च ॥३४॥

अर्थ—उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपणां प्रत्यक्ष पाय करि अर तहां सम्यक्त्व पाय करि अविनाशी सुखरूप केवलज्ञान पावैं हैं, बहुरि तिस सुखसहित मोक्ष पावैं हैं॥

भावार्थ—यह सर्व सम्यक्त्वका माहात्म्य है॥ ३४॥

आगैं प्रश्न उपजै हैं जो सम्यक्त्वके प्रभावतैं मोक्ष पावैं हैं सो तत्काल ही पावैं हैं कि किछू अवस्थान भी रहैं हैं? ताके समाधानरूप गाथा कहैं हैं;—

गाथा—विहरदि जाव जिणिंदो सहसट्ठसुलक्खणेहिं संजुत्तो।
चउतीसअइसयजुदो सा पडिमा थावरा भणिया ॥३५॥

संस्कृत-विहरति यावत् जिनेंद्रः सहस्राष्टसुलक्षणैः संयुक्तः।
चतुस्त्रिंशदतिशययुतः सा प्रतिमा स्थावरा भणिता।३५

अर्थ— केवलज्ञान भये [illegible]न्द्र भगवान जेतैं इस लोकमैं आर्यखंडमैं विहार करैं तेतैं [illegible]नकी सो प्रतिमा कहिये शरीर सहित प्रतिबिंब तिसकूं 'थावर प्रतिमा' ऐसा नाम कहिये। सो कैसे हैं जिनेन्द्र एकहजार आठ लक्षणनि करि संयुक्त है। तहां श्रीवृक्ष कूं आदि लेय एकसौ आठतौ लक्षण होयहैं। बहुरि तिल मुसकूं आदिलेय नवसै व्यंजन होयहैं। बहुरि चौतीस अतिशयमैं दश तौ जन्मतैं ही लिये उपजैहैं;—निस्वेदता १ निर्मलता २ श्वेतरुधिरता ३ समचतुरस्र सस्थान ४ वज्रवृषभ नाराच संहनन ५ सुरूपता ६ सुगंधता ७ सुलक्षणता ८ अतुलवीर्य ९ हितामित वचन १० ऐसैं दश। बहुरि घातिया कर्म क्षय भये दश होय;— शतयोजन सुभिक्षता १ आकाशगमन २ प्राणि-

वधको अभाव ३ कवलाहारको अभाव ४ उपसर्गको अभाव ५ चतुर्मुखपणौं ६ सर्वविद्याप्रभुत्व ७ छायारहितत्व ८ लोचननिस्पंदनरहितत्व ९ केश नखवृद्धिरहितत्व १० ऐसैं दश। वहुरि देवनिकरि भये चौदह;—सकलार्द्धमागधी भाषा १ सर्वजीव मैत्रीभाव २ सर्वऋतुफलपुष्पप्रादुर्भाव ३ आदर्शसदृश पृथ्वी होय ४ मंद सुगंध पवन चलै ५ सर्व लोकमैं आनंद वर्तैं ६ भूमिकंटकादिरहित होय ७ देव गंधोदक वृष्टि करै ८ विहार होय तव पदकमल तलैं देव सुवर्णमयी कमल रचै ९ भूमि धान्यनिष्पत्तिसहित होय १० दिशा आकाश निर्मल होय ११ देवनिका आह्वानन शब्द होय १२ धर्म चक्र आगैं चलै १३ अष्ट मंगल द्रव्य होय १४ ऐसैं चैादह। सर्व मिलि चौतीस भये। वहुरि अष्ट प्रातिहार्य होय, तिनिके नाम;—अशोकवृक्ष १ पुष्पवृष्टि २ दिव्यध्वनि ३ चामर ४ सिंहासन ५ छत्र ६ भामंडल ७ दुंदुभिवादित्र ८ ऐसैं आठ। ऐसैं अतिशयनिसहित अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्य सहित तीर्थंकर परमदेव जेतैं जीवनिके संवोधन निमित्त विहार करते विराजैं तेतैं स्थावर प्रतिमा कहिये। ऐसैं स्थावर प्रतिमा कहनेतैं तीर्थंकरकै केवलज्ञान भये पीछैं अवस्थान जनाया है। अर धातु पाषाणकी प्रतिमा रचि स्थापिये है सो याका व्यवहार है॥ ३५॥

आगैं कर्म नाश करि मोक्ष प्राप्त होय हैं ऐसैं कहै हैं;—

गाथा—वारसविहतवजुत्ता कम्मं खविऊण विहिवलेण स्सं।
वोसट्टचत्तदेहा णिव्वाणमणुत्तरं पत्ता॥ ३६॥

संस्कृत—द्वादशविधतपोयुक्ताः कर्म क्षपयित्वा विधिवलेण स्वीयम्।
व्युत्सर्गत्यक्तदेहा निर्वाणमनुत्तरं प्राप्ताः॥ ३६॥

अर्थ—जे बारह प्रकार तप करि संयुक्त भये संते विधिके बल करि अपनें कर्मकूं क्षिपाय करि 'वोसट्टचत्तदेहा' कहिये न्यारा करि छोड्या है देह ज्यां ऐसे भये ते अनुत्तर कहिये जातैं परैं अन्य अवस्था नांही ऐसी निर्वाण अवस्थाकूं प्राप्त होय हैं।

भावार्थ—जे तपकरि केवलज्ञान उपाय जेतैं विहार करैं तेतैं अवस्थान रहैं पीछैं द्रव्य क्षेत्रकाल भावकी सामग्रीरूप विधिके बलकरि कर्म क्षिपाय व्युत्सर्गकरि देहकूं छोड़ि निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। इहां आशय ऐसा जो निर्वाणकूं प्राप्त होय तब लोकके शिखर जाय तिष्ठै है तहां गमनविषैं एक समय लागैं तिस काल जंगम प्रतिमा कहिये। ऐसैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकरि मोक्षकी प्राप्ति होय है तहां सम्यग्दर्शन प्रधान है। इस पाहुडमैं सम्यग्दर्शनका प्रधानपणांका व्याख्यान किया॥ ३६॥

सवैया छंद।

मोक्ष उपाय कह्यो जिनराज जु सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रा।
तामधि सम्यग्दर्शन मुख्य भये निज बोध फलै सुचरित्रा॥
जे नर आगम जानि करैं पहचानि यथावत मित्रा।
घाति क्षिपाय रु केवल पाय अघाति हनै लहि मोक्ष पवित्रा॥१॥

दोहा।

नमूं देव गुरु धर्मकूं जिन आगमकूं मानि।
जा प्रसाद पायो अमल सम्यग्दर्शन जानि॥ २॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित अष्टप्राभृतमैं प्रथम दर्शनप्राभृत और तिसकी जयचन्द्र छावड़ाकृतदेशभाषामयवचनिका समाप्त॥ १॥

श्रीः

अथ सूत्रपाहुड[1] ।

—•• ••—

(२)

(दोहा)

वीर जिनेश्वरकूं नमूं गौतम गणधर लार ।
काल पंचमा आदिमैं भए सूत्रकरतार ॥ १ ॥

ऐसैं मंगलकरि श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथा बंध सूत्रपाहुड है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिए है;—

तहां प्रथमही श्रीकुन्दकुन्द आचार्य सूत्रकी महिमागर्भित सूत्रका स्वरूप जनावैं हैं;—

गाथा—अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं ॥ १ ॥

संस्कृत—अर्हद्भाषितार्थं गणधरदेवैः ग्रथितं सम्यक् ।
सूत्रार्थमार्गणार्थं श्रमणाः साधयंति परमार्थम् ॥ १ ॥

अर्थ—जो गणधर देवनिनैं सम्यक् प्रकार पूर्वापरविरोधरहित गूंथ्या रच्या जो सूत्र है, सो कैसाक है सूत्र—सूत्रका जो किछू अर्थ है ताका मार्गण कहिये हेरनां जाननां सो है प्रयोजन जामैं, ऐसे सूत्र करि श्रमण कहिये मुनि हैं ते परमार्थ कहिये उत्कृष्ट अर्थ प्रयोजन जो

---

१ मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें दूसरा चारित्रपाहुड है ।

अविनाशी मोक्ष ताहि साधै है। इहां गाथामैं सूत्र ऐसा विशेष्य पदन कह्या तौऊ विशेषणनिकी सामर्थ्यतैं लिया है।

भावार्थ—जो अरहंत सर्वज्ञ करि भाषित है अर गणधर देवनिकरि अक्षर पद वाक्यमयी गूंथ्या है अर सूत्रके अर्थका जाननेकाही है अर्थ प्रयोजन जामैं ऐसा सूत्र करि मुनि परमार्थ जो मोक्ष ताहि साधै है। अन्य जे अक्षपाद जैमिनि कपिल सुगत आदि छद्मस्थनिकरि रचे कल्पित सूत्र हैं तिनिकरि परमार्थकी सिद्धि नांही है, ऐसा आशय जाननां ॥१॥

आगैं कहै है जो ऐसा सूत्रका अर्थ आचार्यनिकी परंपरा करि वर्त्तै तिसकूं जानि मोक्षमार्गकूं साधै है सो भव्य है;—

गाथा—सुत्तम्मि जं सुदिट्टं आइरियपरंपरेण मग्गेण।
णाऊण दुविह सुत्तं वट्टइ सिवमग्ग जो भव्वो॥ २॥

संस्कृत—सूत्रे यत् सुदृष्टं आचार्यपरंपरेण मार्गेण।
ज्ञात्वा द्विविधं सूत्रं वर्त्तते शिवमार्गे यः भव्यः॥२॥

अर्थ—जो सर्वज्ञभाषित सूत्रविषैं जो किछू भलै प्रकार कह्या है ताकूं आचार्यनिकी परंपरारूप मार्ग करि दोय प्रकार सूत्रकूं शब्द थकी अर्थ थकी जानि अर मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तै है सो भव्यजीव है मोक्ष पावनें योग्य है।

भावार्थ—इहां कोई कहै—अरहंतका भाष्या अर गणधर देवनिका गूंथ्या सूत्र तौ द्वादशांगरूप हैं ते तौ अवार कालमैं दीखैं नांही तब परमार्थरूप मोक्षमार्ग कैसैं सधै, ताका समाधानकूं यह गाथा है— जो अरहंतभाषित गणधर गूंथित सूत्रमैं जो उपदेश है तिसकूं आचार्यनिकी परंपराकरि जानिये है, तिसकूं शब्द अर्थ करि जानि जो मोक्षमार्ग

साधै है सो मोक्ष होनें योग्य भव्य है। इहां फेरि कोऊ पूछै—जो आचार्यनिकी परंपरा कहा? तहां अन्य ग्रंथनिमैं आचार्यनिकी परंपरा कही है, सो ऐसैं है;—

श्रीवर्द्धमान तीर्थंकर सर्वज्ञ देव पीछैं तीन तौ केवलज्ञानी भये; गौतम १ सुधर्म २ जंबू ३। बहुरि तापीछैं पांच श्रुतकेवली भये तिनिकूं द्वादशांग सूत्रका ज्ञान भया,—विष्णु १ नंदिमित्र २ अपराजित ३ गोवर्द्धन ४ भद्रबाहु ५। तिनिपीछैं दश पूर्वनिके पाठी ग्यारह भये; विशाख १ प्रौष्ठिल २ क्षत्रिय ३ जयसेन ४ नागसेन ५ सिद्धार्थ ६ धृतिषेण ७ विजय ८ बुद्धिल ९ गंगदेव १० धर्मसेन ११। तिनि पीछैं पांच ग्यारह अंगनिके धारक भये; नक्षत्र १ जयपाल २ पांडु ३ ध्रुवसेन ४ कंस ५। बहुरि तिनि पीछैं एक अंगके धारक च्यार भये; सुभद्र १ यशोभद्र २ भद्रबाहु ३ लोहाचार्य ४। इनि पीछैं एक अंगके पूर्ण ज्ञानीकी तौ व्युच्छित्ति भई अर अंगका एकदेश अर्थके ज्ञानी आचार्य भये तिनिमैं केतेकानिके नाम;—अर्हद्वलि, माघनंदि, धरसेन, पुष्पदंत, भूतवलि, जिनचन्द्र, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, शिवकोटि, शिवायन, पूज्यपाद, वीरसेन, जिनसेन, नेमिचन्द्र इत्यादि। बहुरि तिनि पीछैं तिनिकी परिपाटीमैं आचार्य भये तिनितैं अर्थका व्युच्छेद नहीं भया, ऐसैं दिगंबरनिके संप्रदायमैं प्ररूपणा यथार्थ है। बहुरि अन्य श्वेताम्बरादिक वर्द्धमानस्वामीतैं परंपरा मिलावै है सो कल्पित है जातैं भद्रबाहु स्वामी पीछैं केई मुनिकालमैं भ्रष्ट भये ते अर्द्धफालक कहाये तिनिकी संप्रदायमैं श्वेताम्बर भये, तिनिमैं देवगणनामा साधु तिनिकी संप्रदायम भया है तानैं सूत्र रचे हैं सो तिनिमैं शिथिलाचार पोषनेकूं कल्पित कथा तथा कल्पित आचरणकी कथनी करी है सो प्रमाणभूत नहीं है। पंचमकालमैं जैनाभासनिकै शिथिलाचारकी बाहुल्यता है सो

युक्त है इस कालमैं सांचा मोक्षमार्गकी विरलता है तातैं शिथिलाचारीनिकै सांचा मोक्षमार्ग कहां तै होय ऐसा जाननां ।

अब इहां कछूक द्वादशांगसूत्र तथा अंगवाह्यश्रुतका वर्णन लिखिये है;—तहां तीर्थंकरके मुखतैं उपजी जो सर्व भाषामय दिव्यध्वनि तांकूं सुनिकरि च्यार ज्ञान सप्तऋद्धिके धारक गणधर देवनिनैं अक्षर पदमय सूत्ररचना करी । तहां सूत्रदोय प्रकारहै;—एक अंग दूसरा अंगवाह्य। तिनके अपुनरुक्त अक्षरनिकी संख्या वीस अंकनि प्रमाण है ते अंक एक घाटि इकट्ठी प्रमाण हैं। ते अंक–१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ एते अक्षर हैं । तिनिके पद करिये तब एक मध्यपदके अक्षर सौलासैं चौतीस कोडि तियासीलाख सात हजार आठसै अठयासी कहेहैं तिनिका भाग दिये एकसौ वारह कोडि तियासीलाख अठावन हजार पांच इतनें पावैं येते पदहैं ते तौ वारह अंगरूप सूत्रके पदहैं। अर अवशेष वीस अंकनिमैं अक्षर रहे ते अंगवाह्य सूत्र कहिये, ते आठ कोडि एक लाख आठ हजार एकसौ पिचहत्तर अक्षर हैं तिनि अक्षरनिमैं चौदह प्रकीर्णकरूप सूत्ररचना है ।

अव इनि द्वादशांगरूप सूत्ररचनाके नाम अर पद संख्या लिखिए है;—तहां प्रथम अंग आचारांग है तामैं मुनीश्वरनिके आचारका निरूपण है ताके पद अठारह हजार हैं । बहुरि दूसरा सूत्रकृत अंग है ताविषैं ज्ञानका विनय आदिक अथवा धर्मक्रियामैं स्वमत परमतकी क्रियाका विशेषका निरूपण है याके पद छत्तीस हजार हैं । बहुरि तीसरा स्थान अंग है ताविषैं पदार्थनिका एक आदि स्थाननिका निरूपण है जैसैं जीव सामान्य करि एकप्रकार विशेषकरि दोय प्रकार तीन प्रकार इत्यादि ऐसैं स्थान कहे हैं याके पद वियालीस हजार हैं। बहुरि चौथा समवाय अंग है याविषैं जीवादिक छह द्रव्यनिका द्रव्य क्षेत्र

कालादि करि वर्णन है याके पद एक लाख चौसठि हजार हैं। पांचमां व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग है याविषैं जीवके अस्ति नास्ति आदिक साठि हजार प्रश्न गणाधरदेव तीर्थंकरके निकट किये तिनिका वर्णन है याके पद दोय लाख अठाईस हजार हैं। वहुरि छठा ज्ञातृधर्मकथा नामा अंग है यामैं तीर्थंकरनिके धर्मकी कथा जीवादिक पदार्थनिका स्वभावका वर्णन तथा गणधरके प्रश्ननिका उत्तरका वर्णन है याके पद पांच लाख छप्पन हजार हैं। वहुरि सातवां उपासकाध्ययननाम अंग है याविषैं ग्यारह प्रतिमा आदि श्रावकका आचारका वर्णन है याके पद ग्यारह लाख सत्तर हजार हैं। वहुरि आठमां अंतकृतदशांगनामा अंग है याविषैं एक एक तीर्थंकरकै वारैं दशदश अंतकृत केवली भये तिनिका वर्णन है याके पद तेईस लाख अठाईस हजार हैं। वहुरि नवमां अनुत्तरोपपादकनामा अंग है याविषैं एक एक तीर्थंकरकै वारैं दशदश महामुनि घोर उपसर्ग सहि अनुत्तर विमाननिमैं उपजे तिनिका वर्णन है याके पद वाणवै लाख चवालीस हजार हैं। वहुरि दशमां प्रश्न व्याकरणनाम अंग है याविषैं अतीत अनागत कालसंबंधी शुभाशुभका प्रश्न कोई करै ताका उत्तर यथार्थ कहनेका उपायका वर्णन है तथा आक्षेपणी विक्षेपणी संवेदनी निर्वेदनी इनि च्यार कथानिका भी या अंगमैं वर्णन है याके पद तिराणवैं लाख सोलह हजार हैं। वहुरि ग्यारमां विपाकसूत्र नामा अंग है याविषैं कर्मका उदयका तीव्र मंद अनुभागका द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा लिये वर्णन है याके पद एक कोडि चौरासी लाख हैं। ऐसैं ग्यारह अंग हैं तिनिके पदनिकी संख्याका जोड़ दिये च्यार कोडि पंद्रह लाख दोय हजार पद होय हैं। वहुरि वारमां दृष्टिवादनामा अंग है ताविषैं मिथ्यादर्शनसंबंधी तीनसै तरेसठि कुवाद हैं तिनिका वर्णन है

याके पद एक सौ आठ कोडि अड़सठि लाख छप्पनहजार पांच पद हैं। या बारमां अंगका पांच अधिकार हैं;—परिकर्म १ सूत्र २ प्रथमानुयोग ३ पूर्वगत ४ चूलिका ५ ऐसैं। तहां परिकर्मविषैं गणितके करण सूत्र हैं ताके पांच भेद हैं;—तहां चन्द्रप्रज्ञप्ति प्रथम है तामैं चन्द्रमाका गमनादिक परिवार वृद्धि हानि ग्रह आदिका वर्णन है याके पद छत्तीस लाख पांच हजार हैं। बहुरि दूजा सूर्यप्रज्ञप्ति है यामैं सूर्यकी ऋद्धि परिवार गमन आदिका वर्णन है याके पद पांच लाख तीन हजार हैं। बहुरि तीजा जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति है यामैं जंबूद्वीपसंबंधी मेरु गिरि क्षेत्र कुलाचल आदिका वर्णन है याकै पद तीन लाख पचीस हजार है। बहुरि चौथा द्वीपसागरप्रज्ञप्ति है यामैं द्वीपसागरका स्वरूप तथा तहां तिष्ठै ज्योतिषी व्यंतर भवनवासी देवनिके आवास तथा तहां तिष्ठै जिनमंदिरनिका वर्णन है याके पद बावन लाख छत्तीस हजार हैं। बहुरि पांचमां व्याख्याप्रज्ञप्ति है याविषैं जीव अजीव पदार्थनिका प्रमाणका वर्णन है याके पद चौरासी लाख छत्तीस हजार हैं। ऐसैं परिकर्मके पांच भेदनिके पद जोड़े एक कोडि इक्यासी लाख पांच हजार हैं। बहुरि बारमां अंगका दूजा भेद सूत्र नाम है ताविषैं मिथ्यादर्शनसंबंधी तीनसै तरेसठि कुवाद हैं तिनिकी पूर्वपक्ष लेकरि तिनिका जीव पदार्थपरि लगावनां आदि वर्णन है याके भेद अठ्यासी लाख हैं। बहुरि बारमां अंगका तीजा भेद प्रथमानुयोग है या विषैं प्रथम जीवकूं उपदेशयोग्य तीर्थंकर आदि तरेसठि शलाका पुरुषनिका वर्णन है याके पद पांच हजार हैं। बहुरि बारमां अंगका चौथा भेद पूर्वगत है, ताके चौदह भेद हैं तहां प्रथम उत्पाद नामा है ताविषैं जीव आदि वस्तुनिकै उत्पाद व्यय ध्रौव्य आदि अनेक धर्मनिकी अपेक्षा भेद वर्णन है याके पद एक कोडि हैं। बहुरि दूजा अग्रायणीनाम पूर्व है याविषैं सातसै सुनय दुर्नयका अर षट्द्रव्य

सप्त तत्व नव पदार्थनिका वर्णन है याके छिनवै लाख पद हैं। बहुरि तीजा वीर्यानुवादनाम पूर्व है याविषैं षट् द्रव्यनिकी शक्तिरूप वीर्यका वर्णन है याके पद सत्तरि लाख हैं। बहुरि चौथा अस्तिनास्ति प्रवाद-नामा पूर्व है या विषैं जीवादिक वस्तुका स्वरूप द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा अस्ति पररूप द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा नास्ति आदि अनेक धर्मनिविषैं विधि निषेध करि सप्तभंगकरि कथंचित् विरोध मेटनें रूप मुख्य गौण करि वर्णन है याके पद साठि लाख हैं। बहुरि ज्ञान-प्रवादनामा पांचमां पूर्व है यामैं ज्ञानके भेदनिका स्वरूप संख्या विषय फल आदिका वर्णन है याके पद एक घाटि कोडि हैं। बहुरि छठा सत्यप्रवादनामा पूर्व है या विषैं सत्य असत्य आदिक वचननिकी अनेक प्रकार प्रवृत्ति है ताका वर्णन है याके पद एक कोडि छह हैं। बहुरि सातमां आत्मप्रवादनामा पूर्व है याविषैं आत्मा जो जीव पदार्थ है ताका कर्त्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मनिका निश्चय व्यवहार नय अपेक्षा वर्णन है याके पद छव्वीस कोडि हैं। बहुरि कर्मप्रवाद नामा आठमां पूर्व है याविषैं ज्ञानावरण आदि आठ कर्मनिका बंध सत्व उदय उदीरणपणा आदिका तथा क्रियारूप कर्मनिका वर्णन है याके पद एक कोडि अस्सी लाख हैं। बहुरि प्रत्याख्याननामा नवमां पूर्व है यामैं पापके त्यागका अनेक प्रकार करि वर्णन है याके पद चौरासी लाख हैं। बहुरि दशमां विद्यानुवादनामा पूर्व है यामैं सातसै क्षुद्रविद्या अर पांचसै महाविद्या इनिका स्वरूप साधन मंत्रादिक अर सिद्ध भये इनिका फलका वर्णन है तथा अष्टांग निमित्त ज्ञानका वर्णन है याके पद एक कोडि दश लाख हैं बहुरि कल्याणवादनामा ग्यारवां पूर्व है यामैं तीर्थंकर चक्रवर्त्ती आदिके गर्भ आदिकल्याणका उत्सव तथा तिसके कारण षोडश भावनादिके तपश्चरणादिक तथा चन्द्रमा सूर्या-

दिकके गमनविशेष आदिकका वर्णन है याके पद छव्वीस कोड़ि हैं बहुरि प्राणवादनामा बारमां पूर्व है यामैं आठ प्रकार वैद्यक तथा भूतादिक व्याधि दूरि करनेके मंत्रादिक तथा विष दूरि करनेके उपाय तथा स्वरोदय आदिका वर्णन है याके तेरह कोडि पद हैं। बहुरि क्रियाविशालनामा तेरमां पूर्व है यामैं संगीतशास्त्र छंद अलंकारादिक तथा चौसठि कला, गर्भाधानादि चौरासी क्रिया, सम्यग्दर्शन आदि एकसौ आठ क्रिया, देववंदनादि पच्चीस क्रिया, नित्य नैमित्तिक क्रिया इत्यादिका वर्णन है, याके पाद नव कोडि हैं। चौदमां त्रिलोकबिंदुसार नामा पूर्व है या विषैं तीन लोकका स्वरूप अर बीजगणितका स्वरूप तथा मोक्षका स्वरूप तथा मोक्षकी कारणभूत क्रियाका स्वरूप इत्यादिका वर्णन है याके पाद बारह कोडि पचास लाख हैं। ऐसैं चौदह पूर्व हैं, इनिके सर्व पदनिका जोड़ पिच्याणवै कोडि पचास लाख है। बहुरि बारमां अंगका पांचमां भेद चूळिका है ताके पांच भेद हैं तिनिके पद दोय कोडि नव लाख निवासी हजार दोयसै हैं। तहां जलगता चूलिकामैं जलका स्तंभन करनां जलमैं गमन करना। अग्निगता चूलिकामैं अग्निस्तंभन करनां अग्निमैं प्रवेश करनां अग्निका भक्षण करनां इत्यादिके कारणभूत मंत्र तंत्रादिकका प्ररूपण है, याके पद दोय कोडि नवलाख निवासी हजार दोयसैं हैं। एते एते ही पद अन्य च्यार चूलिकाके जाननें। बहुरि दूजी स्थलगता चूलिका है याविषैं मेरुपर्वत भूमि इत्यादि विषैं प्रवेश करनां शीघ्र गमन करनां इत्यादि क्रियाके कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिकका प्ररूपण है। बहुरि तीजी मायागता चूलिका है तामैं मायामयी इंद्रजाल विक्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादिका प्ररूपण है। बहुरि चौथी रूपगता चूलिका है यामैं सिंह हाथी घोडा बैल हरिण इत्यादि अनेकप्रकार रूप पलटि लेनां ताके कारणभूत मंत्र

तंत्र तपश्चरण आदिका प्ररूपणा है, तथा चित्राम काष्ठलेपादिकका लक्षण वर्णन है तथा धातु रसायनका निरूपण है। बहुरि पांचमीं आकाशगता चूलिका है यामैं आकाशविषैं गमनादिकके कारणभूत मंत्र यंत्र तंत्रादिकका प्ररूपणं है। ऐसैं बारमां अंग है। या प्रकार तौ बारह अंग सूत्र हैं।

बहुरि अंगबाह्य श्रुतके चौदह प्रकीर्णक हैं। तिनिमैं प्रथम प्रकीर्णक सामायिक नामा है, ताविषैं नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव भेद-करि छह प्रकार इत्यादिक सामायिकका विशेषकरि वर्णन है। बहुरि दूजा चतुर्विंशतिस्तव नाम प्रकीर्णक है ताविषैं चौवीस तीर्थंकरनिकी महिमाका वर्णन है। बहुरि तीजा वंदनानाम प्रकीर्णक है तामैं एक तीर्थंकरकै आश्रय वंदना स्तुतिका वर्णन है। बहुरि चौथा प्रति-क्रमणनामा प्रकीर्णक हैं तामें सात प्रकारके प्रतिक्रमणका वर्णन है। बहुरि पांचमां वैनयिकनाम प्रकीर्णक है तामैं पंच प्रकारके विनयका वर्णन है। बहुरि छठा कृतिकर्मनामा प्रकीर्णक है तामैं अरहंत आदिककी वंदनाकी क्रियाका वर्णन है। बहुरि सातमां दशवैकालिकनामा प्रकीर्णक है तिसविषैं मुनिका आचार आहा-रकी शुद्धता आदिका वर्णन है। बहुरि आठमां उत्तराध्ययननामा प्रकीर्णक है ताविषैं परीषह उपसर्गका सहनेंका विधान वर्णन है। बहुरि नवमां कल्पव्यवहार नामा प्रकीर्णक है तामैं मुनिके योग्य आचरण अर अयोग्य सेवनके प्रायश्चित तिनिका वर्णन है। बहुरि दशमां कल्पाकल्प नाम प्रकीर्णक है ताविषैं मुनिकूं यह योग्य है यह अयोग्य है ऐसा द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा वर्णन है। बहुरि ग्यारमां महाकल्पनामा प्रकीर्णक है तामैं जिनकल्पी मुनिकै प्रतिमायोग त्रिकालयोगका प्ररूपण है तथा स्थविरकल्पी मुनिनिकी प्रवृत्तिका वर्णन है। बहुरि बारमां

पुंडरीकनाम प्रकीर्णक है ताविषैं च्यार प्रकारके देवनिविषैं उपजनेंके कारणनिका वर्णन है। बहुरि तेरमां महापुंडरीकनाम प्रकीर्णक है ताविषैं इन्द्रादिक वडी ऋद्धिके धारक देवनिके उपजनेंके कारणनिका प्ररूपण है। बहुरि चौदमां निषिद्धिकानामा प्रकीर्णक है ताविषैं अनेक प्रकार दोषकी शुद्धतानिमित्त प्रायश्चित्तानिका प्ररूपण है, यह प्रायश्चित्त शास्त्र है, याका निसितिका ऐसा भी नाम है। ऐसैं अंगवाह्य श्रुत चौदह प्रकार है।

बहुरि पूर्वनिकी उत्पत्ति पर्यायसमास ज्ञानतैं लगाय पूर्वज्ञानपर्यन्त वीस भेद हैं तिनिका विशेष वर्णन है सो श्रुतज्ञानका वर्णन गोमट्टसार नाम ग्रंथमैं विस्तार करि है तहांतैं जाननां ॥ २ ॥

आगैं कहैं हैं जो सूत्रविषैं प्रवीण है सो संसारका नाश करै है;—

गाथा—सुत्तम्मि[1] जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा णो वि ॥ ३ ॥

संस्कृत—सूत्रे[2] ज्ञायमानः भवस्य भवनाशनं च सः करोति।
सूची यथा असूत्रा नश्यति सूत्रेण सह नापि ॥ ३ ॥

अर्थ—जो पुरुष सूत्रविषैं जाणमान है प्रवीण है सो संसारके उपजनेंका नाश करै है बहुरि जैसैं लोहकी सूई है सो सूत्र कहिये डोरा तिस विना होय तौ नष्ट होजाय अर डोरासहित होय तौ नष्ट नहीं होय यह दृष्टांत है॥

भावार्थ—सूत्रका ज्ञाता होय सो संसारका नाश करै है बहुरि ऐसैं है—जो सूई डोरासहित होय तौ दृष्टिगोचर होय पावै कदाचित् ही नष्ट नहीं होय अर डोरा विना होय तौ दीखै नांही नष्ट होय जाय तैसैं जाननां॥ ३॥

१ 'सुत्तंहि'। २ 'सूत्रंहि,' षट्पाहुडमें ऐसा पाठ है।

आगैं सूईके दृष्टान्तका दार्ष्टान्त कहैं हैं;—

गाथा—पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेयणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि ॥४॥

संस्कृत—पुरुषोऽपि यः ससूत्रः न विनश्यति स गतोऽपि संसारे
सच्चेतनप्रत्यक्षेण नाशयति तं सः अदृश्यमानोऽपि॥४॥

अर्थ—जैसैं सूत्रसहित सूई नष्ट नहीं होय तैसैं सो पुरुष भी संसारमैं गत होय रह्या है अपनां रूप आपकै दृष्टिगोचर नांही है तौऊ सूत्रसहित होय सूत्रका ज्ञाता होय तौ ताकै आत्मा सत्तारूप चैतन्य चमत्कारमयी स्वसंवेदनकरि प्रत्यक्ष अनुभवमैं आवै है यातैं गत नांही है नष्ट नहीं भया है, सो जिस संसारमैं गत है तिस संसारका नाश करै है।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा इन्द्रियगोचर नांही है तौऊ सूत्रके ज्ञाताकै स्वसंवेदन प्रत्यक्ष करि अनुभव गोचर है सो सूत्रका ज्ञाता संसारका नाश करै है आप प्रकट होय है यातैं सूईका दृष्टांत युक्त है ॥ ४ ॥

आगैं सूत्रमैं अर्थ कहा है सो कहैं हैं,—

गाथा—सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥ ५ ॥

संस्कृत—सूत्रार्थं जिनभणितं जीवाजीवादिबहुविधमर्थम्।
हेयाहेयं च तथा यो जानाति स हि सद्दृष्टिः ॥५॥

अर्थ—सूत्रका अर्थ है सो जिन सर्वज्ञ देव करि कह्या है बहुरि सूत्रविषैं अर्थ है सो जीव अजीव आदि बहुत प्रकार है तथा हेय कहिये त्यागनें योग्य पुद्गलादिक अर अहेय कहिये त्यागनें योग्य नांही ऐसा आत्मा सो याकूं जानैं सो प्रगट सम्यग्दृष्टी है।

भावार्थ—सर्वज्ञके भाषे सूत्र विषैं जीवादिक नव पदार्थ अर इनिमैं हेय उपादेय ऐसैं बहुत प्रकार करि व्याख्यान है ताकूं जानैं सो श्रद्धानवान सम्यग्दृष्टी होय है ॥ ५ ॥

आगैं कहै हैं जो जिनभाषित सूत्र है सो व्यवहार परमार्थरूप दोय प्रकार है ताकूं जानि योगीश्वर शुद्ध भाव करि सुखकूं पावैं हैं;—

गाथा—जं सूत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं ॥ ६ ॥

संस्कृत—यत्सूत्रं जिनोक्तं व्यवहारं तथा च जानीहि परमार्थम्।
तत् ज्ञात्वा योगी लभते सुखं क्षिपते मलपुंजं ॥ ६ ॥

अर्थ—जो जिन भाषित सूत्र है सो व्यवहार रूप है तथा परमार्थ रूप है ताकूं योगीश्वर जानि सुख पावै है बहुरि मलपुंज कहिये द्रव्य कर्म भाव कर्म नोकर्म ताहि क्षेपै है।

भावार्थ—जिन सूत्रकूं व्यवहार परमार्थ रूप यथार्थ जानि योगीश्वर मुनि है सो कर्मका नाश करि अविनाशी सुखरूप मोक्षकूं पावै है। तहां परमार्थ कहिए निश्चय अर व्यवहार इनिका संक्षेप स्वरूप ऐसा जो–जिन आगमकी व्याख्या च्यार अनुयोगरूप शास्त्रनिमैं दोय प्रकार सिद्ध है एक आगमरूप, दूजी अध्यात्मरूप। तहां सामान्य विशेष करि सर्व पदार्थनिका प्ररूपण करिये है सो तौ आगमरूप है। बहुरि जहां एक आत्माहीकै आश्रय निरूपण करिये सो अध्यात्म है। तथा अहेतुमत् अर हेतुमत् ऐसैं भी दोय प्रकार है; तहां जो सर्वज्ञकी आज्ञाही करि केवल प्रमाणता मानिये सो तो अहेतुमत् है। अर जहां प्रमाण नयनि करि वस्तुकी निर्बाध सिद्धि जामैं करि मानिये सो हेतुमत् है। ऐसैं दोय प्रकार आगममैं निश्चय

व्यवहारकरि व्याख्यान ऐसैं है, सो किछू लिखिए हैं;—तहां जब आगमरूप सर्व पदार्थनिका व्याख्यानपरि लगाइये तब तौ वस्तुका स्वरूप सामान्य विशेषरूप अनंतधर्मस्वरूप है सो ज्ञानगम्य है, तिनिमैं सामान्यरूप तौ निश्चयनयका विषय है, अर विशेष रूप जे ते हैं तिनिकूं भेदरूपकरि न्यारे न्यारे कहै सो व्यवहारनयका विषय है ताकूं द्रव्यपर्याय स्वरूप भी कहिये। तहां जिस वस्तुकूं विवक्षित करि साधिये ताके द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि जो किछू सामान्य विशेषरूप वस्तुका सर्वस्व होय सो तौ निश्चय व्यवहार करि कह्या है तैसैं सधै है, बहुरि तिस वस्तुकै किछू अन्य वस्तुके संयोगरूप अवस्था होय तिसकूं तिस वस्तुरूप कहनां सो भी व्यवहार है ताकूं उपचार ऐसा भी नाम कहिये। याका उदाहरण ऐसा—जैसै एक विवंक्षित घटनामा वस्तु परि लगाइये तब जिस घटका द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप सामान्यविशेषरूप जेता सर्वस्व है ते ता कह्या तैसैं निश्चय व्यवहार करि कहनां सो तौ निश्चय व्यवहार है; अर घटकै किछू अन्य वस्तुका लेप करि तिस घटकूं तिस नाम करि कहनां तथा अन्य पटादि विषैं घटका आरोपण करि घट कहना सो भी व्यवहार है। तहां व्यवहारका दोय आश्रय हैं; एक प्रयोजन, दूजा निमित्त। तहां प्रयोजन साधनेंकूं काहू वस्तुकूं घट कहनां सो तो प्रयोजनाश्रित है बहुरि काहू अन्य वस्तुके निमित्ततैं घटमैं अवस्था भई ताकूं घटरूप कहनां सो निमित्ताश्रित है। ऐसैं विवक्षित सर्व जीव अजीव वस्तुनिपरि लगावनां। बहुरि जब एक आत्माहीकूं प्रधान करि लगावनां सो अध्यात्म है। तहां जीव सामान्यकूं भी आत्मा कहिये है। अर जो जीव अपनां सर्व जीवनितैं भिन्न अनुभव करै ताकूं भी आत्मा कहिये है, तहां जब आपकूं सर्वतैं न्यारा अनुभव करि 'आपापरि निश्चय लगाइये

तब ऐसैं जो आप अनादि अनंत अविनाशी सर्व अन्य द्रव्यनितैं भिन्न एक सामान्य विशेषरूप अनंतधर्मा द्रव्य पर्यायात्मक जीवनामा शुद्ध वस्तु है, सो कैसाक है—शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्मकूं लिये अनंत शक्तिका धारक है तामैं सामान्य भेद चेतना अनंत शक्तिका समूह सो द्रव्य है। बहुरि अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य ये तौ चेतनाके विशेष हैं ते तौ गुण हैं अर अगुरुलघु गुणके द्वारे षट्स्थान पतित हानि वृद्धिरूप परिणमता जीवकै त्रिकालात्मक अनंत पर्याय हैं। ऐसा शुद्ध जीव नामा वस्तु सर्वज्ञ देख्या जैसा आगममैं प्रसिद्ध है सो तौ एक अभेद रूप शुद्ध निश्चय नयका विषय भूत जीव है इस दृष्टि करि अनुभव कीजे जब तौ ऐसा है। अर अनंत धर्मनिमें भेदरूप कोई एक धर्मकूं लेकरि कहनां सो व्यवहार है बहुरि आत्म वस्तुकै अनादिहीतैं पुद्गल कर्मका संयोग है ताकै निमित्तैं विकार भावकी उत्पत्ति है ताके निमित्ततैं रागद्वेष रूप विकार होय हैं ताकूं विभाव परणति कहिये है, तिस करि फेरि आगामी कर्मका बंध होय है। ऐसैं अनादि निंमित्त नैमित्तिक भाव करि चतुर्गति रूप संसारका भ्रमणरूप प्रवृत्ति होय है तहां जिस गतिकूं प्राप्त होय तैसाही जीव नाम कहावै है तथा जैसा रागादिक भाव होय तैसा नाम कहावै बहुरि जब द्रव्यक्षेत्र काल भावकी बाह्य अंतरंग सामग्रीका निमित्त करि अपना शुद्धस्वरूप शुद्धनिश्चयनयका विषय स्वरूप आपकूं जानि श्रद्धान करै, अर कर्म संयोगकूं अर तिसके निमित्ततैं अपनें भाव होय हैं तिनिका यथार्थ स्वरूप जानैं तब भेदज्ञान होय तब परभावनितैं विरक्त होय तब तिनिका मेटनेका उपाय सर्वज्ञके आगमतैं यथार्थ समझि ताकूं अंगीकार करै तब अपनें स्वभावमैं स्थिर होय अनंत चतुष्टय प्रगट होय सर्व कर्मका क्षय करि लोकके शिख

विराजै तव मुक्त भया कहावै ताकूं सिद्ध भी कहिये। ऐसैं जेती संसारकी अवस्था अर यह मुक्त अवस्था ऐसैं भेदरूप आत्माकूं निरूपै है सो भी व्यवहारनयका विषय है, याकूं अध्यात्म शास्त्रमैं अभूतार्थ असत्यार्थ नाम कहि करि वर्णन किया है जातैं शुद्ध आत्मामैं संयोगजनित अवस्था होय सो तौ असत्यार्थही है, किछू शुद्ध वस्तुका तौं यह स्वभाव नांही तातैं असत्यही है। वहुरि जो निमित्ततैं अवस्था भई सो भी आत्माहीका परिणाम है सो जो आत्माका परिणाम है सो आत्माहीमैं है तातैं कथंचित् याकूं सत्य भी कहिये परन्तु जेतैं भेदज्ञान नहीं होय तेतैंही यह दृष्टि है, भेदज्ञान भये जैसैं है तैसैं जानैं है। वहुरि जे द्रव्यरूप पुद्गलकर्म हैं ते आत्मातैं न्यारे हैं ही तिनितैं शरीरादिका संयोग है सो आत्मातैं प्रगट ही भिन्न हैं, तिनिकूं आत्माके कहिये हैं सो यह व्यवहार प्रसिद्ध है ही, याकूं असत्यार्थ कहिये उपचार कहिये। इहां कर्मके संयोगजनित भाव हैं ते सर्व निमित्ताश्रित व्यवहारका विषय हैं अर उपदेश अपेक्षा याकूं प्रयोजनाश्रित भी कहिये ऐसैं निश्चय व्यवहारका संक्षेप है। तहां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं मोक्षमार्ग कह्या तहां ऐसैं समझनां जो ये तीनूं एक आत्माहीके भाव हैं, ऐसैं तिनिका स्वरूप आत्माहीका अनुभव होय सो तौं निश्चय मोक्षमार्ग है तामैं भी जेतैं अनुभवकी साक्षात् पूर्णता नांही होय तेतैं एकदेशरूप होय ताकूं कथंचित् सर्वदेशरूप कहिकरि कहनां सो तौ व्यवहार है अर एकदेश नामकरि कहनां सो निश्चय है। वहुरि दर्शन ज्ञान चारित्रकूं भेदरूप कहि मोक्षमार्ग कहिये तथा इनिके बाह्य परद्रव्य स्वरूप द्रव्य क्षेत्र काल भाव निमित्त हैं तिनिकूं दर्शन ज्ञान चारित्र नाम करि कहिये सो व्यवहार है। देव गुरुशास्त्रकी श्रद्धाकूं सम्यग्दर्शन कहिये जीवादिक तत्वनिकी श्रद्धाकूं सम्यग्दर्शन कहिये।

शास्त्रके ज्ञान कहिये जीवादिक पदार्थनिके ज्ञानकूं ज्ञान कहिये इत्यादि। तथा पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्तिरूप प्रवृत्तिकूं चारित्र कहिये। तथा बारह प्रकार तपकूं तप कहिये। ऐसैं भेदरूप तथा परद्रव्यके आलंबनरूप प्रवृत्ति हैं ते सर्व अध्यात्मशास्त्र अपेक्षा व्यवहार नामकरि कहिये हैं जातैं वस्तुका एकदेशकूं वस्तु कहनां सो भी व्यवहार है, अर परद्रव्यका आलंबनरूप प्रवृत्तिकूं तिस वस्तुके नामकरि कहनां सो भी व्यवहार है। बहुरि अध्यात्मशास्त्रमैं ऐसैं भी वर्णन है जो वस्तु अनंतधर्मरूप है सो सामान्य विशेषकरि तथा द्रव्यपर्यायकरि वर्णन कीजिए है तहां द्रव्यमात्र कहनां तथा पर्यायमात्र कहनां सो व्यवहारका विषय है। बहुरि द्रव्यका भी तथा पर्यायका भी निषेध करि वचन अगोचर कहनां सो निश्चयनयका विषय है। बहुरि द्रव्यरूप है सो ही पर्याय रूप है ऐसैं दोऊहीकूं प्रधान करि कहनां सो प्रमाणका विषय है, याका उदाहरण ऐसा जैसैं जीवकूं चैतन्य रूप नित्य एक अस्तिरूप इत्यादि अभेदमात्र कहनां सो तौ द्रव्यार्थिकनयका विषय है अर ज्ञानदर्शनरूप अनित्य अनेक नास्तित्वरूप इत्यादि भेदरूप कहनां सो पर्यायार्थिक नयका विषय है। अर दोऊ ही प्रकारकै प्रधानताका निषेधमात्र वचन अगोचर कहनां सो निश्चयनयका विषय है। अर दोऊ ही प्रकारकूं प्रधान करि कहनां प्रमाणका विषय है इत्यादि। ऐसैं निश्चय व्यवहारका सामान्य संक्षेप स्वरूप है ताकूं जानि जैसैं आगम अध्यात्म शास्त्रनिमैं विशेष करि वर्णन होय ताकूं सूक्ष्मदृष्टिकरि जाननां जिनमत अनेकांतस्वरूप स्याद्वाद है, अर नयनिकै आश्रय कथनी है तहां नयनिकै परस्पर विरोध है ताकूं स्याद्वाद मेंटै है, ताका विरोधका तथा अविरोधका स्वरूप नीकै जाननां, सो यथार्थ तौ गुरु आम्नायहीतैं होय परन्तु गुरुका निमित्त इस कालमैं विरला होय गया तातैं अपनां ज्ञानका बल चालैं जेतैं विशेष

समझिवो ही करनां किछु ज्ञानका लेश पाय उद्धत नहीं होना, अबार इस कालमैं अल्पज्ञानी बहुत हैं यातैं तिनितैं किछू अधिक अभ्यास करि तिनिमैं महंत वणि उद्धत भये मद आवै तब ज्ञान थकित होय जाय अर विशेष समझनेकी अभिलाष नहीं रहै तब विपर्यय होय यद्वा तद्वा कहै तब अन्य जीवनिकै विपर्यय श्रद्धान होय तब आपकै अपराधका प्रसंग आवै; तातैं शास्त्रकूं समुद्र जानि अल्पज्ञरूप ही अपनां भाव राखनां तातैं विशेष समझनेंकी अभिलापा बनी रहै तातैं ज्ञानकी वृद्धि होय है, अर अल्पज्ञानीनिमैं बैठि महंत बुद्धि राखै तब अपनां पाया ज्ञान भी नष्ट होय है, ऐसैं जाननां; अर निश्चय व्यवहाररूप आगमकी कथनी समझि करि ताका श्रद्धान करि यथाशक्ति आचरण करनां इस कालमैं गुरुसंप्रदायविनां महंत नहीं वणनौ जिन आज्ञा नहीं लोपणीं। कई कहैं हैं—हम तौ परीक्षा करि जिनमतकूं मानैंगें ते वृथा वकैं हैं— स्वल्पबुद्धीका ज्ञान परीक्षा करने लायक नांहीं. आज्ञाकूं प्रधान राखि वणैं जेती परीक्षा करनेंमैं दोष नांही, केवल परीक्षाहीकूं प्रधान राखनेंमैं जिनमततैं च्युत होय जाय तौ बड़ा दोष आवै तातैं जिनिकै अपने हित अहित पर दृष्टि हैं ते तौ ऐसैं जानौं। अर जिनिकूं अल्पज्ञानीनिमै महंत वणि अपने मान लोभ बडाई विषय कषाय पोषनें होय तिनिकी कथा नाहीं, ते तौ जैसैं अपने विषय कषाय पोषैंगे तैसैं करैंगे तिनिकूं मोक्ष-मार्गका उपदेश लागै नांही, विपर्यस्तकूं काहेका उपदेश? ऐसैं जाननां ॥ ६ ॥

आगैं कहै है जो सूत्रके अर्थ पदतैं भ्रष्ट है ताकूं मिथ्यादृष्टी जाननां;—

गाथा—सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स ॥ ७ ॥

संस्कृत—सूत्रार्थपदविनष्टः मिथ्यादृष्टिः हि सः ज्ञातव्यः।
खेलेऽपि न कर्त्तव्यं पाणिपात्रं सचेलस्य ॥ ७॥

अर्थ—जो सूत्रका अर्थ अर पद है विनष्ट जाकै ऐसा है सो प्रगट मिथ्यादृष्टी है याहीतैं जो सचेल है वस्त्रसहित है ताकूं 'खेडे वि' कहिये हास्य कुतूहलविषैं भी पाणिपात्र कहिये हस्तरूपपात्रकरि आहारदान है सो नहीं करनां।

भावार्थ—सूत्रविषैं मुनिका रूप नग्न दिगंबर कह्या है अर जो ऐसे सूत्रके अर्थ करि तथा अक्षररूप पद जाकै विनष्ट हैं तथा आप वस्त्र धारि मुनि कहावै है सो जिन आज्ञातैं भ्रष्ट भया प्रगट मिथ्यादृष्टी है यातैं वस्त्रसहितकूं हास्य कुतूहलकरि भी पाणिपात्र कहिये आहारदान नहीं करनां। तथा ऐसा भी अर्थ होय है जो ऐसे मिथ्यादृष्टीकूं पाणिपात्र आहार लेनां योग्य नांही ऐसा भेष हास्य कुतूहलकरि भी धारणां योग्य नांही, जो वस्त्रसहित रहनां अर पाणिपात्र भोजन करनां ऐसैं तौ क्रीडामात्र भी नहीं करनां॥ ७॥

आगैं कहै है जो जिनसूत्रतैं भ्रष्ट है सो हरि हरादिकतुल्य है तौऊ मोक्ष नहीं पावै है;—

गाथा—हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो॥ ८॥

संस्कृत—हरिहरतुल्योऽपि नरः स्वर्गं गच्छति एति भवकोटिः।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः॥ ८॥

अर्थ—जे नर सूत्रका अर्थ पदतैं भ्रष्ट हैं सो हरि कहिये नारायण हर कहिये रुद्र इनि तुल्य भी होय अनेक ऋद्धिकरि युक्त होय तौहू सिद्धि कहिये मोक्ष ताकूं प्राप्त नहीं होय। जो कदाचित् दानपूजादिक

१ पाणिपात्रे, ऐसा भी पाठ है।

करि पुण्य उपजाय स्वर्ग जाय तौहू तहांतैं चय करि कोड्यां भव लेय संसारहीमैं रहै है, ऐसैं जिनागममैं कह्या है।

भावार्थ—श्वेतांवरादिक ऐसैं कहैं हैं—जो गृहस्थ आदि वस्त्रसहित हैं तिनिकै भी मोक्ष होय है ऐसैं सूत्रमैं कह्या है ताका इस गाथामैं निषेधका आशय है—जो हरिहरादिक वडी सामर्थ्यके धारक भी हैं तौऊ वस्त्रसहित तौ मोक्ष नांही पावैं है। श्वेतांवरां सूत्र कल्पित बनाये हैं तिनिमैं यह लिखी है सो प्रमाणभूत नांही है, ते श्वेतांवर जिन-सूत्रके अर्थ पदतैं च्युत भये हैं ऐसैं जाननां ॥ ८ ॥

आगैं कहै है—जो जिनसूत्र च्युत भये हैं ते स्वच्छंद भये प्रवर्त्तै हैं ते मिथ्यादृष्टी हैं;—

गाथा—उक्किट्ठसीहचरियं वहुपरियम्मो य गरुय भारो य।
जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छंदि होदि मिच्छत्तं ॥९॥

संस्कृत—उत्कृष्टसिंहचरितः वहुपरिकर्मा च गुरुभारश्च।
यः विहरति स्वच्छंदं पापं गच्छति भवति मिथ्यात्वम् ॥९॥

अर्थ—जो मुनि होय करि उत्कृष्ट सिंहवत् निर्भय भया आचरण करै बहुरि वहुत परिकर्म कहिये तपश्चरणादिक्रियाविशेषनिकरि युक्त है बहुरि गुरुके भार कहिये वड़ा पदस्थरूप है संघ नायक कहावै है अर जिनसूत्रतैं च्युत भया स्वच्छंद प्रवर्त्तै है तौ वह पापहीकूं प्राप्त होय है वहुरि मिथ्यात्वकूं प्राप्त होय है।

भावार्थ—जो धर्मकी नायकी लेकरि निर्भय होय तपश्चरणादिक करि वडा कहाय अपनां संप्रदाय चलावै है जिनसूत्रतैं च्युत होय स्वेच्छाचारी प्रवर्त्तै है तौ सो पापी मिथ्यादृष्टी ही है ताका प्रसंग भी श्रेष्ठ नांही ॥ ९ ॥

आगैं कहै है जो जिनसूत्रमैं ऐसा मोक्षमार्ग कह्या है,

गाथा—णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥१०॥

संस्कृत—निश्चेलपाणिपात्रं उपदिष्टं परमजिनवरेन्द्रैः।
एकोऽपि मोक्षमार्गः शेषाश्च अमार्गाः सर्वे ॥१०॥

अर्थ—जो निश्चल कहिये वस्त्ररहित दिगंवर मुद्रास्वरूप अर पाणिपात्र कहिये हाथ जाके पात्र ऐसा खड़ा रहि आहार करनां ऐसा एक अद्वितीय मोक्षमार्ग तीर्थंकर परमदेव जिंनेंद्रनैं उपदेश्या है, इस शिवाय अन्यरीति हैं ते सर्व अमार्ग हैं।

भावार्थ—जे मृगचर्म वृक्षके वक्कल कपास पट्ट दुकूल रोमवस्त्र टाटके तृणके वस्त्र इत्यादिक राखि आपकूं मोक्षमार्गी मानै हैं तथा इस कालमैं जिनसूत्रतैं च्युत भये हैं तिननैं अपनी इच्छातैं अनेक भेष चलाये हैं केई श्वेत वस्त्र राखैं हैं केई रक्तवस्त्र केई पीलेवस्त्र केई टाटके वस्त्र केई घासके वस्त्र केई रोमके वस्त्र इत्यादिक राखै हैं तिनिकै मोक्षमार्ग नांहीं जातै जिनसूत्रमैं तौ एक नग्न दिगंवर स्वरूप पाणिपात्र भोजन करनां ऐसा मोक्ष मार्ग कह्या है, अन्य सर्व भेप मोक्षमार्ग नहीं अर जे मानैं हैं ते मिथ्यादृष्टी हैं ॥ १० ॥

आगैं दिगंवर मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति कहै हैं;

गाथा—जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए ॥११॥

संस्कृत—यः संयमेषु सहितः आरंभपरिग्रहेषु विरतः अपि।
सः भवति वंदनीयः ससुरासुरमानुषे लोके ॥११॥

अर्थ—जो दिगंबर मुद्राका धारक मुनि इन्द्रिय मनका वश करनां छह कायके जीवनिकी दया करनां ऐसैं संयम करि तौ सहित होय बहुरि आरंभ कहिये गृहस्थके जे ते आरंभ हैं तिनतैं अर बाह्य अभ्यंतर परिग्रहतैं विरक्त होय तिनिमैं नहीं प्रवर्त्तैं तथा आदि शब्द करि ब्रह्मचर्य आदि करि युक्त होय सो देव दानव करि सहित मनुष्यलोक विषैं वंदनें योग्य है अन्य भेषी परिग्रह आरंभादि करि युक्त पाखंडी वंदिवे योग्य नांही है ॥ ११ ॥

आगैं फेरि तिनिकी प्रवृत्तिका विशेष कहै है;—

गाथा—जे बावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता ।
ते होंदि[1] वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरासाहू ॥१२॥

संस्कृत—ये द्वाविंशतिपरीषहान् सहंते शक्तिशतैः संयुक्ताः ।
ते भवंति वंदनीयाः कर्मक्षयनिर्जरासाधवः ॥ १२ ॥

अर्थ—जे साधु मुनि अपनी शक्तिके सैंकडानिकरि युक्त भये संते क्षुधा तृषादिक बाईस परीषहनिकूं सहैं हैं ते साधु वंदनेयोग्य हैं, कैसें हैं ते—कर्मनिका क्षयरूप तिनिकी निर्जरा ताविषैं प्रवीण हैं॥

भावार्थ—जे वडी शक्तिके धारक साधु हैं ते परीषहनिकूं सहैं हैं परीषह आये अपनें पदतैं च्युत नांही होय हैं तिनिकैं कर्मनिकी निर्जरा होय है ते वंदने योग्य हैं ॥ १२ ॥

आगैं कहै है जो दिगंबर मुद्रा सिवाय कोई वस्त्र धारे सम्यग्दर्शन ज्ञानकरि युक्त होंय ते इच्छाकार करनेंयोग्य हैं;—

गाथा—अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेणसम्म संजुत्ता ।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जाय ॥

1 'होंति' षट्पाहुडमें ऐसा है।

संस्कृत—अवशेषा ये लिंगिनः दर्शनज्ञानेन सम्यक् संयुक्ताः।
चेलेन च परिगृहीताः ते भणिता इच्छाकारयोग्याः॥१३

अर्थ—दिगंबर मुद्रासिवाय अवशेष जे लिंगी हैं भेषकरि संयुक्त अर सम्यक्त्वसहित दर्शन ज्ञान करि संयुक्त हैं अर वस्त्र करि परिगृहीत हैं वस्त्र धारैं हैं ते इच्छाकार करनें योग्य हैं॥

भावार्थ—जे सम्यग्दर्शन ज्ञान करि संयुक्त हैं अर उत्कृष्ट श्रावकका भेष धारैं हैं एक वस्त्रमात्र परिग्रह राखैं हैं सो इच्छाकार करनें योग्य हैं तातैं "इच्छामि" ऐसा कहिये है। ताका अर्थ—जो मैं तुमकूं इच्छूं हूं चाहूंहूं ऐसा 'इच्छामि' शब्दका अर्थ है। ऐसैं इच्छाकार करना जिनसूत्रमैं कह्या है॥ १३॥

आगैं इच्छाकार योग्य श्रावकका स्वरूप कहैं हैं;—

गाथा—इच्छायारमहत्थं सुत्तठिणो जो हु छंडए कम्मं।
ठाणे ट्ठियसम्मत्तं परलोयसुहंकरो होइ॥ १४॥

संस्कृत—इच्छाकारमहार्थं सूत्रस्थितः यः स्फुटं त्यजति कर्म।
स्थाने स्थितसम्यक्त्वः परलोकसुखंकरः भवति १४

अर्थ—जो पुरुष जिनसूत्रविषैं तिष्ठता संता इच्छाकार शब्दका महान प्रधान अर्थ है ताहि जानै है बहुरि स्थान जो श्रावकके भेदरूप प्रतिमा तिनिमैं तिष्ठ्या सम्यक्त्वसहित वर्त्तता आरंभ आदि कर्मनिकूं छोडै है सो परलोकविषैं सुख करनेवाला होय है॥

भावार्थ—उत्कृष्ट श्रावककूं इच्छाकार करिये है सो इच्छाकारका जो प्रधान अर्थ है ताकूं जानै है अर सूत्र अनुसार सम्यक्त्वसहित आरंभादिक छोडि उत्कृष्ट श्रावक होय सो परलोकविषैं स्वर्गका सुख पावै है॥ १४॥

आगैं कहैं हैं जो इच्छाकारका प्रधान अर्थकूं नाहीं जानै है अर अन्यधर्मका आचरण करै है सो सिद्धिकूं नांहीं पावै है;—

गाथा—अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरव सेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥१५॥

संस्कृतः—अथ पुनः आत्मानं नेच्छति धर्मान् करोति निरवशेषान्
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः १५

अर्थ—'अथ पुनः' शब्दका ऐसा अर्थ जो—पहली गाथामैं कह्याथा जो इच्छाकारका प्रधान अर्थ जानैं सो आचरण करि स्वर्गसुख पावै, सो अब फेरि कहै है जो—इच्छाकारका प्रधान अर्थ आत्माका चाहनांहै अपनें स्वरूपविषैं रुचि करनां है सो याकूं जो नांही इष्ट करै है अर अन्य धर्मके समस्त आचरण करै है तौउ सिद्धि कहिये मोक्षकूं नहीं पावै है बहुरि ताकूं संसारविषैं ही तिष्ठनेवाला कह्या है॥

भावार्थ—इच्छाकारका प्रधान अर्थ आपका चाहनां है सो जाकै अपनें स्वरूपकी रुचिरूप सम्यक्त्व नांही ताकै सर्व मुनि श्रावकके—आचरणरूप प्रवृत्ति मोक्षका कारण नांही ॥ १५ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ़करि उपदेश करै है—

गाथा—एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेइ मोक्खं तं जाणिज्जइ पयत्तेण॥ १६ ॥

संस्कृत—एतेन कारणेन च तं आत्मानं श्रद्धत्त त्रिविधेन।
येन च लभध्वं मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन ॥ १६ ॥

अर्थ—पूर्वै कह्या जो आत्माकूं इष्ट न करै है ताकै सिद्धि नहीं है तिसही कारण करि हे भव्यजीवहो! तुम तिस आत्माकूं श्रद्धो ताका

श्रद्धान करो मन वचन काय करि स्वरूपविषैं रुचि करो तिस कारण करि मोक्षकूं पावो बहुरि जिस करि मोक्ष पाइए तिसकूं प्रयत्न कहिये सर्व प्रकार उद्यमकरि जानिये ॥

भावार्थ—जिसकरि मोक्ष पाइये तिसहीका जाननां श्रद्धान करना यह प्रधान उपदेश है अन्य आडंबर करि कहा प्रयोजन? ऐसैं जाननां ॥ १६ ॥

आगैं कहै है जे जिनसूत्रके जाननेवाले मुनि हैं तिनिका स्वरूप फेरि दृढ करनेंकूं कहै है;—

गाथा—वालग्गकोडिमत्तं परिगहगहणं ण होइ साहूणां।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ॥ १७ ॥

संस्कृत—वालाग्रकोटिमात्रं परिग्रहग्रहणं न भवति साधूनाम्।
भुंजीत पाणिपात्रे दत्तमन्येन एकस्थाने १७ ॥

अर्थ—वालके अग्रभागकी कोटि कहिये अणी तिसमात्र भी परिग्रहका ग्रहण साधुकै नहीं होय है, इहां आशंका है जो परिग्रह कछूभी नांहीं है तौ आहार कैसैं करै है! ताका समाधान करै है— आहार करै है सो पाणिपात्र कहिये करपात्र जो अपनें हाथही मैं भोजन करै है सो भी अन्यका दिया प्राशुक अन्न मात्र ले हैं सो भी एकस्थान ले हैं बार बार नहीं ले हैं अर अन्य अन्य स्थानमैं नहीं ले हैं ॥

भावार्थ—जो मुनि आहार ही परका दिया प्रासुक योग्य अन्नमात्र निर्दोप एकवार दिनमैं अपनें हाथकरि ले है तौ अन्य परिग्रह काहेकूं ग्रहण करै नहीं ग्रहण करै, जिनसूत्रमैं ऐसे मुनि कहै हैं ॥ १७ ॥

आगैं कहै है अल्पपरिग्रह ग्रहण करै तामैं दोष कहा ? ताकूं दोष दिखावै है;—

गाथा—जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम् ॥१८॥

संस्कृत–यथाजातरूपसदृशः तिलतुषमात्रं न गृह्णाति हस्तयोः।
यदि लाति अल्पबहुकं ततः पुनः याति निगोदम्॥१८॥

अर्थ—मुनि है सो यथाजातरूप है जैसैं जन्मता बालक नग्नरूप होय है तैसा नग्नरूप दिगंबर मुद्राका धारक है सो अपनें हाथविषैं तिलके तुषमात्र भी किछू ग्रहण नहीं करै है, बहुरि जो किछू अल्प बहुत लेवै ग्रहण करै तौ वो मुनि ग्रहण करनेंतैं निगोदमैं जाय है।

भावार्थ—मुनि यथाजातरूप दिगंवर निर्ग्रंथकूं कहैं हैं सो ऐसा होय करि भी किछू परिग्रह राखै तौ जानिये इनिकै जिनसूत्रकी श्रद्धा नांही मिथ्यादृष्टी है यातैं मिथ्यात्वका फल निगोदही है, कदाचित् किछू तपश्च-रणादिक करै तौ ताकरि शुभकर्म बांधि स्वर्गादिक पावै तौ भी फेरि एकेंद्रिय होय संसार ही मैं भ्रमण करै है।

इहां प्रश्न—जो, मुनिकै शरीर है आहार करै है कमंडलु पीछी पुस्तक राखै है, इहां तिल तुषमात्र भी राखनां न कह्या, सो कैसैं ?

ताका समाधान—जो, मिथ्यात्वसहित रागभावसूं अपणाय अपनां विषय कषाय पोषनेकूं राखै ताकूं परिग्रह कहिये है तिस निमित्त किछू अल्प बहुत राखनां निषेध्या है अर केवल संयमके निमित्तका तौ सर्वथा निषेध नांही। शरीर है सो तौ आयुपर्यन्त छोड्या छूटै नांही याका तौ ममत्वही छूटै सो निषेध्या ही है। बहुरि जे तैं शरीर है ते तैं आहार नहीं

करै तौ सामर्थ्यही नहीं होय तब संयम नहीं सधै तातैं किछू योग्य आहार विधिपूर्वक शरीरसूं रागरहित भये संते लेकरि शरीरकूं खड़ा राखि संयम साधै है। बहुरि कमंडलु बाह्य शौचका उपकरण है जो नहीं राखै तौ मलमूत्रकी अशुचिताकरि पंच परमेष्ठीकी भक्ति वंदना कैसैं करै अर लोकनिंद्य होय। बहुरि पीछी दयाका उपकरण है जो नहीं राखै तौ जीवनिसहित भूमि आदिकी प्रति लेखना काहेतैं करै। बहुरि पुस्तक है सो ज्ञानका उपकरण है जो नहीं राखै तौ पठन पाठन कैसैं होय। बहुरि इनि उपकरणनिका राखनां भी ममत्वपूर्वक नांही है तिनितैं रागभाव नांही है। बहुरि आहार विहार पठन पाठनकी क्रियायुक्त जेतैं रहै तेतैं केवलज्ञान भी नांही उपजै है तिनि सर्व क्रियानिकूं छोड़ि शरीरका भी सर्वथा ममत्व छोड़ि ध्यान अवस्था लेकरि तिष्ठै अपनां स्वरूपमैं लीन होय तब परम निर्ग्रंथ अवस्था होय है तब श्रेणीकूं प्राप्त भये मुनिराजकैं केवलज्ञान उपजै है अन्य क्रियासहित होय तेतैं केवलज्ञान नांही उपजै है ऐसा निर्ग्रंथपणां मोक्षमार्ग जिनसूत्रमैं कह्या है।

श्वेतांबर कहै है जो भवथिति पूरी भये सर्व अवस्थामैं केवलज्ञान उपजै है सो यह कहनां मिथ्या है, जिनसूत्रका यह वचन नांही तिनि श्वेतांबरनिनैं कल्पित सूत्र बनाये हैं तिनिमैं लिखी होगी। बहुरि इहां श्वेतांबर कहै जो तुमनैं कह्या सो तौ उत्सगमार्ग है, बहुरि अपवादमार्गमैं वस्त्रादिक उपकरण राखनां कह्या है जैसैं तुम धर्मोपकरण कहे तैसैंही वस्त्रादिक भी धर्मोपकरण हैं जैसैं क्षुधाकी बाधा आहारतैं मेटि संयम साधिये है तैसैं ही शीत आदिकी बाधा वस्त्र आदितैं मेटि संयम साधिये यामैं विशेष कहा? ताकूं कहिये जो यामैं तौ बडे दोष आवैं हैं, तथा कोई कहैं कामविकार उपजै तब स्त्रीसेवन करै तौ यामैं कहा विशेष? सो ऐसैं कहनां युक्त नांही। क्षुधाकी बाधा तौ आहारतैं मेटनां युक्त है आहारविना देह अशक्त

होय है तथा छूटि जाय तौ अपघातका दोष आवै, अर शीत आदिकी बाधा तौ अल्प है सो यह तौ ज्ञानाभ्यास आदिके साधनेतैं ही मिटि जाय है। अपवादमार्ग कह्या सो जामैं मुनिपद रहै ऐसी क्रिया करनां तौ अपवादमार्ग है अर जिस परिग्रहतैं तथा जिस क्रियातैं मुनिपद भ्रष्ट होय गृहस्थवत हो जाय सो तौ अपवादमार्ग है नांहीं। दिगंबर मुद्रा धारि कमंडलु पीछी सहित आहार विहार उपदेशादिकमैं प्रवर्त्तै सो अपवादमार्ग है अर सर्व प्रवृत्तिकूं छोड़ि ध्यानस्थ होय शुद्धोपयोगमैं लीन होय सो उत्सर्गमार्ग कह्या है। ऐसा मुनिपद आपतैं सधता न जानि काहेकूं शिथिलाचार पोषणां, मुनिपदकी सामर्थ्य न होय तौ श्रावकधर्म ही पालनों परंपराकरि याहीतैं सिद्धि होयगी। जिनसूत्रकी यथार्थ श्रद्धा राखे सिद्धि है या विनां अन्य क्रिया सर्व ही संसारमार्ग है मोक्षमार्ग नांहीं, ऐसैं जाननां॥ १८॥

आगैं इस ही अर्थका समर्थन करै है;—

गाथा—जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ निरायारो॥१९॥

संस्कृत—यस्य परिग्रहग्रहणं अल्पं बहुकं च भवति लिंगस्य।
सः गर्ह्यः जिनवचने परिग्रहरहितः निरागारः॥१९॥

अर्थः—जाके मतमैं लिंग जो भेष ताके परिग्रहका अल्प तथा बहुत ग्रहणपणां कह्या है सो मत तथा तिसका श्रद्धावान पुरुष गर्हित है निंदायोग्य है जातैं जिनवचनविषैं परिग्रह रहित है सो निरागार है निर्दोष मुनि है, ऐसैं कह्या है॥

भावार्थः—श्वेतांबरादिकके कल्पित सूत्रनिमैं भेषमैं अल्प बहुत परिग्रहका ग्रहण कह्या है सो सिद्धान्त तथा ताके श्रद्धानी निंद्य हैं। जिनवचनविषैं परिग्रह रहितकूं ही निर्दोष मुनि कह्या है॥१९॥

आगै कहै है जिनवचनविषैं ऐसा मुनि वंदनें योग्य कह्या है;—

गाथाः—पंचमहव्वयजुत्तो तिहि गुत्तिहि जो स संजदो होइ।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य ॥२०॥

संकृतः—पंचमहाव्रतयुक्तःतिसृभिः गुप्तिभिः यः स संयतो भवति
निर्ग्रंथमोक्षमार्गः सभवति हि वन्दनीयः च ॥ २० ॥

अर्थ—जो मुनि पंच महाव्रतकरि युक्त होय अर तीन गुप्तिकरि संयुक्त हाये सो संयत है संयमवान है बहुरि निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग है बहुरि सो ही प्रगटपणैं निश्चयकरि वंदनें योग्य है ॥

भावार्थ—अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अर अपरिग्रह इनि पांच महाव्रतनि करि सहित होय बहुरि मन वचन कायरूप तीन गुप्तिनि करि सहित होय सो संयमी है सो निर्ग्रंथ स्वरूप है सो ही वंदने योग्य है। जो कछू अल्प बहुत परिग्रह राखै सो महाव्रती संयमी नांही यह मोक्षमार्ग नांही अर गृहस्थवत् भी नांही है ॥ २० ॥

आगैं कहै है जो पूर्वोक्त तो एक भेष मुनिका कह्या, अब दूसरा भेद उत्कृष्ट श्रावकका ऐसा कह्याहै;—

गाथा—दुइयं च उत्त लिंगं उक्किट्टं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्ते समिदीभासेण मोणेण ॥ २१ ॥

संस्कृत—द्वितीयं चोक्तं लिंगं उत्कृष्टं अवरश्रावकाणां च।
भिक्षां भ्रमति पात्रे समितिभाषया मौनेन ॥ २१ ॥

अर्थः—द्वितीय कहिये दूसरा लिंग कहिये भेष उत्कृष्ट श्रावक कहिये जो गृहस्थ नांही ऐसा उत्कृष्ट श्रावक ताका कह्या है सो उत्कृष्ट श्रावक ग्यारमीं प्रतिमाका धारक है सो भ्रमकरि भिक्षाकरि भोजन करै, बहुरि पत्ते

कहिये पात्रमैं भोजन करै तथा हाथमैं करै बहुरि समितिरूप प्रवर्त्तता भाषासमितिरूप बोलै अथवा मौनकरि प्रवर्त्तै ॥

भावार्थः—एक तौ मुनिका यथाजातरूप कह्या बहुरि दूसरा यह उत्कृष्ट श्रावकका कह्या सो ग्यारमीं प्रतिमाका धारक उत्कृष्ट श्रावक है सो एक वस्त्र तथा कोपीन मात्र धारे है बहुरि भिक्षा भोजन करै है बहुरि पात्रमैं भी भोजन करै करपात्रमैं भी करै बहुरि समितिरूप वचन भी कहै अथवा मौन भी राखै ऐसा दूसरा भेप है ॥ २१ ॥

आगैं तीसरा लिंग स्त्रीका कहै है;—

गाथा—लिंगं इत्थीण हवदि भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि ।
अज्जिय वि एकवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ ॥ २२ ॥

संस्कृत—लिंगं स्त्रीणां भवति भुंक्ते पिंडं स्वेककाले ।
आर्या अपि एकवस्त्रा वस्त्रावरणेन भुंक्ते ॥ २२ ॥

अर्थ—लिंगहै सो स्त्रीनिका ऐसाहै–एक कालविषैं तौ भोजन करै वारंवार भोजन नहीं करै बहुरि आर्यिका भी होय तौ एकवस्त्र धारै बहुरि भोजन करतैं भी वस्त्रके आवरणसहित करै नग्न नहीं होय ।

भावार्थ—स्त्री आर्यिका भी होय अर क्षुल्लका भी होय सो दोऊ ही भोजनतौ दिनमैं एकवारही करै आर्यिका होय सो एक वस्त्र धारेंही भोजन करै नग्न नहीं होय । ऐसा तीसरा स्त्रीका लिंग है ॥ २२ ॥

आगैं कहैहै–वस्त्रधारककै मोक्ष नांही, मोक्षमार्ग नग्नपणांही है;—

गाथा–ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासण जइ वि होइ तित्थयरो ।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥ २३ ॥

संस्कृत—नापि सिध्यति वस्त्रधरः जिनशासने यद्यपि भवति तीर्थंकरः ।

नग्नः विमोक्षमार्गः शेषा उन्मार्गकाः सर्वे ॥ २३ ॥

अर्थ—जिनशासनविषैं ऐसा कह्या है जो वस्त्रका धरनेवाला सीझै नांही मोक्ष नांही पावैहै जो तीर्थंकरभी होय तौ जेतै गृहस्थ रहै तेतैं मोक्ष न पावै, दीक्षा लेय दिगंवर रूप धारै तव मोक्ष पावै जातैं नग्नपणां है सो ही मोक्षमार्ग है अव शेष कहिये वाकी सर्व लिंग उन्मार्ग हैं॥२३॥

भावार्थ—श्वेतांवर आदिक वस्त्रधारीकैभी मोक्ष होनां कहै है सो मिथ्या है यह जिनमत नांही ॥ २३ ॥

आगैं स्त्रीनिकूं दीक्षा नांही ताका कारण कहैहै;—

गाथा—लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु ।
भणिओ सुहमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा ॥

संस्कृत—लिंगे च स्त्रीणां स्तनांतरे नाभिकक्षदेशेषु ।
भणितः सूक्ष्मः कायः तासां कथं भवति प्रव्रज्या॥२४॥

अर्थ—स्त्रीनिके लिंग कहिये योनि जा विषैं तथा स्तनांतर कहिये दोऊ कुचानिके मध्यप्रदेशविषैं तथा कक्ष कहिये दोऊ कांखनिविषैं नाभि-विषैं[1] सूक्ष्मकाय कहिये दृष्टिके अगोचर जीव, कहे हैं सो ऐसी स्त्रीनिकैं प्रव्रज्या कहिये दीक्षा कैसें होय ॥

भावार्थ—स्त्रीनिकैं योनि स्तन कांख नाभि विषैं पंचेंद्रियजीवनिकी उत्पत्ति निरंतर कहीहै तिनिकै महाव्रतरूप दीक्षा कैसै होय। वहुरि महाव्रत कहे हैं सो उपचार करि कहे हैं परमार्थ नांही, स्त्री आपनां साम-र्थ्यकी हदकूं पहुंचि व्रत धरै है तिस अपेक्षा उपचारतैं महाव्रत कहे है ॥ २४ ॥

---

(१) लिखित वचनिका प्रतियोंमें अर्थ और भावार्थ दोनोंही स्थानोंमें 'नाभि' का जिक्र नहीं कियाहै सो गाथाके अनुसार होना युक्त समझ लिखाहै ।

आगै कहे है जो स्त्री भी दर्शनकरि शुद्ध होयतौ पापरहित है भली है.

गाथा—जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता ।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पावया भणिया ॥२५॥

संस्कृत—यदि दर्शनेन शुद्धा उक्ता मार्गेण सापि संयुक्ता ।
घोरं चरित्वा चरित्रं स्त्रीषु न पापका भणिता ॥२५॥

अर्थ—स्त्रीनि विषैं जो स्त्री, दर्शन कहिये यथार्थ जिनमतकी श्रद्धा करि शुद्ध है सोभी मार्गकरि संयुक्त कही हैं जो घोर चारित्र तीव्र तपश्र-रणादिक आचरणकरि पापतैं रहित होय हैं तातैं पापयुक्त न कहिये ॥

भावार्थ—स्त्रीनि विषैं जो स्त्री सम्यक्त्वकरि सहित होय अर तपश्चरण करै तौ पापरहित होय स्वर्गकूं प्राप्त होय हैं तातैं प्रशंसायोग्य है अर स्त्रीपर्यायतैं मोक्ष नांहीं ॥ २५ ॥

आगैं कहै है जो स्त्रीनिकै ध्यानकी सिद्धिभी नांही है:—

गाथा—चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण ।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणा ॥२६॥

संस्कृत—चित्ताशोधि न तेषां शिथिलः भावः तथा स्वभावेन ।
विद्यते मासा तेषां स्त्रीषु न शंकया ध्यानम् ॥२६॥

अर्थ—तिनि स्त्रीनिकै चित्तकी शुद्धिता नांही है तैसैंही स्वभावही करि तिनि कै ढीला भाव है शिथिल परिणाम है बहुरि, तिनि कै मासा कहिये मासमासमैं रुधिरका स्राव विद्यमान है ताकी शंका रहै है ताकरि स्त्रीनिविषैं ध्यान नांही है ॥

भावार्थ—ध्यान होय है सो चित्त शुद्ध होय दृढ परिणाम होय काहू तरहकी शंका न होय तब होय है सो स्त्रीनिकै तीनूंही कारण नांहीं

(१) मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें इस पदकी संस्कृत 'प्रव्रज्या' कीहै श्रीयुत सागर सूरेने भी 'प्रव्रज्या' ही लिखी है।

तब ध्यान कैसैं होय अर ध्यान विनां केवलज्ञान कैसै उपजै अर केवलज्ञानविना मोक्ष नाही, श्वेतांवरादिक मोक्ष कहैं हैं सो मिथ्या है ॥ २६ ॥

आगैं सूत्रपाहुडकूं समाप्त करै है सो सामान्यकरि सुखका कारण कहै है;—

गाथा—गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण ।
इच्छा जाहु णियत्ता ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं ॥२७॥

संस्कृत—ग्राह्येण अल्पग्राह्याः समुद्रसलिले स्वचेलार्थेन ।
इच्छा येभ्यः निवृत्ताः तेषां निवृत्तानि सर्वदुखःखानि ।

अर्थः—जो मुनि ग्राह्य कहिये ग्रहण करनेयोग्य वस्तु आहार आदिक तिनिकरि तो अल्पग्राह्य हैं थोरा ग्रहण करै है जैसैं कोऊ पुरुष बहुत जलतैं भऱ्या जो समुद्र ता विषैं अपनें वस्त्रके प्रक्षालनेंकूं वस्त्रके धोवनें मात्र जल ग्रहण करै तैसैं बहुरि जिनि मुनिनिकै इच्छा निवृत्त भई तिनिकैं सर्व दुःख निवृत्त भये ॥

भावार्थः—जगतमैं यह प्रसिद्ध है जो जिनकैं संतोष है ते सुखी हैं इस न्यायकरि यह सिद्ध भया जो मुनिनिकैं इच्छाकी निवृत्त भई है तिनिकै संसारके विषयसंबंधी इच्छा किंचित्मात्र भी नांही है देहतैं भी विरक्त हैं तातैं परम संतोषी हैं, अर आहारादि किछूं ग्रहण योग्य हैं तिनिमैं भी अल्पकूं ग्रहण करैं हैं तातैं ते परमसंतोषी हैं ते परम सुखी हैं, यह जिनसूत्रके श्रद्धानका फल है अन्यसूत्रमैं यथार्थ निवृत्तिका प्ररूपण नांही तातैं कल्याणके सुखके अर्थनिकूं जिनसूत्रका सेवन निरंतर करनां योग्य है ॥ २७ ॥

ऐसैं सूत्रपाहुडकूं पूर्ण किया।

छप्पय।

जिनवरकी ध्वनि मेघध्वानसम मुखतैं गरजै
गणधरके श्रुति भूमि वरपि अक्षर पद सरजै।
सकल तत्व पराकास करै जगताप निवारै
हेय अहेय विधान लोक नीकै मन धारै॥
विधि पुण्यपाप अरु लोककी मुनि श्रावक आचरन फुनि।
करि स्वपरभेद निर्णय सकल कर्म नाशि शिव लहत मुनि॥१॥

दोहा।

वर्द्धमान जिनके वचन वरतैं पंचमकाल।
भव्य पाय शिवमग लहै नमूं तास गुणमाल॥२॥

इति पं. जयचन्द्रछावडाकृत देशभाषावचनिका सहित श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित सूत्रप्राहुड समाप्त॥२॥

श्रीः ॥

अथ चारित्रपाहुड।

—:o:—

(३)

दोहा।

वीतराग सर्वज्ञ जिन वंदूं मन वच काय।
चारित धर्म वखानियो सांचो मोक्षउपाय ॥ १ ॥
कुन्दकुन्दमुनिराजकृत चारितपाहुड ग्रंथ।
प्राकृत गाथाबंधकी करूं वचनिका पंथ ॥ २ ॥

ऐसैं मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करि अर अत्र चारित्रपाहुड प्राकृत गाथाबंधकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है;—तहां श्री कुन्दकुन्द आचार्य प्रथम ही मंगलकै अर्थि इष्टदेवकूं नमस्कार करि चारित्रपाहुडकी कहनेंकी प्रतिज्ञा करैं हैं;—

गाथा—सव्वण्हु सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी।
वंदित्तु तिजगवंदा अरहंता भव्वजीवेहिं ॥ १॥
णाणं दंसण सम्मं चारित्तं सोहिकारणं तेसिं।
मुक्खाराहणहेउं चारित्तं पाहुडं वोच्छे ॥२॥ युग्मम्।

संस्कृत—सर्वज्ञान् सर्वदर्शिनः निर्मोहान् वीतरागान् परमेष्ठिनः।
वंदित्वा त्रिजगद्वंदितान् अर्हतः भव्यजीवैः ॥१॥
ज्ञानं दर्शनं सम्यक् चारित्रं शुद्धिकारणं तेषाम्।
मोक्षाराधनहेतुं चारित्रं प्राभृतं वक्ष्ये ॥२॥ युग्मम् ॥

अर्थ—आचार्य कहैहै जो मैं अरहंत परमष्ठीकूं वंदिकरि चारित्रपाहुड है ताहि कहूंगा, कैसे हैं अरहंत परमेष्ठी–अरहंत ऐसा प्राकृत अक्षर अपेक्षा तौ ऐसा अर्थ–अकार आदि अक्षर करि तौ अरि ऐसा तौ मोहकर्म, वहुरि रकार आदि अक्षर अपेक्षा रज ऐसा ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म वहुरि तिसही रकारकरि रहस्य ऐसा अंतराय कर्म ऐसे च्यार घातिकर्म तिनिकूं हंत कहिए हननां घातनां जाकैं भया ऐसा अरहंत है। वहुरि संस्कृत अपेक्षा 'अर्ह' ऐसा पूजा अर्थ विषैं धातु है ताका 'अर्हत्' ऐसा निपजै तव पूजायोग्य होय ताकूं अर्हत् कहिये सो भव्यजीवनिकरि पूज्य है। वहुरि परमेष्ठी कहनेतैं परम कहिये उत्कृष्ट इष्ट कहिये पूज्य होय सो परमेष्ठी कहिये, अथवा परम जो उत्कृष्ट पद ताविषैं तिष्ठै ऐसा होय सो परमेष्ठी। ऐसा इंद्रादिकरि पूज्य अरहंत परमेष्ठी है। वहुरि कैसे हैं सर्वज्ञ हैं सर्व लोकालोकस्वरूप चराचर पदार्थनिकूं प्रत्यक्ष जानैं सो सर्वज्ञ है। वहुरि कैसे हैं–सर्वदर्शी कहिये सर्व पदार्थनिके देखनेवाले हैं। वहुरि कैसे हैं निर्मोह हैं मोहनीयनामा कर्मकी प्रधान प्रकृति मिथ्यात्व है ताकरि रहित हैं। वहुरि कैसे हैं–वीतराग हैं विशेषकरि जाकै राग दूरभया होय सो वीतराग, सो जिनकै चारित्रमोहकर्मका उदयतैं होय ऐसा रागद्वेषभी नांही है। वहुरि कैसे हैं–त्रिजगद्वंद्य हैं तीन जगतके प्राणी तथा तिनिके स्वामी इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्ती तिनिकरि वंदिवे योग्य हैं। ऐसैं अरहंत पदकूं विशेष्यकरि अन्य पद विशेषण करि अर्थ किया है। वहुरि सर्वज्ञ पदकूं विशेष्यकरि अन्यपद विशेषण करिये ऐसैं भी अर्थ होय है तहां अरहंत भव्यजीवनिकरि पूज्य हैं ऐसा विशेषण होय है। वहुरि चारित्र कैसा है–सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्र ये तीन आत्माके परिणाम है तिनिकै शुद्धताका कारण है चारित्र अंगीकार भये सम्यग्दर्शनादि परिणाम निर्दोष होय हैं। वहुरि कैसा है चारित्र–मोक्षके आराधनका

कारण है ऐसा चारित्र है ताका पाहुड कहिये प्राभृत ग्रंथ कहूंगा, ऐसैं आचार्य मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करी है॥ १-२॥

आगें सम्यग्दर्शनादि तीन भावनिका स्वरूप कहैं हैं;—

गाथा—जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं भणियं।
णाणस्स पिच्छियस्स य समवण्णा होइ चारित्तं॥३॥

संस्कृत—यज्जानाति तत् ज्ञानं यत् पश्यति तच्च दर्शनं भणितम्।
ज्ञानस्य दर्शनस्य च समापन्नात् भवति चारित्रं॥३॥

अर्थ—जो जानैं सो ज्ञान है बहुरि जो देखै सो दर्शन है ऐसैं कह्या है बहुरि ज्ञान अर दर्शनका समायोगतैं चारित्र होय है॥

भावार्थ—जानैं सो तौ ज्ञान अर देखै श्रद्धान होय सो दर्शन अर दोऊ एकरूप होय थिर होनां चारित्र है॥ ३॥

आगैं कहै है—जो तीन भाव जीवके हैं तिनिकी शुद्धताकै अर्थि चारित्र दोय प्रकार कह्या है;—

गाथा—एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स अक्खयामेया।
तिण्हं पि सोहणत्थे जिणभणियं दुविह चारित्तं॥४॥

संस्कृत—एते त्रयोऽपि भावाः भवंति जीवस्य अक्षयाः अमेयाः।
त्रयणामपि शोधनार्थं जिनभणितं द्विविधं चारित्रम्॥

अर्थ—ये ज्ञान आदिक तीन भाव कहे ते अक्षय अर अनंत जीवके भाव हैं इनिके सोधनेंकै अर्थि जिनदेव दोय प्रकार चारित्र कह्या है॥

भावार्थ—जाननां देखनां आचरण करनां ये तीन भाव जीवके अक्षयानंत हैं, अक्षय कहिये जाका नाश नहीं, अमेय कहिये अनंत, जाका

(१) मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें यह गाथा ४ के नंबरकी है।

पार नांही, सर्व लोकालोककूं जाननेंवाला ज्ञान है ऐसाही दर्शन है ऐसाही चरित्र है तथापि घातिकर्मके निमित्ततैं अशुद्ध हैं ज्ञान दर्शन चारित्ररूप हैं तातैं श्रीजिनदेव तिनिके शुद्ध करनेंकूं इनिका चारित्र आचरण करनां दोय प्रकार कह्या है ॥ ४ ॥

आगैं दोय प्रकार कह्या सो कहैं हैं;—

गाथा—जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ।
विदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि ॥ ५ ॥

संस्कृत—जिनज्ञानदृष्टिशुद्धं प्रथमं सम्यत्त्वचरणचारित्रम् ।
द्वितीयं संयमचरणं जिनज्ञानसंदेशितं तदपि ॥५॥

अर्थ—प्रथम तौ सम्यक्त्वका आचरणस्वरूप चारित्र है सो कैसा है– जिनदेवका ज्ञान दर्शन श्रद्धान ताकरि किया हुवा शुद्ध है, बहुरि दूसरा संयमका आचरणस्वरूप चारित्र है सोभी जिनदेवका ‌ ान करि दिखाया हुवा शुद्ध है ॥

भावार्थ—चारित्र दोय प्रकार कह्या तहां प्रथम तौ सम्यक्त्वका आचरण कह्या सो जो सर्वज्ञका आगममैं तत्वार्थका स्वरूप कह्या ताकूं यथार्थ जानि श्रद्धान करनां अर ताके शंकादि अतीचार मल दोप कहे तिनिका परिहार करि शुद्ध करनां अर ताके निःशंकितादि गुणनिका प्रगट होनां सो सम्यक्त्वचरणचारित्र है, बहुरि जो महाव्रत आदि अंगीकार करि सर्वज्ञके आगममैं कह्या तैसा संयमका आचरण करनां अर ताके अतीचार आदि दोषनिका दूरि करनां सो संयमचरण चारित्र है, ऐसैं संक्षेपकरि स्वरूप कह्या ॥ ५ ॥

आगैं सम्यक्त्वचरण चारित्रके मल दोपनिका परिहार करि आचरण करनां ऐसैं कहै है;—

गाथा—एवं चिय णाऊण य सव्वे मिच्छत्तदोस संकाइ।
परिहरि सम्मत्तमला जिणमणिया तिविहजोएण॥ ६॥

संस्कृत–एवं चैव ज्ञात्वा च सर्वान् मिथ्यात्वदोषान् शंकादीन्।
परिहर सम्यक्त्वमलान् जिनभणितान् त्रिविधयोगेन॥६

अर्थ—ऐसें पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्रकूं जानि अर मिथ्यात्व कर्मके उदयतैं भये जे शंकादिक दोष ते सम्यक्त्वके अशुद्ध करनेवाले मल हैं ते जिनदेवनैं कहे हैं तिनिकूं मन वचन कायकरि भये जे तीन प्रकार योग तिनिकरि छोडनें॥

भावार्थ—सम्यक्त्वका चरण चरित्र शंकादिदोष सम्यक्त्वके मल हैं तिनिकूं त्यागे शुद्ध होय हैं यातैं तिनिका त्याग करनेका उपदेश जिनदेवनैं किया है। ते दोष कहा? सो कहिये है;—जो जिनवचन विषैं वस्तुका स्वरूप कह्या ताविषैं संशय करनां सौ तौ शंका है, याके होतैं-सप्तभयके निमित्तैं स्वरूपतैं चिगि जाय सो भी शंका है। वहुरि भोगनिका अभिलाष सो कांक्षा है याके होतैं भोगनिकै अर्थि स्वरूपतैं भ्रष्ट होय है। वहुरि वस्तुका स्वरूप कहिये धर्मविषैं ग्लानि करनां जुगुप्सा है याके होतैं धर्मात्मा पुरुषनिकै पूर्व कर्मके उदयतैं बाह्य मलिनता देखि मततैं चिगि जानां होय है। वहुरि देव गुरु धर्म तथा लौकिक कार्यनिविषैं मूढता कहिये यथार्थ स्वरूप न जाननां सो मूढ दृष्टि है याके होतैं अन्य लौकिक मानें जो सरागीदेव हिंसाधर्म सग्रंथगुरु तथा लोकनिनैं विना विचारे मानें जे अनेक क्रियाविशेष तिनितैं विभवादिककी प्राप्तिकै अर्थि प्रवृत्ति करनेंतैं यथार्थ मततैं भ्रष्ट होय है वहुरि धर्मात्मा पुरुषनिविषैं कर्मके उदयतैं किछु दोष उपज्या देखि तिनिकी अवज्ञा करनीं सो अनुपगूहन है, याके होतैं धर्मतैं

छूटि जाना होय है बहुरि धर्मात्मा पुरुषनिकूं कर्मके उदयके वशतैं धर्मतैं चिगते देखि तिनिकी थिरता न करनीं सो अस्थितीकरण है याके होतैं जानिये याकै धर्मतैं अनुराग नांहीं अर अनुराग न होनां सो सम्यक्त्व मैं दोष है। बहुरि धर्मात्मा पुरुषनितैं विशेष प्रीति न करनां सो अवात्सल्य है याके होतैं सम्यक्त्वका अभाव प्रगट सूचै है। बहुरि धर्मका माहात्म्य शक्तिसारू प्रगट न करनां सो अप्रभावना है याकै होतैं जानिये याके धर्मका महात्म्यकी श्रद्धा प्रगट न भई। ऐसैं ये आठ दोष सम्यक्त्वके मिथ्यात्वके उदयतैं होंय है, जहां ये तीव्र होंय तहां तौ मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय जनावै है सम्यक्त्वका अभाव जनावै है, अर जहां किछु मंद अतीचार रूप होय तौ सम्यक्त्व प्रकृति नामा मिथ्यात्वकी प्रकृतिके उदयतैं होय ते अतीचार कहिये तहां क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका सद्भाव होय है; परमार्थ विचारिये तब अतीचार त्यागनेंही योग्य हैं। बहुरि इनिके होतैं अन्यभी मल प्रगट होय हैं तहां तीन तौ मूढता; देवमूढता, पाखंडमूढता, लोकमूढता। तहां देवमूढता तौ ऐसैं जहां किछु वरकी वांछाकरि सरागीदेवनिकी उपासना करनां तिनिकी पाषाणादिविषैं स्थापनाकरि पूजनां। बहुरि पाखंडमूढता ऐसैं—जहां ग्रंथ आरंभ हिंसादिक सहित पाखंडीभेषी तिनिका सत्कार पुरस्कारादिक करनां। बहुरि लोकमूढता ऐसैं जहां अन्यमतीनिके उपदेशतैं तथा स्वयमेव विना विचारे किछु प्रवृत्ति करनें लगि जाय जैसैं सूर्यकूं अर्घ देनां, ग्रहणविषैं स्नान करनां, संक्रांतिविषैं दान करनां, अग्निका सत्कार करनां, देहली घर कूवा पूजनां, गऊके पूंछकूं नमस्कार करनां, गऊका मूत्रकूं पीवनां रत्न घोडा आदि वाहन पृथ्वी वृक्ष शस्त्र पर्वत आदिकका सेवन पूजन करनां, नदी समुद्र आदिकूं तीर्थ मानि तिनिमैं स्नान करनां, पर्वततैं पडनां अग्निमैं प्रवेश करनां इत्यादि जाननां। बहुरि छह अनायतन हैं—कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र

अर इनके भक्त ऐसैं छह; इनिकूं धर्मके ठिकानें जानि इनिकी मन करि प्रशंसा करनां वचनकरि सराहना करना काय करि वंदनां करनां, ये धर्मके ठिकानें नांही तातैं इनिकूं अनायतन कहे। बहुरि जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या ऐश्वर्य इनिका गर्व करनां ऐसैं आठ मद हैं; तहां जाति तौ मातापक्ष है, अर लाभ धनादिक कर्मके उदयके आश्रय हैं, कुल पितापक्ष है, रूप कर्मउदयाश्रित है, तप अपना स्वरूप साधनेकूं है बल कर्म उदयाश्रित है; विद्याकर्मके क्षयोपशमाश्रित है ऐश्वर्य कर्मोदयाश्रित है; इनिका गर्व कहा! परद्रव्यके निमित्ततैं होय ताका गर्व करनां सो सम्यक्त्वका अभाव जनावै है अथवा मलिनता करै है। ऐसैं ये पचीस सम्यक्त्वके मल दोष हैं तिनिकूं त्यागे सम्यक्त्व शुद्ध होय है, सो ही सम्यक्त्वाचरणचारित्रका अंग है॥ ६॥

आगैं शंकादि दोष दूरि भये आठ अंग सम्यत्क्वके प्रगट होय हैं तिनिकूं कहै है;—

गाथा—णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावण य ते अठ्ठ ॥७॥

संस्कृत—निःशंकितं निःकांक्षितं निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टी च।
उपगूहनं स्थितीकरणं वात्सल्यं प्रभावना च ते अष्टौ ॥ ७॥

अर्थ—निःशंकित निःकांक्षित निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टी उपगूहन स्थितीकरण वात्सल्य प्रभावना ऐसैं आठ अंग हैं॥

भावार्थ—ये आठ अंग पहिलैं कहे जे शंकादि दोष तिनिके अभावतैं प्रगट होय हैं, तिनिके उदाहरण पुराणनिमैं हैं तिनिकी कथातैं जाननें। निःशंकितका तौ अंजन चौरका उदाहरण है जानै जिनवचनविषैं शंका

न करी निर्भय होय छींकेकी लड़ काटि मंत्र सिद्ध किया। बहुरि निःकांक्षितका सीता अनंतमती सुतारा आदिका उदाहरण है जिनिनैं भोगनिकै अर्थि धर्म न छोड्या। बहुरि निर्विचिकित्साका उद्दायनराजाका उदाहरण है जानै मुनिका शरीर अपवित्र देखि ग्लानि न करी। बहुरि अमूढदृष्टीका रेवतीराणीका उदाहरण है जानैं विद्याधर अनेक महिमा दिखाई तौऊ श्रद्धानतैं शिथिल न भई। बहुरि उपगूहनका जिनेंद्रभक्तसेठका उदाहरण है जानैं चोर ब्रह्मचर्यभेषकरि छत्र चोऱ्या ताकूं ब्रह्मचर्यपदकी निंदा होती जानि ताका दोष छिपाया। बहुरि स्थितीकरणका वारिषेणका उदाहरण है जानैं पुष्पदंत ब्राह्मणकूं मुनिपदतैं शिथिल भया जानि दृढ किया। बहुरि वात्सल्यका विष्णुकुमारका उदाहरण है जानैं अकंपन आदि मुनिनिका उपसर्ग निवारण किया। बहुरि प्रभावना विषैं वज्रकुमार मुनिका उदाहरण है जानैं विद्याधरका सहाय पाय धर्म की प्रभावना करी। ऐसैं आठ अंग प्रगट भये सम्यक्त्वचरण चारित्र संभवै है जैसैं शरीरमैं हाथ पग होंय तैसैं सम्यक्त्वके अंग हैं, ये न होंय तौ विकलांग होय ॥ ७ ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं पहला सम्यक्त्वाचरण चारित्र होय है,—

गाथा—तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाय।
जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ॥ ८ ॥

संस्कृत—तच्चैव गुणविशुद्धं जिनसम्यक्त्वं सुमोक्षस्थानाय।
तत् चरति ज्ञानयुक्तं प्रथमं सम्यक्त्वचरणचारित्रम्॥८॥

अर्थ—तत् कहिये सो जिनसम्यक्त्व कहिये अरहंत जिनदेवकी श्रद्धा निःशंकित आदि गुणनिकरि विशुद्ध होय ताहि यथार्थज्ञान करि सहित आचरण करै सो प्रथम सम्यक्त्वचरणचारित्र है सो मोक्षस्थानकै अर्थि होय है ॥

भावार्थ—सर्वज्ञके भाषे तत्वार्थकी श्रद्धा निःशंकित गुणनिकरि सहित पचीस मल दोषनिकरि रहित ज्ञानवान आचरण करै ताकूं सम्यक्त्व-चरण चारित्र कहिये सो यह मोक्षकी प्राप्तिकै अर्थि होय है जातैं मोक्ष-मार्गमें पहलैं सम्यग्दर्शन कह्या है तातैं मोक्षमार्गमें प्रधान यह ही है ॥५॥

आगैं कहै हैं जो ऐसा सम्यत्क्वचरणचारित्रकूं अंगीकार करि जो संयमचरण चारित्रकूं अंगीकार करै तौ शीघ्रही निर्वाणकूं पावै;—

गाथा—सम्मत्तचरणसुद्धा संजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा।
णाणी अमूढदिट्ठी अचिरे पावंति णिव्वाणं ॥९॥

संस्कृत—सम्यक्त्वचरणशुद्धाः संयमचरणस्य यदि वा सुप्रसिद्धाः।
ज्ञानिनः अमुढदृष्टयः अचिरं प्राप्नुवंति निर्वाणम् ॥९॥

अर्थ—जे ज्ञानी भये संते अमूढदृष्टी होय करि अर सम्यत्क्व चरण चारित्रकरि शुद्ध होय हैं अर जो संयमचरण चारित्रकरि सम्यक् प्रकार शुद्ध होय तौ शीघ्रही निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं॥

भावार्थ—जो पदार्थनिका यथार्थज्ञानकरि मूढदृष्टिरहित विशुद्ध सम्यग्दृष्टी होयकरि सम्यक्चारित्रस्वरूप संयम आचरै तौ शीघ्रही मोक्षकूं पावै संयम अंगीकार भये स्वरूपका साधनरूप एकाग्र धर्मध्यानके बलतैं सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानरूप होय श्रेणी चढि अंतर्मुहूर्त्तमें केवलज्ञान उपजाय अघातिकर्मका नाशकरि मोक्ष पावै है, सो यह सम्यत्क्वचरणचारित्रकाही माहात्म्य है ॥ ९ ॥

आगैं कहै है—जो, सम्यक्त्वके आचरणकरि भ्रष्टहैं ते संयमका आचरण करैं हैं तौऊ मोक्ष नांहीं पावै हैं;—

गाथा—सम्मत्तचरणभट्टा[1] संजमचरणं चरंति जे वि णरा ।
अण्णाणणाणमूढा तह वि ण पावंति णिव्वाणं ॥१०॥

संस्कृत—सम्यक्त्वचरणभ्रष्टाः संयमचरणं चरन्ति येऽपि नराः ।
अज्ञानज्ञानमूढाः तथाऽपि न प्राप्नुवंति निर्वाणम् ॥१०

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्वचरण चारित्रकरि भ्रष्ट हैं अर संयम आचरण करैं हैं तौऊ ते अज्ञानकरि मूढदृष्टी भये संते निर्वाणकूं नांहीं पावैं हैं ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वचरणचारित्रविना संयमचरणचारित्र निर्वाणका कारण नांही है जातैं सम्यग्ज्ञान विना तौ ज्ञान मिथ्या कहावै है सो ऐसैं सम्यक्त्वविना चारित्रकै मिथ्यापणां आवै है ॥ १० ॥

आगैं प्रश्न उपजैहै जो ऐसा सम्यक्त्वचरणचारित्रके चिह्न कहा है तिनिकरि तिसकूं जानिये ताका उत्तररूप गाथामैं सम्यक्त्वके चिह्न कहैं हैं;—

गाथा—वच्छल्लं विणएण य अणुकंपाए सुदाणदच्छाए ।
मग्गगुणसंसणाए अवगूहणरक्खणाए य ॥ ११ ॥
एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं ।
जीवो आराहंतो जिणसम्मत्तं अमोहेण ॥ १२ ॥

संस्कृत—वात्सल्यं विनयेन च अनुकंपया सुदानदक्षया ।
मार्गगुणशंसनया उपगूहनं रक्षणेन च ॥ ११ ॥
एतैः लक्षणैः च लक्ष्यते आर्जवैः भावैः ।
जीवः आराधयन् जिनसम्यक्त्वं अमोहेन ॥ १२ ॥

१—मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें यह गाथा ही नहीं है, वचनिकाकी तीनों प्रतियोंमें है ।

अर्थ—जिनदेवकी श्रद्धा सम्यक्त्व ताकूं मोह कहिये मिथ्यात्व ताकरि रहित आराधता जीव है सो एते लक्षण कहिये चिह्न तिनिकरि लखिये है जानिये है—प्रथम तौ धर्मात्मा पुरुषनिकै जाकै वात्सल्यभाव होय जैसैं तत्कालकी प्रसूतिवान गऊकै वच्छासूं प्रीति होय तैसी धर्मात्मासूं प्रीति होय, एक तौ ये चिह्न है। बहुरि सम्यत्वादि गुणनिकरि अधिक होय ताका विनय सत्कारादिक जाकै अधिक होय; ऐसा विनय, एक ये चिह्न है। बहुरि दुखी प्राणी देखि करुणा भावस्वरूप अनुकंपा जाकै होय, एक ये चिह्न है; बहुरि अनुकंपा कैसी होय भलै प्रकार दानकरि योग्य होय। बहुरि निर्ग्रंथस्वरूप मोक्षमार्गकी प्रशंसाकरि सहित होय, एक ये चिह्न है; जो मार्गकी प्रशंसा न करता होय तौ जानिये याकै मार्गकी दृढ श्रद्धा नांही। बहुरि धर्मात्मा पुरुषनिकै कर्मके उदय तैं दोष उपजै ताकूं विख्यात न करै ऐसा उपगूहन भाव होय, एक ये चिह्न है। बहुरि धर्मात्माकूं मार्ग तैं चिगता जानि तिसकी थिरता करै ऐसा रक्षण नाम चिह्न है याकूं स्थितीकरणभी कहिये। बहुरि इनि सर्व चिह्ननिका, सत्यार्थ करनेवाला एक आर्जवभाव है जातैं निष्कपट परिणामतैं ये सर्व चिह्न प्रगट होय है सत्यार्थ होय है, एते लक्षणनिकरि सम्यग्दृष्टीकूं जानिये है॥

भावार्थ—सम्यत्वभाव मिथ्यात्वकर्मके अभावतैं जीवनिका निजभाव प्रगट होय है सो वह भाव तौ सूक्ष्म है छद्मस्थज्ञान गोचर नांही, अर ताके बाह्य चिह्न सम्यग्दृष्टी कै प्रगट होय है तिनिकरि सम्यत्व भया जानिये है। ते वात्सल्य आदि भाव कहे ते आपकै तौ आपके अनुभव गोचर होय है अर अन्यके ताकी वचन कायकी क्रिया तैं जानिये है, तिनिकी परीक्षा जैसैं आपके क्रियाविशेष तैं होय है तैसैं अन्यकीभी क्रियाविशेष तैं परीक्षा होय है, ऐसा व्यवहार है; जो ऐसा न

होय तौ सम्यत्व व्यवहार मार्गका लोप होय तातैं व्यवहारी प्राणीकूं व्यवहारहीका आश्रय कह्या है परमार्थ सर्वज्ञ जानै है ॥ ११-१२ ॥

आगैं कहै है जो ऐसे कारणनिकरि सहित होय तौ सम्यक्त्व छोडै है,

गाथा—उच्छाहभावणासं पसंससेवा कुदंसणे सद्धा।
आण्णाणमोहमग्गे कुव्वंतो जहदि जिणसम्मं ॥ १३ ॥

संस्कृत—उत्साहभावनाशं प्रशंसासेवा कुदर्शने श्रद्धा।
अज्ञानमोहमार्गे कुर्वन् जहाति जिनसम्यक्त्वम् ॥१३॥

अर्थ—कुदर्शन कहिये नैयायिक वैशेषिक सांख्यमत मीमांसकमत वेदान्तमत बौद्धमत चार्वाकमत शून्यवादके मत इनिके भेष तथा तिनिके भाषे पदार्थ बहुरि श्वेतांबरादिक जैनाभास इनिकै विषैं श्रद्धा तथा उत्साहभावना तथा प्रशंसा तथा इनिकी उपासना सेवा करता पुरुष है सो जिनमतकी श्रद्धारूप सम्यक्त्वकूं छोडै है, कैसा है कुदर्शन अज्ञान अर मिथ्यात्वका मार्ग है ॥

भावार्थ—अनादिकालतैं मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं यह जीव संसारमैं भ्रमै है सो काई भाग्यके उदयतैं जिनमार्गकी श्रद्धा भई होय अर मिथ्यामतके प्रसंगकरि मिथ्यामतकै विषैं किछु कारणतैं उत्साह भावना प्रशंसा सेवा श्रद्धा उपजै तो सम्यक्त्वका अभाव होय जाय जातैं जिनमत सिवाय अन्यमत हैं तिनिमैं छद्मस्थ अज्ञानीनि करि प्ररूप्या मिथ्या पदार्थ तथा मिथ्याप्रवृत्तिरूप मार्ग है ताकी श्रद्धा आवै तब जिनमतकी श्रद्धा जाती रहै तातैं मिथ्यादृष्टीनिका संसर्गही न करनां, ऐसा भावार्थ जाननां ॥ १३ ॥

आगैं कहै है जो ये ही उत्साह भावनादिक कहे ते सुदर्शन विषैं होय तो जिनमतकी श्रद्धारूप सम्यक्त्वकूं न छोडै है;—

गाथा—उच्छाहभावणासं पसंससेवा सुदंसणे सद्धा।
ण जहदि जिणसम्मत्तं कुव्वंतो णाणमग्गेण ॥ १४ ॥

संस्कृत—उत्साहभावनाशं प्रशंसासेवाः सुदर्शने श्रद्धा।
न जहाति जिनसम्यक्त्वं कुर्वन् ज्ञानमार्गेण ॥१४॥

अर्थ—सुदर्शन कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप सम्यक् मार्ग ताविषैं उत्साहभावना कहिये ग्रहण करनेका उत्साह अर वारंवार चिंतवनरूप भाव वहुरि प्रशंसा कहिये मन वचन कायकरि भला जानि स्तुति करनां सेवा कहिये उपासना पूजनादिक करनां बहुरि श्रद्धा करनी ऐसैं ज्ञानमार्गकरि यथार्थ जानि करता पुरुष है सो जिनमतकी श्रद्धारूप सम्यक्त्व है ताहि न छोडै है ॥

भावार्थ—जिनमतविषैं उत्साह भावना प्रशंसा सेवा श्रद्धा जाकै होय सो सम्यक्त्वतैं च्युत न होय है ॥ १४ ॥

आगैं अज्ञान मिथ्यात्व कुचारित्र त्यागका उपदेश करै है;—

गाथा—अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जहि णाणे विसुद्धसम्मत्ते।
अह मोहं सारंभं परिहर धम्मे अहिंसाए ॥ १५ ॥

संस्कृत—अज्ञानं मिथ्यात्वं वर्ज्जय ज्ञाने विशुद्धसम्यक्त्वे।
अथ मोहं सारम्भं परिहर धर्म्मे अहिंसायाम् ॥ १५ ॥

अर्थः—आचार्य कहै हैं जो हे भव्य! तू ज्ञानके होतैं तौ अज्ञानकूं वर्जि त्यागकरि, बहुरि विशुद्ध सम्यक्त्वके होतैं मिथ्यात्वकूं त्यागकरि, बहुरि अहिंसालक्षण धर्मके होतैं आरंभसहित मोहकूं परिहरि ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति भये फेरि मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्रविषैं मति प्रवर्त्तौ, ऐसा उपदेश है ॥ १५ ॥

आगैं फेरि उपदेश करैं हैं;—

गाथा—पव्वज्ज संगचाए पयट्ट सुतवे सुसंजमे भावे।
होइ सुविसुद्धजाणं णिम्मोहे वीयरायत्ते ॥ १६ ॥

संस्कृत—प्रव्रज्यायां संगत्यागे प्रवर्त्तस्व सुतपसि सुसंयमे भावे।
भवति सुविशुद्धध्यानं निर्मोहे वीतरागत्वे ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भव्य! तू संग कहिये परिग्रहका त्याग जामैं होय ऐसी दीक्षा ग्रहण करि बहुरि भलै प्रकार संयमस्वरूपभाव होतैं सम्यक् प्रकार तप विषैं प्रवर्त्तन करि जातैं तेरै मोहरहित वीतरागपणा होतैं निर्मल धर्म शुक्ल ध्यान होय॥

भावार्थ—निर्ग्रंथ होय दीक्षा ले संयमभावकरि भलै प्रकार तपविषैं प्रवर्त्तै तब संसारका मोह दूरि होय वीततरागपणां होय तब निर्मल धर्मध्यान शुक्लध्यान होय है ऐसैं ध्यानतैं केवलज्ञान उपजाय मोक्ष प्राप्त होय है तातैं ऐसा उपदेश है ॥ १६ ॥

आगैं कहै है जो ये जीव अज्ञान अर मिथ्यात्वके दोष करि मिथ्या-मार्गविषैं प्रवर्त्तै है;—

गाथा—मिच्छादंसणमग्गे मलिणे अण्णाणमोहदोसेहिं।
वज्झंति मूढजीवा मिच्छत्ताबुद्धिउदएण ॥ १७ ॥

संस्कृत—मिथ्यादर्शनमार्गे मलिने अज्ञानमोहदोषैः।
वध्यन्ते मूढजीवाः मिथ्यात्वा बुद्ध्युदयेन ॥ १७ ॥

अर्थ—मूढ जीवहैं ते अज्ञान अर मोह कहिये मिथ्यात्व इनिके दोष-निकरि मलिन जो मिथ्यादर्शन कहिये कुमतका मार्ग ताविषैं मिथ्यात्व अर अबुद्धि कहिये अज्ञान तिनिके उदयकरि प्रवर्तै है ॥

भावार्थ—ये मूढजीव मिथ्यात्व अर अज्ञानके उदयकरि मिथ्यामार्गविषैं प्रवर्तें हैं जातैं मिथ्यात्व अज्ञानका नाश करनां यह उपदेशहै॥१७॥

आगैं कहै हैं जो सम्यग्दर्शन ज्ञान श्रद्धानकरि चारित्रके दोष दूरि होयहैं;—

गाथा—संम्मदंसण पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्ञाया।
सम्मेण य सद्दहदि परिहरदि चरित्तजे दोसे॥१८॥

संस्कृत—सम्यग्दर्शनेन पश्यति जानति ज्ञानेन द्रव्यपर्यायान्।
सम्यक्त्वेन च श्रद्धाति च परिहरति चारित्रजान् दोषान्॥ १८॥

अर्थ—यह आत्मा सम्यग्दर्शन करि तौ सत्तामात्र वस्तुकूं देखै है बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि द्रव्य अर पर्यायनिकूं जानैं है बहुरि सम्यक्त्वकरि द्रव्य पर्याय स्वरूप सत्तामयी वस्तुका श्रद्धान करै है, बहुरि ऐसैं देखनां जाननां श्रद्धान होय तब चारित्र कहिये आचरण ताविषैं उपजे जे दोष तिनिकूं छोडै हैं॥

भावार्थ—वस्तुका स्वरूप द्रव्य पर्यायात्मक सत्ता स्वरूप है सो जैसा है तैसा देखै जानैं श्रद्धान करै तब आचरण शुद्ध करै सो सर्वज्ञके आगमतैं वस्तुका निश्चयकरि आचरण करनां। तहां वस्तु है सो द्रव्य पर्याय स्वरूप है। तहां द्रव्यका सत्तालक्षण है तथा गुणपर्यायवानकूं द्रव्य कहिये। बहुरि पर्याय है सो दोय प्रकार है; सहवर्त्ती, अर क्रमवर्त्ती। तहां सहवर्त्तीकूं गुण कहिये है, क्रमवर्त्तीकूं पर्याय कहिये है। तहां द्रव्य सामान्यकरि एक है तौऊ विशेषकरि छह हैं; जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ऐसैं। तहां जीवकै दर्शनमयी चेतना तौ गुण है अर मति आदिक ज्ञान अर क्रोध मान माया लोभ आदि तथा नर नारक

आदि विभाव पर्याय हैं, स्वभावपर्याय अगुरुलघु गुणकै द्वारै हानि वृद्धिका परिणमन है। बहुरि पुद्गल द्रव्यकै स्पर्श रस गंध वर्णरूप मूर्त्तीकपणां तौ गुण है स्पर्श रस गंध वर्णका भेदरूप परिणमन तथा अणुतैं स्कंधरूप होनां तथा शब्दबंध आदिरूप होनां इत्यादि पर्याय हैं। बहुरि धर्म अधर्म द्रव्यकै गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्वपणां तौ गुण है अर इस गुणके जीव पुद्गलके गति स्थितिके भेदनितैं भेद होय ते पर्याय हैं, तथा अगुरुलघु गुणकै द्वारै हानि वृद्धिका परिणमन होय सो स्वभाव पर्याय है। बहुरि आकाशकै अवगाहना गुण है अर जीव पुद्गल आदिके निमित्ततैं प्रदेश भेद कल्पिये ते पर्याय हैं, तथा हानिवृद्धिका परिणमन सो स्वभाव पर्याय है। बहुरि काल द्रव्यकै वर्त्तना तौ गुण है अर जीव पुद्गलके निमित्ततैं समय आदिकल्पना है सो पर्याय है याकूं व्यवहार कालभी कहिये है, बहुरि हानि वृद्धिका परिणमन सो स्वभाव पर्याय है। इत्यादि इनिका स्वरूप जिन आगम तैं जानि देखनां जाननां श्रद्धान करनां, यातैं चारित्र शुद्ध होय है। विना ज्ञान श्रद्धान आचरण शुद्ध नांही होय है, ऐसैं जाननां ॥ १८ ॥

आगैं कहै है जो ये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीन भाव हैं ते मोह-रहित जीवकै होय हैं इनिकूं आचरता शीघ्र मोक्ष पावै है;—

गाथा—एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स मोहरहियस्स।
नियगुणमाराहंतो अचिरेण वि कम्म परिहरइ ॥ १९॥

संस्कृत—एते त्रयो पि भावाः भवंति जीवस्स मोहरहितस्य।
निजगुणमाराधयन् अचिरेण अपि कर्म परिहरति॥ १९॥

अर्थ—ये पूर्वोक्त सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीन भाव हैं ते निश्चय करि मोह कहिये मिथ्यात्व ताकरि रहित होय तिस जीवकै होय हैं तब

यह जीव अपना निजगुण जो शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतना ताकूं आराधता संता थोरेही कालमैं कर्मका नाश करै है ॥

भावार्थ—निजगुणका ध्यानतैं शीघ्रही केवलज्ञान उपजाय मोक्ष पावे हैं ॥ १९ ॥

आगैं इस सम्यक्त्वचरणचारित्रके कथनकुं संकोचै है;—

गाथा—संखिज्जमसंखिज्जगुणं च संसारिमेरुमत्ता णं।
सम्मत्तमणुचरंता करंति दुक्खक्खयं धीरा ॥ २० ॥

संस्कृत—संख्येयामसंख्येयगुणां संसारिमेरुमात्रां णं।
सम्यत्क्वमनुचरंतः कुर्वन्ति दुःखक्षयं धीराः ॥ २० ॥

अर्थ—सम्यत्वकूं आचरण करते धीर पुरुष हैं ते संख्यातगुणी तथा असंख्यातगुणी कर्मनिकी निर्जरा करैं हैं, बहुरि कर्मनिके उदयतैं भया संसारका दुःख ताका नाश करैं हैं, कैसे हैं कर्म; संसारी जीवनिका मेरु कहिये मर्यादा मात्र है, सिद्ध भये पीछैं कर्म नांही है ॥

भावार्थ—इस सम्यत्वके आचरण भये प्रथमकालमैं तौ गुणश्रेणी निर्जरा होय है सो तौ असंख्यातके गुणकाररूप है बहुरि पीछैं जेतैं संयमका आचरण न होय तेतैं गुणश्रेणी निर्जरा न होय तहां संख्यातका गुणकाररूप होय है तातैं संख्यातगुण अर असंख्यातगुण ऐसैं दोऊ वचन कहे, बहुरि कर्म तौ संसार अवस्था है जेतैं हैं तिनिमैं दुःखका कारण मोह कर्म है तिसमैं मिथ्यात्व कर्म प्रधान है सो सम्यक्त्व भये मिथ्यात्वका तौ अभावही भया अर चारित्रमोह दुःखका कारणहै सो

(१) मुद्रित सटीकसंस्कृत प्रतिमें 'संसारिमेरुमता' इसके स्थानमें 'सासारि मेरुमित्ता ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'सर्षपमेरुमात्रां इस प्रकार है।

येहू जेतैं है तेतैं ताकी निर्जरा करै है ऐसैं अनुक्रमतैं दुःख क्षय होय है। संयमाचरण भये सर्व दुःखका क्षय होय हीगा, इहां सम्यक्त्वका माहात्म्य ऐसा है सो सम्यक्त्वाचरण भये संयमाचरण भी शीघ्रही होयहै, यातैं सम्यक्त्वकूं मोक्षमार्गमैं प्रधान जानि याहीका वर्णन पहलैं किया है ॥२०॥

आगैं संयमाचरण चारित्रकूं कहै है;—

गाथा—दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं ।
सायारं सग्गंथे परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं ॥२१॥

संस्कृत—द्विविधं संयमचरणं सागारं तथा भवेत् निरागारं ।
सागारं सग्रन्थे परिग्रहाद्रहिते खलु निरागारम् ॥२१॥

अर्थ—संयमचरण चारित्र है सो दोय प्रकार है सागार तथा निरागार ऐसैं, तहां सागारतौ परिग्रहसहित श्रावककैं होय है बहुरि निरागार परिग्रहतैं रहित मुनिकैं होय हैं यह निश्चय है ॥ २१ ॥

आगैं सागार संयमाचरणकूं कहै है,—

गाथा—दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्ते य ।
बंभारंभपरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य ॥२२॥

संस्कृत—दर्शनं व्रतं सामायिकं प्रोषधं सचित्तं रात्रिभुक्तिश्च ।
ब्रह्म आरंभः परिग्रहः अनुमतिः उद्दिष्ट देशविरतश्च ॥

अर्थ—दर्शन, व्रत, सामायिक; अर प्रोषध आदिका नामका एक देश है अर नाम ऐसैं कहनां प्रोषधउपवास सचित्तत्याग, रात्रिभुक्तित्याग ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग उद्दिष्टत्याग, ऐसैं ग्यारा प्रकार देशविरत है ॥

भावार्थ—ये सागार संयमाचरणके ग्यारह स्थान हैं इनिकूं प्रतिमा भी कहिये ॥ २२ ॥

आगैं इनि स्थाननिविषैं संयमका आचरण कौन प्रकार है सो कहै है।

गाथा—पंचेव णुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं ॥ २३ ॥

संस्कृत—पंचैव अणुव्रतानि गुणव्रतानि भवंति तथा त्रीणि।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि संयमचरणं च सागारम् ॥२३॥

अर्थ—अणुव्रत पांच गुणव्रत तीन शिक्षाव्रत च्यार ऐसैं बारह प्रकार करि संयमचरण चारित्र है सो सागार है, ग्रंथसहित श्रावककै होय है तातैं सागार कह्या है।

इहां प्रश्न—जो यह बारह प्रकार तो व्रतके कहे अर पहलैं गाथामैं ग्यारह नाम कहे तिनिमैं प्रथम दर्शन नाम कह्या तामैं ये व्रत कैसैं होय है। ताका समाधान ऐसा जो अणुव्रत ऐसा नाम किंचित् व्रतका है सो पंच अणुव्रतमैं किंचित् इहांभी होय है तातैं दर्शन प्रतिमाका धारकभी अणुव्रती ही है, याका नाम दर्शनही कह्या तहां ऐसा नाम जाननां जो याकै केवल सम्यक्त्वही होय है अर अव्रती है अणुव्रत नांहीं याकै अणुव्रत अतीचारसहित होय है तातैं व्रतीनाम न कह्या दूजी प्रतिमामैं अणुव्रत अतीचाररहित पालै तातैं व्रतनाम कह्या है, इहां सम्यक्त्वकै अतीचार टालै है सम्यक्त्वही प्रधान है तातैं दर्शनप्रतिमा नाम है। अन्य ग्रंथनिमैं याका स्वरूप ऐसैं कह्या है जो आठ मूलगुण पालै सात व्यसन त्यागै सम्यक्त्व अतीचाररहित शुद्ध जाकै होय सो दर्शन प्रतिमाका धारक है तहां पांच उदंबरफल अर मद्य मांस सहत इनि आठनिका त्याग करै सो आठ मूलगुण हैं। अथवा कोई ग्रंथमैं ऐसैं कह्या है जो पांच अणुव्रत पालै अर मद्य मांस मधु इनिका त्याग करै ऐसैं आठ मूलगुण हैं, सो यामैं विरोध नांहीं है विवक्षाका भेद है। पांच उदंबरफल अर तीन मकारका

त्याग कहनेंतैं जिनि वस्तुनिमैं साक्षात् त्रस दीखैं ते सर्वही वस्तु भक्षण नही करै ! देवादिक निमित्त तथा औषधादिकनिमित्त इत्यादि कारणनितैं दीखता त्रस जीवनिका घात न करै, ऐसा आशय है, सो यामैं तौ अहिंसा अणुव्रत आया। अर सात व्यसनके त्यागमैं झूंठका अर चोरीका अर परस्त्रीका त्याग आया अर व्यसनहींके त्यागमैं अन्याय परधन परस्त्रीका ग्रहण नांही, यामैं अतिलोभका त्यागतैं परिग्रहका घटावनां आया, ऐसैं पांच अणुव्रत आवैं हैं। इनिके अतीचार टलै नांही तातैं अणुव्रती नाम न पावै। ऐसैं दर्शन प्रतिमाका धारकभी अणुव्रती है तातैं देशविरत सागारसंयमचरण चारित्रमैं याकूंभी गिण्या है ॥ २३ ॥

आगैं पांच अणुव्रतका स्वरूप कहै हैं;—

गाथा–थूले तसकायवहे थूले मोपे अदत्तथूले य।
परिहारो परमहिला परग्गहारंभ परिमाणं ॥ २४ ॥

संस्कृत–स्थूले त्रसकायवधे स्थूलायां मृषायां अदत्तस्थूले च।
परिहारः परमहिलायां परिग्रहारंभपरिमाणम् ॥२४॥

अर्थ—थूल जो त्रसकायका घात, थूलमृशा कहिये असत्य, थूल अदत्ता कहिये परका न दिया धन, परमहिला कहिये परकी स्त्री इनिका तौ परिहार कहिये त्याग; बहुरि परिग्रह अर आरंभ का परिमाण ऐसैं पांच अणुव्रत हैं ॥

भावार्थ—इहां थूल कहनेमैं ऐसा अर्थ जाननां–जामैं अपनां मरण होय परका मरण होय अपनां घर बिगडै परका घर बिगडै राजका दंडयोग्य होय पंचनिकै दंडयोग्य होय ऐसैं मोटे अन्यायरूप पापकार्य जाननैं,

---

१ मुद्रित सटीकसंस्कृतप्रतिमें 'अदत्तथूले' के स्थानमें 'तितिक्खथूले' ऐसा पाठ है तथा 'परमहिला' इसके स्थानमें 'परमपिम्मे' ऐसा पाठ है।

ऐसे स्थूल पाप राजादिकके भयतैं न करे सो व्रत नाहीं इनिकूं तीव्रकषायके निमित्ततैं तीव्रकर्मबंधके निमित्त जांनि स्वयमेव न करनेंके भावरूप त्याग होय सो व्रत है। तथा याके ग्यारह स्थानक कहे तिनिमैं ऊपरि ऊपरि त्याग वधता जाय है सो याकी उत्कृष्टता ताईं ऐसा है जो जिनि कार्यनिमैं त्रस जीवनिकूं बाधा होय ऐसे सर्वही कार्य छूटि जाय हैं तातैं सामान्य ऐसा नाम कह्या है जो त्रसहिंसाका त्यागी देशव्रती होय है। याका विशेष कथन अन्य ग्रंथनितैं जाननां ॥ २४ ॥

आगैं तीन गुणव्रतानिकूं कहै है;—

गाथा—दिसिविदिसिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं।
भोगोपभागपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥२५॥

संस्कृत—दिग्विदिग्मानं प्रथमं अनर्थदंडस्य वर्जनं द्वितीयम्।
भोगोपभोगपरिमाणं इमान्येव गुणव्रतानि त्रीणि॥२५॥

अर्थ—दिशा विदिशाविषैं गमनका परिमाण सो प्रथम गुणव्रत है बहुरि अनर्थदंडका वर्जनां सो द्वितीय गुणव्रत है बहुरि भोग उपभोगका परिमाण सो तीसरा गुणव्रत है ऐसैं ये तीन गुणव्रत हैं ॥

भावार्थ—इहां गुण शब्द तौ उपकारका वाचक है ये अणुव्रतनिकूं उपकार करैं हैं। बहुरि दिशा विदिशा कहिये पूर्वदिशा आदिकहैं तिनिविषैं गमन करनेंकी मर्याद करै। बहुरि अनर्थदंड कहिये जिनि कार्यनिमैं अपना प्रयोजन न सधै ऐसै जे पापकार्य तिनिकूं न करै। इहां कोई पूछै—प्रयोजन विना तौ कोईभी जीव कार्य न करै है सो किछू प्रयोजन विचार ही करै है अनर्थदंड कहा?। ताका समाधान—सम्यग्दृष्टी श्रावक होय सो प्रयोजन अपने पद योग्य विचारै है, पद सिवाय सो अनर्थ, अर पापी पुरुषनिकै तौ सर्व ही पाप प्रयोजन हैं तिनिकी कहा

कथा। बहुरि भोग कहनेमैं भोजनादिक उपभोग कहनेमैं स्त्री वस्त्र आभूषण वाहनादिकनिका परिमाण करै। ऐसैं जाननां ॥ २५ ॥

आगैं च्यार शिक्षाव्रतनिकूं कहै है;—

गाथा—सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते ॥ २६ ॥

संस्कृत—सामाइकं च प्रथमं द्वितीयं च तथैव प्रोपधः भणितः।
तृतीयं च अतिथिपूजा चतुर्थं सल्लेखना अन्ते ॥२६॥

अर्थ—सामायिक तौ पहला शिक्षाव्रत है तेसैं ही दूजा प्रोषध व्रत है तीजा अथितिका पूजन है चौथा अन्तसमय सल्लेखना व्रत है ॥

भावार्थ—इहां शिक्षा शब्दकरि तौ ऐसा अर्थ सूचै है जो आगामी मुनिव्रत है ताकी शिक्षा इनिमैं है जो मुनि होगा तब ऐसैं रहनां होगा। तहां सामायिक कहने तैं तौ राग द्वेषका त्यागकरि सर्व गृहारंभसंबंधी क्रियातैं निवृत्ति करि एकान्त स्थानक वैठि प्रभात मध्याह्न अपराह्न किछू कालकी मर्यादकरि अपनां स्वरूपका चिंतवन तथा पंचपरमेष्ठीकी भक्तिका पाठ पढ़ना तिनिकी वंदना करनीं इत्यादि विधान करनां सामायिक जाननां। बहुरि तैसैंही प्रोषध कहिये आठैं चौदसि पर्वनिविषैं प्रतिज्ञा लेकरि धर्मकार्यनिमैं प्रवर्तनां सो प्रोषध है। बहुरि अतिथि कहिये मुनि तिनिका पूजन करनां आहारदान करनां सो अतिथिपूजन है। बहुरि अंतसमयविषैं कायका अर कपायका कृश करनां समाधिमरण करनां सो अंतसल्लेखना है; ऐसैं च्यार शिक्षाव्रत हैं ॥

इहां प्रश्न—जो तत्त्वार्थसूत्रमैं तौ तीन गुणव्रतमैं देशव्रत कह्या अर भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रतमैं कह्या अर सल्लेखनां न्यारा कह्या सो कैसैं?

ताका समाधान—जो यह विवक्षाका भेद है इहां देशव्रत दिग्व्रतमैं गर्भित है अर सल्लेखना शिक्षाव्रतमैं कह्याहै, किछू विरोध है नाहीं ॥२६॥

आगैं कहै है संयमचरण चारित्रविषैं ऐसैं तौ श्रावक धर्म कह्या अब यतिधर्मकूं कहै है—

गाथा—एवं सावयधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं।
सुद्धं संजमचरणं जइधम्मं णिकलं वोच्छे॥ २७॥

संस्कृत—एवं श्रावकधर्मं संयमचरणं उपदेशितं सकलम्।
शुद्धं संयमचरणं यतिधर्मं निष्कलं वक्ष्ये॥ २७॥

अर्थ—एवं कहिये या प्रकार श्रावक धर्म स्वरूप संयमचरण तौ कह्या, कैसा है यह—सकल कहिये कलासहित है, एक देशकूं कला कहिये; अब यतिधर्मका धर्मस्वरूप संयमचरण है ताहि कहूंगा ऐसैं आचार्यनैं प्रतिज्ञा करी है, कैसा है यतिधर्म—शुद्ध है निर्दोष है जामैं पापाचरणका लेश नांहीं है, बहुरि कैसा है, निकल कहिये कलातैं निःक्रांत है संपूर्ण है श्रावक धर्मकी ज्यों एकदेश नांही है॥ २७॥

आगैं यति धर्मकी सामग्री कहै है;—

गाथा—पंचेंदियसंवरणं पंच वया पंचविंसकिरियासु।
पंच समिदि तय गुत्ती संयमचरणंणिरायारं॥२८॥

संस्कृत—पंचेंद्रियसंवरणं पंच व्रताः पंचविंशतिक्रियासु।
पंच समितयः तिस्रः गुप्तयः संयमचरणं निरागारम्॥२८

अर्थ—पंच इंद्रियनिका संवर, पांच व्रत ते पच्चीस क्रिया के सद्भाव होतैं होय, बहुरि पांच समिति, तीन गुप्ति ऐसैं निरागार संयमचरण चारित्र होय है॥ २८॥

आगैं पांच इंद्रियके संवरणका स्वरूप कहै है;—

गाथा—अमणुण्णे य मणुण्णे सजीवदव्वे अजीवदव्वे य।
ण करेइ रायदोसे पंचेंदियसंवरो भणिओ॥ २९॥

संस्कृत—अमनोज्ञे च मनोज्ञे सजीवद्रव्ये अजीवद्रव्ये च ।
न करोति रागद्वेषौ पंचेंद्रियसंवरः भणितः ॥ २९ ॥

अर्थ—अमनोज्ञ तथा मनोज्ञ ऐसे जे पदार्थ जिनिकूं लोक अपनें मानैं ऐसे सजीवद्रव्य स्त्रीपुत्र आदिक, अर अजीवद्रव्य धन धान्य आदि सर्व पुद्गलद्रव्य आदि, तिनिविषैं राग द्वेष न करै सो पांच इन्द्रियनिका संवर कह्या है ॥

भावार्थ—इन्द्रियगोचर जे जीवअजीवद्रव्य हैं ते इंद्रियनिके ग्रहण मैं आवे है तिनिमैं यह प्राणी काहूकूं इष्ट मानि राग करै है काहूकूं अनिष्ट मानि द्वेष करै है ऐसैं राग द्वेष मुनि नांहीं करै है ताकै संयमचरण चारित्र होय है ॥ २९ ॥

आगैं पांच व्रतनिका स्वरूप कहै है;—

गाथा—हिंसाविरइ अहिंसा असच्चविरई अदत्तविरई य ।
तुरियं अबंभविरई पंचम संगम्मि विरई य ॥ ३० ॥

संस्कृत—हिंसाविरतिरहिंसा असत्यविरतिः अदत्तविरतिश्च ।
तुर्य अब्रह्मविरतिः पंचमं संगे विरतिः च ॥ ३० ॥

अर्थ—प्रथम तौ हिंसातैं विरति सो अहिंसा है, बहुरि दूजा असत्य-विरति है; बहुरि तीजा अदत्तविरति है, बहुरि चौथा अब्रह्मविरति है पांचमां परिग्रहविरति है ॥

भावार्थ इनि पांच पापनिका सर्वथा त्याग जिनमैं होय ते पांच महाव्रत हैं ॥ ३० ॥

आगैं इनिकूं महाव्रत ऐसा नाम काहेतैं है सो कहै है;—

गाथा—साहंति जं महल्ला आयरिमं जं महल्लपुव्वेहिं ।
जं च महल्लाणि तदो महव्वया इत्तहे याइं ॥ ३१ ॥

संस्कृत—साधयंति यन्महांतः आचरितं यत् महत्पूर्वैः।
यच्च महन्ति ततः महाव्रतानि एतस्माद्धेतोः तानि ३१

अर्थ—महल्ला कहिये महंत पुरुष जिनिकूं साधैं आचरैं बहुरि पहलैं भी जिनिकूं महंत पुरुषनि आचरे बहुरि ये व्रत आपही महान हैं जातैं जिनिमैं पापका लेश नांहीं ऐसैं ये पांच महाव्रत हैं॥

भावार्थ—जिनिकूं बड़े पुरुष आचरण करैं अर आप निर्दोष होय ते ही बड़े कहावैं, ऐसैं इनि पांच व्रतनिकूं महाव्रत संज्ञा है॥ ३१॥

आगैं इनि पांच व्रतनिकी पच्चीस भावना है तिनिकूं कहै है तिनिमैं प्रथमही अहिंसाव्रतकी पांच भावना कहिये हैः—

गाथा—वयगुत्ती मणगुत्ती इरियासमिदी सुदाणणिक्खेवो।
अवलोयभोयणाए अहिंसए भावणा होंति॥ ३२॥

संस्कृत—वचोगुप्तिः मनोगुप्तिः ईर्यासमितिः सुदाननिक्षेपः
अवलोक्य भोजनेन अहिंसाया भावना भवंति॥३२॥

अर्थ—वचनगुप्ति अर मनोगुप्ति ऐसैं दोय तौ गुप्ति अर ईर्यासमिति बहुरि भलै प्रकार कमंडलु आदिका ग्रहण निक्षेप यह आदाननिक्षेपणा समिति बहुरि नीकैं देखि विधिपूर्वक शुद्ध भोजन करनां यह एषणा समिति ऐसैं ये पांच अहिंसा महाव्रतकी भावना हैं॥

भावार्थ—भावना नाम वार वार तिसहीका अभ्यास करना ताका है सो इहां प्रवृत्ति निवृत्तिमैं हिंसा लागै ताका निरंतर यत्न राखै तब अहिंसाव्रत पलै यातैं इहां योगनिकी निवृत्ति करनी तौ भलैप्रकार गुप्तिरूप करनी अर प्रवृत्ति करनी तौ समिति रूप करनी ऐसैं निरंतर अभ्याසतैं अहिंसा महाव्रत दृढ़ रहै है, ऐसा आशयतैं इनिकूं भावना कही है॥३२॥

आगैं सत्यमहाव्रतकी भावना कहैं है—

गाथा—कोहभयहासलोहामोहाविपरीयभावणा चेव ।
विदियस्स भावणाए ए पंचेव य तहा होंति ॥३३॥

संस्कृत—क्रोधभयहास्यलोभमोहविपरीतभावनाः च एव ।
द्वितीयस्य भावना इमा पंचैव च तथा भवंति ॥३३॥

अर्थ—क्रोध भय हास्य लोभ मोह इनितैं विपरीत कहिये उलटा इनिका अभाव ये द्वितीय व्रत जो सत्यमहाव्रत ताकी भावना हैं ॥

भावार्थ—असत्यवचनकी प्रवृत्ति होय है सो क्रोधतैं तथा भयतैं तथा हास्यतैं तथा लोभतैं तथा परद्रव्यतैं मोहरूप मिथ्यात्वतैं होय है सो इनिका त्याग भये सत्य महाव्रत दृढ़ रहै है ।

बहुरि तत्त्वार्थसूत्रमैं पांचमीं भावना अनुवीचीभाषण कही है सो याका अर्थ यहु जो–जिनसूत्रकै अनुसार वचन बोलै अर इहां मोहका अभाव कह्या सो मिथ्यात्वके निमित्ततैं सूत्रविरुद्ध कहै मिथ्यात्वका अभाव भये सूत्रविरुद्ध न कहै सो ही अनुवीची भाषणकाभी यह ही अर्थ भया, यामैं अर्थ भेद नांही है ॥ ३३ ॥

आगैं अचौर्य महाव्रतकी भावनांकूं कहै है;—

गाथा—सुण्णायारणिवासो विमोचितावास जं परोधं च ।
एसणसुद्धिसउत्तं साहम्मीसंविसंवादो ॥ ३४ ॥

संस्कृत—शून्यागारनिवासः विमोचितावासः यत् परोधं च ।
एषणाशुद्धिसहितं साधर्मिसमविसंवादः ॥ ३४ ॥

अर्थ—शून्यागार कहिये गिरि गुफा तरुकोटरादिविषैं निवास करनां, बहुरि विमोचितावास कहिये जो लोग काहू कारणतैं छोडि दिया ऐसा गृह ग्रामादिक तामैं निवास करनां, बहुरि परोपरोध कहिये परका जहां उपरोध न करिये वस्तिकादिककूं अपनाय परकूं वर्जनां ऐसैं न करनां,

बहुरि एषणाशुद्धि कहिये आहार शुद्ध लेना, बहुरि साधर्मीनितैं विसंवाद न करनां। ये पांच भावना तृतीय महाव्रतकी हैं ॥

भावार्थ—मुनिनिकै वस्तिकामैं वसनां अर आहार लेनां ये दोय प्रवृत्ति अवश्य होय तहां लोकमैं इनिहीके निमित्त अदत्तका आदान होय है, मुनि वसै सो ऐसी जायगा वसै जहां अदत्तका दोष न लागै, बहुरि आहार ऐसा ले जामैं अदत्तका दोष न लागै, तथा दोऊकी प्रवृत्तिमैं साधर्मी आदिकतैं विसंवाद न उपजै। ऐसैं ये पांच भावना कही हैं, इनिके होतैं अचौर्यमहाव्रत दृढ़ रहै है ॥ ३४ ॥

आगैं ब्रह्मचर्यमहाव्रतकी भावना कहै हैं;—

गाथा—महिलालोयणपुव्वरइसरणसंसत्तवसहिविकाहाहिं।
पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि ॥ ३५ ॥

संस्कृत—महिलालोकनपूर्वरतिस्मरणसंसक्तवसतिविकथाभिः।
पौष्टिकरसैः विरतः भावनाः पंचापि तुर्ये ॥ ३५ ॥

अर्थ—स्त्रीनिका आलोकन कहिये रागभावसहित देखनां पूर्वैं किये भोगका स्मरण करनां, स्त्रीनिकारि संसक्त वस्तिकामैं वसनां, स्त्रीनिकी कथा करनां, पुष्टकारी रसका सेवन करनां, इनि पांचनितैं विकार उपजै तातैं इनितैं विरक्त रहनां, ये पांच ब्रह्मचर्यमहाव्रतकी भावना हैं ॥

भावार्थ—कामविकारके निमित्तनितैं ब्रह्मचर्यव्रत भंग होय है सो स्त्रीनिका रागभावतैं देखना इत्यादिक निमित्त कहे तिनिमैं विरक्त रहनां प्रसंग न करनां यातैं ब्रह्मचर्यमहाव्रत दृढ़ रहै है ॥ ३५ ॥

आगैं पांच अपरिग्रहमहाव्रतकी भावना कहैं हैं;—

गाथा—अपरिग्गह समणुण्णेसु सद्दपरिसरसरूवगंधेसु।
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति ॥ ३६ ॥

संस्कृत—अपरिग्रहे समनोज्ञेपु शब्दस्पर्शरसरूपगंधेषु।
रागद्वेषादीनां परिहारो भावनाः भवन्ति ॥ ३६ ॥

अर्थ—शब्द स्पर्श रस रूप गंध ये पांच इंद्रियनिके विषय, ते कैसे समनोज्ञ कहिये मनोज्ञकरि सहित अर अमनोज्ञ कहिये मनोज्ञकरि रहित, ऐसे दोऊनिविषैं रागद्वेष आदिका न करनां ते परिग्रहत्यागव्रतकी ये पांच भावनां है ॥ ३६ ॥

भावार्थ—पांच इंद्रियनिके विषय स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द ये हैं तिनिविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धिरूप राग द्वेष न करै तव अपरिग्रहव्रत दृढ़ रहै जातैं ये पांच भावना अपरिग्रहमहाव्रतकी कही हैं ॥ ३६ ॥

आगैं पांच समितिकूं कहै है;—

गाथा—इरिया भासा एसण जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।
संजमसोहिणिमित्ते खंति जिणा पंच समिदीओ॥३७॥

संस्कृत—ईर्या भाषा एषणा या सा आदानं चैव निक्षेपः।
संयमशोधिनिमित्तं ख्यान्ति जिनाः पंच समितीः॥

अर्थ—ईर्या भाषा एषणा वहुरि आदाननिक्षेपण प्रतिष्ठापनां ऐसैं ये पांच समिति संयमकी शुद्धिताकै अर्थि कारण हैं ते जिनदेवनैं कहे हैं॥

भावार्थ—मुनि पंचमहाव्रतरूप संयमका साधन करै है तिस संयमकी शुद्धिताकैं अर्थि पांच समितिरूप प्रवर्त्तै है याही तैं याका नाम सार्थक है—" 'सं' कहिये सम्यक् प्रकार 'इति' कहिये प्रवृत्ति जामैं होय सो समिति है "। गमन करै तव जूड़ा प्रमाण धरती देखता चालै है, बोलै तव हितमितरूप वचन बोलै है, आहार ले सो छियालीस दोष वत्तीस अंतराय टालि चौदा मल दोष रहित शुद्ध आहार ले हैं, धर्मोपकरणानिकूं उठाय ग्रहण करै सो यत्नपूर्वक ले हैं, तैसैं ही किछू

क्षेपै तब यत्नपूर्वक क्षेपै है; ऐसैं निष्प्रमाद वर्त्तै तब संयम शुद्ध पलै है तातैं पंचसमितिरूप प्रवृत्ति कही है। ऐसैं संयमचरण चारित्रकी प्रवृत्ति कही ॥ ३७ ॥

अब आचार्य निश्चय चारित्रकूं मनमैं धारि ज्ञानका स्वरूप कहै हैं;—

गाथा—भव्वजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं।
णाणं णाणसरूवं अप्पाणं तं वियाणेहि ॥ ३८ ॥

संस्कृत—भव्यजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितं।
ज्ञानं ज्ञानस्वरूपं आत्मानं तं विजानीहि ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिनमार्ग विषैं जिनेश्वर देवनैं भव्यजीवनिके संबोधनके अर्थि जैसा ज्ञान अर ज्ञानका स्वरूप कह्या है तिस ज्ञान स्वरूप आत्मा है ताहि हे भव्यजीव ! तू जानि ॥ ३८ ॥

भावार्थ—ज्ञानकूं ज्ञानका स्वरूपकूं अन्यमती अनेक प्रकार कहैं हैं तैसा ज्ञान अर ऐसा स्वरूप ज्ञानका नांही है, जो सर्वज्ञ वीतराग देव भाषित ज्ञान अर ज्ञानका स्वरूप है सो निर्बाध सत्यार्थ है अर ज्ञान है सो ही आत्मा है तथा आत्माका स्वरूप है तिसकूं जानि अर तिसमैं थिरता भाव करै परद्रव्यनितैं राग द्वेष न करै सो ही निश्चय चारित्र है, सो पूर्वोक्त महाव्रतादिकी प्रवृत्तिकरि इस ज्ञान स्वरूप आत्मा विषैं लीन होना ऐसा उपदेश है ॥ ३८ ॥

आगैं कहै है जो ऐसा ज्ञानकरि ऐसैं जानैं सो सम्यग्ज्ञानी है;—

गाथा—जीवाजीवविभत्ती जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी।
रायादिदोसरहिओ जिणसासण मोक्खमग्गुत्ति ॥३९॥

संस्कृत—जीवाजीवविभक्तिं यः जानाति स भवेत् सज्ज्ञानः।
रागादिदोषरहितः जिनशासने मोक्षमार्ग इति ॥३९॥

अर्थ—जो पुरुष जीव अर अजीव इनिका भेद जानैं सो सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि रागादि दोष निकरि रहित होय ऐसा जिनशासन विषैं मोक्ष मार्ग है ॥

भावार्थ—जो जीव अजीव पदार्थका स्वरूप भेदरूप जानि आप परका भेद जानैं सो सम्यग्ज्ञानी होय अर परद्रव्यनितैं रागद्वेष छोडनेंतैं ज्ञानमैं थिरता भये निश्चय सम्यक्चारित्र होय सो ही जिनमतमैं मोक्षमार्गका स्वरूप कह्या है, अन्यमतीनिनैं अनेक प्रकार कल्पना करि कह्या है सो मोक्षमार्ग नांही है ॥

आगैं ऐसा मोक्षमार्गकूं जानि श्रद्धासहित यामैं प्रवर्त्तैं है सो शीघ्र ही मोक्ष पावै है ऐसैं कहै है;—

गाथा—दंसणणाणचरित्तं तिण्णि वि जाणेह परमसद्धाए।
जं जाणिऊण जोई अइरेण लहंति णिव्वाणं ॥ ४० ॥

संस्कृत—दर्शनज्ञानचरित्रं त्रीण्यपि जानीहि परमश्रद्धया।
यत् ज्ञात्वा योगिनः अचिरेण लभंते निर्वाणम् ४०

अर्थ—हे भव्य ! तू दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीननिकूं परमश्रद्धाकरि जानि जिसकूं जानिकरि जोगी मुनि हैं सो थोरे ही कालमैं निर्वाणकूं पावैं हैं ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मक मोक्षमार्ग है ताके श्रद्धापूर्वक जाननेंका उपदेश है जातैं याकूं जानें मुनिनिकै मोक्षकी प्राप्ति होय है ॥ ४० ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं निश्चयचारित्ररूप ज्ञानका स्वरूप कह्या इसकूं जो पावै है सो शिवरूप मंदिरके वसनेवाले होय है;—

गाथा—पाऊण णाणसलिलं णिम्मलसुविसुद्धभाणसंजुत्ता।
हुंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ॥ ४१ ॥

संस्कृत—प्राप्य ज्ञानसलिलं निर्मलसुविशुद्धभावसंयुक्ताः।
भवंति शिवालयवासिनः त्रिभुवनचूडामणयः सिद्धाः॥

अर्थ—जे पुरुष इस जिनभाषित ज्ञानरूप जलकूं पाय करि अपनां निर्मल भलै प्रकार विशुद्धभावकरि संयुक्त होय हैं ते पुरुष तीन भुवनके चूडामणि अर शिव कहिये मुक्ति सोही भया आलय कहिये मंदिर तामें वसनेंवाले ऐसे सिद्ध परमेष्ठी होय हैं॥

भावार्थ—जैसें जलतैं स्नानकरि शुद्ध होय उत्तम पुरुष महलमैं निवास करैं हैं तैसें यह ज्ञान है सो जलवत है अर आत्माकै रागादिक मैल लगनें तें मलिनता होय है सो इस ज्ञानरूप जलतैं रागादिक मल धोय जे अपनें आत्माकूं शुद्ध करैं हैं ते मुक्तिरूप महलमैं वासि आनंद भोगवैं हैं, तिनिकूं तीन भुवनके शिरोमणि सिद्ध कहिये हैं॥ ४१॥

आगें कहै हैं जे ज्ञानगुणकरि रहित हैं ते इष्ट वस्तु न पावैं तातैं गुण दोषके जाननेंकूं ज्ञानकूं भलैप्रकार जाननां—

गाथा—णाणगुणेहिं विहीणा ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं।
इय णाउं गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहि॥ ४२॥

संस्कृत—ज्ञानगुणैः विहीना न लभंते ते स्विष्टं लाभं।
इति ज्ञात्वा गुणदोषौ तत् सद्ज्ञानं विजानीहि ४२॥

अर्थ—ज्ञानगुणकरि हीन जे पुरुष हैं ते अपनां इच्छित वस्तुका लाभकूं नांहीं पावैं हैं ऐसा जानिकरि हे भव्य! तू पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान हैं ताहि गुण दोषके जाननेंकूं जानि॥

भावार्थ—ज्ञान विना गुण दोषका ज्ञान नांहीं होय तब अपनें इष्ट-वस्तु तथा अनिष्टकूं नांहीं जानैं तब इष्ट वतुस्का लाभ न होय तातैं सम्यग्ज्ञानही करि गुण दोष जाण्या जाय हैं यातैं गुण दोष जाननेंकूं

सम्यग्ज्ञान विना हेय उपादेय वस्तुनिका जाननां न होय अर हेय उपादेय जानें विना सम्यक्चारित्र नांही होय है तातैं ज्ञानहीकूं चारित्रतैं प्रधानकरि कह्या हैं ॥ ४२ ॥

आगैं कहैं जो सम्यग्ज्ञान सहित चारित्र धारै है सो थोरेही कालमें अनुपम सुखकूं पावैं है;—

गाथा—चारित्तसमारूढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी ।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो ॥४३॥

संस्कृत—चारित्रसमारूढ आत्मनि परं न ईहते ज्ञानी ।
प्राप्नोति अचिरेण सुखं अनुपमं जानीहि निश्चयतः॥४३

अर्थ—जो पुरुष ज्ञानी है अर चारित्रकरि सहित है सो अपनें आत्मा विषैं परद्रव्यकूं नांही इच्छै हैं परद्रव्यविषैं राग द्वेषः मोह नांही करै हैं सो ज्ञानी जाकी उपमा नांही ऐसा अविनाशी मुक्तिका सुख पावै है ऐसैं हे भव्य ? तू निश्चय तैं जानि। इहां ज्ञानी होय हेय उपादेयकूं जानि संयमी होय परद्रव्यकूं आपमें न मिलावै सो परम सुख पावै ऐसा जनाया है ॥ ४३ ॥

आगैं इष्ट चारित्रके कथनकूं संकोचै है

गाथा—एवं संखेवेण य भणियं णाणेण वीयराएण ।
सम्मत्तसंजमासयदुण्हं पि उदेसियं चरणं ॥ ४४ ॥

संस्कृत—एवं संक्षेपेण च भणितं ज्ञानेन वीतरागेण ।
सम्यक्त्वसंयमाश्रयद्वयोरपि उद्देशितं चरणम् ॥४४॥

१–मुद्रित सटीक संस्कृत प्रतिमें 'आत्मनि' इसके स्थानमें आत्मनः ऐसा पाठ है टीकामें अर्थभी आत्मन का ही किया है। देखो, पृष्ठ ५४।

अर्थ—एवं कहिये ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार संक्षेप करि श्रीवीतराग देवनैं ज्ञानकरि कह्या ऐसा सम्यक्त्व अर संयम इनि दोऊनिकैं आश्रय चारित्र सम्यक्त्वचरणस्वरूप अर संयमचरणस्वरूप दोय प्रकार करि उपदेशरूप किया है, आचार्य चारित्र का कथन संक्षेपरूप कहि संकोच्या है ॥ ४४ ॥

आगैं इस चारित्रपाहुडकूं भावनेका उपदेश अर याका फल कहै हैं;—

गाथा—भावेह भावसुद्धं फुडु रइयं चरणपाहुडं चेव ।
लहु चउगइ चइऊणं अइरेणऽपुणब्भवा होइ ॥ ४५ ॥

संस्कृत—भावयत भावशुद्धं स्फुटं रचितं चरणप्राभृतं चैव ।
लघु चतुर्गतीः त्यक्त्वा अचिरेण अपुनर्भवाः भवत ॥

अर्थ—इहां आचार्य कहै है जो हे भव्य जीवहो ! यह चरण कहिये चारित्रका पाहुड हमनैं स्फुट प्रगटकरि रच्या है ताकूं तुम आपना शुद्ध भावकरि भावो अपनें भावनिमैं वारंवार अभ्यास करो यातैं शीघ्रही च्यार गतिनिकूं छोड़ि करि बहुरि अपुनर्भव जो मोक्ष सो तुम्हारै होयगा फेरि संसारमैं जन्म न पावोगे ॥

भावार्थ—इस चारित्रपाहुडका वाचनां पढनां धारनां वारंवार भावनां अभ्यास करनां यह उपदेश है यातैं चारित्रका स्वरूप जानि धारनेंकी रुचि होय अंगीकार करै तब च्यार गतिरूप संसारके दुःखतैं रहित होय निर्वाणकूं प्राप्त होय फेरि संसारमैं जन्म न धारै जातैं जे कल्याणके अर्थी हैं ते ऐसैं करौ ॥

छप्पय ।

चारित दोय प्रकार देव जिनवरनैं भाख्या ।
समकित संयम चरण ज्ञानपूरव तिस राख्या ॥

जे नर सरधावान याहि धारैं विधिसेती।
निश्चय अर व्यवहार रीति आगममैं जेती॥
जब जगधंधा सब मेटिकैं निजस्वरूपमैं थिर रहै।
तब अष्टकर्मकूं नाशिकै अविनाशी शिवकूं लहै॥१॥

ऐसैं सम्यक्त्वचरणचारित्र अर संयमचरण-
चारित्र ऐसैं दोय प्रकार चारित्रका
स्वरूप इस प्राभृतविषैं कह्या।

दोहा।

जिनभाषित चारित्रकूं जे पालैं मुनिराय।
तिनिके चरण नमूं सदा पाऊं तिनि गुणसाज॥ २॥

इति श्रीकुन्दकुन्दचार्यस्वामि विरचित
चारित्रप्राभृतकी—
पं० जयचन्द्रछावड़ाकृत देशभाषामय-
वचनिका समाप्त॥ ३॥

॥ श्रीः ॥

अथ बोधपाहुड ।

—:o:—

(४)

दोहा ।

देव जिनेश्वर सर्वगुरु वंदू मनवच काय ।
जा प्रसाद भवि बोधले पालैं जीवनिकाय ॥ १ ॥

ऐसैं मंगलाचरण करि श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाबंध बोधपाहुडकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है, तहां प्रथमही आचार्य ग्रंथ करनेंकी मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करैहै;—

गाथा—बहुसत्थअत्थजाणे संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे ।
वंदित्ता आयरिए कसायमलवज्जिदे सुद्धे ॥ १ ॥
सयलजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं ।
वुच्छामि समासेण छक्कायसुहंकरं[1] सुणह ॥ २ ॥

संस्कृत—बहुशास्त्रार्थज्ञापकान् संयमसम्यक्त्वशुद्धतपश्चरणान् ।
वन्दित्वा आचार्यान् कषायमलवर्जितान् शुद्धान् ॥१॥
सकलजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितम् ।
वक्ष्यामि समासेन षट्कायसुखंकरं शृणु ॥२॥ युग्मम् ।

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो मैं आचार्यनिकूं वंदिकरि अर छह कायके जीवनिकूं सुखका करनेवाला जिनमार्गविषै जिनदेवनैं जैसैं कह्या तैसैं

1—मुद्रित सटीक संस्कृत प्रतिमें ‘छक्कायहियंकरं’ ऐसा पाठ है ।

समस्त लोकनिका हितका है प्रयोजन जामैं ऐसा ग्रंथ संक्षेपकरि कहूंगा ताकूं हे भव्यजीव ! तुम सुनो, जिन आचार्यनिकूं वंदे ते आचार्य कैसे है—बहुत शास्त्रनिका अर्थके जाननेंवाले हैं बहुरि कैसै हैं—संयम अर सम्यक्त्व इनि करि शुद्ध है तपश्चरण जिनिकै बहुरि कैसैं हैं—कषायरूप मलकरि वर्जित हैं याहीतैं शुद्ध हैं ॥

भावार्थ—इहां आचार्यनिकूं वंदना करी तिनिके विशेषणनितै जानिये है कि गणधरादिकतैं लगाय अपनें गुरुपर्यंत तनिकी वंदेना है, बहुरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करी ताके विशेपणनितैं जानिये है जो बोधपाहुड ग्रंथ करियेगा सो लोकनिकूं धर्ममार्गविषैं सावधानकरि कुमार्ग छुडाय अहिंसाधर्मका उपदेश करियेगा ॥ २ ॥

आगैं इस बोधपाहुडमैं ग्यारह स्थल बांधे है तिनिके नाम कहै हैं,

गाथा—आयदणं चेदिहरं जिणपडिमा दंसणं च जिणबिंबं ।
भणियं सुवीयरायं जिणमुद्दा णाणमादत्थं ॥ ३ ॥
अरहंतेण सुदिट्ठं जं देवं तित्थमिह य अरहंतं ।
पावज्ज गुणविसुद्धा इय णायव्वा जहाकमसो ॥ ४ ॥

संस्कृत—आयतनं चैत्यगृहं जिनप्रतिमा दर्शनं च जिनबिंबम् ।
भणितं सुवीतरागं जिनमुद्रा ज्ञानमात्मार्थम्[1] ॥ ३ ॥
अर्हता सुदृष्टं यः देवः तीर्थमिह च अर्हन् ।
प्रवज्या गुणविशुद्धा इति ज्ञातव्याः यथाक्रमशः ॥४

अर्थ—आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, दर्शन, जिनबिंब कैसा है जिनबिंब भलेप्रकार वीतराग है रागसहित नांहीं जिनमुद्रा, ज्ञान सो कैसा आत्माही है अर्थ कहिये प्रयोजन जामैं, ऐसैं सात, तौ ये निश्चय वीत-

१—संस्कृत सटीक प्रतिमें 'आत्मस्थं' ऐसा पाठ है।

राग देवनें कहे तैसें यथा अनुक्रमतैं जाननें, बहुरि देव तीर्थंकर, अरहंत अर गुणकरि विशुद्ध प्रव्रज्या ये च्यार जो अरहंत भगवान कहे तैसें इस ग्रंथविषैं जानना, ऐसें ये ग्यारह स्थल भये ॥ ३-४ ॥

भावार्थ—इहां ऐसा आशय जाननां जो धर्म मार्गमैं कालदोष तैं अनेक मत भये हैं तथा जैनमतमैं भी भेद भये हैं तिनिमैं आयतन आदिविषैं विपर्यय भया है तिनिका परमार्थ भूत सांचा स्वरूप तौ लोक जानैं नांही अर धर्मके लोभी भये जैसी बाह्य प्रवृत्ति देखैं तिसहीमैं प्रवर्त्तने लगिजांय, तिनिकूं संबोधनेंके अर्थि यहु बोधपाहुड रच्या है तामैं आयतन आदि ग्यारह स्थानकनिका परमार्थभूत सांचा स्वरूप जैसा सर्वज्ञ देवनैं कह्या है तैसा कहियेगा, अनुक्रमतें जैसें नाम कहै तैसैंही अनुक्रमकरि इनिका व्याख्यान करियेगा सो जाननें योग्य है ॥ ३-४ ॥

आगैं प्रथमही आयतन कह्या ताका निरूपण कहै है;—

गाथा—मणवयणकायदव्वा आयत्ता[1] जस्स इंदिया विसया।
आयदणं जिणमग्गे णिद्दिट्ठं संजयं रूवं ॥ ५ ॥

संस्कृत—मनोवचनकायद्रव्याणि आयत्ताः यस्य ऐंद्रियाः विषयाः
आयतनं जिनमार्गे निर्दिष्टं संयतं रूपम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जिनमार्ग विषैं संयमसहित मुनिरूप है सो आयतन कह्या है। कैसा है मुनिरूप—जाकै मन वचन काय द्रव्यरूप हैं ते तथा पांच इन्द्रियनिके स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द ये विषय हैं ते 'आयत्ता' कहिये आधीन हैं वशीभूत हैं, इनिकै संयमी मुनि आधीन नांही है ते मुनिकै वशीभूत हैं, ऐसा संयमी है सो आयतन है ॥ ५ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

१—संस्कृत सटीक प्रतिमें 'आसत्ता' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'आसक्ताः' है।

गाथा—मय राय दोस मोहो कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।
पंचमहव्वयधारा आयदणं महरिसी भणियं ॥ ६ ॥

संस्कृत—मदः रागः द्वेषः मोहः क्रोधः लोभः च यस्य आयत्ताः।
पंचमहाव्रतधराः आयतनं महर्षयो भणिताः ॥ ६ ॥

अर्थ—जा मुनिकै मद राग द्वेष मोह क्रोध लोभ अर चकारतैं माया आदिक ये सर्व 'आयत्ता' कहिये निग्रहकूं प्राप्त भये बहुरि पांच महाव्रत जे अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य अर परिग्रहका त्याग इनिका धारी होय ऐसा महामुनि ऋषीश्वर आयतन कह्या है ॥

भावार्थ—पहली गाथामैं तौ बाह्यका स्वरूप कह्या था इहां बाह्य आभ्यंतर दोऊ प्रकार संयमी होय सो आयतन है ऐसा जाननां ॥६॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—सिद्धं जस्स सदत्थं विसुद्धझाणस्स णाणजुत्तस्स।
सिद्धायदणं सिद्धं मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं ॥७॥

संस्कृत—सिद्धं यस्य सदर्थं विशुद्धध्यानस्य ज्ञानयुक्तस्य।
सिद्धायतनं सिद्धं मुनिवरवृषभस्य मुनितार्थम् ॥७॥

अर्थ—जा मुनिकै सदर्थ कहिये समीचीन अर्थ जो शुद्ध आत्मा सो सिद्ध भया होय सिद्धायतन है, कैसा है मुनि—विशुद्ध है ध्यान जाकै धर्मध्यानकूं साधि शुक्लध्यानकूं प्राप्त भया है, बहुरि कैसा है—ज्ञानकरि सहित है केवलज्ञानकूं प्राप्त भया है, बहुरि कैसा है—घातिकर्मरूप मलतैं रहित है याहीतैं मुनिनिमैं वृषभ कहिये प्रधान है, बहुरि कैसा है—जानैं है समस्त पदार्थ जानैं ऐसे मुनिप्रधानकूं सिद्धायतन कहिये ॥

भावार्थ—ऐसैं तीन गाथामैं आयतनका स्वरूप कह्या; तहां पहली-गाथामैं तौ संयमी सामान्यका बाह्यरूप प्रधानकरि कह्या, दूजीमैं अंतरंग

बाह्य दोजकी शुद्धतारूप ऋद्धिधारी मुनि ऋषीश्वर कह्या, बहुरि इस तीसरी गाथामैं केवलज्ञानी है सो मुनिनिमैं प्रधान है ताकूं सिद्धायतन कह्या है। इहां ऐसा जाननां जो आयतन नाम जामैं वसिये निवास करिये ताका है सो धर्मपद्धतिमैं जो धर्मात्मा पुरुषकै आश्रय करनेयोग्य होय सो धर्मायतन है सो ऐसे मुनिही धर्मके आयतन हैं, अन्य केई भेषधारी पाखंडी विषय कषायनिमैं आसक्त परिग्रहधारी धर्मके आयतन नांही हैं तथा जैनमतमैं भी जे सूत्रविरुद्ध प्रवर्त्तै हैं ते भी आयतन नांही हैं, ते सर्व अनायतन हैं, तथा बौद्धमतमैं पांच इंद्रिय, पांच तिनिके विषय, एक मन, एक धर्मायतन शरीर, ऐसैं बारह आयतन कहे हैं ते भी कल्पित हैं, यातें जैसा आयतन कह्या तैसा ही जाननां, धर्मात्माकूं तिसहीका आश्रय करनां अन्यकी स्तुति प्रशंसा विनयादिक न करनां, यह बोधपाहुड ग्रंथ करनेका आशय है। बहुरि जामैं ऐसे मुनि वसैं ऐसा क्षेत्रकूंभी आयतन कहिये है सो यह व्यवहार है ॥ ७ ॥

आगैं चैत्यगृहका निरूपण करै हैं;—

गाथा—बुद्धं जं बोहंतो अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च।
पंचमहव्वयसुद्धं णाणमयं जाण चेदिहरं ॥ ८ ॥

संस्कृत—बुद्धं यत् बोधयन् आत्मानं चैत्यानि अन्यत् च।
पंचमहाव्रतशुद्धं ज्ञानमयं जानीहि चैत्यगृहम्॥ ८॥

अर्थ—जो मुनि बुद्ध कहिये ज्ञानमयी ऐसा आत्मा ताहि जानता होय बहुरि अन्य जीवनकूं चैत्य कहिये चेतना स्वरूप जानता होय बहुरि आप ज्ञानमयी होय बहुरि पांच महाव्रतनिकरि शुद्ध होय निर्मल होय ता मुनिकूं हे भव्य! तू चैत्यगृह जानि ॥

भावार्थ—जामैं आपा परका जाननेवाला ज्ञानी निःपाप निर्मल ऐसा चैत्य कहिये चेतनास्वरूप आत्मा वसै सो चैत्यगृह है सो ऐसा चैत्यगृह

संयमी मुनि है, अन्य पाषाण आदिका मंदिरकूं चैत्यगृह कहनां व्यवहार है ॥ ५ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—चेइय बंधं मोक्खं दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स ।
चेइहरं जिणमग्गे छक्कायहियंकरं भणियं ॥ ९ ॥

संस्कृत—चैत्यं बंधं मोक्षं दुःखं सुखं च आत्मकं तस्य ।
चैत्यगृहं जिनमार्गे षट्कायहितंकरं भणितम् ॥ ९ ॥

अर्थ—जाकै बंध अर मोक्ष बहुरि सुख अर दुःख ये आत्माके होंय जाकै स्वरूपमैं होंय सो चैत्य कहिये जातैं चेतना स्वरूप होय ताहीकै बंध मोक्ष सुख दुःख संभवै ऐसा जो चैत्यका गृह होय सो चैत्यगृह है सो जिनमार्गविषैं ऐसा चैत्यगृह छह कायका हित करनेवाला होय सो ऐसा मुनि है सो पांच थावर अर त्रसमैं विकलत्रय अर असैनीं पंचेंद्रियतांई केवल रक्षाही करने योग्य है तातैं तिनिकी रक्षा करनेका उपदेश करै है, तथा आप तिनिका घात न करै है तिनिका यही हित है, बहुरि सैनी पंचेंद्रिय जीव हैं तिनिकी रक्षा भी करै है रक्षाका उपदेश भी करै है तथा तिनिकूं संसारतैं निवृत्तिरूप मोक्ष होनेंका उपदेश करै है ऐसे मुनिराजकूं चैत्यगृह कहिये ॥

भावार्थ—लौकिक जन चैत्यगृहका स्वरूप अन्यथा अनेक प्रकार मानैं हैं तिनिकूं सावधान किये हैं—जो जिनसूत्रमैं छह कायका हित करनेंवाला ज्ञानमयी संयमी मुनि है सो चैत्यगृह है, अन्यकूं चैत्यगृह कहनां माननां व्यवहार है । ऐसैं चैत्यगृहका स्वरूप कह्या ॥ ९ ॥

आगैं जिनप्रतिमाका निरूपण करै है;—

गाथा—सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।
णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा ॥ १० ॥

संस्कृत—स्वपरा जंगमदेहा दर्शनज्ञानेन शुद्धचरणानाम्।
निर्ग्रन्थवीतरागा जिनमार्गे ईदृशी प्रतिमा ॥ १० ॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान करि शुद्ध निर्मल है चारित्र जिनकै तिनिकी स्वपरा कहिये अपनी अर परकी चालती देह है सो जिनमार्ग विषैं जंगम प्रतिमा है, अथवा स्वपरा कहिये आत्मातैं पर कहिये भिन्न है ऐसी देह है, सो कैसी है—निर्ग्रंथ स्वरूप है जाकै किछू परिग्रहका लेश नांहीं ऐसी दिगंबरमुद्रा, बहुरि कैसी है—वीतराग स्वरूप है जाकै काहू वस्तुसौं राग द्वेष मोह नांहीं, जिनमार्ग विषैं ऐसी प्रतिमा कही है। दर्शन ज्ञान करि निर्मल चारित्र जिनकै पाइये ऐसे मुनिनिकी गुरु शिष्य अपेक्षा अपनी तथा परकी चालती देह निर्ग्रन्थ वीतरागमुद्रा स्वरूप है सो जिनमार्गविषैं प्रतिमा है अन्य कल्पित है अर धातु पाषाण आदिकरि दिगंबरमुद्रा स्वरूप प्रतिमा कहिये सो व्यवहार है सो भी बाह्य प्रकृति ऐसी ही होय सो व्यवहारमैं मान्य है ॥ १० ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

गाथा—जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
सा होई वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा ॥ ११ ॥

संस्कृत—यः चरति शुद्धचरणं जानाति पश्यति शुद्धसम्यक्त्वम्।
सा भवति वंदनीया निर्ग्रन्था सांयता प्रतिमा ॥ ११ ॥

अर्थ—जो शुद्ध आचरणकूं आचरै बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि यथार्थ वस्तुकूं जानै है बहुरि सम्यग्दर्शनकरि अपनें स्वरूपकूं देखै है ऐसैं शुद्ध सम्यक् जाकै पाइये है ऐसी निर्ग्रंथ संयम स्वरूप प्रतिमा है सो वंदिबे योग्य है ॥

भावार्थ—जाननेंवाला देखनेंवाला शुद्ध सम्यक्त्व शुद्ध चारित्र स्वरूप निर्ग्रंथ संयमसहित ऐसा मुनिका स्वरूप है सो ही प्रतिमा है सो ही वंदिवेयोग्य अन्य कल्पित वंदिवेयोग्य नांही है, बहुरि तैसेही रूपसदृश धातुपाषाणकी प्रतिमा होय सो व्यवहारकरि वंदिवेयोग्य है ॥ ११ ॥

आगै फेरि कहै है;—

गाथा—दंसण अणंत णाणं अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य ।
सासयसुक्ख अदेहा मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं ॥ १२ ॥
णिरुवममचलमखोहा णिम्मिविया [1]जंगमेण रूवेण ।
सिद्धट्ठाणम्मि ठिया वोसरपडिमा धुवा सिद्धा ॥ १३ ॥

संस्कृत—दर्शनं अनंतं ज्ञानं अनन्तवीर्याः अनंतसुखाः च ।
शाश्वतसुखा अदेहा मुक्ताः कर्माष्टकबंधैः ॥ १२ ॥
निरुपमा अचला अक्षोभाः निर्मापिता जंगमेन रूपेण ।
सिद्धस्थाने स्थिताः व्युत्सर्गप्रतिमा ध्रुवाः सिद्धाः १३

अर्थ—जो अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनंतवीर्य अनंतसुख इनिकरि सहित है, बहुरि शाश्वता अविनाशीसुखस्वरूप है, बहुरि अदेह हैं कर्म नोकर्मरूप पुद्गलमयी देह जिनिकै नांही है, बहुरि अष्टकर्मके बंधनकरि रहित है, बहुरि उपमाकरि रहित है जाकी उपमा दीजिये ऐसा लोकमैं वस्तु नांही है, बहुरि अचल है प्रदेशनिका चलनां जिनकै नांही है बहुरि अक्षोभ है जिनिकै उपयोगमैं किछू क्षोभ नांही है निश्चल है, बहुरि जंगमरूप करि निर्मित है कर्मतैं निर्मुक्त हुये पीछैं एक समय मात्र गमन रूप होय हैं, तातैं जंगमरूपकरि निर्मापित है, बहुरि सिद्ध-स्थान जो लोकका अग्रभाग ता विषैं स्थित है याहीतैं व्युत्सर्ग कहिये

1—संस्कृत सटीक प्रतिमें 'निर्मापिताः अजंगमेन रूपेण' ऐसी छाया है ।

कायरहित है जैसा पूर्वै देहमैं आकार था तैसाही प्रदेशनिका आकार किछू घाटि ध्रुव है, संसारतैं मुक्त होय एक समय गमनकारि लोककै अग्रभाग-विषैं जाय तिष्ठैं पीछैं चलाचल नांही है ऐसी प्रतिमा सिद्ध है ॥

भावार्थ—पहलैं दोय गाथामैं तौ जंगम प्रतिमा संयमी मुनिनिकी देहसहित कही, बहुरि इनि दोय गाथानिमैं थिर प्रतिमा सिद्धनिकी कही ऐसैं जंगम थावर प्रतिमाका स्वरूप कह्या अन्य केई अन्यथा बहुत प्रकार कल्पैं हैं सो प्रतिमा वंदिवे योग्य नांहीं है ॥

इहां प्रश्न—जो यह तौ परमार्थ स्वरूप कह्या अर बाह्य व्यवहारमैं प्रतिमा पाषाणादिककी वंदिये है सो कैसैं ! ताका समाधान—जो बाह्य व्यवहारमैं मतांतरके भेद तैं अनेक रीति प्रतिमाकी प्रवृत्ति है सो इहां परमार्थकूं प्रधानकरि कह्या है, बहुरि व्यवहार है सो जैसा प्रतिमाका परमार्थरूप होय ताहीकूं सूचता होय सो निर्बाध होय है जैसा परमार्थरूप आकार कह्या तैसाही आकाररूप व्यवहार होय सो व्यवहार भी प्रशस्त है, व्यवहारी जीवनिकै ये भी वंदिवेयोग्य है । स्याद्वाद न्यायकरि साधे परमार्थ व्यवहारमैं विरोध नांहीं है ॥ १२-१३ ॥

ऐसैं जिनप्रतिमाका स्वरूप कह्या।

आगैं दर्शनका स्वरूप कहैं हैं;—

गाथा—दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संयमं सुधम्मं च।
णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं ॥ १४ ॥

संस्कृत—दर्शयति मोक्षमार्गं सम्यक्त्वं संयमं सुधर्मं च।
निर्ग्रंथं ज्ञानमयं जिनमार्गे दर्शनं भणितम् ॥ १४ ॥

अर्थ—जो मोक्षमार्गकूं दिखावै सो दर्शन है, कैसा है मोक्ष-मार्ग—सम्यक्त्व कहिये तत्वार्थश्रद्धान लक्षण सम्यत्वस्वरूप है, बहुरि

कैसा है—संयम कहिये चारित्र पंच महाव्रत पंचसमिति तीन गुप्ति ऐसैं तेरह प्रकार चारित्ररूप है, वहुरि कैसा है—सुधर्म कहिये उत्तमक्षमादिक दशलक्षण धर्मरूप है, वहुरि कैसा है—सुधर्म कहिये उत्तम क्षमादिक दशलक्षणधर्म रूप है. वहुरि कैसा है—निर्ग्रंथरूप है वाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित है, वहुरि कैसा है—ज्ञानमयी है जीव अजीवादि पदार्थनिकूं जाननेंवाला है; इहां निर्ग्रंथ अर ज्ञानमयी ये दोय विशेपण दर्शनके भी होय हैं जातैं दर्शन है सो वाह्य तौ याकी मूर्ति निर्ग्रंथ है वहुरि अंतरंग ज्ञानमयी है। ऐसा मुनिके रूपकौं जिनमार्गमैं दर्शन कह्या है तथा ऐसे रूपका श्रद्धानरूप सम्यक्त्वस्वरूपकूं दर्शन कहिये है।

भावार्थ—परमार्थरूप अंतरंग दर्शन तौ सम्यक्त्व है अर वाह्य याकी मूर्त्ति ज्ञानसहित ग्रहण किया निर्ग्रंथरूप ऐसा मुनिका रूप है सो दर्शन है जातैं मतकी मूर्त्तिकूं दर्शन कहनां लोकमैं प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥

आगैं फेरि कहैं हैं;—

गाथा—जह फुल्लं गंधमयं भवदि हु खीरं स घियमयं चावि।
तह दंसणं हि सम्मं णाणमयं होइ रूवत्थं ॥ १५ ॥

संस्कृत—यथा पुष्पं गंधमयं भवति स्फुटं क्षीरं तत् घृतमयं चापि
तथा दर्शनं हि सम्यग्ज्ञानमयं भवति रूपस्थम् ॥ १५ ॥

अर्थ—जैसैं फूल है सो गंधमयी है वहुरि दूध है सो घृतमयी है तैसैं दर्शन कहिये मत विपैं सम्यक्त्व है कैसा है दर्शन अंतरंग तौ ज्ञानमयी है वहुरि वाह्य रूपस्थ हैं मुनिका रूप है तथा उत्कृष्ट श्रावक अर्जिकाका रूप है ॥

भावार्थ—दर्शन नाम मतका प्रसिद्ध है सो इहां जिनदर्शनविषैं मुनिश्रावक आर्यिकाका जैसा वाह्य भेष कह्या सो दर्शन जाननां अर याकी

श्रद्धा सो अंतरंग दर्शन जाननां सो ये दोऊही ज्ञानमयी हैं यथार्थ तत्वा-र्थका जाननेंरूप सम्यक्त्व जामैं पाइये है याही तैं फूलमैं गंधका अर दूधमें घृतका दृष्टांत युक्त है ऐसैं दर्शनका रूप कह्या। अन्यमतमैं तथा कालदोषकरि जिनमतमैं जैनाभास भेषी अनेक प्रकार अन्यथा कहै हैं सो कल्याणरूप नांहीं संसारका कारण है ॥ १५ ॥

आगैं जिनबिंबका निरूपण करै है;—

गाथा—जिणबिंबं णाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च।
जं देइ दिक्खसिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा ॥ १६ ॥

संस्कृत—जिनबिंबं ज्ञानमयं संयमशुद्धं सुवीतरागं च।
यत् ददाति दीक्षाशिक्षे कर्मक्षयकारणे शुद्धे ॥ १६॥

अर्थ—जिनबिंब कैसा है–ज्ञानमयी है अर संयमकरि शुद्ध है बहुरि अतिशयकरि वीतराग है बहुरि जो कर्मका क्षयका कारण अर शुद्ध है ऐसी दीक्षा अर शिक्षा दे है ॥

भावार्थ—जो जिन कहिये अरहंत सर्वज्ञका प्रतिबिंब कहिये ताकी जायगां तिसकी ज्यौं माननें योग्य होय, ऐसे आचार्य हैं सो दीक्षा कहिये व्रतका ग्रहण अर शिक्षा कहिये व्रतका विधान बतावनां ये दोऊ कार्य भव्यजीवनिकूं दे हैं, यातैं प्रथम तौ सो आचार्य ज्ञानमयी होय जिनसूत्रका जिनकूं ज्ञान होय ज्ञान विना यथार्थ दीक्षा शिक्षा कैसैं होय अर आप संयमकरि शुद्ध होय ऐसा न होय तौ अन्यकूं भी संयम शुद्ध न करावै, बहुरि अतिशयकरि वीतराग न होय तौ कषायसहित होय तब दीक्षा शिक्षा यथार्थ न दे, यातैं ऐसे आचार्यकूं जिनके प्रतिबिंब जाननें ॥ १६ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—तस्स य करह पणामं सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं।
जस्स य दंसण णाणं अत्थि धुवं चेयणाभावो ॥ १७ ॥

संस्कृत—तस्य च कुरुत प्रणामं सर्वां पूजां च विनयं वात्सल्यम्।
यस्य च दर्शनं ज्ञानं अस्ति ध्रुवं चेतनाभावः ॥ १७ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त जिनबिंबकूं प्रणाम करो बहुरि सर्व प्रकार पूजा करो विनय करो वात्सल्य करो, काहेतैं—जाकै ध्रुव कहिये निश्चयतैं दर्शन ज्ञान पाइये है बहुरि चेतनाभाव है ॥

भावार्थ—दर्शन ज्ञानमयी चेतनाभावसहित जिनबिंब आचार्य है तिनिकूं प्रणामादिक करनां। इहां परमार्थ प्रधान कह्या है तहां जड प्रतिबिंबकी गौणता है ॥ १७ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—तववयगुणेहिं सुद्धो जाणदि पिच्छे हि सुद्धसम्मत्तं।
अरहंतमुद्द एसा दायारी दिक्खसिक्खा य ॥ १८ ॥

संस्कृत—तपोव्रतगुणैः शुद्धः जानाति पश्यति शुद्धसम्यक्त्वम्।
अर्हन्मुद्रा एषा दात्री दीक्षाशिक्षाणां च ॥ १८ ॥

अर्थ—जो तप अर व्रत अर गुण कहिये उत्तरगुण तिनिकरि शुद्ध होय बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि पदार्थनिकूं यथार्थ जानैं बहुरि सम्यग्दर्शनकरि पदार्थनिकूं देखै याहीतैं शुद्ध सम्यक्त्व जाकै ऐसा जिनबिंब आचार्य है सो येही दीक्षा शिक्षाकी देनेंवाली अरहंतकी मुद्रा है ॥

भावार्थ—ऐसा जिनबिंब है सो जिनमुद्राही है ऐसैं जिनबिंबका स्वरूप कह्या ॥ १८ ॥

आगैं जिनमुद्राका स्वरूप कहैं हैं ॥

गाथा—दढसंजममुद्दाए इंदियमुद्दा कसायदढमुद्दा ।
मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्दा एरिसा भणिया ॥ १९ ॥

संस्कृत—दृढसंयममुद्रया इन्द्रियमुद्रा कषायदृढमुद्रा ।
मुद्रा इह ज्ञानेन जिनमुद्रा ईदृशी भणिता ॥ १९ ॥

अर्थ—दृढ कहिये वज्रवत् चलाया न चलै ऐसा संयम—इन्द्रिय मनका वश करनां, षट्जीवनिकायकी रक्षा करनां, ऐसे संमयरूप मुद्राकरि तौ पांच इंद्रियनिकूं विषयनिमैं न प्रवर्त्तावना तिनिका संकोच करनां यह तौ इंद्रियमुद्रा है, बहुरि ऐसा संयम करिही कषायनिकी प्रवृत्ति जामैं नहीं ऐसी कषायदृढमुद्रा है, बहुरि ज्ञानका स्वरूपविषैं लगावनां ऐसे ज्ञानकरि सर्व बाह्य मुद्रा शुद्ध होय हैं, ऐसैं जिनशासनविषैं ऐसी जिनमुद्रा होय है ॥

भावार्थ—संयमसहित होय इन्द्रिय जाकै वशीभूत होय अर कषायनिकी प्रवृत्ति नांही होती होय अर ज्ञानस्वरूपमैं लगावता होय ऐसा मुनि होय सो ही जिनमुद्रा है ॥ १९ ॥

आगैं ज्ञानका निरूपण करै हैं;—

गाथा—संजमसंजुत्तस्स य सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स ।
णाणेण लहदि लक्खं तम्हा णाणं च णायव्वं ॥ २० ॥

संस्कृत—संयमसंयुक्तस्य च सुध्यानयोग्यस्य मोक्षमार्गस्य ।
ज्ञानेन लभते लक्षं तस्मात् ज्ञानं च ज्ञातव्यम् ॥ २० ॥

अर्थ—संयमकरि संयुक्त अर ध्यानके योग्य ऐसा जो मोक्षमार्ग ताका लक्ष्य कहिये लक्षणे योग्य वेद्य निसानां जो आपका निजस्वरूप सो ज्ञानकरि पाइये है, तातैं ऐसे लक्ष्यके जाननेंकूं ज्ञानकूं जाननां ॥

(१) 'सुध्यानयोगस्य' ऐसा सटीक संस्कृत प्रतिमें पाठ है जिसका श्रेष्ठ ध्यानसहित ऐसा अर्थ है (२) 'वेध्यक' ऐसा पाठ है ।

भावार्थ—संयम अगीकारकरि ध्यान करै अर आत्माका स्वरूप न जानैं तौ मोक्षमार्गकी सिद्धि नांहीं तातैं ज्ञानका स्वरूप जाननां, याके जानें सर्व सिद्धि है ॥ २० ॥

आगैं याकूं दृष्टांतकरि दृढ करै है;—

गाथा—जह ण वि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्झय विहीणो।
तह ण वि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस्स

संस्कृत—यथा नापि लभते स्फुटं लक्षं रहितः कांडस्य वेधेकविहीनः।
तथा नापि लक्षयति लक्षं अज्ञानी मोक्षमार्गस्य ॥२१॥

अर्थ—जैसैं वेधनेंवाला वेधक जो वाण ताकरि विहीन कहिये रहित ऐसा पुरुष है सो कांड कहिये धनुष ताका अभ्यासकरि रहित होय सो लक्ष्य कहिये निशाना ताकूं न पावै तैसैं ज्ञानकरि रहित अज्ञानी है सो दर्शन चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग ताका लक्ष्य कहिये लक्षणें योग्य परमात्माका स्वरूप ताकूं न पावै है ॥

भावार्थ—धनुषधारी धनुषका अभ्यास रहित अर वेधक जो वाण ताकरि रहित होय तौ निशानांकूं न पावै तैसैं ज्ञानकरि रहित अज्ञानी मोक्षमार्गका निशानां परमात्मा स्वरूप है ताकूं न पहचानैं तब मोक्षमार्गकी सिद्धि न होय तातैं ज्ञानकूं जाननां, परमात्मारूप निसानां ज्ञानरूप वाणकरि वेधनां योग्य है ॥ २१ ॥

आगैं कहै है ऐसा ज्ञान विनय संयुक्त पुरुष होय सो मोक्ष पावै है;—

गाथा—णाणं पुरिसस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स ॥ २२ ॥

संस्कृत—ज्ञानं पुरुषस्य भवति लभते सुपुरुषोऽपि विनयसंयुक्तः।
ज्ञानेन लभते लक्ष्यं लक्षयन् मोक्षमार्गस्य ॥ २२ ॥

अर्थ—ज्ञान होय है सो पुरुषकै होय है बहुरि पुरुषही विनय संयुक्त होय सो ज्ञानकूं पावै है, बहुरि ज्ञान पावै तब तिस ज्ञानहीकरि मोक्षमार्गकी लक्ष्य जो परमात्माका स्वरूप ताकूं लक्षता ध्यावता संता तिस लक्षकूं पावै है ॥

भावार्थ—ज्ञान पुरुषकै होय है बहुरि पुरुषही विनयवान होय सो ज्ञानकूं पावै है तिस ज्ञानहीकरि शुद्धआत्माका स्वरूप जानिये है यातैं विशेष ज्ञानीनिका विनयकरि ज्ञानकी प्राप्ति करनीं जातैं निज शुद्ध स्वरूपकूं जानि मोक्ष पाइये है, इहां जे विनयकरि रहित होय यथार्थ सूत्र पदतैं चिगे होय भ्रष्ट भये होय तिनिका निषेध जाननां ॥ २२ ॥

आगैं याहीकूं दृढ करै है;—

गाथा—मइधणुहं जस्स थिरं सुदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं।
परमत्थबद्धलक्खो ण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स॥ २३।

संस्कृत—मतिधनुर्यस्य स्थिरं श्रुतं गुणः बाणाः सुसंति रत्नत्रयं।
परमार्थबद्धलक्ष्यः नापि स्खलति मोक्षमार्गस्य ॥२३॥

अर्थ—जो मुनिकै मतिज्ञानरूप धनुष थिर होय, बहुरि श्रुतज्ञानरूप जाकै गुण कहिये प्रत्यंचा होय, बहुरि रत्नत्रय रूप जाकै भला बाण होय, बहुरि परमार्थ स्वरूप निज शुद्धात्मस्वरूपका संबंधरूप किया है लक्ष्य जानैं ऐसा मुनि है सो मोक्षमार्गकूं नांहीं चूकै है ॥

भावार्थ—धनुषकी सर्व सामग्री यथावत मिलै तब निसानां नांहीं चूकै है तैसैं मुनिकै मोक्षमार्गकी यथावत सामग्री मिलै तब मोक्षमार्गतैं भ्रष्ट नांही होय है ताका साधनकरि मोक्ष पावै है यह ज्ञानका माहात्म्य

है तातैं जिनागम अनुसार सत्यार्थ ज्ञानीनिका विनयकरि ज्ञानका साधन करनां ॥ २३ ॥

ऐसैं ज्ञानका निरूपण किया।

आगैं देवका स्वरूप कहै है;—

गाथा—सो देवो जो अत्थं धम्मं कामं सुदेइ णाणं च ।
सो देइ जस्स अत्थि हु अत्थो धम्मो य पव्वज्जा ॥ २४

संस्कृत—सः देवः यः अर्थं धर्मं कामं सुददाति ज्ञानं च ।
सः ददाति यस्य अस्ति तु अर्थः कर्म च प्रव्रज्या ॥२४॥

अर्थ—देव जाकूं कहिये जो अर्थ कहिये धन अर धर्म अर काम कहिये इच्छाका विषय ऐसा भोग वहुरि मोक्षका कारण ज्ञान इनि च्यारिनिकूं देवै। तहां यह न्याय है जो वाकै वस्तु होय सो देवै अर जाकै जो वस्तु न होय सो कैसैं दे, इस न्यायकरि अर्थ धर्म स्वर्गादिके भोग अर मोक्षका सुखका कारण जो प्रव्रज्या कहिये दीक्षा जाकै होय सो देव जाननां ॥ २४ ॥

आगैं धर्मादिका स्वरूप कहै है जिनिके जानें देवादिका स्वरूप जान्या जाय;—

गाथा—धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता ।
देवो ववगयमोहो उदययरो भव्वजीवाणं ॥ २५ ॥

संस्कृत—धर्मः दयाविशुद्धः प्रव्रज्या सर्वसंगपरित्यक्ता ।
देवः व्यपगतमोहः उदयकरः भव्यजीवानाम् ॥ २५

अर्थ—धर्म है सो तौ दयाकरि विशुद्ध है, वहुरि प्रव्रज्या है सो सर्व परिग्रहतैं रहित है, वहुरि देव है सो नष्ट भया है मोह जाका ऐसा है सो भव्य जीवनिकै उदयका करनेवाला है ॥

भावार्थ—लोकमैं यह प्रसिद्ध है जो धर्म अर्थ काम मोक्ष ये च्यार पुरुषके प्रयोजन हैं इनिकै आर्थि पुरुष काहू वंदै पूजै है, बहुरि यह न्याय है जो जाकै जो वस्तु होय सो अन्यकूं दे अणछती कहांतैं ल्यावै तातैं ये च्यार पुरुषार्थ जिनदेवकै पाइये है, धर्म तौ जिनकै दयारूप पाइये है ताकूं साधि तीर्थंकर भये तब धनकी अर संसारके भोगकी प्राप्ति भई लोक पूज्य भए, बहुरि तीर्थंकर परम पदवीमैं दीक्षा ले सर्व मोहतैं रहित होय परमार्थस्वरूप आत्मीक धर्मकूं साधि मोक्षसुखकूं पाया सो ऐसैं तीर्थंकर जिन हैं, सोही देव है लोक अज्ञानी जिनिकूं देव मानैं हैं तिनिकै धर्म अर्थ काम मोक्ष नांही जातैं केई हिंसक हैं केई विषयासक्त हैं मोही हैं तिनिकै धर्म काहेका? बहुरि अर्थ कामकी जिनिकै वांछा पाइये तिनिकै अर्थ काम काहेका? बहुरि जन्म मरणतैं सहित हैं तिनिकै मोक्ष कैसैं? ऐसैं देव सांचा जिनदेवही है येही भव्य जीवनिकै मनोरथ पूर्ण करै है, अन्य सर्व कल्पित देव हैं ॥ २५ ॥

ऐसैं देवका स्वरूप कह्या।

आगैं तीर्थका स्वरूप कहै हैं,—

गाथा—वयसम्मत्तविसुद्धे पंचेंदियसंजदे णिरावेक्खे।
ण्हाएउ मुणी तित्थे दिक्खासिक्खासुण्हाणेण ॥ २६ ॥

संस्कृत—व्रतसम्यक्त्वविशुद्धे पंचेंद्रियसंयते निरपेक्षे।
स्नातु मुनिः तीर्थे दीक्षाशिक्षासुस्नानेन ॥ २६ ॥

अर्थ—व्रत सम्यक्त्वकरि विशुद्ध अर पांच इंद्रियनिकरि संयत कहिये संवरसहित बहुरि निरपेक्ष कहिये ख्याति लाभ पूजादिक इस लोकका फलकी तथा परलोकविषैं स्वर्गादिकानिके भोगनिकी अपेक्षातैं रहित ऐसा आत्म स्वरूप तीर्थ विषैं दीक्षा शिक्षारूप स्नानकरि पवित्र होहू ॥

भावार्थ—तत्वार्थश्रद्धानलक्षण सहित पंच महाव्रतकरि शुद्ध अर पंच इंद्रियनिके विषयनितैं विरक्त इस लोक परलोक विषैं विषय भोगनिकी वांछातैं रहित ऐसैं निर्मल आत्माका स्वभावरूप तीर्थविषैं स्नान किये पवित्र होय हैं ऐसी प्रेरणा करै है ॥ २६ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—जं णिम्मलं सुधम्मं सम्मत्तं संजमं तवं णाणं ।
तं तित्थं जिणमग्गे हवेइ जदि संतिभावेण ॥ २७ ॥

संस्कृत—यत् निर्मलं सुधर्मं सम्यक्त्वं संयमं तपः ज्ञानम् ।
तत् तीर्थं जिनमार्गे भवति यदि शान्तभावेन ॥२७॥

अर्थ—जिनमार्गविषैं सो तीर्थ है जो निर्मल उत्तमक्षमादिक धर्म तथा तत्वार्थश्रद्धानलक्षण शंकादिमलरहित सम्यक्त्व तथा निर्मल इंद्रिय मनका वशकरना षट्कायके जीवनिकी रक्षा करनां ऐसा निर्मल संयम तथा अनशन अवमौदर्य व्रतपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेश ऐसा बाह्य तौ छह प्रकार बहुरि प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्त्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान ऐसैं छह प्रकार अंतरंग ऐसैं बारह प्रकार निर्मल तप, बहुरि जीव अजीव आदिक पदार्थनिका यथार्थ ज्ञान ये तीर्थ हैं ये भी जो शांतभावसहित होय कषायभाव न होय तब निर्मल तीर्थ है जातैं ये क्रोधादिभावसहित होय तौ मलिनता होय निर्मलता न रहै ॥

भावार्थ—जिनमार्गविषैं ऐसा तीर्थ कह्या है लोक सागर नदीनिकूं तीर्थ मानि स्नान करि पवित्र भया चाहै है सो शरीरका बाह्य मल इनितैं किंचित् उतरै है अर शरीरमैं धातु उपधातुरूप अन्तर्मल इनितैं उतरै नांही अर ज्ञानावरण आदि कर्मरूप मल अर अज्ञान राग द्वेष मोह आदि भावकर्मरूप मल आत्माके अन्तर्मल है सो तौ इनितैं किंचित्मात्र

भी उतरै नांही उलटा हिंसादिकतैं पापकर्मरूप मल लागै है यातैं सागर नदी आदिकूं तीर्थ माननां भ्रम है। जाकरि तिरिये सो तीर्थ है ऐसा जिनमार्गमैं कह्या है सो ही संसारसमुद्रतैं तारनेवाला जाननां॥ २७॥

ऐसैं तीर्थका स्वरूप कह्या।

आगैं अरहंतका स्वरूप कहै है;—

गाथा—णामे ठवणे हि य संदव्वे भावे हि सगुणपज्जाया।
चउणागदि संपदिमे[1] भावा भावंति अरहंतं॥ २८॥

संस्कृत—नाम्नि संस्थापनायां हि च संद्रव्ये भावे च सगुणपर्यायाः
च्यवनमागतिः संपत् इमे भावा भावयंति अर्हन्तम् २८

अर्थः—नाम स्थापना द्रव्य भाव ये चार भाव कहिये पदार्थ हैं ते अरहंतकूं जनावैं हैं बहुरि सगुणपर्यायाः कहिये अरहंतके गुण पर्यायनि-सहित बहुरि चउणा कहिये च्यवन अरआगति बहुरि संपदा ऐसे ये भाव अरहंतकूं जनावै है॥

भावार्थ—अरहंत शब्दकरि यद्यपि सामान्य अपेक्षा केवलज्ञानी होय ते सर्वही अरहंत है तथापि इहां तीर्थंकरपदकूं प्रधानकरि कथन करिये है तातैं नामादिककरि जनावनां कह्या है। तहां लोकव्यवहारमैं नाम आदिकी प्रवृत्ति ऐसैं है जो जा वस्तुका नाम होय तैसा गुण न होय ताकूं नामनिक्षेप कहिये। बहुरि जिस वस्तुका जैसा आकार होय तिस आकार ताकी काष्ठ पाषाणदिककी मूर्त्ति बनाय ताका संकल्प करिये ताकूं स्थापना कहिये। बहुरि जिस वस्तुकी पहली अवस्था होय

१–संस्कृत सटीक प्रतिमें 'संपदिमं' ऐसा पाठ है।

२–'सगुणपज्जाया' इस पदकी 'स्वगुणपर्यायाः' ऐसी संस्कृत मुद्रित संस्कृत प्रतिमें है।

तिसहीकूं आगली अवस्था प्रधान करि कहै ताकूं द्रव्य कहिये। वहुरि वर्त्तमानमैं जो अवस्था होय ताकूं भाव कहिये। ऐसें च्यार निक्षेपकी प्रवृत्ति है ताका कथन शास्त्रमैं भी लोककूं समझावनेकूं कियाहै, जो निक्षेपविधान करि नाम स्थापना द्रव्यकूं भाव न समझनां, नामकूं नाम समझनां, स्थापनाकूं स्थापना समझनीं, द्रव्यकूं द्रव्य समझनां, भावकूं भाव समझनां, अन्यकूं अन्य समझे व्यभिचारनामा दोष आवै है ताके मेटनेंकूं लोककूं यथार्थ समझानेकूं शास्त्रविषैं कथन है सो इहां तैसा निक्षेपका कथन न समझनां, इहां तौ निश्चयनयकूं प्रधानकरि कथन है सो जैसा अरहंतका नाम है तैसाही गुणसहित नाम जाननां, वहुरि स्थापनां जैसी जाकी देह सहित मूर्त्ति है सो ही स्थापना जाननीं, बहुरि जैसा जाका द्रव्य है तैसा द्रव्य जाननां, वहुरि जैसा जाका भाव है तैसाही जाननां ॥ २८ ॥

ऐसैंही कथन आगैं करिये है तहां प्रथमही नामकूं प्रधान करि कहै हैं;—

गाथा—दंसण अणंत णाणे मोक्खो णट्टट्ठकम्मवंधेण।
णिरुवम गुणमारूढो अरहंतो एरिसो होई॥ २९ ॥

संस्कृत—दर्शनं[1] अनंतं ज्ञानं मोक्षः नष्टाष्टकर्मबंधेन।
निरुपमगुणमारुढः अर्हन् ईदृशो भवति ॥ २९ ॥

अर्थ—जाकै दर्शन अर ज्ञान ये तौ अनंत हैं धातिकर्मके नाशतैं सर्व ज्ञेय पदार्थनिकूं देखनां जाननां जाकै है, वहुरि नष्ट भया जो अष्ट कर्मनिका बंध ताकरि जाकै मोक्ष है, इहां सत्त्वकी अर उदयकी विवक्षा लेनीं केवलीकै आठौंही कर्मका बंध नांही यद्यपि साता वेदनीयका बंध सिद्धांतमैं कह्या है तथापि स्थिति अनुभागरूप नांही तातैं अबंधतुल्यही

१—सटीक संस्कृत प्रतिमें ' दर्शने अनंत ज्ञाने ' ऐसा सप्तम्यंत पाठ है।

है ऐसा आठूंही कर्म बंधके अभावकी अपेक्षा भावमोक्ष कहिये, बहुरि उपमारहित गुणनिकरि आरूढ है सहित है ऐसे गुण छद्मस्थमैं कहूंही नांही तातैं उपमारहित गुण जामैं है ऐसा अरहंत होय ॥

भावार्थ—केवल नाममात्रही अरहंत होय ताकूं अरहंत न कहिए ऐसे गुणनिकरि सहित होय ताकूं नाम अरहंत कहिये ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—जरवाहिजम्मसरणं चउगइगमणं च पुण्य पावं च।
हंतूण दोसकम्मे हुउ णाणमयं च अरहंतो ॥ ३० ॥

संस्कृत—जराव्याधिजन्ममरणं चतुर्गतिगमनं पुण्यं पापं च।
हत्वा दोषकर्माणि भूतः ज्ञानमयश्चार्हन् ॥ ३० ॥

अर्थ—जरा कहिये बुढापा अर व्याधि कहिये रोग अर जन्म मरण च्यार गतिनिविषैं गमन पुण्य बहुरि पाप बहुरि दोषनिका उपजावनेंवाला कर्म तिनिका नाशकरि अर केवल ज्ञानमयी अरहंत हूवा होय सो अरहंत है ॥

भावार्थ—पहली गाथामैं तौ गुणनिका सद्भावकरि अरहंत नाम कह्या बहुरि इस गाथामैं दोषनिका अभावकरि अरहंत नाम कह्या। तहां राग द्वेष मद मोह अरति चिंता भय निद्रा विषाद खेद विस्मय ये ग्यारह दोष तौ घातिकर्मके उदयतैं होय हैं, बहुरि क्षुधा तृषा जन्म जरा मरण रोग खेद ये अघातिकर्मके उदयतैं होय हैं; तहां इस गाथामैं जरा रोग जन्म मरण च्यार गतिनिमैं गमनका अभाव कहनेंतैं तौ अघातिकर्मतैं भये दोषनिका अभाव जाननां जातैं अघातिकर्ममैं इनि दोषनिकी उपजावनहारी पापप्रकृतिनिका उदयका अरहंतकै अभाव है, बहुरि रागद्वेषादिक दोषनिका घातिकर्मके अभावतैं अभाव है। इहां कोई पूछै—मरणका

अर पुण्यका अभाव कह्या सो मोक्षगमन होना यह मरण अरहंतकै हैं अर पुण्यप्रकृतिनिका उदय पाइये है, तिनिका अभाव कैसैं ? ताका समाधान—इहां मरण होय करि फेरि संसारमैं जन्म होय ऐसा मरणकी अपेक्षा है ऐसा मरण अरहंतकै नांही तैसैंही जो पुण्यप्रकृतिका उदय पापप्रकृति सापेक्ष करै ऐसे पुण्यके उदयका अभाव जाननां अथवा बंध अपेक्षा पुण्यकाभी बंध नांही है सातावेदनीय बंधै सो स्थिति अनुभाग-विना अबंधतुल्यही है। बहुरि कोई पूछै—केवलीकै असाता वेदनीयका उदयभी सिद्धांतमैं कह्या है ताकी प्रवृत्ति कैसैं है ? ताका समाधान—ऐसा जो असाताका निपट मंद अनुभाग उदय है अर साताका अति-तीव्र अनुभाग उदय है ताके वशतैं असाता कछू बाह्य कार्य करनें समर्थ नांही सूक्ष्म उदय देय खिरि जाय है तथा संक्रमणरूप होय सातारूप होय जाय है ऐसैं जाननां। ऐसैं अनंत चतुष्टयकरि सहित सर्व दोषरहित सर्वज्ञ वीतराग होय सो नामकरि अरहंत कहिये॥ ३०॥

आगैं स्थापनाकरि अरहंतका वर्णन करै हैं;—

गाथा—गुणठाणमग्गणेहिं य पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं।
ठावण पंचविहेहिं पणयव्वा अरहपुरिसस्स॥ ३१॥

संस्कृत—गुणस्थानमार्गणाभिः च पर्याप्तिप्राणजीवस्थानैः।
स्थापना पंचविधैः प्रणेतव्या अर्हत्पुरुषस्य॥ ३१॥

अर्थ—गुणस्थान मार्गणास्थान पर्याप्ति प्राण बहुरि जीवस्थान इनि पांच प्रकार करि अरहंत पुरुषकी स्थापनां प्राप्त करनीं अथवा ताकूं प्रणाम करनां॥

भावार्थ—स्थापनानिक्षेपमैं काष्ठपाषाणादिकमैं संकल्प करनां कह्या है सो इहां प्रधान नांही, इहां निश्चय प्रधान करि कथन है तहां गुण-स्थानादिककरि अरहंतका स्थापन कह्या है॥ ३१॥

आगैं विशेष कहै हैं;—

गाथा—तेरहमे गुणठाणे सजोइकेवलिय होइ अरहंतो।
चउतीस अइसयगुणा होंति हु तस्सट्ठ पडिहारा॥३२॥

संस्कृत—त्रयोदशे गुणस्थाने सयोगकेवलिकः भवति अर्हन्।
चतुस्त्रिंशत् अतिशयगुणा भवंति स्फुटं तस्याष्ट प्रातिहार्याः

अर्थ—गुणस्थान चौदह कहे हैं तिनिमैं सयोगकेवली नाम तेरहमां गुणस्थान है तिसविषैं योगनिकी प्रवृत्तिसहित केवलज्ञानकरि सहित सयोगकेवली अरहंत होय है, बहुरि चौतीस अतिशय ते हैं गुण जाकैं बहुरि ताकै आठ प्रातिहार्य होय हैं ऐसा तौ गुणस्थानकरि स्थापना अरहंत कहिये ॥

भावार्थ—इहां चौतीस अतिशय अर आठ प्रातिहार्य कहनें तैं तौ समवसरणमैं विराजमान तथा विहार करता अरहंत है, बहुरि सयोग कहनेंतैं विहारकी प्रवृत्ति अर वचनकी प्रवृत्ति सिद्ध होय है बहुरि केवली कहनेंतैं केवलज्ञानकरि सर्व तत्त्वका जाननां सिद्ध होय है। तहां चौतीस अतिशय तौ ऐसैं—जन्मतैं प्रगट होंय दश—मलमूत्रका अभाव १ पसेवका अभाव २ धवल रुधिर होय ३ समचतुरस्त्र-संस्थान ४ वज्रवृषभनाराच संहनन ५ सुंदररूप ६ सुगंधशरीर ७ भले लक्षण होय ८ अनंतबल ९ मधुरवचन १० ऐसैं दश। बहुरि केवलज्ञान उपजे दश होय—उपसर्गका अभाव १ अदयाका अभाव २ शरीरकी छाया पड़ै नहीं ३ चतुर्मुख दीखै ४ सर्व विद्याका स्वामीपणां ५ नेत्र टिमकारै नहीं ६ शतयोजनसुभिक्षता ७ आकाशगमन ८ कवलाहार नाहीं ९ नख केश वधै नांही १० ऐसैं दश। बहुरि चौदह देवकृत—सकलार्द्धमागधी भाषा १ सकलजीवनिमैं मैत्रीभाव २ सर्व ऋतुके फळ फूल फलैं ३ दर्प-

णसमान भूमि ४ कंटकरहित भूमि ५ मंद सुगंधपवन ६ सर्वकै आनंद ७ गंधोदकवृष्टि ८ पाद तलै कमलरचैं ९ सर्वधान्यानिष्पत्ति १० दशों दिशा निर्मल ११ देवनिको आह्वानन शब्द १२ धर्मचक्र आगैं चलै १३ अष्ट मंगलद्रव्य आगैं चालै १४ ।. अष्ट मंगल द्रव्यके नाम छत्र १ ध्वजा २ दर्पण ३ कलश ४ चांमर ५ भृंगार ६ ताल ७ सुप्रतीच्छक ८ ऐसैं आठ। ऐसैं चौतीसके नाम कहे। बहुरि अष्ट प्रातिहार्य होय हैं तिनिके नाम अशोकवृक्ष १ पुष्पवृष्टि २ दिव्यध्वनि ३ चामर ४ सिंहासन ५ भामंडल ६ दुंदुभिवादित्र ७ छत्र ८ ऐसैं आठ। ऐसैं तौ गुणस्थानकरि अरहंतका स्थापन कह्या ॥ ३१ ॥

अब मार्गणाकरि कहै है—

गाथा—गइ इंदियं च काए जोए वेए कसाय णाणे य ।
संजम दंसण लेसा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे ॥३२॥

संस्कृत—गतौ इंद्रिये च काये योगे वेदे कषाये ज्ञाने च ।
संयमे दर्शने लेश्यायां भव्यत्वे सम्यक्त्वे संज्ञिनि आहारे ॥ ३२ ॥

अर्थ—गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार ऐसैं चौदह। तहां अरहंत सयोगकेवलीलौं तेरह गुणस्थान हैं तहां मार्गण लगाइये तत्र गति च्यारमैं मनुष्यगति है, इंद्रियजाति पांचमैं पंचेंद्रिय जाति है, काय छहमैं त्रसकाय है—योग पंदरामैं योग मनोयोग सत्य अनुभय ऐसैं दोय बहुरि तेही वचनयोग दोय बहुरि काययोग औदारिक ऐसैं पांच हैं अर समुद्घात करै ताकै औदारिकमिश्र कार्माण ये दोय मिलि सात है बहुरि वेद तीनूंहीका अभाव है, बहुरि कषाय पचीस सर्वही का अभाव है, बहुरि ज्ञान आठमैं केवलज्ञान है, संयम सातमैं एक यथाख्यात है, दर्शन च्यारमैं

एक केवल दर्शन है लेश्या छहमैं एक शुक्लयोगनिमित्त है बहुरि भव्य दोयमैं एक भव्य है, सम्यक्त्व छहमैं क्षायिक सम्यक्त्व है संज्ञी दोयमैं संज्ञी है सो द्रव्यकरि हैं भावकरि क्षयोपशमरूपभाव मनका अभाव है आहारक अनाहारक दोयमैं आहारक है सो नोकर्मवर्गणा अपेक्षा है कवलाहार नांही है अर समुद्घात करै तो अनाहारक भी है ऐसैं दोऊ है। ऐसैं मार्गणा अपेक्षा अरहंतका स्थापन जाननां ॥ ३३ ॥

आगैं पर्याप्तिकरि कहै है;—

गाथा—आहारो य सरीरो इंदियमणआणपाणभासा य ।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो उत्तमदेवो हवइ अरहो ॥ ३४ ॥

संस्कृत—आहारः च शरीरं इन्द्रियमनआनप्राणभाषाः च ।
पर्याप्तिगुणसमृद्धः उत्तमदेवः भवति अर्हन् ॥३४॥

अर्थ—आहार बहुरि शरीर इंद्रिय मन आनप्राण कहिये श्वासोच्छ्वास भाषा ऐसैं छह पर्याप्ति हैं, इस पर्याप्तिगुण करि समृद्ध कहिये युक्त उत्तमदेव अरहंत हैं ॥

भावार्थ—पर्याप्तिका स्वरूप ऐसा जो-अन्य पर्यायतैं च्यवनकरि अन्य पर्यायमैं प्राप्त होय तब तीन समय उत्कृष अंतरालमैं रहै पीछैं सैनी पंचेंद्रिय उपजै सो जहां तीन जातिकी वर्गणाका ग्रहण करै; आहारवर्गणा भाषावर्गणा मनोवर्गणा; ऐसैं ग्रहण करि आहारजातिकी वर्गणातैं तौ आहार शरीर इंद्रिय श्वासोच्छ्वास ऐसै च्यार पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त्त कालमैं पूरण करै पीछै भाषाजाति मनोजातिकी वर्गणातैं अन्तर्मुहूर्त्तहीमैं भाषा मन पर्याप्ति पूर्ण करै ऐसैं छहूं पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त्तमैं पूर्ण करै है पीछैं आयुपर्यन्त पर्याप्त ही कहावै अर नोकर्मवर्गणा का ग्रहण करबोहीं करै, इहां आहार नाम कवलाहारका न जाननां। ऐसैं तेरहैं गुणस्थान भी अरहंतकै पर्याप्ति पूर्णही है ऐसैं पर्याप्तिकरि अरहंतका स्थापना है ॥ ३४ ॥

आगैं प्राणकरि कहै हैं;—

गाथा—पंच वि इंदियपाणा मणवयकाएण तिण्णि वलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दह पाणा॥३५॥

संस्कृत-पंचापि इंद्रियप्राणाः मनोवचनकायैः त्रयो वलप्राणाः।
आनप्राणप्राणाः आयुष्कप्राणेन भवंति दशप्राणाः॥३५॥

अर्थ—पांच तौ इंद्रिय प्राण वहुरि मन वचन कायकरि तीन वलप्राण एक श्वासोच्छ्वास प्राण एक आयुप्राणकरि सहित दश प्राण हैं॥

भावार्थ—ऐसैं दश प्राण कहे तिनिमैं तेरहैं गुणस्थान भावइंद्रिय अर भावमनका क्षयोपशमभावरूप प्रवृत्ति नांहीं तिस अपेक्षा तौ कायवल वचनवल श्वासोच्छ्वास आयु ये च्यार प्राण कहिये अर द्रव्य अपेक्षा दशौंही कहिये, ऐसैं प्राणकरि अरहंतका स्थापनं है॥ ३५॥

आगैं जीवस्थानकरि कहै है;—

गाथा—मणुयभवे पंचिंदिय जीवट्ठाणेसु होइ चउदसमे।
एदे गुणगणजुत्तो गुणमारूढो हवइ अरहो॥ ३६॥

संस्कृत—मनुजभवे पंचेंद्रियः जीवस्थानेषु भवति चतुर्दशे।
एतद्गुणगणयुक्तः गुणमारूढो भवति अर्हन्॥३६॥

अर्थ—मनुष्यभवविषैं पंचेंद्रियनामा चौदमां जीवस्थान कहिये जीवसमास ताविषैं इतने गुणनिके समूहकरि युक्त तेरमैं गुणस्थानकूं प्राप्त अरहंत होय है॥

भावार्थ—जीवसमास चौदह कहेहैं एकेंद्रिय सूक्ष्मवादर २ वेइंद्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रिय ऐसैं विकलत्रय ३ पंचेंद्रिय असैनी सैनी २ ऐसैं सात भये ते पर्याप्त अपर्याप्त करि चौदह भये तिनिमैं चौदहमां सैनी पंचेंद्रिय जीवस्थान अरहंतकैहैं। गाथामैं सैनीका नाम न लिया अर मनुष्यभवका

नाम लिया सो मनुष्य सैनीही होयहै असैनी न होय तातैं मनुष्य कहनेतैं सैनीही जाननां ॥ ३६ ॥

ऐसैं गुणनिकरि सहित स्थापना अरहंतका वर्णन किया ।

आगैं द्रव्यकूं प्रधानकरि अरहंतका निरूपण करै है;—

गाथा—जरवाहिदुक्खरहियं आहारणिहारवज्जियं विमलं ।
सिंहाण खेल सेओ णत्थि दुगुंछा य दोसो य ॥३७॥
दस पाणा पज्जती अट्ठसहस्सा य लक्खणा भणिया ।
गोखीरसंखधवलं मंसं रुहिरं च सव्वंगे ॥ ३८ ॥
एरिसगुणेहिं सव्वं अइसयवंतं सुपरिमलामोयं ।
ओरालियं च कायं णायव्वं अरहपुरिसस्स ॥ ३९ ॥

संस्कृत—जराव्याधिदुःखरहितः आहारनीहारवर्जितः विमलः ।
सिंहाणः खेलः स्वेदः नास्ति दुर्गन्धः च दोषः च ३७
दश प्राणाः पर्याप्तयः अष्टसहस्राणि च लक्षणानि भणितानि ।
गोक्षीरशंखधवलं मांसं रुधिरं च सर्वाङ्गे ॥ ३८ ॥
ईदृशगुणैः सर्वः अतिशयवान् सुपरिमलामोदः ।
औदारिकश्च कायः अर्हत्पुरुषस्य ज्ञातव्यः ॥ ३९ ॥

अर्थ—अरहंत पुरुषकै औदारिक काय ऐसा जाननां—जरा बहुरि व्याधि रोग इनिसंबंधी दुःख जामैं नाहीं है बहुरि आहारनीहारकरि वर्जित हैं बहुरि विमल कहिये मलमूत्रकरि रहित है बहुरि सिंहाण श्लेष्म खेल कहिये थूक पसेव बहुरि दुर्गंधी कहिये जुगुप्सा ग्लानिता दुर्गंधादि दोष जामैं नांहीं है ॥ ३७ ॥

दश तौ जामैं प्राण हैं ते द्रव्य प्राण जाननां बहुरि पूर्ण पर्याप्ति है बहुरि एक हजार आठ लक्षण जाकै कहै हैं बहुरि गोक्षीर कहिये कपूर अथवा चंदन तथा शंख सारिखा जामैं सर्वांग धवल रुधिर मांस है ॥ ३८ ॥

ऐसे गुणनिकरि संयुक्त सर्वही देह अतिशयनिकरि सहित निर्मल हैं आमोद कहिये सुगंध जामैं ऐसा औदारिक देह अरहंत पुरुषका जाननां।३९।

भावार्थ—इहां द्रव्य निक्षेप नांही समझनां आत्मातैं जुदा ही देहकूं प्रधान करि द्रव्य अरहंतका वर्णन है ॥३७–३८–३९॥

ऐसैं द्रव्य अरहंतका वर्णन किया।

आगैं भावकूं प्रधानकरि वर्णन करै है;—

गाथा—मयरायदोसरहिओ कसायमलवज्जिओ य सुविसुद्धो।
चित्तपरिणामरहिदो केवलभावे मुणेयव्वो ॥ ४० ॥

संस्कृत—मदरागदोषरहितः कषायमलवर्जितः च सुविशुद्धः।
चित्तपरिणामरहितः केवलभावे ज्ञातव्यः ॥ ४० ॥

अर्थ—केवलभाव कहिये केवलज्ञानरूपही एक भाव होतैं संतैं अरहंत ऐसा जाननां—मद कहिये मान कषायतैं भया गर्व बहुरि राग द्वेष कहिये कषायनिके तीव्र उदयतैं होय ऐसी प्रीति अर अप्रीतिरूप परिणाम इनितैं रहित है, बहुरि पच्चीस कषायरूप मल ताका द्रव्य कर्म तथा तिनिके उदयतैं भया भावमल ताकरि वर्जित है याहीतैं अतिशयकरि विशुद्ध है निर्मल है, बहुरि चित्तपरिणाम कहिये मनका परिणमनरूप विकल्प ताकरि रहित है ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमरूप मनका विकल्प नांही है, ऐसा केवल एक ज्ञानरूप वीतरागस्वरूप भाव अरहंत जाननां ॥ ४० ॥

आगैं भावहीका विशेष कहै है;—

गाथा—सम्मद्दंसणि पस्सइ जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मत्तगुणविसुद्धो भावो अरहस्स णायव्वो ॥ ४१ ॥

संस्कृत—सम्यग्दर्शनेन पश्यति जानाति ज्ञानेन द्रव्यपर्यायान्।
सम्यक्त्वगुणविशुद्धः भावः अर्हतः ज्ञातव्यः ॥४१॥

अर्थ—भावअरहंत—सम्यग्दर्शनकरि तौ आपकूं तथा सर्वकूं सत्तामात्रकरि देखै है ऐसा केवल दर्शन जाकै है बहुरि ज्ञानकरि सर्व द्रव्य पर्यायनिकूं जानैं है ऐसा जाके केवल ज्ञान है बहुरि सम्यक्त्व गुणकरि विशुद्ध है क्षायिक सम्यक्त्व जाकै पाहिये है ऐसा अरहंतका भाव जाननां॥

भावार्थ—अरहंत होय है सो घातियाकर्मके नाशतैं होय है सो यह मोहकर्मके नाशतैं तौ मिथ्यात्व कषायके अभावतैं परमवीतरागपणां सर्वप्रकार निर्मलता होय है, बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मके नाशतैं अनंतदर्शन अनंतज्ञान प्रगट होय है तिनकरि सर्व द्रव्य पर्यायनिकूं एकैं काल प्रत्यक्ष देखै जानैं है। तहां द्रव्य छह हैं—तिनिमैं जीवद्रव्य तौ संख्याकरि अनंतानंत है, बहुरि पुद्गल द्रव्य तिनितैं अनंतानंत गुणे हैं, बहुरि आकाश द्रव्य एक है सो अनंतानंत प्रदेशी है ताकै मध्य सर्व जीव पुद्गल असंख्यात प्रदेशमैं तिष्ठै हैं, बहुरि एक धर्मद्रव्य एक अधर्मद्रव्य ये दोऊ असंख्यात प्रदेशी हैं इनितैं आकाशके लोक अलोकका विभाग है तिस लोकहीमैं कालद्रव्यके असंख्यात कालाणु तिष्ठै हैं। इनि सर्व द्रव्यके परिणामरूप पर्याय हैं ते एक एक द्रव्यकै अनंतानंत हैं तिनिकूं कालद्रव्यका परिणाम निमित्त है ताके निमित्ततैं क्रमरूप होता समयादिक व्यवहारकाल कहावै है तिसकी गणनातैं अतीत अनागत वर्त्तमान द्रव्यनिके पर्याय अनंतानंत हैं तिनि सर्व द्रव्य पर्यायनिकूं अरहंतका दर्शन ज्ञान एकैं काल देखै जानैं है याही तैं अरहंतकूं सर्वदर्शी सर्वज्ञ कहिये है॥

भावार्थ—ऐसैं अरहंतका निरूपण चौदह गाथानिमैं किया तहां प्रथम गाथामैं नाम स्थापना द्रव्य भाव गुण पर्याय सहित च्यवन आगति संपत्ति ये भाव अरहंतकूं जानावैं हैं ताका व्याख्यान नामादि कथनमैं सर्वही आयगया ताका संक्षेप भावार्थ लिखिये है—तहां प्रथम तौ गर्भकल्याणक होय है सो गर्भमैं आवतैं छह महीने पहली इन्द्रका प्रेर्या धनद जिस राजाकी राणीके गर्भमैं आवसी ताका नगरकी शोभा करै, रत्नमयी सुवर्णमयी मंदिर रचै, नगरकै कोट खाई दरवाजे सुंदर वन उपवनकी रचना करै, सुन्दर जिनके भेष ऐसे नर नारी पुरमैं वसावै, वहुरि नित्य राजमंदिरपरि रत्ननिकी वर्षा होवो करै वहुरि माताके गर्भमैं आवै तव माताकूं सोलैं सपनां आवैं, रुचकद्वीपकी वसबावाली देवांगना माताकी नित्य सेवा करैं, ऐसैं नव मास बीते प्रभुका तीन ज्ञान दश अतिशय लिये जन्म होय, तव तीन लोकमैं क्षोभ होय, देवनिकै विना वजाए वाजा वाजैं, इंद्रका आसन कंपै, तव इन्द्र प्रभुका जन्म हूवा जानि स्वर्गतैं ऐरावति हस्ती चढ़ि आवै, सर्व च्यार प्रकारके देव देवी भेले होय आवैं, शची (इन्द्राणी) माता पासि जाय प्रच्छन्न प्रभुकौं ले आवै, इन्द्र हर्षित हजार नेत्रनिकरि देखै, सौधर्म इन्द्र अपनी गोदमैं लेय ऐरावति हस्तीपरि चढि मेरुपर्वतनैं चालै, ईशान इंद्र छत्र राखै, सनत्कुमार माहेन्द्र इन्द्र चमर ढारैं, मेरुके पांडुकवनकी पांडुकशिलापरि सिंहासनपरि प्रभुकूं थापै, सारे देव क्षीरसमुद्रतैं एक हजार आठ कलशनिमैं जल ल्याय देव देवांगना गीत नृत्य वादित्र वडे उत्साहसहित प्रभुके मस्तकपरि ढारि जन्मकल्याणकका अभिषेक करै, पीछैं शृंगार वस्त्र आभूषण पहराय माताकै मंदिर ल्याय माताकूं सौंपैं, इन्द्रादिक देव अपनें स्थानक जांय, कुबेर सेवाकूं रहै, पीछैं कुमार अवस्था तथा राज्य अवस्था भोगै तामैं मनोवांछित भोग भोग, पीछैं

कछु वैराग्यका कारण पाय संसार देह भोगतैं विरक्त होय, तब लौकांतिक देव आय वैराग्यकी वधावन हारी प्रभुकी स्तुति करैं, पीछैं इन्द्र आय तपकल्याणक करै पालकीमैं वैठाय वड़े वड़े उत्सवतैं वनमैं लेजाय, तहां प्रभु पवित्र शिलापरि वैठि पंचमुष्टीतैं लौंचकरि पंच महाव्रत अंगीकार करै समस्त परिग्रहका त्यागकरि दिगंबररूप धारि ध्यान करै, तत्काल मनःपर्ययज्ञान उपजै, पीछैं केतेक काल वीते तपके वलकरि घातिकर्मकी प्रकृति ४७-अघाति कर्मप्रकृति १६ ऐसैं तरेसठि प्रकृतिका सत्तामैंसूं नाशकरि केवलज्ञान उपजाय अनंतचतुष्टय पाय क्षुधादिक अठारह दोषनितैं रहित होय अरहंत होय, तब इन्द्र आय समवसरण रचैं सो आगमोक्त अनेक शोभा सहित मणिसुवर्णमयी कोट खाई वेदी च्यारूं दिशा च्यार दरवाजा मानस्तंभ नाट्यशाला वन आदि अनेक रचना करै, ताके मध्य सभामंडपमैं वारह सभा, तिनिमैं मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका देव देवी तिर्यंच तिष्ठैं, प्रभुके अनेक अतिशय प्रगट होय, सभामंडपके वीचि तीन पीठ परि गंधकुटीके वीचि सिंहासनपरि व कमलासन अंतरीक्ष प्रभु विराजै अर अष्ट प्रातिहार्ययुक्त होय वाणी खिरै ताकूं मुनि गणधर द्वादशांग शास्त्र रचैं, ऐसैं केवलकल्याणकका उत्सव इन्द्र करै है पीछैं प्रभु विहार करैं ताका वडा उत्सव देव करैं, पाछै केतेक कालपीछैं आयुके दिन थोरे रहैं तब योगनिरोध करि अघातिकर्मका नाशकरि मुक्ति पधारैं, तब पीछै शरीरका संस्कार इन्द्र उत्सवसहित निर्वाण कल्याण करै। ऐसैं तीर्थंकर पंच कल्याणककी पूजा पाय अरहंत कहाय निर्वाण प्राप्त होय है ऐसैं जाननां ॥

आगैं प्रव्रज्याका निरूपण करै है ताकूं दीक्षा कहिये ताकूं प्रथमही दीक्षाके योग्य स्थानकविशेषकूं तथा दीक्षासहित मुनि जहां तिष्ठै ताका स्वरूप कहै है,—

गाथा—सुण्णहरे तरुहिट्ठे उज्जाणे तह मसाणवासे वा।
गिरिगुह गिरिसिहरे वा भीमवणे अहव वसिते वा ॥४२॥
संवसासत्तं तित्थं वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं।
जिणभवणं अह वेज्झं जिणमग्गे जिणवरा विंति ॥४३॥
पंचमहव्वयजुत्ता पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा।
सज्झायझाणजुत्ता मुणिवर वसहा णिइच्छंति ॥ ४४ ॥

संस्कृत-शून्यगृहे तरुमूले उद्याने तथा श्मशानवासे वा।
गिरिगुहायां गिरिशिखरे वा भीमवने अथवा वसतौ वा॥
स्ववशासक्तं तीर्थं वचश्चैत्यालयत्रिकं च उक्तैः।
जिनभवनं अथ वेध्यं जिनमार्गे जिनवरा विदन्ति ॥४३
पंचमहाव्रतयुक्ताः पंचेन्द्रियसंयताः निरपेक्षाः।
स्वाध्यायध्यानयुक्ताः मुनिवरवृषभाः नीच्छन्ति॥४४॥

अर्थ—सूनां घर, वृक्षका मूल कोटर, उद्यान वन, मसाण भूमि, गिरिकी गुफा, गिरिका शिखर, भयानकवन, अथवा वस्तिका, इनिविषैं दीक्षासहित मुनि तिष्ठैं ये दीक्षायोग्य स्थान हैं॥

बहुरि स्ववशासक्त कहिये स्वाधीन मुनिनिकरि आसक्त जे क्षेत्र तिनिमैं मुनिवसै, बहुरि जहांतैं मुक्ति पधारे ऐसे तौ तीर्थस्थान बहुरि वच चैत्य आलय ऐसा त्रिक जे, पूर्व उक्त कहिये आयतन आदिक परमार्थरूप, संयमी मुनि अरहंत सिद्ध स्वरूप तिनिका नामके अक्षररूप मंत्र तथा तिनिकी

(१) संस्कृत प्रतिमें 'सवसा' 'सत्तं' ऐसे दो पद किये हैं जिनकी संस्कृत स्ववशा 'सत्त्वं' इस प्रकार लिखी है।

(२) वचचइदालत्तयं इसके भी दो ही पद किये हैं 'वचः' 'चैत्त्यालयं' इस प्रकार।

आज्ञारूपवाणी सो तो वच, अर तिनिकै आकार धातु पाषाणकी प्रतिमा स्थापन सो चैत्य, अर सो प्रतिमा तथा अक्षर मंत्र वाणी जामैं स्थापिये ऐसा आलय मंदिर यंत्र पुस्तक ऐसा वच चैत्य आलयकात्रिक, बहुरि अथवा जिनभवन कहियें अकृत्रिम चैत्यालय मंदिर ऐसा आयतनादिक तिनिकै समानही तिनिका व्यवहार, ताहि जिनमार्गविषैं जिनवर देव वेध्य कहिये दीक्षासहित मुनिनिकै ध्यावनेंयोग्य चिंतवन करनेंयोग्य कहै है ॥

बहुरि जे मुनिवृषभ कहिये मुनिनिमैं प्रधान हैं ते कहे ते शून्यगृहादिक तथा तीर्थ नाम मंत्र स्थापनरूप मूर्ति अर तिनिका आलय मंदिर पुस्तक अर अकृत्रिम जिनमंदिर तिनिकूं णिइच्छंति कहिये निश्चयकरि इष्ट करैं हैं तिनिमैं सूना घर आदिकमैं वसैं हैं अर तीर्थ आदिका ध्यान चिंतवन करैं हैं अर अन्यकूं तहां दीक्षा देहैं। इहां 'णिइच्छंति' का पाठांतर ' णइच्छंति' ऐसाभी है ताका काकोक्तिकरि तौ ऐसा अर्थ होय है "जो कहा न इष्ट करै है करैही है"। अर एक टिप्पणीमैं ऐसा अर्थ किया है जो ऐसे शून्यगृहादिक तथा तीर्थादिक तिनकूं स्ववशासक्त कहिये स्वेच्छाचारी भ्रष्ट आचारी तिनिकरि आसक्त होय युक्त होय तौ ते मुनिप्रधान इष्ट न करै तहां न वसैं। कैसे हैं ते मुनिप्रधान—पांच महाव्रतनिकरि संयुक्त हैं, बहुरि कैसे हैं—पांच इन्द्रियनिका है भलै प्रकार जीतनां जिनिकैं, बहुरि कैसे हैं—निरपेक्ष हैं काहू प्रकारकी वांछाकरि मुनि न भये है, बहुरि कैसे हैं—स्वाध्याय अर ध्यानकरि युक्त हैं कई तौ शास्त्र पढ़ैं पढ़ावैं हैं कई धर्म शुक्लध्यान करैं हैं ॥

भावार्थ—इहां दीक्षायोग्य स्थानक तथा दीक्षासहित दीक्षा देनेवाला मुनिका तथा तिनिके चिंतवन योग्य व्यवहारका स्वरूप कह्या है ॥ ४२–४३–४४ ॥

आगैं प्रव्रज्याका स्वरूप कहै हैं;—

गाथा—गिहगंथमोहमुक्का बावीसपरीषहा जियकषाया ।
पावारंभविमुक्का पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ४५ ॥

संस्कृत—गृहग्रंथमोहमुक्ता द्वाविंशतिपरीषहा जितकषाया ।
पापारंभविमुक्ता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ४५ ॥

अर्थ—गृह कहिये घर अर ग्रंथ कहिये परिग्रह इनि दोऊनितैं तथा तिनिका मोह ममत्व इष्ट अनिष्टबुद्धि तातैं रहित हैं, बहुरि बावीस परीषहनिका सहनां जामैं होय है, बहुरि जीते है कषाय जामैं, बहुरि पापरूप जो आरंभ ताकरि रहित है, ऐसी प्रव्रज्या जिनेश्वर देव कही है ॥

भावार्थ—जैन दीक्षामैं कछुभी परिग्रह नांही, सर्व संसारका मोह नांही, बाईस परीषहनिका जामैं सहनां, कषायनिका जीतनां पापारंभका जामैं अभाव । ऐसी दीक्षा अन्य मतमैं नांही ॥ ४५ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—धणधण्णवत्थदाणं हिरण्णसयणासणाइ छत्ताइं ।
कुद्दाणविरहरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ४६ ॥

संस्कृत—धनधान्यवस्त्रदानं हिरण्यशयनासनादि छत्रादि ।
कुदानविरहरहिता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ४६ ॥

अर्थ—धन धान्य वस्त्र इनिका दान बहुरि हिरण्य कहिये रूपा सोना आदिक बहुरि शय्या आसन आदि शब्दतैं छत्र चामरादिक बहुरि क्षेत्र आदिक ये कुदान ताका देना ताकरि रहित ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमती केई ऐसी प्रव्रज्या कहैं हैं—जो गऊ धन धान्य वस्त्र सोना रूपा शयन आसन छत्र चामर भूमि आदिका दान करनां सो प्रव्रज्या है ताका या गाथामैं निषेध किया है—जो प्रव्रज्या तौ निर्ग्रंथस्वरूप है जो धन धान्य आदि राखि दान करै ताकै काहेकी प्रव्रज्या ?

ये तौ गृहस्थका कर्म है, बहुरि गृहस्थकै भी इनि वस्तुनिके दानतैं विशेष पुण्यतौ नांही उपजै है जातैं पाप बहुत है सो पुण्य अल्प है सो बहुत पाप कार्य तौ गृहस्थकूं करनेंमें लाभ नांही जामैं बहुत लाभ होय सो ही करनां योग्य है, दीक्षा तौ इनि वस्तुनिकरि रहित ही जाननां ४६

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—सत्तूमित्ते य समा पसंसणिद्दाअलद्धिलद्धिसमा।
तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४७॥

संस्कृत—शत्रौ मित्रे च समा प्रशंसानिन्दाऽलब्धिलब्धिसमा।
तृणे कनके समभावा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥४७॥

अर्थ—बहुरि जामैं शत्रु मित्रविषैं समभाव है, बहुरि प्रशंसा निंदा विषैं लाभ अलाभविषैं समभाव है बहुरि तृणकंचन विषैं समभाव है ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—जैनदीक्षाविषैं रागद्वेषका अभाव है जातैं वैरी मित्र निंदा प्रशंसा लाभ अलाभ तृण कंचनविषैं तुल्य भाव है, जैनके मुनिनिकैं ऐसी दीक्षा है ॥ ४७ ॥

आगैं फेरि कहैं हैं;—

गाथा—उत्तममज्झिमगेहे दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा।
सव्वत्थ गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४८॥

संस्कृत—उत्तममध्यमगेहे दरिद्रे ईश्वरे निरपेक्षा।
सर्वत्र गृहीतपिंडा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥४८॥

अर्थ—उत्तम गेह कहिये शोभासहित ऐसा राजमंदिरादिक अर मध्यम गेह कहिये शोभारहित सामान्य जनका घर इनि विषैं तथा दरिद्री,

धनवान इनिविषैं निरपेक्ष कहिये जामैं अपेक्षा नांहीं ऐसी सर्व जायगां ग्रह्या है पिंड कहिये आहार जानैं ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—मुनि दीक्षासहित होय है अर आहार लेनेंकूं जाय तब ऐसी न विचारै जो वडे घर जानां अथवा छोटे घर जानां तथा दरिद्रीके जाना धनवानकै जाना ऐसी वांछा रहित निर्दोष आहारकी योग्यता होय तहां सर्वत्रही जायगां योग्य आहार ले, ऐसी दीक्षा है ॥ ४८ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

गाथा—णिग्गंथा णिस्संगा णिम्माणासा अराय णिद्दोसा।
णिम्मम णिरहंकारा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४९॥

संस्कृत—निर्ग्रंथा निःसंगा निर्मानाशा अरागा निर्द्वेषा।
निर्ममा निरहंकारा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥४९॥

अर्थ—वहुरि कैसी है प्रव्रज्या-निर्ग्रंथस्वरूप है परिग्रहतें रहित है, बहुरि कैसी है–निःसंग कहिये स्त्री आदि परद्रव्यका संग मिलाप जामैं नांहीं है, वहुरि निर्माना कहिये मान कषाय जामैं नांहीं है मदरहित है वहुरि कैसी है निराशा है जामैं आशा नांहीं है संसारभोगकी आशारहित है, वहुरि कैसी है–अराग कहिये रागका जामैं अभाव है संसार देह भोगसूं जामैं प्रीति नांहीं है, वहुरि कैसी है निर्दोष कहिये काहूसूं द्वेष जामैं नांहीं है, बहुरि कैसी है निर्ममा कहिये जामैं काहूंसूं ममत्व भाव नांही है, वहुरि कैसी है निरहंकारा कहिये अहंकाररहित है जो कछूं कर्मका उदय है सो होय है ऐसैं जाननें तैं परद्रव्यमैं कर्त्तापणांका अहंकार नांहीं है अपनां स्वरूपका ही जामैं साधन है ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमती भेष पहरि तिसमात्र दीक्षा मानैं हैं सो दीक्षा नांहीं है, जैनदीक्षा ऐसी कही है ॥ ४९ ॥

आगै फेरि कहै है;—

गाथा—णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा ।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥५०॥

संस्कृत—निःस्नेहा निर्लोभा निर्मोहा निर्विकारा निष्कलुषा ।
निर्भया निराशभावा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥५०॥

अर्थ—बहुरि प्रव्रज्या ऐसी कही है—निःस्नेहा कहिये जामैं काहूंसूं स्नेह नांहीं परद्रव्यसूं रागादिरूप सचिक्कणभाव जामैं नांहीं है, बहुरि कैसी है निर्लोभा कहिये जामैं कछु परद्रव्यके लेनेंकी वांछा नाहीं है, बहुरि कैसी है निर्मोहा काहिये जामैं काहू परद्रव्यसूं मोह नांही है भूलिकरि भी परद्रव्यमैं आत्मबुद्धि नांही उपजै है, बहुरि कैसी है निर्विकार है बाह्य अभ्यंतर विकारसूं रहित है बाह्य शरीरकी चेष्टा तथा वस्त्रभूषणादिकका तथा अंग उपांगका विकार जामैं नांहीं है अंतरंग काम क्रोधादिकका विकार जामैं नांही है, बहुरि कैसी हैं निःकलुषा कहिये मलिनभावरहित हैं आत्माकूं कषाय मलिन करै है सो कषाय जामैं नांहीं है, बहुरि कैसी है निर्भया कहिये काहू प्रकारका भय जामैं नांही है, आपका स्वरूपकूं अविनाशी जानैं ताकै काहेका भय होय, बहुरि कैसी है निराशभाव कहिये जामैं काहू प्रकार परद्रव्यकी आशाका भाव नांही है आशा तौ किछू वस्तुकी प्राप्ति न होय ताकी लगी रहै है अर जहां परद्रव्यकूं अपनां जान्यां नांही अर अपने स्वरूपकी प्राप्ति भई तब किछू पावना न रह्या तब काहेकी आशा होय। प्रव्रज्या ऐसी कही है ॥

भावार्थ—जैनदीक्षा ऐसी है, अन्यमतमैं स्वरूप द्रव्यका भेदज्ञान नांही है तिनिकै ऐसी दीक्षा काहेतैं होय ॥ ५० ॥

आगैं दीक्षाका बाह्य स्वरूप कहै है;—

गाथा—जहजायरूवसरिसा अवलंवियभुय णिराउहा संता।
परकियणिलयणिवासा पव्वज्जा एरिसा भणिया॥ ५१॥

संस्कृत—यथाजातरूपसदृशी अवलंवितभुजा निरायुधा शांता।
परकृतनिलयनिवासा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता॥५१॥

अर्थ—कैसी है प्रव्रज्या—यथाजातरूपसदृशी कहिये जैसा जन्म्यां वालकका नग्न रूप होय तैसा नग्न रूप जामैं है, वहुरि कैसी है अवलंवितभुजा कहिये लंवायमान किये हैं भुजा जामैं वाहुल्य अपेक्षा कायोत्सर्ग खड़ा रहनां जामैं होय है, बहुरि कैसी है निरायुधा कहिये आयुधनिकरि रहित है, बहुरि शांता कहिये अंग उपांगके विकार रहित शांत मुद्रा जामैं होय है, बहुरि कैसी है परकृतनिलयनिवासा कहिये परका किया निलय जो वस्तिका आदिक तामैं है निवास जामैं आपकूं कृत कारित अनुमोदना मन वचन काय करि जामैं दोप न लाग्या होय ऐसी परकी करी वस्तिका आदिकमै वसनां होय है ऐसी प्रव्रज्या कही है॥

भावार्थ—अन्यमती केई वाह्य वस्त्रादिक राखैं है केई आयुध राखैं हैं केई सुखनिमित्त आसन चलाचल राखैं हैं केई उपाश्रेय आदि वसनेंका निवास वनाय तामैं वसैं हैं अर आपकूं दीक्षा सहित मानैं हैं तिनिकै भेषमात्र है, जैनदीक्षातौ जैसी कही तैसीही है॥ ५१॥

आगैं फेरि कहै है—

गाथा—उवसमखमदमजुत्ता सरीरसंकारवज्जिया रुक्खा।
मयरायदोसरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया॥ ५२॥

संस्कृत—उपशमक्षमदमयुक्ता शरीरसंस्कारवर्जिता रूक्षा।
मदरागदोषरहिता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता॥ ५२॥

अर्थ—वहुरि कैसी है प्रव्रज्या उपशमक्षमादमयुक्ता कहिये उपशमतौ मोहकर्मका उदयका अभावरूप शांतपरिणाम अर क्षमा क्रोधका अभाव

रूप उत्तमक्षमा अर दम कहिये इंद्रियनिकूं विषयनिमैं न प्रवर्त्तावनां इनि भावनिकरि युक्त है बहुरि कैसी है शरीरसंस्कारवर्जिता कहिये स्नानादिक करि शरीर का संवारनां ताकरि रहित है, बहुरि रूक्ष कहिये तैलादिकका मर्दन शरीरकै जामैं नांही है, बहुरि कैसी है मद राग द्वेष इनिकरि रहित है, ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमतके भेपी क्रोधादिकरूप परिणमैं हैं शरीरकूं संवारि सुंदर राखैं हैं इंद्रियनिके विषय सेवैं हैं अर आपकूं दीक्षासहित मानै हैं सो वै तो गृहस्थतुल्य हैं अतीत कहाय उलटा मिथ्यात्व दृढ करैं हैं; जैनदीक्षा ऐसी है सो सत्यार्थ है याकूं अंगीकार करैं ते सांचे अतीत हैं ॥ ५२ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

गाथा—विवरीयमूढभावा पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता।
सम्मत्तगुणविसुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५३ ॥

संस्कृत—विपरीतमूढभावा प्रणष्टकर्माष्टा नष्टमिथ्यात्वा।
सम्यक्त्वगुणविशुद्धा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥५३॥

अर्थ—बहुरि कैसी है प्रव्रज्या–विपरीत भया है दूरि भया है मूढभाव कहिये अज्ञानभाव जाके, अन्यमती आत्माका स्वरूप सर्वथा एकांतकरि अनेक प्रकार न्यारे न्यारे कहि वाद करैं हैं तिनिकै आत्माका स्वरूपविषैं मूढभाव है जैनी मुनिनिकै अनेकांततैं साध्या हुवा यथार्थज्ञान है तातैं मूढभाव नांहीं है, बहुरि कैसी है प्रणष्ट भया है मिथ्यात्व जामैं जैनदीक्षामैं अतत्त्वार्थश्रद्धानरूप मिथ्यात्वका अभाव है याहीतैं सम्यक्त्वनामा गुणकरि विशुद्ध है निर्मल है सम्यक्त्वसहित दीक्षामैं दोष नांही रहै है; ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥ ५३ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

गाथा—जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा ।
भावंति भव्वपुरिसा कम्मक्खयकारणे भणिया ॥५४॥

संस्कृत—जिनमार्गे प्रव्रज्या षट्संहननेषु भणिता निर्ग्रंथा ।
भावयंति भव्यपुरुषाः कर्मक्षयकारणे भणिता ॥५४॥

अर्थ—प्रव्रज्या है सो जिनमार्गविषैं छह संहननवाले जीवकैं होनां कह्या है निर्ग्रंथस्वरूप है सर्वपरिग्रहतैं रहित यथाजातस्वरूप है याकूं भव्यपुरुष हैं ते भावैं हैं ऐसी प्रव्रज्या कर्मका क्षयका कारण कही है ॥

भावार्थ—वज्र ऋषभनाराच आदि छह शरीरके संहनन कहे हैं तिनिमैं सर्वहीमैं दीक्षा होनां कह्या है सो जे भव्यपुरुष हैं ते कर्मक्षयका कारण जांनि याकूं अंगीकार करौ । ऐसा नांही है—जो दृढ संहनन वज्रऋषभ आदिक हैं तिनिहीमैं होय अर स्फाटिक संहननमैं न होय है, ऐसी निर्ग्रंथरूप दीक्षा स्फाटिक संहननविषैं भी होय है ॥ ५४ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

गाथा—तिलतुसमत्तणिमित्तसम बाहिरगंथसंगहो णत्थि ।
पव्वज्ज हवइ एसा जह भणिया सव्वदरसीहिं ॥५५॥

संस्कृत—तिलतुषमात्रनिमित्तसमः बाह्यग्रंथसंग्रहः नास्ति ।
प्रव्रज्या भवति एषा यथा भणिता सर्वदर्शिभिः ॥५५॥

अर्थ—जिस प्रव्रज्याविषैं तिलके तुषमात्रका संग्रहका कारण ऐसा भावरूप इच्छानामा अंतरंग परिग्रह बहुरि तिस तिलके तुस मात्र बाह्य परिग्रहका संग्रह नांही ऐसी प्रव्रज्या जैसैं सर्वज्ञदेव कही है सो ही है, अन्य प्रकार प्रव्रज्या नाहीं है ऐसा नियम जाननां । श्वेतांबर आदि कहैं हैं जो अपवादमार्गमैं वस्त्रादिकका संग्रह साधुकै कह्या है सो सर्वज्ञके

सूत्रमैं तौ कह्या है नांही तिननैं काल्पित सूत्र बनाये हैं तिनिमैं कह्या है सो कालदोष है ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—उवसग्गपरिसहसहा णिज्जणदेसेहि णिच्च अत्थेइ।
सिल कट्टे भूमितले सव्वे आरुहइ सव्वत्थ ॥ ५६ ॥

संस्कृत—उपसर्गपरीषहसहा निर्जनदेशे हि नित्यं तिष्ठति।
शिलायां काष्ठे भूमितले सर्वाणि आरोहति सर्वत्र ॥५६॥

अर्थ—कैसी है प्रव्रज्या—उपसर्ग कहिये देव मनुष्य तिर्यञ्च अचेतनकृत उपद्रव अर परीषह कहिये दैवकर्मयोगतैं आये जे बाईस परीषह तिनिकूं समभावनितैं सहना जामैं ऐसी प्रव्रज्यासहित मुनि हैं ते जहां अन्य जन नांही ऐसा निर्जन वनादिक प्रदेश तहां सदा तिष्ठैं हैं, तहां भी शिलातल काष्ट भूमितलविषैं तिष्ठैं इनि सर्वेही प्रदेशनिकूं आरोहणकरि बैठें सोवैं, सर्वत्र कहनेतैं वनमैं रहैं अर किंचित्काल नगरमें रहैं तौ ऐसेही ठिकानैं रहैं ॥

भावार्थ—जैनदीक्षावाले मुनि उपसर्गपरीषहमैं समभाव रहैं अर जहां सोवैं बैठैं तहां निर्जन प्रदेशमैं शिला काष्ट भूमि ही विषैं बैठैं सोवैं, ऐसा नांही जो अन्यमतके भेषीकी ज्यों स्वच्छन्द प्रमादी रहैं, ऐसैं जाननां ॥ ५६ ॥

आगैं अन्य विशेष कहै है;—

गाथा—पसुमहिलसंढसंगं कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ।
सज्झायझाणजुत्ता पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५७ ॥

संस्कृत—पशुमहिलापंढसंगं कुशीलसंगं न करोति विकथाः।
स्वाध्यायध्यानयुक्ता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥५७॥

अर्थ—जिस प्रव्रज्याविषैं पशु तिर्यंच महिला (स्त्री) पंढ (नपुंसक) इनिका संग तथा कुशील (व्यभिचारी) पुरुषका संग न करै है बहुरि स्त्री राजा भोजन चोर इत्यादिककी कथा ते त्रिकथा तिनिकूं न करै, तौ कहा करै ? स्वाध्याय कहिये शास्त्र जिनवचननिका पठन पाठन अर ध्यान कहिये धर्म शुक्ल ध्यान इनिकरि युक्त रहै; प्रव्रज्या ऐसी जिनदेव कही है ॥

भावार्थ—जैनदीक्षा लेकरि कुसंगति करै विकथादिक करै प्रमादी रहै तौ दीक्षाका अभाव होजाय यातैं कुसंगति निषिद्ध है अन्य भेषकी ज्यों यह भेष नांही है ये मोक्षमार्ग है अन्य संसारमार्ग हैं ॥ ५७ ॥

आगैं फेरि विशेष कहैं हैं;—

गाथा—तववयगुणेहिं सुद्धा संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य।
सुद्धा गुणेहिं सुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५८ ॥

संस्कृत—तपोव्रतगुणैः शुद्धा संयमसम्यक्त्वगुणविशुद्धा च।
शुद्धा गुणैः शुद्धा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ५८ ॥

अर्थ—प्रव्रज्या जिनदेव ऐसी कही है—कैसी है–तप कहिये बाह्य अभ्यंतर बारह प्रकार अर व्रत कहिये पांच महाव्रत अर गुण कहिये इनिके भेदरूप उत्तरगुण तिनिकरि शुद्ध है, बहुरि कैसी है–संयम कहिये इन्द्रिय मनका निरोध षट्कायका जीवनिकी रक्षा सम्यक्त्व कहिये तत्वार्थ श्रद्धान लक्षण निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन बहुरि इनिका गुण कहिये मूलगुण तिनिकरि शुद्ध अतीचार रहित निर्मल है, बहुरि जे प्रव्रज्याके गुण कहे तिनि करि शुद्ध है, भेषमात्र ही नांही; ऐसी शुद्ध प्रव्रज्या कही है इनि गुणनि विना प्रव्रज्या शुद्ध नांही है ॥

भावार्थ—तप व्रत सम्यक्त्व इनिकरि सहित अर इनिके मूलगुण अर अतीचारनिका सोधनां जामैं होय ऐसी दीक्षा शुद्ध है, अन्य वादी तथा श्वेतांबरादि जैसैं तैसैं कहै हैं सो दीक्षा शुद्ध नांही ॥ २५ ॥

आगैं प्रव्रज्याका कथनकूं संकोचै है;—

गाथा—एवं आयत्तणगुणपज्जत्ता बहुविसुद्धसम्मत्ते ।
णिग्गंथे जिणमग्गे संखेवेणं जहाखादं ॥ ५९ ॥

संस्कृत—एवं [1]आयतनगुणपर्याप्ता बहुविशुद्धसम्यक्त्वे ।
निर्ग्रंथे जिनमार्गे संक्षेपेण यथाख्यातम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार आयतन जो दीक्षाका ठिकानां निर्ग्रंथ मुनि ताके गुण जे ते हैं तिनकरि पज्जत्ता कहिये परिपूर्ण, बहुरि अन्य भी जे वहुत दीक्षामैं चाहिये ते गुण जामैं होय ऐसी प्रव्रज्या जिनमार्गमैं जैसैं ख्यात कहिये प्रसिद्ध है तैसैं संक्षेपकरि कही, कैसा है जिनमार्ग—विशुद्ध है सम्यक्त्व जामैं अतीचार रहित सम्यक्त्व जामैं पाइये है बहुरि कैसा है जिनमार्ग—निर्ग्रंथरूप है जामैं बाह्य अंतर परिग्रह नांही है ॥

भावार्थ—ऐसी पूर्वोक्त प्रव्रज्या निर्मल सम्यक्त्वसहित निर्ग्रंथरूप जिनमार्गविषैं कही है, अन्य नैयायिक वैशेषिक सांख्य वेदान्त मीमांसक पातंजलि बौद्ध आदिक मतमैं नांही है, बहुरि कालदोषतैं जैनमततैं च्युत भये अर जैनी कहावैं ऐसे श्वेतांबर आदिक तिनिमैं भी नांही है ॥५९॥

ऐसैं प्रव्रज्याका स्वरूपका वर्णन किया।

आगैं बोधपाहुडकूं संकोचता संता आचार्य कहै हैं;—

गाथा—रूवत्थं सुद्धत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं ।
भव्वजणबोहणत्थं छक्कायहियंकरं उत्तं ॥ ६० ॥

---

(१) संस्कृत सटीक प्रतिमें 'आयतन' इसकी संस्कृत 'आत्मत्व' इस प्रकार है।

संस्कृत—रूपस्थं शुद्धयर्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितम्।
भव्यजनबोधनार्थं षट्कायहितंकरं उक्तम् ॥ ६० ॥

अर्थ—शुद्ध है अंतरंग भावरूप अर्थ जामें ऐसा रूपस्थ कहिये बाह्यस्वरूप मोक्षमार्ग जैसा जिनमार्गविषें जिनदेव कह्या है तैसा छह कायके जीवनिका हित करनेंवाला मार्ग भव्यजीवानिके संबोधनेंके अर्थि कह्या है ऐसा आचार्यनें अपना अभिप्राय प्रकट किया है ॥

भावार्थ—इस बोधपाहुडविषें आयतन आदि प्रव्रज्यापर्यन्त ग्यारह स्थल कहे तिनिका बाह्य अंतरंग स्वरूप जैसें जिनदेवनें जिनमार्गमैं कह्या तैसैं कह्या है। कैसा है यह रूप—छह कायके जीवनिका हित करनेंवाला है एकेंद्रिय आदि असैंनी पर्यन्त जीवनिकी रक्षाका जामें अधिकार है बहुरि सैंनी पंचेंद्रिय जीवनकी रक्षाभी करावै है अर मोक्षमार्गका उपदेश करि संसारका दुःख मेटि मोक्षकूं प्राप्त करै है ऐसा मार्ग भव्य-जीवनिके संबोधनेंके अर्थि कह्या है, जगतके प्राणी आनादितैं लगाय मिथ्यामार्गमैं प्रवर्ति संसारमैं भ्रमैं हैं सो दुःख मेटनेकूं आयतन आदि ग्यारह स्थानक धर्मके ठिकानेंका आश्रय लेहैं ते ठिकानें अन्यथा स्वरूप स्थापि तिनितैं सुख लिया चाहैं है सो यथार्थविना सुख कहां तातैं आचार्य दयालु होय जैसैं सर्वज्ञ भाषे तैसैं आयतन आदिकका स्वरूप संक्षेप करि यथार्थ कह्या है ताकूं बांचो पढ़ो धारण करो याकी श्रद्धा करो इनि स्वरूप प्रवर्त्तो यातैं वर्तमानमैं सुखी रहो अर आगामी संसार दुःखतैं छूटि परमानन्दस्वरूप मोक्षकूं प्राप्त होहू ऐसा आचार्यका कह-नेंका अभिप्राय है।

इहां कोई पूछै जो—इस बोधपाहुडमैं धर्मव्यवहारकी प्रवृत्तिके ग्यारह स्थानक कहे तिनिका विशेषण किया जो छह कायके जीवनिके हितके

करनेवाले ये हैं सो अन्यमती इनिकूं अन्यथा स्थापि प्रवृत्ति करैं हैं ते हिंसारूप हैं अर जीवनिके हित करनेंवाले नांही तहां ये ग्यारह ही स्थानक संयमी मुनि अर अरहंत सिद्धहींकूं कहे तहां ये तौ छह कायके जीवनिके हित करनेवालेंही हैं तातैं पूज्य हैं यह तौ सत्य है, अर जहां वसैं ऐसे आकाशके प्रदेशरूप क्षेत्र तथा पर्वतकी गुफा वनादिक तथा अकृत्रिम चैत्यालय ये स्वयमेव वणि रहे हैं तिनिकूं भी प्रयोजन अर निमित्त विचार उपचारमात्र करि छह कायके जीवनिके हित करनेवाले कहिये तौ विरोध नांही जातै ये प्रदेश जड है ते बुद्धिपूर्वक काहूका बुरा भला करैं नांही तथा जडकूं सख दुःख आदि फलका अनुभव नांही तातैं ये भी व्यवहार करि पूज्य है जातैं अरहंतादिक जहां तिष्ठें वे क्षेत्र निवास आदिक प्रशस्त हैं तातैं तिनि अरहंतादिकै आश्रयतें ये क्षेत्रादिकभी पूज्य हैं वहुरि गृहस्थ जिनमंदिर बनावै वस्तिका प्रतिमा बनावै प्रतिष्टा पूजा करै तामैं तौ छह कायके जीवनिकी विराधना होय है सो ये उपदेश अर प्रवृत्तिकी बाहुल्यता कैसैं हैं।

ताका समाधान ऐसा जो—गृहस्थ अरहंत सिद्ध मुनिनिका उपसक है सो ये जहां साक्षात् होय तहां तौ तिनिकी वंदनां पूजनां करैही है, अर ये साक्षात् नांहीं तहां परोक्ष संकल्पमैं लेय वंदनां पूजनां करै तथा तिनिका वसनेंका क्षेत्र तथा ये मुक्तिप्राप्त भये तिस क्षेत्रमैं तथा अकृत्रिम चैत्यालयमैं तिनिका संकल्प करि वंदै पूजै यामैं अनुराग विशेष सूचै है, वहुरि तिनिकी मुद्रा प्रतिमा तदाकार बनावै अर तिसकूं मंदिर बनाय प्रतिष्ठा करि स्थापैं तथा नित्य पूजन करै यामैं अत्यंत अनुराग सूचै है तिस अनुरागतैं विशिष्ट पुण्यवंध होय है अर तिस मंदिरमैं छह कायके जीवनिका हितकी रक्षाका उपदेश होय है तथा निरंतर सुननेंवाला धारनेंवालाकै अहिंसा धर्मकी श्रद्धा दृढ होय है तथा तिनिकी तदाकार

प्रतिमा देखनेवालाकै शांत भाव होयहै ध्यानकी मुद्राका स्वरूप जान्या जाय है वीतराग धर्मतैं अनुराग विशेष होनें तैं पुण्यबंध होय है तातैं इनिकूं भी छह कायके जीवनिके हितके करनेंवाले उपचार करि कहिये, अर जिनमंदिर वस्तिका प्रतिमा बनावै तामैं तथा पूजा प्रतिष्ठा करनेंमें आरंभ होयहै तामैं किछू हिंसा भी होयहै सो ऐसा आरंभ तौ गृहस्थका कार्य है यामैं गृहस्थकूं अल्प पाप कह्याहै पुण्य बहुत कह्याहै जातैं गृहस्थकी पदवीमैं न्यायकार्य करि न्यायपूर्वक धन उपार्जन करनां रहनेंकूं जायगा बनावनां विवाहादिक करनां यत्नपूर्वक आरंभ करि आहारादिक आप करि अर खानां इत्यादिक कार्यनिमैं यद्यपि हिंसा होयहै तोऊ गृहस्थकूं इनिका महापाप न कहिये, गृहस्थकै तौ महापाप मिथ्यात्वका सेवनां अन्याय चोरी आदिकरि धन उपार्जनां त्रस जीवनिकूं मारि मांस आदि अभक्ष्य खानां परस्त्री सेवा करनां ये महापाप हैं, अर गृहस्थाचार छोड़ि मुनि होय तब गृहस्थके न्यायकार्य भी अन्याय ही हैं, अर मुनिकै भी आहार आदिकी प्रवृत्तिमैं किछू हिंसा होय है ताकरि मुनिकूं हिंसक न कहिये तैसैं ही गृहस्थकै न्यायपूर्वक पदवीयोग्य आरंभके कार्यनिमैं अल्प पापही कहिये, तातैं जिनमंदिर वस्तिका पूजा प्रतिष्ठाके कार्यनिमैं आरंभका अल्प पापहै, अर मोक्षमार्गमैं प्रवर्त्तनेंवालेनितैं अति अनुराग होयहै अर तिनिकी प्रभावना करै है तिनिकूं आहारदानादिक दे है तिनिका वैयावृत्त्यादि करै है सो ये सम्यक्त्वका अंग हैं अर महान पुण्यका कारण है तातैं गृहस्थकूं सदा करनां उचितहै, अर गृहस्थ होय ये कार्य न करै तौ जानिये याकै धर्मानुराग विशेष नांहीं।

इहां फेरि कोई कहै जो गृहस्थकूं सरै नांही ते तौ करैही करै अर धर्मपद्धतिमैं आरंभका कार्यकरि पाप क्यौं मिलावै सामायिक प्रतिक्रमण प्रोषध आदिकरि पुण्य उपजावै। ताकूं कहिये—जो तुम ऐसैं कहो

जहां तुम्हारे परिणामकी तौ ऐसी जाति नांही, केवल बाह्य क्रिया मात्रमैं ही पुण्य समझौ हौ बाह्य बहु आरंभी परिग्रहीका मन सामायिक प्रतिक्रमण आदि निरारंभ कार्यनिमैं विशेष लागै नांही है यह अनुभव गोचर है, सो तेरै अपनें भावनिका अनुभव नांही केवल बाह्य सामायिकादि निरारंभ कार्यका भेषधारि बैठैतौ किछू विशिष्ट पुण्य है नांही शरीरादिक बाह्य वस्तु तौ जड है केवल जडकी क्रिया फल तौ आत्माकूं लागै नांही अर अपनें भाव जेता अंसा बाह्य क्रियामैं लागै तेता अंसा शुभाशुभ फल आपकूं लागै है, ऐसैं विशिष्ट पुण्य तौ भावनिकै अनुसार है, बहुरि आरंभी परिग्रहीका भाव तौ पूजा प्रतिष्ठादिक बड़े आरंभमैंही विशेष अनुराग सहित लागै है, अर जो गृहस्थाचारके वड़े आरंभतैं विरक्त होगा सो त्याग करि अपनी पदवी बधावैगा तब गृहस्थाचारके बड़े आरंभ छोडैगा तब ताही रीति वडे आरंभ धर्म प्रवृत्तिकेभी पदवीकी रीति घटावैगा मुनि होगा तब सर्वही आरंभ काहेकूं करैगा, तातैं मिथ्यादृष्टि बाह्यबुद्धि जे बाह्य कार्यमात्रही पुण्य पाप मोक्षमार्ग समझै है तिनिका उपदेश सुनि आपकूं अज्ञानी न होनां, पुण्य पापका बंधमैं शुभाशुभ भावही प्रधान हैं अर पुण्य पाप रहित मोक्षमार्ग है तामैं सम्यग्दर्शनादिकरूप आत्म परिणाम प्रधान हैं अर धर्मानुराग है सो मोक्षमार्गका सहकारी है अर धर्मानुरागके तीव्र मंदके भेद बहुत हैं तातैं अपनें भावनिकूं यथार्थ पहचानि अपनी पदवी सामर्थ्य पहचानि समझिकरि श्रद्धानज्ञान प्रवृत्ति करनीं अपनां भला बुरा अपनें भावनिकै आधीन है बाह्य परद्रव्य तौ निमित्त मात्र है, उपादान कारण होय तौ निमित्तभी सहकारी होय अर उपादान न होय तौ निमित्त कछूभी न करै है, ऐसैं इस बोधपाहुडका आशय जाननां। याकूं नीकैं समझि आयतनादिक जैसैं कहे तैसैं अर इनिका व्यवहारभी बाह्य तैसाही अर चैत्यगृह प्रतिमा जिनबिंब जिन-

मुद्रा आदि धातु पाषाणादिकका भी व्यवहार तैसाही जानि श्रद्धान करनां अर प्रवृत्ति करनीं। अन्यमती अनेक प्रकार स्वरूप बिगाडि प्रवृत्ति करैं हैं तिनिकूं बुद्धिकल्पित जानि उपासना न करनीं। इस द्रव्य व्यवहारका प्ररूपण प्रव्रज्याके स्थलमैं आदितैं दूसरी गाथामैं बिंब[1]चैत्यालयत्रिक अर जिनभवन ये भी मुनिनिके ध्यावनें योग्य हैं ऐसैं कह्या है सो जे गृहस्थ इनिकी प्रवृत्ति करैं हैं तब ते मुनिनिकै ध्यावनें योग्य होय हैं तातैं जिनमन्दिर प्रतिमा पूजा प्रतिष्ठा आदिकके सर्वथा निषेध करनेंवाले सर्वथा एकान्तीकी ज्यौं मिथ्यादृष्टि हैं, तिनिकी संगति न करनीं॥

आगैं आचार्य इस बोधपाहुडका कहनां अपनी बुद्धिकल्पित नाहीं है पूर्वाचार्यनिके अनुसार कह्या है ऐसैं कहै हैं।

गाथा—सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स॥६१॥

संस्कृत—शब्दविकारो भूतः भाषासूत्रेषु यज्जिनेन कथितम्।
तत् तथा कथितं ज्ञातं शिष्येण च भद्रबाहोः॥६१॥

अर्थ—शब्दका विकारतैं उपज्या ऐसा अक्षररूप परिणया भाषासूत्रनिविषैं जिनदेवनैं कह्या सोही श्रवणमैं अक्षररूप आया बहुरि जैसा जिनदेव कह्या तैसा परंपराकरि भद्रबाहुनाम पंचम श्रुतकेवलीनैं जान्यां अपने शिष्य विशाखाचार्य आदेकूं कह्या सो तिनिनैं जान्यां सोही अर्थरूप विशाखाचार्यकी परंपरायतैं चल्या आया सोही अर्थ आचार्य कहै है हमनैं कह्या है सो हमारी बुद्धिकरि कल्पित न कह्या है; ऐसा अभिप्राय है॥ ६१॥

आगैं भद्रबाहु स्वामीकी स्तुतिरूप वचन कहै है—

१ गाथामें बिंबकी जगह 'वच' ऐसा पाठ है॥

गाथा—बारस अंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयओ ॥६२॥

संस्कृत—द्वादशांगविज्ञानः चतुर्दशपूर्वांगविपुलविस्तरणः।
श्रुतज्ञानिभद्रबाहुः गमकगुरुः भगवान् जयतु ॥६२॥

अर्थ—भद्रबाहु नाम आचार्य है सो जयवंत होहु कैसे हैं बारह अंगनिका है विज्ञान जिनिकूं, बहुरि कैसे है चौदह पूर्वनिका है विपुल विस्तार जिनिकै याहीतैं कैसे है श्रुतज्ञानी है पूर्ण भावज्ञानसहित अक्षरात्मक श्रुतज्ञान जिनिकै पाइये है, बहुरि कैसे है 'गमक गुरु' हैं जे सूत्रके अर्थकूं पाय जैसाका तैसा वाक्यार्थ करै तिनिकूं गमक कहिये तिनिके गुरु हैं तिनिमैं प्रधान हैं, बहुरि कैसे हैं भगवान हैं सुरासुरनिकरि पूज्य है, ऐसे हैं सो जयवंत होऊ। ऐसैं कहनेमैं स्तुतिरूप तिनिकूं नमस्कार सूचै है 'जयति' धातु सर्वोत्कृष्ट अर्थमैं है सो सर्वोत्कृष्ट कहनेतैं नमस्कारही आवै ॥

भावार्थ—भद्रबाहुस्वामी पांचवा श्रुतकेवली भये तिनिकी परंपरायतैं शास्त्रका अर्थ जांनि यह बोधपाहुड ग्रंथ रच्या है तातैं तिनिकूं अंतमंगल आर्थैं आचार्य स्तुतिरूप नमस्कार किया है। ऐसैं बोधपाहुड समाप्त किया है ॥ ६२ ॥

छप्पय।

प्रथम आयतन दुतिय चैत्यगृह तीजी प्रतिमा
दर्शन अर जिनबिंब छठो जिनमुद्रा यतिमा।
ज्ञान सातमूं देव आठमूं नवमूं तीरथ
दसमूं है अरहंत ग्यारमूं दीक्षा श्रीपथ ॥

इम परमारथ मुनिरूप सति अन्यभेष सब निंद्य हैं।
व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनिकी वंद्य है ॥१॥

दोहा।

भयो वीर जिनबोध यहु, गौतमगणधर धारि।
वरतायो पंचमगुरू, नमूं तिनहिं मद छारि ॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित बोधपाहुडकी
जयपुरनिवासि पं० जयचन्द्रछावड़ाकृत
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥ ४ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ भावपाहुड ।

(५)

——:०:——

आगैं भावपाहुडकी वचनिका लिखिये है;—

दोहा ।

परमातमकूं वंदिकरि शुद्धभावकरतार ।

करूं भावपाहुडतणीं देशवचनिका सार ॥१॥

ऐसैं मंगलपूर्वक प्रतिज्ञाकरि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृतभावपाहुड गाथा-बंध ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है। तहां प्रथम आचार्य इष्टकै नमस्काररूप मंगलकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञाका सूत्र कहै है;—

गाथा—णमिऊण जिणवरिंदे णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे ।

वोच्छामि भावपाहुडमवसेसे संजदे सिरसा ॥ १ ॥

संस्कृत—नमस्कृत्य जिनवरेन्द्रान् नरसुरभवनेन्द्रवंदितान् सिद्धान् ।

वक्ष्यामि भावप्राभृतमवशेषान् संयतान् शिरसा ॥१॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो मैं भावपाहुड नाम ग्रंथ है ताहि कहूंगा पूर्वैं कहाकरि—जिनवरेन्द्र कहिये तीर्थंकर परमदेव बहुरि सिद्ध कहिये अष्टकर्मका नाशकरि सिद्धपदकूं प्राप्त भये बहुरि अवशेष संयत कहिये आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु ऐसैं पंच परमेष्ठी तिनहिं मस्तककरि वंदना करिकै कहूंगा; कैसें हैं पंच परमेष्ठी—नर कहिये मनुष्य सुर कहिये स्वर्गवासी देव भवन कहिये पातालवासी देव इनिके इन्द्र तिनिकरि वंदनें योग्य हैं ॥

भावार्थ—आचार्य भावपाहुड ग्रंथ रचैं हैं सो भाव प्रधान पंचपरमेष्ठी हैं तिनिकूं आदिमैं नमस्कार युक्त है जातैं जिनवरेंद्र तौ ऐसैं हैं–जिन कहिये गुणश्रेणी निर्जराकरि युक्त ऐसे अविरतसम्यग्दृष्टी आदिक तिनिमैं वर कहिये श्रेष्ठ गणधरादिक तिनिमैं इन्द्र तीर्थंकर परमदेव है सो गुणश्रेणी निर्जरा शुद्धभावहीतैं होय है सो तीर्थंकरभावके फलकूं पहुंचे घातिकर्मका नाशकरि केवलज्ञान पाया, बहुरि तैसैंही सर्वकर्मका नाशकरि परम शुद्ध भावकूं पाय सिद्ध भये, बहुरि आचार्य उपाध्याय शुद्ध भावके एकदेशकूं पाय पूर्णताकूं आप साधैं हैं अन्यकूं शुद्ध भावकी दीक्षा शिक्षा दे हैं, बहुरि साधु हैं ते भी तैसैंही शुद्ध भावकूं आप साधैं हैं बहुरि शुद्ध भावहीकि माहात्म्यकरि तीन लोकके प्राणीनिकरि पूजनेंयोग्य वंदनेयोग्य कहै हैं; तातैं भावप्राभृतकी आदिविषैं इनिकूं नमस्कार युक्त है बहुरि मस्तककरि नमस्कार करनें मैं सर्व अंग आय गये जातैं मस्तक अंगनिमैं उत्तम है, बहुरि आप नमस्कार किया तब अपनां भावपूर्वक भयाही तब 'मन वचन काय' तीनूंही आय गये ऐसैं जाननां ॥ १ ॥

आगैं कहै है जो लिंग द्रव्यभाव करि दोय प्रकार है तिनिमैं भाव-लिंग परमार्थ है;—

गाथा—भावो हि पढमलिंगं ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।
भावो कारणभूदो गुणदोसाणं जिणा विंति ॥२॥

संस्कृत—भावः हि प्रथमलिंगं न द्रव्यलिंगं च जानीहि परमार्थम्।
भावो कारणभूतः गुणदोषाणां जिना विदन्ति ॥२॥

अर्थ—भाव है सो प्रथमलिंग है याहीतैं हे भव्य! तू द्रव्यलिंग है ताहि परमार्थरूप मति जाणैं जातैं गुण अर दोष इनिका कारणभूत भावही है ऐसैं जिन भगवान कहैं हैं ॥

भावार्थ—जातैं गुण जे स्वर्ग मोक्षका होनां अर दोष जे नरकादिक संसारका होनां इनिका कारण भगवान भावहीकूं कह्या है यातैं कारण होय सो कार्यकै पहलैं प्रवर्त्तै सो इहां मुनि श्रावककै द्रव्य लिंगकै पहलै भावलिंग होय तौ सांचा मुनि श्रावक होय है तातैं भावलिंगही प्रधान है प्रधान होय सोही परमार्थ है, तातैं द्रव्यलिंगकूं परमार्थ न जाननां ऐसैं उपदेश किया है।

इहां कोई पूछै—भावस्वरूप कहा है? ताका समाधान—जो भावका स्वरूप तौ आचार्य आगैं कहसी तथापि इहांभी किछू कहिये है—या लोकमैं षट् द्रव्य हैं तिनिमैं जीव पुद्गलका वर्त्तन प्रकट देखनेंमैं आवै है—तहां जीव तौ चेतनास्वरूप है अर पुद्गल स्पर्श रस गंध वर्ण स्वरूप जड है इनिकी अवस्थातैं अवस्थांतररूप होनां ऐसा परिणामकूं भाव कहिये है तहां जीवका स्वभाव परिणामरूप भाव तौ दर्शन ज्ञान है अर पुद्गल कर्मके निमित्ततैं ज्ञानमैं मोह राग द्वेष होनां सो विभाव भाव है बहुरि पुद्गलके स्पर्शतैं स्पर्शान्तर रसतैं रसान्तर इत्यादि गुणतैं गुणान्तर होनां सो तौ स्वभावभाव है अर परमाणुतैं स्कंध होनां तथा स्कंधतैं अन्यस्कंध होनां तथा जीवके भावके निमित्ततैं कर्मरूप होनां ये विभाव भाव है, ऐसैं इनिकै परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव प्रवर्तै है। तहां पुद्गल तौ जड है ताके नैमित्तिकभावतैं किछू सुख दुःख आदि नांही अर जीव चेतन है याके निमित्ततैं भाव होय तिनितैं सुखदुःख आदि प्रवर्त्तै है तातैं जीवकूं स्वभाव भावरूप रहनेंका अर नैमित्तिक-भावरूप न प्रवर्त्तनेंका उपदेश है। अर जीवकै पुद्गल कर्मके संयोगतैं देहादिक द्रव्यका संबंध है सो इस बाह्यरूपकूं द्रव्य कहिये सो भावतैं द्रव्यकी प्रवृत्ति होय है ऐसैं द्रव्यकी प्रवृत्ति होय है। ऐसैं द्रव्य भावका स्वरूप जाणि स्वभावमैं प्रवर्त्तै विभावमैं न प्रवर्त्तै ताकै परमानंद सुख होय

है, विभाव रागद्वेष मोहरूप प्रवर्त्तै ताकै संसारसंबंधी दुःख होय हैं, अर द्रव्यरूप है सो पुद्गलका विभाव है या संबंधी जीवकै दुःख सुख होय है तातैं भावही प्रधान है, ऐसैं न होतैं केवली भगवानकै भी सांसारिक सुख दुःखकी प्राप्ति आवै, सो है नांही। ऐसैं जीवके ज्ञानदर्शन अर रागद्वेष मोह ये तौ स्वभाव विभाव हैं अर पुद्गलके स्पर्शादिक अर स्कंधादिक स्वभाव विभाव हैं तिनिमैं जीवका हित अहित भाव प्रधान है पुद्गलद्रव्यसंबंधी प्रधान नांही, बाह्य द्रव्य निमित्तमात्र है, उपादान विना निमित्त किछू करै नांही; ये तौ सामान्यपणैं स्वभावका स्वरूप है बहुरि याहीका विशेष सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तौ जीवका स्वभाव भाव हैं तिनिमैं सम्यग्दर्शन भाव प्रधान है याविनां सर्व बाह्य क्रिया मिथ्या-दर्शन ज्ञान चारित्र हैं सो विभाव हैं सो संसारका कारण है, ऐसैं जाननां ॥ २ ॥

आगैं कहै है जो बाह्य द्रव्य निमित्त मात्र है सो याका अभाव जीवकै भावकी विशुद्धिताका निमित्त जाणि बाह्यद्रव्यका त्याग कीजिये है;—

गाथा—भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
बाहिरचाओ विहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स ॥ ३ ॥

संस्कृत—भावविशुद्धिनिमित्तं बाह्यग्रंथस्य क्रियते त्यागः।
बाह्यत्यागः विफलः अभ्यन्तरग्रंथयुक्तस्य ॥ ३ ॥

अर्थ—बाह्य परिग्रहका त्याग कीजिये है सो भावकी विशुद्धि ताकै अर्थि कीजिए है बहुरि अभ्यंतर परिग्रह जो रागादिक तिनिकरि युक्त है ताकै बाह्य परिग्रहका त्याग निष्फल है॥

भावार्थ—अंतरंगभावविना बाह्य त्यागादिककी प्रवृत्ति निष्फल है यह प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

आगैं कहै है—जो कोट्यां भव विषैं तप करै तौऊ भाव विना सिद्धि नांही;—

गाथा—भावरहिओ ण सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ।
जम्मंतराइ बहुसो लंबियहत्थो गलियवत्थो ॥४॥

संस्कृत—भावरहितः न सिद्ध्यति यद्यपि तपश्चरति कोटिकोटी।
जन्मान्तराणि बहुशः लंवितहस्तः गलितवस्त्रः ॥४॥

अर्थ—जो बहुत जन्मांतरतांई कोडाकोडि संख्या काल तांई हस्त लंबायमानकरि वस्त्रादिक त्यागकरि तपश्चरण करै तौऊ भावरहितकै सिद्धि नांही होय है ॥

भावार्थ—भावमैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र रूप विभाव रहित सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप स्वभावकै विषैं प्रवृत्ति न होय तौ कोडा कोडि भव तांई कायोत्सर्गकरि नग्न मुद्रा धरि तपश्चरण करै तौऊ मुक्तिकी प्राप्ति न होय, ऐसैं भावमैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप भाव प्रधान है तिनिमैंभी सम्यग्दर्शन प्रधान है जातैं या विनां ज्ञान चारित्र मिथ्या कहे हैं, ऐसैं जाननां ॥ ४ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करै है;—

गाथा—परिणामम्मि असुद्धे गंथे मुञ्चेइ बाहरे य जई।
बाहिरगंथच्चाओ भावविहूणस्स किं कुणइ ॥ ५ ॥

संस्कृत—परिणामे अशुद्धे ग्रंथान् मुंचति बाह्यान् च यदि।
बाह्यग्रंथत्यागः भावविहीनस्य किं करोति ॥ ५ ॥

अर्थ—जो मुनि होय परिणाम अशुद्ध होतैं बाह्य ग्रंथकूं छोड़ै तौ बाह्य परिग्रहका त्याग है सो भावरहित मुनिकै कहा करै? कछूभी न करै ॥

भावार्थ—जो बाह्य परिग्रहकूं छोड़ि मुनि होय अर परिग्रहपरिणामरूप अशुद्ध होय अभ्यंतर परिग्रह न छोडै तौ बाह्य त्याग किछू कल्याणरूप फल न करिसकै है, सम्यग्दर्शनादिभाव विना कर्मनिर्जरारूप कार्य न होय है ॥ ५ ॥

पहली गाथातैं यामैं यह विशेष हैं जो मुनिपदभी ले अर परिणाम उज्ज्वल न रहै आत्मज्ञानकी भावना न रहै तौ कर्म कटै नांही ॥

आगैं उपदेश करै है जो भावकूं परमार्थ जाणि याहिकूं अंगीकार करौ—

गाथा—जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण ।
पंथिय ! सिवपुरिपंथं जिणउवइट्ठं पयत्तेण ॥ ६ ॥

संस्कृत—जानीहि भावं प्रथमं किं ते लिंगेन भावरहितेन ।
पथिक शिवपुरीपंथाः जिनोपदिष्टः प्रयत्नेन ॥ ६ ॥

अर्थ—हे मुने ! मोक्षपुरीका मार्ग जिनदेव प्रयत्नकरि उपदेश्या भावही है तातैं हे शिवपुरीका पथिक ! कहिये मार्ग चलनेंवाला तू भावहीकूं प्रथम जाणि परमार्थभूत जाणि, भावरहित द्रव्यमात्र लिंगकरि तेरै कहा साध्य है किछू भी नांही ॥

भावार्थ—मोक्षमार्ग जिनेश्वरदेव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र आत्मभावस्वरूप परमार्थकरि कह्या है तातैं याहिकूं परमार्थ जानि अंगीकार करनां केवल द्रव्यमात्र लिंगकरि कहा साध्य है ऐसैं उपदेश है

आगैं कहै है जो द्रव्यलिंग आदि तैं बहुत धारे तिनितैं किछू सिद्धि न भई;—

गाथा—भावरहिएण सपुरिस अणाइकालं अणंतसंसारे ।
गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिग्गंथरूवाइं ॥ ७ ॥

संस्कृत—भावरहितेन सत्पुरुष ! अनादिकालं अनंतसंसारे।
गृहीतोज्झितानि बहुशः बाह्यनिर्ग्रंथरूपाणि ॥ ७ ॥

अर्थ—हे सत्पुरुष ! अनादिकालतैं लगाय इस अनंत संसारविषै तैं भावरहित निर्ग्रंथरूप बहुत बार ग्रहण किया अर छोड्या ॥

भावार्थ—भाव जो निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तिस विना बाह्य निर्ग्रंथरूप द्रव्यलिंग संसारविषैं अनंतकालतैं लगाय बहुतवार धारे अर छोड़े तथापि किछू सिद्धि न भई चतुर्गतिविषैं भ्रमता ही रह्या ॥ ७ ॥

सो ही कहै हैं;—

गाथा—भीसणणरयगईए तिरियगईए कुदेवमणुगइए।
पत्तोसि तिव्वदुक्खं भावहि जिणभावणा जीव ! ॥

संस्कृत—भीषणनरकगतौ तिर्यग्गतौ कुदेवमनुष्यगत्योः।
प्राप्तोऽसि तीव्रदुःखं भावय जिनभावनां जीव ! ॥८॥

अर्थ—हे जीव ! तैं भीषण भयकारी नरकगति तथा तिर्यंचगति बहुरि कुदेव कुमनुष्यगतिविषैं तीव्र दुःख पाये तातैं अब तू जिनभावनां कहिये शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना भाय यातैं तेरै संसारका भ्रमण मिटै ॥

भावार्थ—आत्माकी भावना विना च्यार गतिके दुःख अनादि काल तैं संसारविषैं पाये यातैं अब हे जीव ! तू जिनेश्वरदेवका शरण ले अर शुद्धस्वरूपका बारबार भावनारूप अभ्यास करि यातैं संसारका भ्रमणतैं रहित मोक्षकूं प्राप्त होय, यह उपदेश है ॥ ८ ॥

आगैं च्यारि गतिके दुःखनिकूं विशेषकरि कहै है, तहां प्रथम ही नरकगतिके दुःखनिकूं कहै है;—

गाथा—सत्तसुणरयावासे दारुणभीसाइं असहणीयाइं।
भुत्ताइं सुइरकालं दुःक्खाइं णिरंतरं सहिय ॥ ९ ॥

संस्कृत—सप्तसु[1] नरकावासेषु दारुणभीषणानि असहनीयानि ।
भुक्तानि सुचिरकालं दुःखानि निरंतरं सोढानि ॥९॥

अर्थ—हे जीव ! तैं सात नरकभूमिनिविषैं नरक आवास जे बिले तिनिविषैं दारुण कहिये तीव्र अर भयानक अर असहनीय कहिये सहे न जाय ऐसे घणें कालपर्यन्त दुःखनिकूं निरंतरही भोग्या अर सह्या ॥

भावार्थ—नरककी पृथ्वी सात हैं तिनिमैं बिल बहुत हैं तिनिविषैं एक सागरतैं लगाय तेतीस सागरपर्यन्त तहां आयुहै जहां आयुपर्यन्त अतितीव्र दुःख यहू जीव अनंतकालतैं सहता आयाहै ॥ ९ ॥

आगैं तिर्यंचगतिके दुःखनिकूं कहै है;—

गाथा—खणणुत्तावणवालणवेयणविच्छेयणाणिरोहं च ।
पत्तोसि भावरहिओ तिरियगईए चिरं कालं ॥१०॥

संस्कृत—खननोत्तापनज्वालनवेदन[3]विच्छेदनानिरोधं च ।
प्राप्तोऽसि भावरहितः तिर्यग्गतौ चिरं कालं ॥१०॥

अर्थ—हे जीव ! तैं तिर्यंचगतिविषैं खनन उत्तापन ज्वलन वेदन व्युच्छेदन निरोधन इत्यादि दुःख बहुतकालपर्यंत पाये, कैसा भया संता–भावरहितकरि सम्यग्दर्शन आदि भावरहित भया संता ॥

भावार्थ—या जीवनैं सम्यग्दर्शनादि भाव बिनां तिर्यंचगतिविषैं चिरकाल दुःख पाये—पृथ्वीकायमैं तौ कुदाल आदि खोदनेंकरि दुःख पाये, अपकायविषैं अग्नितैं तपनां ढोलनां इत्यादिकरि दुःख पाये, तेजकायविषैं ज्वालनां बुझावनां आदिकरि दुःख पाये, पवनकायविषैं भारेतैं हलका चलनां फटनां आदिकरि दुःख पाये, वनस्पतिकायविषैं फाडनां

१–मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'सप्तसु नरकावासे' ऐसा पाठ है ।

२–मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'स्वहित' ऐसा पाठ है, 'सहिय' इसकी छायामें ।

३–मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'वेयण' इसकी संस्कृत 'व्यजन' इस प्रकार है ।

छेदनां रांधनां आदिकरि दुःख पाये, विकलत्रयविषैं अन्यतैं रुकनां अल्प आयुतैं मरनां इत्यादिकरि दुःख पाये, पंचेंद्रिय पशु पक्षी जलचर आदिविषैं परस्पर घात तथा मनुष्यादिककरि वेदना भूख तृषा रोकनां बंधन देनां इत्यादिकरि दुःख पाये, ऐसैं तिर्यंचगतिविषैं असंख्यात अनंतकालपर्यन्त दुःख पाये ॥ १० ॥

आगैं मनुष्यगतिके दुःखनिकूं कहै हैं;—

गाथा—आगंतुक माणसियं सहजं सारीरियं च चत्तारि।
दुक्खाइं मणुयजम्मे पत्तोसि अणंतयं कालं ॥ ११ ॥

संस्कृत—आगंतुकं मानसिकं सहजं शारीरिकं च चत्वारि।
दुःखानि मनुजजन्मनि प्राप्तोऽसि अनंतकं कालं ११

अर्थ—हे जीव! तैं मनुष्यगतिविषैं अनंतकालपर्यन्त आगंतुक कहिये अकस्मात् वज्रपातादिक आयपड़ै ऐसा बहुरि मानसिक कहिये मनहीं विषैं भया ऐसा विषयनिकी वांछा होय अर मिलै नांही ऐसा बहुरि सहज कहिये माता पितादिककरि सहजहीं उपज्या तथा राग द्वेषादिकतैं वस्तुकूं इष्ट अनिष्ट दुःख होना बहुरि शारीरिक कहिये व्याधि रोगादिक तथा परकृत छेदना भेदन आदिकतैं भये दुःख ये च्यार प्रकार अर चकारतैं इनिकूं आदिले अनेक प्रकार दुःख पाये ॥ ११ ॥

आगैं देवगतिविषैं दुःखनिकूं कहै हैं;—

गाथा—सुरणिलयेसु सुरच्छरविओयकाले य माणसं तिव्वं।
संपत्तोसि महाजस दुःखं सुहभावणारहिओ ॥१२॥

संस्कृत—सुरनिलयेषु सुराप्सराबियोगकाले च मानसं तीव्रम्।
संप्राप्तोऽसि महायशः! दुःखं शुभभावनारहितः॥१२

अर्थ—हे महाजस! तैं सुरनिलयेषु कहिये देवलोकविषैं सुराप्सरा कहिये प्यारा देव तथा प्यारी अप्सराका वियोग कालविषैं तिसके वियोग

संबंधी दुःख तथा इंद्रादिक वडे ऋद्धिधारीनिकूं देखि आपकूं हीन मानना ऐसा मानसिक दुःख ऐसैं तीव्र दुःख शुभ भावनांकरि रहित भये संते पाया ॥

भावार्थ—इहां महाजस ऐसा संबोधन किया ताका आशय यह है जो मुनि निर्ग्रन्थ लिंग धारै अर द्रव्यलिंग मुनिकी समस्त क्रिया करै परन्तु आत्माका स्वरूप शुद्धोपयोगकै सन्मुख न होय ताकूं प्रधानपणैं उपदेश है—जो मुनि भया सो तौ वडा कार्य किया तेरा जस लोकमैं प्रसिद्ध भया परन्तु भलीभावना जो शुद्धात्मतत्त्वका अभ्यास ताविना तपश्चरणादिककरि स्वर्गविषैं देवभी भया तौ वहां भी विषयनिका लोभी भया संता मानसिक दुःखहीतैं तप्तायमान भया ॥ १२ ॥

आगैं शुभभावनातैं रहित अशुभ भावनाका निरूपण करै है;—

गाथा—कंदप्पमाइयाओ पंच वि असुहादिभावणाई य ।
भाऊण दव्वलिंगी पहीणदेवो दिवे जाओ ॥ १३ ॥

संस्कृत—कांदर्पीत्यादीः पंचापि अशुभादिभावनाः च ।
भावयित्वा द्रव्यलिंगी प्रहीणदेवः दिवि जातः॥१३॥

अर्थ—हे जीव ! तू द्रव्यलिंगी मुनि होय करि कान्दर्पीकूं आदि लेकरि पांच अशुभ शब्द हैं आदि जिनकै ऐसी अशुभ भावना भायकरि प्रहिणदेव कहिये नीचदेव स्वर्गविषैं उपज्या ॥

भावार्थ—कान्दर्पी, किल्विषिकी, संमोही, दानवी, आभियोगिकी, ये पांच अशुभ भावना हैं तहां निर्ग्रन्थ मुनि होय करि सम्यक्त्व भावना विना इनि अशुभ भावनांकूं भावै तब किल्विष आदि नीच देव होय मानसिक दुःखकूं प्राप्त होय है ॥ १३ ॥

आगैं द्रव्यलिंगी पार्श्वस्थ आदि होय हैं तिनिकूं कहै है;—

गाथा—पासत्थभावणाओ अणइकालं अणेयवाराओ।
भाऊण दुहं पत्तो कुभावणा भाववीएहिं ॥ १४ ॥

संस्कृत—पार्श्वस्थभावनाः अनादिकालं अनेकवारान्।
भावयित्वा दुःखं प्राप्तः कुभावनाभाववीजैः ॥१४॥

अर्थ—हे जीव! तू पार्श्वस्थ भावनातैं अनादिकालतैं लेकरि अनंतवार भाय करि दुःखकूं प्राप्त भया, काहे करि दुःख पाया—कुभावना कहिये खोटी भावना ताका भाव ते ही भये दुःखके बीज तिनिकरि दुःख पाया॥

भावार्थ—जो मुनि कहावै अर वस्तिका बांधि आजीविका करै सो पार्श्वस्थ भेषधारी कहिये, बहुरि जो कषायी होय व्रतादिकतैं भ्रष्ट रहै संघका अविनय करै ऐसा भेषधारीकूं कुशील कहिये, बहुरि जो वैद्यक ज्योतिष विद्यामंत्रकी आजीविका करै राजादिकका सेवक होय ऐसा भेषधारीकूं संसक्त कहिये, बहुरि जो जिनसूत्रतैं प्रतिकूल चारित्रतैं भ्रष्ट आलसी ऐसा भेषधारीकूं अवसन्न कहिये, बहुरि गुरुका आश्रय छोड़ि एकाकी स्वच्छन्द प्रवर्तै जिन आज्ञा लोपै ऐसा भेषधारीकूं मृगचारी कहिये, इनिकी भावना भावै सो दुःखहीकूं प्राप्त होय है ॥ १४ ॥

ऐसैं देव होय करि मानसिक दुःख पाये ऐसैं कहै है;—

गाथा—देवाण गुण विहूई इड्ढी माहप्प वहुविहं दट्ठुं।
होऊण हीणदेवो पत्तो वहुमाणसं दुक्खं ॥ १५ ॥

संस्कृत—देवानां गुणान् विभूतीः ऋद्धीः माहात्म्यं बहुविधं दृष्ट्वा
भूत्वा हीनदेवः प्राप्तः बहु मानसं दुःखम् ॥ १५ ॥

अर्थ—हे जीव! तू हीनदेव होय करि अन्य महर्द्धिक देवनिकी गुण विभूति ऋद्धिका माहात्म्य बहुत प्रकार देखिकरि बहुत मानसिक दुःखकूं प्राप्त भया॥

भावार्थ—स्वर्गमें हीन देव होय करि बडे ऋद्धिधारी देवकै अणिमादि गुणकी विभूति देखै तथा देवांगना आदिका बहुत परिवार देखै तथा आज्ञा ऐश्वर्य आदिका माहात्म्य देखै तब मनमें ऐसें विचारी जो मैं पुण्यरहित हूं ये बड़े पुण्यवान हैं जिनिकै ऐसी विभूति माहात्म्य ऋद्धि है ऐसे विचार तें मानसिक दुःख होय है ॥ १५ ॥

आगैं कहै हैं जो अशुभ भावनातें नीच देव होय ऐसे दुःख पावै है ऐसें कहि इस कथनकूं संकोचै हैं—

गाथा—चउविहविकहासत्तो मयमत्तो असुहभावपयडत्थो।
होऊण कुदेवत्तं पत्तोसि अणेयवाराओ ॥ १६ ॥

संस्कृत—चतुर्विधविकथासक्तः मदमत्तः अशुभभावप्रकटार्थः।
भूत्वा कुदेवत्वं प्राप्तः असि अनेकवारान् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे जीव! तू च्यार प्रकार विकथाविषैं आसक्त भया संता मदकरि मांता अशुभ भावनांहीका है प्रकट प्रयोजन जाकै ऐसा होय करि अनेकवार कुदेव पणांकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ—स्त्रीकथा भोजन कथा देशकथा राजकथा ऐसी च्यार विकथा तिनिविषैं परिणाम आसक्त होय लगाया तथा जाति आदि अष्ट मदनिकरि उन्मत्त भया ऐसें अशुभ भावनाहीका प्रयोजन धारि अर अनेकवार नीचदेवपणांकूं प्राप्त भया तहां मानसिक दुःख पाया। इहां यह विशेष जाननां जो विकथादिक करि तौ नीच देवभी न होय परन्तु इहां मुनिकूं उपदेश है सो मुनिपद धारि कछू तपश्चरणादिक भी करै अर भेषमें विकथादिकमें रक्त होय नीच देव होय है, ऐसै जाननां ॥ १६ ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं कुदेवयोनि पाय तहांतैं चय जो मनुष्य तिर्यंच होय तहां गर्भमें आवै ताकी ऐसी व्यवस्था है।

गाथा—असुईबीहत्थेहि य कलिमलबहुलाहि गब्भवसहीहि ।
वसिओसि चिरं कालं अणेयजणणीण मुणिपवर ॥१७॥

संस्कृत—अशुचिवीभत्सासु य कलिमलबहुलासु गर्भवसतिषु ।
उषितोऽसि चिरं कालं अनेकजननीनां मुनिप्रवर! ॥१७॥

अर्थ—हे मुनिप्रवर ! तू कुदेवयोनितैं चयकरि अनेक माताकी गर्भकी वसतीविषैं बहुत काल वस्या, कैसी है—अशुचि कहिये अपवित्र है, बहुरि बीभत्स है घिणावणी है, बहुरि कैसी है कलिमल बहुत है जामैं पापरूप मलिन मलकी बहुलता है ॥

भावार्थ—इहां मुनिप्रवर ऐसा संबोधन है सो प्रधानपणैं मुनिनिकूं उपदेश है जो मुनिपदले मुनिनिमैं प्रधान कहावै अर शुद्धात्मरूप निश्चय चारित्रकै सन्मुख न होय ताकूं कहै है जो बाह्य द्रव्यलिंग तौ बहुतवार धारि च्यार गतिमैंही भ्रमण किया देवभी हुवा तौ तहांतैं चयकरि ऐसे मलिन गर्भवास विषैं आया तहांभी बहुतवार वस्या ॥ १७ ॥

आगैं फेरि कहै—जो ऐसे गर्भवासतैं नीसरि जन्मले अनेक मातानिका दूध पिया;—

गाथा—पीओसि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणणीणं ।
अण्णाण्णाण महाजस ! सायरसलिलाहु अहिययरं॥१८॥

संस्कृत—पीतोऽसि स्तनक्षीरं अनंतजन्मांतराणि जननीनाम् ।
अन्यासामन्यासां महायशः ! सागरसलिलात्
अधिकतरम् ॥ १८ ॥

अर्थ—हे महाजस ! तिस पूर्वोक्त गर्भवासाविषैं अन्य अन्य जन्म विषैं अन्य अन्य माताका स्तनका दूधतैं समुद्रके जलतैं भी अतिशयकरि अधिक पिया ॥

भावार्थ—जन्म जन्म विषैं अन्य अन्य माताके स्तनका दूध एता पीया ताकूं एकत्र कीजिये तौ समुद्रके जलतैंभी अतिशयकरि अधिक होय, इहां अतिशयका अर्थ अनंतगुणां जाननां जातैं अनंतकालका एकत्रित किया अनंतगुणां होय ॥ १८ ॥

आगैं फेरि कहै है जो जन्म लेकरि मरण किया तब माताका रुद-नका अश्रुपातका जलभी एता भया;—

गाथा—तुह मरणे दुक्खेण अण्णण्णाणं अणेयजणणीणं ।
रुण्णाग णयणणीरं सायरसलिलाहु अहिययरं ॥१९॥

संस्कृत—तव मरणे दुःखेन अन्यासामन्यासां अनेकजननीनाम् ।
रुदितानां नयननीरं सागरसलिलात् अधिकतरम् १९

अर्थ—हे मुने ! तैं माताका गर्भमैं वसि जन्म लेकरि मरण किया सो तेरे मरण करि अन्य अन्य जन्मविषैं अन्य अन्य माताका रुदनतैं नयनानिका नीर एकत्र कीजिये तब समुद्रके जलतैंभी अतिशय करि अधिकगुणा होय अनंतगुणा होय ॥

आगैं फेरि कहै है जो संसारमैं जन्म लीए तिनिमैं केश नख नाल कटे तिनिका पुंज कीजिये तौ मेरुतैं अधिकराशि होय;—

गाथा—भवसायरे अणंते छिण्णुज्झिय केसणहरणालट्ठी ।
पुंजइ जइको वि जए हवदि य गिरिसमधिया रासी ॥

संस्कृत—भवसागरे अनंते छिन्नोज्झितानि केशनखरनालास्थीनि।
पुंजयति यदि कोऽपि देवः भवति च गिरिसमधिकःराशिः

अर्थ—हे मुने ! या अनंत संसार सागरमैं तैं जन्म लिये तिनिमैं केशं नख नाल अस्थि कटे टूटे तिनिका जो कोई देव पुंज करै तौ मेरु गिरितैं भी अधिक राशि होय अनंतगुणा होय ॥ २० ॥

आगैं कहै है जो—हे आत्मन् ! तू जल थल आदि स्थानक विषैं सर्वत्र वस्या;—

गाथा—जलथलसिहिपवणंवरगिरिसरिदरितरुवणाइ सव्वत्थ ।
वसिओसि चिरं कालं तिहुवणमज्झे अणप्पवसो ॥२१॥

संस्कृत—जलस्थलशिखिपवनांबरगिरिसरिद्दरीतरुवनादिषु सर्वत्र
उषितोऽसि चिरं कालं त्रिभुवनमध्ये अनात्मवशः॥२१॥

अर्थ—हे जीव ! तू जलविषैं, थल कहिये भूमिविषैं, शिखि कहिये अग्निविषैं, तथा पवनविषैं, अंबर कहिये आकाश विषैं गिरि कहिये पर्वतविषैं, सरित कहिये नदीविषैं, दरी कहिये पर्वतकी गुफाविषैं, तरु कहिये वृक्षनिविषैं, वननिविषैं वहुत कहा कहिये सर्वही स्थानकनिविषैं तीनलोकविषैं बहुतकालपर्यन्त वस्या निवास किया; कैसा भया संता—अनात्मवश कहिये पराधीन भया संता॥

भावार्थ—निज शुद्धात्माकी भावनाविना कर्मके आधीन भया तीन लोकमैं सर्व दुःखसहित सर्वत्र वास किया ॥ २१ ॥

आगैं फेरि कहै है जो हे जीव ! तैं या लोकमैं सर्व पुद्गल भखे तौ हू तृप्त न भया;—

गाथा—गसियाइं पुग्गलाइं भुवणोदरवत्तियाइं सव्वाइं ।
पत्तोसि तो ण तित्तिं पुणरुत्तं ताइं भुंजंतो ॥ २२ ॥

संस्कृत—ग्रसिताः पुद्गलाः भुवनोदरवर्तिनः सर्वे ।
प्राप्तोऽसि तन्न तृप्तिं पुनरुक्तान् तान् भुंजानः॥२२॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'पुणरुवं' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'पुनारूपं' इस प्रकार है।

अर्थ—हे जाव ! तैं या लोकका उदरविषैं वर्त्तते जे पुद्गल स्कंध तिनि सर्वनिकूं ग्रसे भखे बहुरि तिनिकूं पुनरुक्त फेरि फेरि भोगता संता हू तृप्तिकूं प्राप्त न भया ॥

फेरि कहै है;—

गाथा—तिहुयणसलिलं सयलं पीयं तिण्हाइ पीडिएण तुमे ।
तो वि ण तण्हाछेओ जाओ चिंतेह भवमहणं ॥२३॥

संस्कृत—त्रिभुवनसलिलं सकलं पीतं तृष्णया पीडितेन त्वया।
तदपि न तृष्णाछेदः जातः चिन्तय भवमथनम् ॥२३

अर्थ—हे जीव ! तैं या लोकविषैं तृष्णाका पीड्या तीन भुवनका जल समस्त पिया तौऊ तृषाका व्युच्छेद न भया ते तातैं तू या संसारका मथन कहिये तेरै नाश होय तैसैं निश्चय रत्नत्रय चिंतवन करि ॥

भावार्थ—संसारमैं काहू प्रकार तृप्तिता नांहीं तातैं जैसैं अपनें संसारका अभाव होय तैसैं चिंतवन करनां निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं सेवनां यह उपदेश है ॥ २३ ॥

आगैं फेरि कहै है,—

गाथा—गहिउज्झियाइं मुणिवर कलेवराइं तुमे अणेयाइं ।
ताणं णत्थिपमाणं अणंतभवसायरे धीर ॥ २४ ॥

संस्कृत—गृहीतोज्झितानि मुनिवर कलेवराणि त्वया अनेकानि।
तेषां नास्ति प्रमाणं अनन्तभवसागरे धीर ! ॥२४॥

अर्थ—हे मुनिवर ! हे धीर ! तैं या अनंत भवसागरविषैं कलेवर कहिये शरीर अनेक ग्रहण किये अर छोड़े तिनिका परिमाण नांही है ॥

भावार्थ—हे मुनिप्रधान ! तू किछू इस शरीरसूं स्नेह किया चाहै तौ या संसारविषैं ऐसे शरीर छोडे अर गहे तिनिका कछू परिमाणु न किया जाय है ॥ २४ ॥

आगैं कहै है जो—पर्याय थिर नांही है आयुकर्मके आधीनहै सो अनेक प्रकार क्षीण होय है,—

गाथा—विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ ॥ २५ ॥
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं।
रसविज्जजोयधारण अणयपसंगेहिं विविहेहिं ॥२६॥
इय तिरिय मणुय जम्मे सुइरं उववज्जिऊण वहुवारं।
अवमिच्चुमहादुक्खं तिव्वं पत्तोसि तं मित्त ॥ २७ ॥

संस्कृत—विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रग्रहणसंक्लेशानाम्।
आहारोच्छ्वासानां निरोधनात् क्षीयते आयुः ॥२५॥
हिमज्वलनसलिलगुरुतरपर्वततरुरोहणपतनभङ्गैः।
रसविद्यायोगधारणानयप्रसंगैः विविधैः ॥ २६ ॥
इति तिर्यग्मनुष्यजन्मनि सुचिरं उत्पद्य वहुवारम्।
अपमृत्युमहादुःखं तीव्रं प्राप्तोऽसि त्वं मित्र! ॥२७॥

अर्थ—विषभक्षणतैं वेदनाकी पीडाके निमित्ततैं रक्त कहिये रुधिर ताका क्षयतैं भय शस्त्रकरि घाततैं संक्लेश परिणामतैं आहारका तथा श्वासका निरोधतैं, इनि कारणनितैं आयुका क्षय होय है॥

वहुरि हिम कहिये शीत पालातैं अग्नितैं जलतैं वडे पर्वतके चढनेतैं पड़नेतैं वड़े वृक्ष परि चढ़करि पड़नेतैं शरीरका भंग होनेतैं वहुरि रस कहिये पारा आदिककी विद्या ताका संयोग करि धारण करै भखै तातैं वहुरि अन्याय कार्य चोरी व्यभिचार आदिके निमित्ततैं ऐसैं अनेक प्रकारके कारणतैं आयुका व्युच्छेद होय कुमरण होय हैं॥

यातैं कहै है जो—हे मित्र ! ऐसैं तिर्यंच मनुष्य जन्मविषैं बहुतकाल बहुतवार उपजि करि अपमृत्यु कहिये कुमरण तिससंबंधी तीव्र महादु:खकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ—या संसारविषैं प्राणीकी आयु तिर्यंच मनुष्य पर्यायविषैं अनेक कारणनितैं छिदै है तातैं कुमरण होय है तातैं मरतैं तीव्र दु:ख होय है तथा खोटे परिणामनितैं मरणकरि फेरि दुर्गतिहीमैं पड़ै है, ऐसैं यह जीव संसारमैं महादु:ख पावै है यातैं आचार्य दयालु होय बारवार दिखावैं हैं अर संसारतैं मुक्त होनेका उपदेश करैं हैं ऐसैं जाननां ॥ २५-२६-२७॥

आगैं निगोदका दु:खकूं कहै है;—

गाथा—छत्तीसं तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि ।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तोसि निगोयवासम्मि ॥ २८ ॥

संस्कृत—षट्त्रिंशत् त्रीणि शतानि षट्षष्टिसहस्रवारमरणानि ।
अन्तर्मुहूर्त्तमध्ये प्राप्तोऽसि निकोतवासे ॥ २८ ॥

अर्थ—हे आत्मन् ! तू निगोदके वासमैं एक अंतमुहूर्त्तमैं छ्यासठि हजार तीनसैं छत्तीस वार मरणकूं प्राप्तहूवा ।

भावार्थ—निगोदमें एक श्वासकै अठारवैं भाग प्रमाण आयु पावै है तहां एक मुहूर्त्तकै सैंतीससै तिहत्तरि श्वासोच्छ्वास गिणै है तिनिमैं छत्तीससैपिच्यासी श्वासोच्छ्वास अर एक श्वासका तीसरा भागके छ्यासठि हजार तीनसै छतीस वार निगोदमैं जन्म मरण होय है ताके दु:ख यह प्राणी सम्यग्दर्शनभाव पाये विना मिथ्यात्वका उदयकै वशीभूत भया सहै है । भावार्थ—अंतर्मुहूर्त्तमैं छ्यासठि हजार तीनसै छत्तीस वार जामन मरण कह्या सो अठ्यासी श्वास घाटि मुहूर्त्त ऐसा अन्तर्मुहूर्त्तविषैं जाननां ॥ २८ ॥

इसही अंतर्मुहूर्त्तके जन्म मरणमैं क्षुद्र भवका विशेष कहै है,

गाथा—वियलिंदए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेह।
पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतो मुहुत्तस्स ॥ २९॥

संस्कृत—विकलेंद्रियाणामशीतिं षष्टिं चत्वारिंशतमेव जानीहि।
पंचेंद्रियाणां चतुर्विंशतिं क्षुद्रभवान् अन्तर्मुहूर्त्तस्य॥२९॥

अर्थ—इनि अन्तर्मुहूर्त्तके भवनिमैं बेंद्रियके क्षुद्रभव अस्सी तेंद्रियके साठि चौइंद्रियके चालीस पंचेंद्रियके चौवीस ऐसैं—हे आत्मन्! तू क्षुद्रभव जानि॥

भावार्थ—क्षुद्रभव अन्य शास्त्रमैं ऐसैं गिनैं हैं पृथ्वी अप तेज वायु साधारण निगोदके सूक्ष्म बादरकरि दश अर सप्रतिष्ठित वनस्पति एक ऐसैं ग्यारह स्थानकके भव तौ एक एकके छह हजार बार ताके छयासठि हजार एकसौ बत्तीस भये, बहुरि इस गाथामैं कह्े ते बेंद्रिय आदिके दोयसौ च्यार ऐसैं ६६३३६ एक अन्तर्मुहूर्त्तमैं क्षुद्रभव कहै है॥ २९॥

आगैं कहै है कि हे आत्मन्! तू इस दीर्घसंसारविषैं ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयकी प्राप्ति विना भ्रम्या यातैं अब रत्नत्रय अंगीकार करि,

गाथा—रयणत्तये अलद्धे एवं भमिओसि दीहसंसारे।
इय जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तं समायरह ॥३०॥

संस्कृत—रत्नत्रये अलब्धे एवं भ्रमितोऽसि दीर्घसंसारे।
इति जिणवरैर्भणितं तत् रत्नत्रयं समाचर ॥ ३०॥

अर्थ—हे जीव! तू सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जो रत्नत्रय ताकूं न पाये यातैं इस दीर्घ अनादिसंसारविषैं पूर्वैं कह्या तैसैं भ्रम्या ऐसा जानिकरि अब तू तिस रत्नत्रयका आचरणकरि, ऐसैं जिनेश्वरदेव कह्या है॥

भावार्थ—निश्चय रत्नत्रय पाये विना यह जीव मिथ्यात्वके उदयतैं संसारमैं भ्रम है यातैं रत्नत्रयका आचरणका उपदेश है ॥ ३० ॥

आगैं शिष्य पूछै जो वह रत्नत्रय कैसा है ताका समाधान करै है जो रत्नत्रय ऐसा है;—

गाथा—अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुड जीवो ।
जाणइ तं सण्णाणं चरदिह चारित्तमग्गुत्ति ॥ ३१ ॥

संस्कृत—आत्मा आत्मनि रतः सम्यग्दृष्टिः भवति स्फुटं जीवः ।
जानाति तत् संज्ञानं चरतीह चारित्रं मार्ग इति॥३१॥

अर्थ—जो आत्मा आत्माविषैं रत होय यथार्थस्वरूपका अनुभव करि तद्रूप होय, श्रद्धान करै सो प्रगट सम्यग्दृष्टी होय, बहुरि तिस आत्माकूं जानैं सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि तिस आत्माकूं आचरण करै रागद्वेषरूप न परिणमै सो चारित्र है; ऐसैं यह निश्चय रत्नत्रय है सो मोक्षमार्ग है ॥

भावार्थ—आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सो निश्चय रत्नत्रय है, अर बाह्य याका व्यवहारजीवअजीवादितत्वनिका श्रद्धान जाननां परद्रव्य परभावका त्याग करनां है ऐसैं निश्चय व्यवहारस्वरूप रत्नत्रय मोक्षका मार्ग है। तहां निश्चय तौ प्रधान है या विनां व्यवहार संसारस्वरूपही है, बहुरि व्यवहार है सो निश्चयका साधनस्वरूप है या विना निश्चयकी प्राप्ति नांहीं है, अर निश्चयकी प्राप्तिभये पीछैं व्यवहार कछू है नांही ऐसैं जाननां ॥ ३१ ॥

आगैं संसारविषैं या जीवनैं जन्म मरण किये ते कुमरण किये अब सुमरणका उपदेश करै है;—

गाथा—अण्णे कुमरणमरणं अणेयजम्मंतराइं मरिओसि ।
भावहि सुमरणमरणं जरमरणविणासणं जीव! ॥३२॥

संस्कृत—अन्यस्मिन् कुमरणमरणं अनेकजन्मान्तरेषु मृतः असि।
भावय सुमरणमरणं जन्ममरणविनाशनं जीव! ॥३२॥

अर्थ—हे जीव या संसारविषैं अनेक जन्मान्तरविषैं अन्य कुमरण मरण जेसैं होय तैसैं तू मूवा अब तू जा मरणतैं जन्म मरणका नाश होय ऐसा सुमरण भाय॥

भावार्थ—मरण संक्षेपकरि अन्य शास्त्रविषैं सतरह प्रकार कह्या है, सो ऐसैं—आवीचिकामरण १ तद्भवमरण २ अवधिमरण ३ आद्यान्तमरण ४ वालमरण ५ पंडितमरण ६ आसन्नमरण ७ वालपंडितमरण ८ सशल्यमरण ९ पलायमरण १० वशार्त्तमरण ११ विप्राणसमरण १२ गृध्रपृष्टमरण १३ भक्तप्रत्याख्यानमरण १४ इंगिनीमरण १५ प्रायोपगमनमरण १६ केवलिमरण १७ ऐसैं सतरह।

इनिका स्वरूप ऐसा—जो आयुका उदय समय समय करि घटै है सो समय समय मरण है ये आवीचिकामरण है॥ १॥

बहुरि जो वर्त्तमान पर्यायका अभाव सो तद्भवमरण है॥ २॥

बहुरि जो जैसा मरण वर्त्तमान पर्यायका होय तैसाहीं अगिली पर्यायका होयगा सो अवधिमरण है, याका दोय भेद तहां जैसा प्रकृति स्थिति अनुभाग वर्त्तमानका उदय आया तैसाही अगिलीका उदय आवै सो सर्वावधिमरण है; अर एकदेशबंध उदय होय तौ देशावधिमरण कहिये॥ ३॥

बहुरि जो वर्त्तमान पर्यायका स्थिति आदिक जैसा उदय था तैसा अगिलीका सर्वतो वा देशतो बंध उदय न होय सो आद्यन्तमरण है॥४॥

पांचवां वालमरण है, सो बाल पांच प्रकार है;—अव्यक्त बाल, व्यवहारबाल, ज्ञानबाल, दर्शनबाल, चारित्रबाल! तहां जो धर्म अर्थ काम

इनिकार्यनिकूं न जानैं इनिका आचरणकूं समर्थ जाका शरीर नांहीं होय सो अव्यक्तवाल है। जो लोकका अर शास्त्रका व्यवहारकूं न जानैं तथा वालक अवस्था होय सो व्यवहारवाल है। वस्तुका यथार्थ ज्ञानरहित ज्ञानवाल है। तत्वश्रद्धानरहित मिथ्यादृष्टी दर्शनवाल है। चारित्र रहित प्राणी चारित्रवाल है। इनिका मरनां सो वालमरण है। इहां प्रधानपणैं दर्शनवालहीका ग्रहण है. जातैं सम्यग्दृष्टीकै अन्य वालपणां होतैंभी दर्शनपंडितताका सद्भावतैं पंडितमरणविषैंही गणिये है। तहां दर्शनवालका संक्षेपतैं दोय प्रकार मरण कह्या है—इच्छाप्रवृत्त १ अनिच्छाप्रवृत्त २ तहां अग्निकरि धूमकरि शस्त्रकरि विषकरि जलकरि पर्वतके तटतैं पड़नेकरि अति शीत उष्णकी वाधाकरि वंधनकरि क्षुधा-तृषाके अवरोधकरि जीभ उपाडनेकरि विरुद्ध आहार सेवनेकरि वाल आज्ञानी चाहि करि मरैं सो इच्छाप्रवृत्त है। अर जीवनेंका इच्छुक होय अर मरै सो अनिच्छाप्रवृत्त है ॥ ५ ॥

वहुरि पंडितमरण च्यार प्रकार है;—व्यवहारपंडित सम्यक्त्वपंडित, ज्ञानपंडित, चारित्रपंडित। तहां लोकशास्त्रका व्यवहारविषैं प्रवीण होय सो व्यवहारपंडित है। सम्यक्त्व सहित होय सो सम्यक्त्वपंडित है। सम्यग्ज्ञानसहित होय सो ज्ञानपंडित है। सम्यक् चारित्रकरि सहित होय सो चारित्रपंडित है। इहीं दर्शन ज्ञान चारित्रसहित पंडितका ग्रहण है जातैं व्यवहारपंडित मिथ्यादृष्टी वालमरणमैं आय गया ॥ ६ ॥

वहुरि जो मोक्षमार्गमैं प्रवर्त्तनेंवाला साधु संघतैं छूट्या ताकूं आसन्न कहिये है तिनिमैं पार्श्वस्थ स्वच्छंद कुशील संसक्तभी लेनें, ऐसैं पंच प्रकार भ्रष्ट साधुनिका मरण सो आसन्नमरण है ॥ ७ ॥

वहुरि सम्यग्दृष्टी श्रावकका मरण सो वालपंडितमरण है ॥ ८ ॥

बहुरि सशल्यमरण दोय प्रकार—तहां मिथ्यादर्शन माया निदान ये तीन शल्य तौ भावशल्य है, अर पंच स्थावर अर त्रसमैं असैंनी ये द्रव्यशल्यसहित हैं ऐसैं सशल्यमरण है ॥ ९ ॥

बहुरि जो प्रशस्तक्रियाविषैं आलसी होय व्रतादिविषैं शक्तिकूं छिपावै ध्यानादिकतैं दूरि भागैं ऐसाकामरण सो पलाय मरण है ॥ १० ॥

वशार्त्तमरण च्यार प्रकार है—सो आर्तरौद्र ध्यानसहित मरण है तहां पांच इंद्रियनिके विषयनिविषैं रागद्वेषसहित मरण सो इन्द्रियवशार्त्त मरण हैं; साता असाताकी वेदनासहित मरै सो वेदनाशावर्त्तमरण है, क्रोध मान माया लोभ कषायके वशतैं मरै सो कषायवशार्त्तमरण है, हास्य विनोद कषायके वशतैं मरै सो नोकषायवशार्तमरण है॥ ११ ॥

बहुरि जो अपना व्रत क्रिया चारित्रविषैं उपसर्ग आवै सो कह्याभी न जाय अर भ्रष्ट होनेंका भय आवै तब अशक्त भया अन्नपानीका त्यागकरि मरै सो विप्राणसमरण है ॥ १२ ॥

बहुरि जो शस्त्रग्रहणकरि मरण होय सो गृध्रपृष्ठमरण है ॥ १३ ॥

बहुरि जो अनुक्रमसूं अन्नपानीका यथाविधि त्यागकरि मरै सो भक्त-प्रत्याख्यान मरण है ॥ १४ ॥

बहुरि जो संन्यास करै अर अन्यपास वैयावृत्त्य करावै सो इंगिनी-मरण है ॥ १५ ॥

बहुरि जो प्रायोपगमन संन्यास करै काहू पास वैयावृत्त्य न करावै अपनें आपभी न मरै प्रतिमायोग रहै सो प्रायोपगमनमरण है ॥१६॥

बहुरि जो केवली मुक्तिप्राप्त होय सो केवलिमरण है ॥ १७ ॥

ऐसैं सतरह प्रकार कहे तिनिका संक्षेप ऐसा किया है—जो मरण पांच प्रकार है;—पंडितपंडित, पंडित, बालपंडित, बाल, बालबाल।

तहां दर्शन ज्ञान चारित्रका अतिशयकरि सहित होय सो तौ पंडितपंडित है, अर इनिकी प्रकर्षता जाकै न होय सो पंडित है,: सम्यग्दृष्टी श्रावण सो वाल पंडित, अर पूर्वें च्यार प्रकार पंडित कहे तिनिमैं सूं एकभी भाव जाकै नांहीं सो वाल है, अर जो सर्वतैं न्यून होय सो वालवाल है। इनिमैं पंडितपंडितमरण अर पंडितमरण अर वालपंडितमरण ये तीन प्रशस्त सुमरण कहै हैं अन्यरीति होय सो कुमरण हैं। ऐसैं जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र एकदेशसहित मरै सो सुमरण है, ऐसा सुमरण करनेंका उपदेश है ॥ ३२ ॥

आगैं यह जीव संसारमैं भ्रमैं है तिस भ्रमणके परावर्तनका स्वरूप मनमैं धारि निरूपण करै है, तहां प्रथमही सामान्यकरि लोकके प्रदेशनिकी अपेक्षाकरि कहै है;—

गाथा—सो णत्थि दव्वसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ।
जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोयपमाणिओ सव्वो ॥३३॥

संस्कृत—सः नास्ति द्रव्यश्रमणः परमाणुप्रमाणमात्रो निलयः।
यत्र न जातः न मृतः त्रिलोकप्रमाणकः सर्वः ॥३३॥

अर्थ—यह जीव द्रव्यलिंगका धारक मुनिपणां होतैं संतें भी यहु तीन लोक प्रमाण सर्व स्थानक हैं तामैं एक परमाणुपरिमाण एक प्रदेशमात्रभी ऐसा स्थान नांहीं जामैं जनम्यां नांही तथा मूवा नांहीं ॥

भावार्थ—द्रव्यलिंग धारकरिभी सर्वलोकमैं यहजीव जनम्या मऱ्या ऐसा प्रदेश न रह्या जामैं जनम्या मऱ्या नांहीं, ऐसा भावलिंगविना द्रव्यलिंगतैं मुक्तिप्राप्त न भया ऐसा जाननां ॥ ३३ ॥

आगैं याही अर्थकूं दृढ़ करनेंकूं भावलिंगकूं प्रधानकरि कहै है,

गाथा—कालमणंतं जीवो जम्मजरामरणपीडिओ दुक्खं।
जिणलिंगेण वि पत्तो परंपराभावरहिएण ॥३४॥

संस्कृत—कालमनंतं जीवः जन्मजरामरणपीडितः दुःखम्।
जिनलिंगेन अपि प्राप्तः परम्पराभावरहितेन ॥३४॥

अर्थ—यह जीव या संसारविषैं जामैं परंपरा भावलिंग न भया संता अनंतकालपर्यन्त जन्म जरा मरणकरि पीडित दुःखहीकूं प्राप्त भया॥

भावार्थ—द्रव्यलिंग धार्‌या अर तामैं परंपराकरि भी भावलिंगकी प्राप्ति न भई यातैं द्रव्यलिंग निष्फल गया मुक्तिकी प्राप्ति न भई संसारहीमें भ्रम्या।

इहां आशय ऐसा जो द्रव्यलिंग है सो भावलिंगका साधन है परन्तु काललब्धिविनां द्रव्यलिंग धारेभी भावलिंगकी प्राप्ति न होय यातैं द्रव्यलिंग निष्फल जाय है ऐसैं मोक्षमार्ग प्रधानकरि भावलिंगही है। इहां कोई कहै है ऐसैं है तौ द्रव्यलिंग पहले काहेकूं धारणां? ताकूं कहिये ऐसैं मानेंतौ व्यवहारका लोप होय है तातैं ऐसैं मानना जो द्रव्यलिंग पहले धारनां, ऐसा न जानना जो याहीतैं सिद्धि है भावलिंगकूं प्रधान मानि तिसकै सन्मुख उपयोग राखनां द्रव्यलिंगकूं यत्नतैं साधना ऐसा श्रद्धान भला है॥ ३४॥

आगैं पुद्गल द्रव्यकूं प्रधानकरि भ्रमण कहै है;—

गाथा—पडिदेससमयपुग्गलआउगपरिणामणामकालट्ठं।
गहिउज्झियाइं बहुसो अणंतभवसायरे जीवो॥ ३५॥

संस्कृत—प्रतिदेशसमयपुद्गलायुः परिणामनामकालस्थम्।
गृहीतोज्झितानि बहुशः अनंतभवसागरे जीवः॥३५॥

अर्थ—इस जीवनैं या अनंत अपार भवसमुद्रविषैं लोकाकाशके जेते प्रदेश हैं तिनि प्रति समय समय अर पर्यायके आयुप्रमाण काल अर अपने जैसा योगकषायके परिणमन स्वरूप परिणाम अर जैसा गतिजाति

आदि नाम कर्मके उदयतैं भया नाम अर काल जैसा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तिनि विषैं पुद्गलके परमाणुरूप स्कंध ते बहुतवार अनंतवार ग्रहण किये अर छोड़े ॥

भावार्थ—भावलिंग विना लोकमैं जे ते पुद्गल स्कंध हैं ते ते सर्वही ग्रहे अर छोड़े तौऊ मुक्त न भया ॥ ३५ ॥

आगैं क्षेत्रकूं प्रधान करि कहै हैं;—

गाथा—तेयाला तिण्णि सया रज्जूणं लोयखेत्तपरिमाणं ।
मुत्तूणट्ठ पएसा जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो ॥३६॥

संस्कृत—त्रिचत्वारिंशत् त्रीणि शतानि रज्जूनां लोकक्षेत्रपरिमाणं ।
मुक्त्वाऽष्टौ प्रदेशान् यत्र न भ्रमितः जीवः ॥३६॥

अर्थ—यहु लोक तीनसैं तियालीस राजू परिमाण क्षेत्र है ताकै बीचि मेरुकै तलै गोस्तनाकार आठ प्रदेश हैं तिनिकूं छोड़िकरि अन्य प्रदेश ऐसा न रह्या जामैं यहजीव नांही जनम्या मर्‍या ॥

भावार्थ—'ढुरुढुल्लिओ' ऐसा प्राकृतमैं भ्रमण अर्थका धातुका आदेश है, अर क्षेत्र परावर्त्तनमैं मेरुकै तलैं आठ प्रदेश लोकके मध्यके हैं तिनिकूं जीव अपनें प्रदेशनिके मध्यदेश उपजै हैं तहांतैं क्षेत्रपरावर्त्तनका प्रारंभ कीजिये है तातैं तिनिकूं पुनरुक्त भ्रमणमैं न गिणिये है ॥३६॥

आगैं यह जीव शरीरसहित उपजै मरै है तिस शरीरमैं रोग होय हैं तिनिकी संख्या दिखावै हैं;—

गाथा—एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं ।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया ॥३७॥

संस्कृत—एकैकांगुलौ व्याधयः पण्णवतिः भवंति
जानीहि मनुष्यानां।
अवशेषे च शरीरे रोगाः भण कियन्तः भणिताः ॥

अर्थ—इस मनुष्यके शरीरविषैं एक एक अंगुलमैं छिनवै छिनवै रोग होय है तब कहो अवशेष समस्त शरीरविषैं केते रोग कहै ऐसैं जानि॥३७॥

आगैं कहै है हे जीव! तिनि रोगनिका दुःख तैं सह्या;—

गाथा—ते रोया वि य सयला सहिया ते परवसेण पुव्वभवे।
एवं सहसि महाजस किं वा वहुएहिं लविएहिं ॥३८॥

संस्कृत—ते रोगा अपि च सकलाः सोढास्त्वया परवशेण
पूर्वभवे।
एवं सहसे महायशः! किं वा वहुभिः लपितैः॥३८॥

हे महायश! हे मुने! तैं पूर्वोक्त सब रोगनिकूं पूर्वभवविषैं तौ परवश सहे, ऐसैं ही फेरि सहैगा, वहुत कहनेंकरि कहा?

भावार्थ—यह जीव पराधीन हुवा सर्व दुःख सहै है जो ज्ञान भावना करै अर दुःख आयाँ तासूं चिगै नांही ऐसैं स्ववशि सहै तौ कर्मका नाश करि मुक्त होजाय, ऐसैं जाननां॥ ३८ ॥

आगैं कहै हैं जो—अपवित्र गर्भवासमैं भी वस्या;—

गाथा—पित्तंतमुत्तफेफसकालिज्जयरुहिरखरिसकिमिजाले।
उयरे वसिओसि चिरं नवदसमासेहिं पत्तेहिं ॥३९॥

संस्कृत—पित्तांत्रमूत्रफेफसयकृद्रुधिरखरिसकृमिजाले।
उदरे उषितोऽसि चिरं नवदशमासैः प्राप्तैः ॥३९॥

अर्थ—हे मुने! तू ऐसे मलिन अपवित्र उदरकै विषैं नव मास तथा दश मास प्राप्ति करि वस्या, कैसाहै उदर जामैं पित्त अर आंतनि-

करि वेढ्या अर मूत्रका स्रवण अर फेफस कहिये जो रुधिर विना मेद फूलिजाय वहुरि कौलिज्ज कहिये कालजो बहुरि रुधिर बहुरि खरिस कहिये जो अपक्व मलसूं मिल्या रुधिर श्लेष्म वहुरि कृमिजाल कहिये लट जीवनिके समूह ये सर्व पाइये, ऐसा स्त्रीका उदरविषैं बहुत वार बस्या ॥ ३९ ॥

फेरि याहीकूं कहै हैं;—

गाथा—दियसंगट्ठियमसणं आहारिय मायभुत्तमण्णांते ।
छद्दिखरिसाण मज्झे जठरे वसिओसि जणणीए ॥४०॥

संस्कृत—द्विजसंगस्थितमशनं आहृत्य मातृभुक्तमन्नान्ते ।
छर्दिखरिसयोर्मध्ये जठरे उषितोऽसि जनन्याः ॥४०॥

अर्थ—हे जीव ! तू जननी जो माता ताके उदरगर्भविषैं वस्या तहां माताका अर पिताका भोगकै अंत छर्दि कहिये वमनका अन्न खरिस कहिये अपक्व मल रुधिरसूं मिल्या तिनिकै मध्य वस्या, कहा करि वस्या—माताका दांतनिकरि चाब्या तिनि दांतनिकै लग्या तिष्ठ्या औंठ्या जो भोजन माताके खाये पीछे जो उदरमैं गया ताका रस आहारकरि वस्या ॥ ४० ॥

आगैं कहै है जो गर्भतैं नीसरि बालपणां ऐसा भोग्या;—

गाथा—सिसुकाले य अयाणे असुईमज्झम्मि लोलिओसि तुमं ।
असुई असिया बहुसो मुणिवर ! बालत्तपत्तेण ॥४१॥

संस्कृत—शिशुकाले च अज्ञाने अशुचिमध्ये लोलितोऽसि त्वम् ।
अशुचिः अशिता बहुशः मुनिवर ! बालत्वप्राप्तेन ॥४१॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू बालपणेंके कालविषैं अज्ञान अवस्थामैं अशुचि अपवित्र स्थाननिविषैं अशुचिकै वीचि लौट्या वहुरि वहुतवार अशुचि वस्तु ही खाई, बालपणांकूं पाय ऐसी चेष्टा करी ॥

१ पेटके दक्षिणभागमें जलका आधाररूप मासपिंडकी थैली तथा मांसका विकार।

भावार्थ—इहां 'मुनिवर' ऐसा संबोधन है सो पूर्ववत् जाननां, बाह्य आचरणसहित मुनि होय ताहिकूं इहां प्रधानपणैं उपदेश है जो बाह्य आचरण किया सो तौ बडा कार्य किया परन्तु भावविना यह निष्फल है तातैं भावकै सन्मुख रहनां, भावविना ये अपवित्र स्थान मिले हैं ॥ ४१ ॥

आगैं कहै है—यह देह ऐसा है ताकूं विचारो;—

गाथा—मंसट्ठिसुक्कसोणियपित्तंतसवत्तकुणिमदुग्गंधं।
खरिसवसपूयखिब्भिस भरियं चिंतेहि देहउडं ॥४२॥

गाथा–मांसास्थिशुक्रश्रोणितपित्तांत्रस्रवत्कुणिमदुर्गन्धम्।
खरिसवसापूयकिल्बिपभरितं चिन्तय देहकुटम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—हे मुने! तू देहरूप घटकूं ऐसा विचारि, कैसा है देहघट–मांस अर हाड अर शुक्र कहिये वीर्य अर श्रोणित कहिये रुधिर अर पित्तकहिये उष्णविकार[1] अर अंत्र कहिये आंतरे झरते तिनिकरि तत्काल मृतककी ज्यों दुर्गंध है, बहुरि कैसा है देहघट खरिस कहिये रुधिरसूं मिल्या अपक्वमल, वसा कहिये मेद अर पूय कहिये बिगड्या लोही राधि ये सर्व मलिन वस्तुनिकरि पूर्ण भऱ्या है ऐसा देहरूप घटकूं विचारि॥

भावार्थ—यह जीव तौ पवित्र है शुद्धज्ञानमयी है अर ये देह ऐसा तामैं वसना अयोग्य है ऐसा जनाया है ॥ ४२ ॥

आगैं कहै है—जो कुटुंबतैं छूट्या सो नांही छूट्या भावतैं छूटे छूट्या कहिये;—

गाथा—भावविमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइमित्तेण।
इय भाविऊण उज्झसु गंथं अब्भंतरं धीर ॥४३॥

---

1 उष्णविकार।

संस्कृत—भावविमुक्तः मुक्तः न च मुक्तः बांधवादिमित्रेण।
　　इति भावयित्वा उज्झय गन्धमाभ्यन्तरं धीर! ॥४३॥

अर्थ—जो मुनि भावनिकरि मुक्त भया ताकूं मुक्त कहिये अर बांधव आदि कुटुंब तथा मित्र आदिकरि मुक्त भया ताकू मुक्त न कहिये यातैं हे धीर! मुनि तू ऐसा जानिकरि अभ्यन्तरकी वासनांकूं छोड़ि॥

भावार्थ—जो बाह्य बांधव कुटुंब तथा मित्र इनिकूं छोड़िकरि निर्ग्रंथ भया अर अभ्यन्तरका ममत्व भावरूप वासना तथा इष्ट अनिष्ट विषैं रागद्वेष वासना न छूटीतौ ताकूं निर्ग्रंथ न कहिये, अभ्यन्तर वासना छूटे निर्ग्रंथ है तातैं यह उपदेश है जो अभ्यंतर मिथ्यात्व कषाय छोड़ि भावमुनि होनां॥ ४३॥

आगैं कहै है जे पूर्वे मुनि भये तिनिनैं भाव शुद्ध विना सिद्धि न पाई तिनिका उदाहरणमात्र नाम कहै है, तहां प्रथमहीं बाहुबलीका उदाहरण कहै है:—

गाथा—देहादिचत्तसंगो माणकसाएण कलुसिओ धीर!
　　अत्तावणेण जादो बाहुवली कित्तियं कालं॥४४॥

संस्कृत—देहादित्यक्तसंगः मानकषायेन कलुषितः धीर!।
　　आतापनेन जातः बाहुवली कियन्तं कालम्॥४४॥

अर्थ—देखो, बाहुबली श्रीऋषभदेवका पुत्र सो देहादिकतैं छोड्या है परिग्रह जानैं ऐसा निर्ग्रंथ मुनि भया तौऊ मानकषाय करि कलुष परिणामरूप भया संता केतेयक काल आतापन योग करि तिष्ठ्या सिद्धि न पाई॥

भावार्थ—बाहुबलीतैं भरत चक्रवर्ती विरोध करि युद्ध आरंभ्या तहां भरत अपमान पाया तापीछैं बाहुबली विरक्त होय निर्ग्रंथ मुनि भये परन्तु कछू

मानकषायकी कलुषता रही जो भरतकी भूमिमैं मैं कैसैं रहूं तब कायोत्सर्ग योगकरि एकवर्षताईं तिष्टे केवलज्ञान न पाया पीछै कलुषता मिटी तब केवलज्ञान उपज्या, तातैं कहै है जो ऐसे महान पुरुष वडी शक्तिके धारकभी भावशुद्धिविना सिद्धि न पाई तब अन्यकी कहा कथा? तातैं भाव शुद्ध करनां यह उपदेश है ॥ ४४ ॥

आगैं मधुपिंगमुनिका उदाहरण कहै है;—

गाथा—महुपिंगो णाम मुणी देहाहारादिचत्तवावारो ।
सवणत्तणं ण पत्तो णियाणमित्तेण भवियणुय ॥४५॥

संस्कृत—मधुपिंगो नाम मुनिः देहाहारादित्यक्तव्यापारः ।
श्रमणत्वं न प्राप्तः निदानमात्रेण भव्यनुत ! ॥ ४५ ॥

अर्थ—मधुपिंगनामा मुनि है सो कैसा भया देह आहारादिविषैं छोड्या है व्यापार जानैं तौऊ निदानमात्रकरि भावश्रमणपणाकूं प्राप्त न भया ताहि भव्यजीवनिकरि नमने योग्य मुनि तू देखि ॥

भावार्थ—मधुपिंगलनामा मुनिकी कथा पुराणमैं है ताका संक्षेप ऐसा;—इस भरतक्षेत्रविषैं सुरम्यदेशमैं पोदनापुरका राजा तृणपिंगलका पुत्र मधुपिंगल था सो चारणयुगलनगरका राजा सुयोधनकी पुत्री सुलसाका स्वयंवरमैं आयाथा अर तहांही साकेतापुरीका राजा सगर आयाथा सो सगरकै मंत्री, मधुपिंगलकूं कपटकरि सामुद्रिक शास्त्रकूं नवीन वणाय दूषणदिया जो याके नेत्र पिंगल है मांजरा है जो याकूं कन्या वरै सो मरणकूं प्राप्त होय तब कन्या सगरकै गलै वरमाला गेरी मधुपिंगलकूं वऱ्या नांही, तब मधुपिंगल विरक्त होय दीक्षा लई पीछैं कारणपाय सगरका मंत्रीका कपटकूं जाणि क्रोधकरि निदान किया जो मेरै तपका फल यह होहु "जन्मान्तरविषैं सगरके कुलकूं निर्मूल करूं" तापीछैं

मधुपिंगल मरि करि महाकालासुरनामा असुर देव भया तब सगरकूं मंत्री सहित मारणेंका उपाय हेरता भया तब क्षीरकदंब ब्राह्मणका पुत्र पर्वत पापी याकूं मिल्या तब पशुनिकी हिंसारूप यज्ञका सहायी होय कही, सगर राजाकूं यज्ञका उपदेश करि यज्ञ कराय तेरा यज्ञका सहायी हूंगा तब पर्वत सगर पासि यज्ञ कराया पशु होमें, तिस पापतें सगर सातवैं नरक गया अर कालासुर साहायी भया सो यज्ञके कर्ताकूं स्वर्ग गये दिखाये। ऐसैं मधुपिंगल नामा मुनि निदानकरि महाकालसुर होय महा-पाप उपार्ज्या, तातैं आचार्य कहै है मुनि होय तौऊ भाव विगडे सिद्धिकूं न पावै याकी कथा पुराणनितैं विस्तारतैं जाननी ॥

आगैं वशिष्ट मुनिका उदाहरण कहै हैं;—

गाथा—अण्णं च वसिट्ठमुणि पत्तो दुक्खं नियाणदोसेण।
सो णत्थि वासठाणो जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो ॥४६॥

संस्कृत—अन्यश्च वसिष्ठमुनिः प्राप्तः दुखं निदानदोषेण।
तन्नास्ति वासस्थानं यत्र न भ्रमितः जीव! ॥ ४६ ॥

अर्थ—बहुरि अन्य कहिये और एक वशिष्टनामा मुनि निदानके दोषकरि दुःखकूं प्राप्तभया यातैं ऐसा लोकमैं वासस्थान नांही जामैं यहु जीव जन्ममरणसहित भ्रमणकूं प्राप्त नांही भया ॥

भावार्थ—वशिष्ठमुनिकी कथा ऐसैं है;—गंगा अर गंधवती दोऊ नदीका जहां संग भया है तहां जठरकौशिकनामा तापसीकी पल्ली है तहां एक वशिष्ठ नामा तापसी पंचाग्नितैं तपै था तहां गुणभद्र वीरभद्र नामा दोय चारणमुनि आये तिनि वशिष्ठ तापसकूं कही जो तू अज्ञान-तप करै है यामैं जीवनिकी हिंसा होय है, तब तापस प्रत्यक्ष हिंसा देखि अर विरक्त होय जैनदीक्षा लई मासोपवाससहित आतापनयोग स्थाप्या, तिस तपके माहात्म्यतैं सात व्यन्तरदेव आय कही, हमकूं

आज्ञा द्यो सोही करौं, तब वशिष्ठ कही अवारतौ मेरै कछू प्रयोजन नांही जन्मांन्तरमैं तुमकूं यादि करूंगा। पाछैं वशिष्ठ मथुरापुरी आय मासोपवाससहित आतापन जोग स्थाप्या ताकूं मथुरापुरीके राजा उग्र-सेननैं देखि भक्ति थकी या विचारी जो याकूं मैं पारणां कराऊंगा ऐसे नगरमैं घोषणा कराई जो या मुनिकूं और कोई आहार न दे। पीछ पारणाकै दिन नगरमैं आया तहां अग्निका उपद्रव देखि अंतराय जानि उलटा फिऱ्या। फेरि मासोपवास स्थाप्या फेरि पारणाकै दिन नगरमैं आया तब हस्तीका क्षोभ देखि अंतराय जांनि उलटा फिऱ्या फेरि मासो-पवास स्थाप्या। पीछैं पारणाकै दिन फेरि नगरमैं आया तब राजा जरा-संधका पत्र आया ताके निमित्त तैं राजाका व्यग्र चित्त था सो मुनिकूं पडगाहे नांही तब अंतराय करि उलटा वनमैं जाता लोकनिके वचन सुने–जो राजा मुनिकूं आहार दे नहीं अन्यकूं देतेकूं मनैं किये ऐसे लोकनिके वचन सुनि राजापरि क्रोध करि निदान किया जो–या राजाकै पुत्र होय राजाका निग्रह करि मैं राज करूं या तपका मेरै यह फल होहू; ऐसैं निदा-नकरि मूवा राजा उग्रसेनकी राणी पद्मावतीका गर्भमैं आया पूर्ण मास भये जनम्या तब याकूं क्रूरदृष्टि देखि कांसीकी मंजूषामैं स्थाप्या अर वृत्तान्तका लेख सहित यमुनानदीमैं बहाया, तब कौशांबीपुरमैं मंदोदरी नाम कलाली ताकूं लेय पुत्रबुद्धिकरि पाल्या, कंस नाम दिया, तहां बड़ा भया तब बाल-कनिसूं क्रीडा करै तब सबकूं दुःख दे, तब मंदोदरी उलाहनांके दुःखतैं याकूं निकासि दिया, तब यह कंस शौर्यपुर गया, वहां वसुदेव राजाकै पयादा चाकर रह्या। पीछैं जरासंध प्रति नारायणका पत्र आया जो पोद-नांपुरका राजा सिंहरथनैं बांधि ल्यावै ताकूं आधा राज्य सहित पुत्री परणाऊं। तब वसुदेव तहां कंससहित जाय युद्धकरि तिस सिंहरथकूं बांधि ल्याया, जरासंधकूं सौंप्या, तब जरासंध जीवंयशा पुत्रीसहित आधा-

राज्य दिया, तब वसुदेव कही—सिंहरथकूं कंस बांधि ल्याया है याकूं द्यो, तब जरासंध याका कुल जाणिवेकूं मंदोदरीकूं बुलाय कुलका निश्चयकरि याकूं जीवंयशा पुत्री परणाई, तब कंस मथुराका राज लेय आय पिता उग्रसेन राजाकूं अर पद्मावती माताकूं बंदीखानैं दिया। पीछैं कृष्ण नारायणकरि मृत्युकूं प्राप्त भया ताकी कथा विस्तारसूं उत्तरपुराणादिकतैं जाननीं। ऐसैं वशिष्ठमुनि निदानकरि सिद्धिकूं न पाई तातैं भावलिंगहीतैं सिद्धि है॥ ४६॥

आगैं कहै है—भावरहित चौरासीलाख योनिमैं भ्रमैं है;—

गाथा—सो णत्थि तं पएसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।
भावविरओ वि सवणो जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो॥

संस्कृत—सः नास्ति त्वं प्रदेशः चतुरशीतिलक्षयोनिवासे।
भावविरतःअपि श्रमणः यत्र न भ्रमितः जीवः॥४७॥

अर्थ—या संसारमैं चौरासीलाख योनि तिनिके वासमैं ऐसा प्रदेश नांही है जामैं यह जीव द्रव्यलिंग मुनि होय करि भी भावरहित भया संता न भ्रमण किया॥

भावार्थ—द्रव्यलिंग धरि निर्ग्रंथ मुनि होय करि शुद्धस्वरूपका अनुभवरूप भावविना यह जीव चौरासी लाख योनिमैं भ्रमताही रह्या, ऐसा ठिकानां नांही रह्या जामैं जनम्या मर्‍या न होय; ऐसैं जाननां॥

आगैं चौरासी लाख योनिका भेद कहै है;—पृथ्वी, अप, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद ये तौ सात सात लाख हैं ते बयालीस लाख भये; बहुरि वनस्पति दश लाख हैं, बेइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय, दोय दोय लाख हैं; पंचेंद्रिय तिर्यंच च्यार लाख, देव च्यार लाख, नारकी च्यार लाख, मनुष्य चौदह लाख। ऐसैं चौरासी लाख हैं। ये जीवनिके उपजनेंके ठिकानें जाननें॥ ४७॥

आगैं कहै है जो—द्रव्यमात्रकरि लिंगी न होय, भावकरि लिंगी होय है;—

गाथा—भावेण होइ लिंगी णहु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।
तम्हा कुणिज्ज भावं किं कीरइ दव्वलिंगेण ॥४८॥

संस्कृत—भावेन भवति लिंगी नहि लिंगी भवति द्रव्यमात्रेण।
तस्मात् कुर्याः भावं किं क्रियते द्रव्यलिंगेन ॥४८॥

अर्थ—लिंगी होय है सो भावलिंगहीतैं होय है द्रव्यलिंगकरि लिंगी नांही होय है यह प्रकट है, तातैं भावलिंगही धारण करनां, द्रव्य लिंग-करि कहा कीजिये ॥

भावार्थ—आचार्य कहै है जो—सिवाय कहा कहिये भावलिंग विना लिंगी नामही नांही होय जातैं यह प्रकट है, भाव शुद्ध न देखै तब लोकही कहै जो काहेका मुनि है कपटी है तातैं द्रव्यलिंगकरि कछू साध्य नांही, भावलिंगही धारनां ॥ ४८ ॥

आगैं याहीकूं दृढ करनेकूं द्रव्यलिंगधारककै उलटा उपद्रव भया, ताका उदाहरण कहै है;—

गाथा—दंडयणयरं सयलं डहिओ अब्भंतरेण दोसेण।
जिणलिंगेण वि वाहू पडिओ सो रउरवे णरये ॥४९॥

संस्कृत—दण्डकनगरं सकलं दग्ध्वा अभ्यन्तरेण दोषेण।
जिनलिंगेनापि बाहुः पतितः सः रौरवे नरके ॥४९॥

अर्थ—देखो, बाहुनामा मुनि बाह्य जिनलिंगकरि सहित था तौऊ अभ्यंतरके दोषकरि समस्त दंडकनामा नगरकूं दग्ध किया अर सप्तम पृथ्वीका रौरवनामा बिलमैं पड्या ॥

भावार्थ—द्रव्यलिंग धारि किछू तप करै ताकरि किछू सामर्थ्य बधै तब कछू कारण पाय क्रोध करि आपका अर परका उपद्रव करनेंका कारण बनावै तातैं द्रव्यलिंग भावसहित धारणाही श्रेष्ठ है अर केवल द्रव्यलिंग तौ उपद्रवका कारण होय है, ऐसैं याका उदाहरण बाहु मुनिका बताया ताकी कथा ऐसैं;—दक्षिणदिशामैं कुंभकारकटकनगरविषैं दंडकनामा राजा, ताकै बालकनाम मंत्री, तहां अभिनंदन आदि पांचसौं मुनि आये, तिनिमैं एक खंडकनामा मुनि था, तानैं बालकनाम मंत्रिकूं वादविषैं जीत्या, तब मंत्री क्रोधकरि एक भांडकूं मुनिका रूप कराय राजाकी राणी सुव्रता सहित रमता राजाकूं दिखाया, अर कही जो देखो—राजाकै ऐसी भक्ति है जो अपनी स्त्री भी दिगंबरकूं रमबा नैं दई है तब राजा दिगम्बरंनितैं क्रोध करि पांचसै मुनिनिकूं घाणीमैं पिलवाया, ते मुनि उपसर्ग सहि परमसमाधि करि सिद्धि प्राप्त हुये। पीछैं तिसनगर बाहुनामा मुनि आया ताकूं लोकनि मनैं किया जो इहां राजा दुष्ट है सो तुम नगरमैं प्रवेश मति करौ आगैं पांचसै मुनि घाणीमैं पेल्या है सो तुमकूं भी तैसैंही करैगा। तब लोकनिके वचनकरि बाहु मुनिकूं क्रोध उपज्या तब अशुभतैजससमुद्घात करि राजाकूं मंत्रीसहित सर्वनगरकूं भस्म किया। राजा मंत्री सातवैं नरक रौरवनामा बिलामैं पडे तहांही बाहुमुनिभी मरिकरि रौरवबिलामैं पड्या। ऐसैं द्रव्यलिंगमैं भावके दोषतैं उपद्रव होय है, तातैं भावलिंगका प्रधान उपदेश है ॥ ४९ ॥

आगैं इसही अर्थपरि दीपायनमुनिका उदाहरण कहै है,

गाथा—अवरो वि दव्वसवणो दंसणवरणाणचरणपब्भट्ठो।
दीवायणुत्ति णामो अणंतसंसारिओ जाओ ॥५०॥

संस्कृत—अपरः अपि द्रव्यश्रमणः दर्शनवरज्ञानचरणप्रभ्रष्टः।
दीपायन इति नाम अनंतसांसारिकः जातः ॥५०॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो पहलै बाहु मुनि कह्या तैसैं ही और भी दीपायननामा द्रव्यश्रमण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतैं भ्रष्ट भया संता अनंतसंसारी भया॥

भावार्थ—पूर्ववत् याकी कथा संक्षेपतैं ऐसी, नवमां बलभद्र श्रीनेमिनाथतीर्थंकरकूं पूछी जो स्वामिन्! या द्वारिकापुरी समुद्रमैं है सो याकी स्थिति केतेककाल है? तब भगवान् कही रोहिणीको भाई दीपायन तेरो मामो वारह वर्ष पीछैं मद्यका निमित्तकरि क्रोधकरि या पुरीकूं दग्ध करिसी, ऐसे वचन भगवानके वचन सुनि निश्चयकरि दीक्षा ले पूर्वदेशनैं गया, वारह वर्ष व्यतीत करनेंकूं तप करनां आरंभ्या, अर बलभद्र नारायण द्वारिकामैं मद्यनिषेधकी घोषणा दई, तब मद्यका वासण तथा ताकी सामग्री मद्य करणेंवाला बाह्य पर्वतादिकमैं क्षेप्या, तब वासणकी मदिरा तथा मद्यकी सामग्री जलके निवासनिमैं फैली, पीछै वारह वर्ष बीत्या जाणि दीपायन द्वारिका आय नगरबाह्य आतापनयोगकरि तिष्ठया भगवानका वचनकी प्रतीति न राखी पीछै शंभवकुमादिक क्रीडा करते तृषावंत होय कुंडनिमैं जल जानि पीवते भये, तव तिसैं मद्यके निमित्ततैं कुमार उन्मत्त भये, तहां दीपायनमुनिकूं तिष्ठया देखि कहते भये—जो ये द्वारिकाका भस्म करनेंवाला दीपायन है, ऐसैं कहिकरि तिसकूं पाषाणादिककरि घात करते भये, तब दीपायन भूमिमैं गिरि पड्या, तब ताकूं क्रोध उपज्या ताके निमित्ततैं द्वारिका दग्ध भई। ऐसैं दीपायन भावशुद्धि विना अनन्त संसारी भया॥ ५०॥

आगैं भावशुद्धिकरि सहित मुनि भया त्यां सिद्धि पाई ताका उदाहरण कहै है;—

गाथा—भावसमणो य धीरो जुवईजणवेढिओ विसुद्धमई।
णामेण सिवकुमारो परीत्तसंसारिओ जादो॥५१॥

संस्कृत—भावश्रमणश्च धीरः युवतिजनवेष्टितः विशुद्धमतिः।
नाम्ना शिवकुमारः परित्यक्तसांसारिकः जातः ॥५१॥

अर्थ—शिवकुमारनामा भावश्रमण स्त्रीजनकरि वेढ्या हुवा संता भी विशुद्धबुद्धिका धारक धीर संसारका त्यागनवारा होत भया ॥

भावार्थ—शिवकुमार भावकी शुद्धताकरि ब्रह्मस्वर्गमें विद्युन्माली देव होय तहांतैं चय जंबूस्वामी केवली होय मोक्ष पाई, ताकी कथा ऐसैं;— इस जंबूद्वीप पूर्वविदेह पुष्कलावती देश वीतशोकपुरविषैं महापद्मराजा वनमाला राणीकै शिवकुमारनामा पुत्र होता भया सो एकदिन मित्रसहित वनक्रीडा करि नगरमैं आवै था सो मार्गमैं लोककूं पूजाकी सामग्री ले जाता देख्या तब मित्रकूं पूछी—ये कहां जाय हैं, तब मित्र कही जो सागरदत्तनामा मुनि ऋद्धिधारीकूं वनमैं पूजनेंकूं जाय है, तब शिवकुमार मुनि पासि जाय अपनां पूर्वभव सुनि संसारसूं विरक्त होय दीक्षा लई, अर दृढधरनामा श्रावककै घर प्रासुक आहार लिया, ता पीछें स्त्रीनिकै निकट असिधाराव्रत परम ब्रह्मचर्य पालता संता बारह वर्ष तांई तपकरि अंतसंन्यास मरणकरि ब्रह्मकल्पविषैं विद्युन्मालीदेव भया, तहांतैं चयकरि जंबूकुमार भया सो दीक्षा लेय केवलज्ञान पाय मोक्ष गया। ऐसैं शिवकुमार भावमुनि मोक्ष पाई, याकी विस्तारसहित कथा जंबूचरित्रमैं है तहांतैं जाननीं; ऐसैं भाव लिंग प्रधान है ॥ ५१ ॥

आगैं शास्त्र भी पढै अर सम्यग्दर्शनादिरूप भाव विशुद्ध न होय तौ सिद्धिकूं न पावै, ताका उदाहरण अभव्यसेनका कहै है;—

गाथा—केवलिजिणपण्णत्तं[1] एयादसअंग सयलसुयणाणं।
पढिओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो ॥५२॥

1—मुद्रिक संस्कृत सटीक प्रतिमें यह गाथा इस प्रकार है;—
गाथा—अंगाइं दस य दुण्णि य चउदसपुव्वाइं सयलसुयणाणं।
पढिओ अ भव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो ॥ ५२॥
संस्कृत—अंगानि दश च द्वे च चतुर्दशपूर्वाणि सकलश्रुतज्ञानम्।
पठितश्च भव्यसेनः न भावश्रमणत्वं प्राप्तः ॥ ५२॥

संस्कृत—केवलिजिनप्रज्ञप्तं एकादशांगं सकलश्रुतज्ञानम्।
पठितः अभव्यसेनः न भावश्रमणत्वं प्राप्तः ॥५२॥

अर्थ—अभव्यसेननामा द्रव्यलिंगी मुनि है सो केवली भगवानका प्ररूप्या ग्यारह अंग पढ्या तथा ग्यारह अंगकूं पूर्ण श्रुतज्ञान भी कहिये जातैं एता पढ्याकूं अर्थ अपेक्षा पूर्ण श्रुत ज्ञानभी होय जाय है, तहां अभव्यसेन एता पढ्या तौऊ भावश्रमणपणांकूं प्राप्त न भया॥

भावार्थ—इहां ऐसा आशय है जो कोई जानैगा बाह्य क्रिया मात्रतैं तौ सिद्धि नांही अर शास्त्रके पढनेंकरि तौ सिद्धि है तौ यहभी जानना सत्य नांही जातैं शास्त्र पढनें मात्रतैंभी सिद्धि नांही है—अभव्यसेन द्रव्य-मुनिभी भया अर ग्यारह अंगभी पढ्या तौऊ जिनवचनकी प्रतीति न भई यातैं भावलिंग न पाया। अभव्यसेनकी कथा पुराणनिमैं प्रसिद्ध है तहांतैं जाननी॥ ५२॥

आगैं शास्त्र पढ्या विना शिवभूति मुनि तुषमाषकूं घोखताही भावकी विशुद्धिकूं पाय मोक्ष पाई ताका उदाहरण कहै हैं;—

गाथा—तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ॥५३॥

संस्कृत—तुषमापं घोषयन् भावविशुद्धः महानुभावश्च।
नाम्ना च शिवभूतिः केवलज्ञानी स्फुटं जातः॥५३॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो—शिवभूति मुनि है सो शास्त्र पढ्या तुप माष ऐसा शब्दकूं घोखता संता भावकरि विशुद्धितातैं महानुभाव होयकरि केवल ज्ञान पाया यह प्रकट है॥

भावार्थ—कोई जानैगा कि शास्त्र पढ़ेही सिद्धि है सो ऐसैं भी नांही, शिवभूति मुनि तुषमाष ऐसा शब्द मात्रही घोखता भावनिकी

विशुद्धतातैं केवलज्ञान पाया, याकी कथा ऐसैं;—कोई शिवभूति नामा मुनि था सो गुरुनिपासि शास्त्र पढ़ै सो धारणा होय नांही, तब गुरुनि यह शब्द पढ़ाया जो " मा रुष मा तुष " सो या शब्दकूं घोखने लगा। याका अर्थ यह जो रोष मति करै तोष मति करै ॥

भावार्थ—राग द्वेष मति करै यातैं सर्व सिद्धि है। तब यह भी शुद्ध यादि न रह्या तब 'तुषमाष' ऐसा पाठ घोखने लगा, दोष पदके 'रुकार तुकार[1]' विस्मरण होय गये अर तुष माष ऐसा यादि रह्या ताकूं घोखता विचरै। तब कोई एक स्त्री उडदकी दालि धोवैथी ताकूं काहूनैं पूछी, तू कहा करै है–तब वानैं कही–तुष अर माष भिन्न न्यारे न्यारे करूं हूं। तब या मुनिनैं सुनि तुष माष शब्दका भावार्थ यह जान्या जो यह शरीर तौ तुष है अर यह आत्मा माष है, दोऊ भिन्न हैं न्यारे न्यारे हैं, ऐसा भाव जानि आत्माका अनुभव करनें लगा, चिन्मात्र शुद्ध आत्माकूं जानि तामैं लीन भया, तब घाति कर्मका नाशकरि केवलज्ञान उपजाया। ऐसैं भावनिकी विशुद्धितातैं सिद्धि भई जानि भाव शुद्ध करनां, यह उपदेश है ॥ ५३ ॥

आगैं याही अर्थकूं सामान्यकरि कहै है;

गाथा—भावेण होइ णग्गो बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण ।
कम्मपयडीय णियरं णासइ भावेण दव्वेण ॥५४॥

संस्कृत—भावेन भवति नग्नः बहिर्लिंगेन किं च नग्नेन ।
कर्मप्रकृतीनां निकरं नाशयति भावेन द्रव्येण ॥५४॥

अर्थ—भावकरि नग्न होय है बाह्य नग्नलिंगकरि कहा कार्य होय है, नांही होय है जातैं भावसहित द्रव्यलिंगकरि कर्मप्रकृतिके समूहका नाश होय है ॥

---

१ माकार, ऐसा पाठ सुसंगत है।

भावार्थ—आत्माकै कर्मप्रकृतिका नाशकरि निर्जरा तथा मोक्ष होनां कार्य है, सो यह कार्य द्रव्यलिंग ही करि तौ नांही होय है, भावसहित द्रव्यलिंग भये कर्मकी निर्जरा नामा कार्य होय है, केवल द्रव्यलिंगकरि तौ न होय है; तातैं भावसहित द्रव्यलिंग धारणां यह उपदेश है ॥ ५४ ॥

आगैं याही अर्थकूं दृढ़ करै हैं;—

गाथा—णग्गत्तणं अकज्जं भावणरहियं जिणेहिं पण्णत्तं ।
इय णाऊण य णिच्चं भाविज्जहि अप्पयं धीर ॥५५॥

संस्कृत—नग्नत्वं अकार्यं भावरहितं जिनैः प्रज्ञप्तम् ।
इति ज्ञात्वा नित्यं भावयेः आत्मानं धीर ! ॥५५॥

अर्थ—भावरहित नग्नपणां है सो अकार्य है कछू कार्यकरी नांही यह जिनभगवाननैं कह्या है, ऐसैं जानिकरि हे धीर ! हे धैर्यवान मुने निरन्तर नित्य आत्माहीकूं भाय ॥

भावार्थ—आत्माकी भावनाविना केवल नग्नपणां कछू कार्य करनेवाला नांही तातैं चिदानंदस्वरूप आत्माहीकी भावना निरन्तर करणीं, या संहित नग्नपणां सफल है ॥ ५५ ॥

आगैं शिष्य पूछै है जो—भावलिंगकूं प्रधानकरि निरूपण किया सो भावलिंग कैसा है ? ताका समाधानकूं भावलिंगका निरूपण करै है;—

गाथा—देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू ॥ ५६ ॥

संस्कृत—देहादिसंगरहितः मानकषायैः सकलपरित्यक्तः ।
आत्मा आत्मनि रतः स भावलिंगी भवेत् साधु॥५६॥

अर्थ—भावलिंगी साधु ऐसा होय है—देह आदिक जे परिग्रह तिनितैं रहित होय बहुरि मान कषायकरि रहित होय बहुरि आत्मा विषैं लीन होय सो आत्मा भावलिंगी है ॥

भावार्थ—आत्माका स्वाभाविक परिणामकूं भाव कहिये है तिसमयी लिंग कहिये चिह्न तथा लक्षण तथा रूप होय सो भावलिंग है। तहां आत्मा अमूर्त्तीक चेतनारूप है ताका परिणाम दर्शन ज्ञान है तिसमैं कर्मके निमित्ततैं बाह्य तौ शरीरादिक मूर्तीक पदार्थका संबंध है अर अंतरंग मिथ्यात्व अर रागद्वेष आदि कषायनिका भाव है। तातैं कहै है— जो बाह्य तौ देहादिक परिग्रहतैं रहित अर अन्तरंग रागादिक परिणामविषैं अहंकाररूप मानकषाय परभावनिविषैं आपा माननां तिस भावतैं रहित होय, अर अपनां दर्शनज्ञानरूप चेतनभाव ताविषैं लीन होय सो भाव लिंग है, यह भाव होय सो भावलिंगी साधु है ॥ ५६ ॥

आगैं याही अर्थकूं स्पष्टकरि कहै है;—

अनुष्टुपछंद—ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।
आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे ॥५७॥

संस्कृत—ममत्वं परिवर्जामि निर्ममत्वमुपस्थितः।
आलंबनं च मे आत्मा अवशेषानि व्युत्सृजामि ॥५७॥

अर्थ—भावलिंगीमुनिके ऐसे भाव होय हैं—मैं परद्रव्य अर परभावनितैं ममत्व कहिये अपनां माननां ताकूं छोड़ूहूं बहुरि मेरा निजभाव ममत्वरहित है ताकूं अंगीकार करि तिष्ठू हूं, अब मेरै आत्माहीका अवलंबन है और सर्वहीकूं छोड़ूहूँ ॥

भावार्थ—सर्व परद्रव्यनिका आलंबन छोड़ि अपनें आत्म स्वरूपविषैं तिष्ठै ऐसा भावलिंग है ॥ ५७ ॥

आगैं कहै है जो—ज्ञान दर्शन संयम त्याग संवर योग ये भाव भावलिंगी मुनिकै होय हैं ते अनेक है तौउ आत्माही है तातैं इनितैंभी अभेदका अनुभव करै है;—

गाथा—आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥५८॥

संस्कृत—आत्मा खलु मम ज्ञाने आत्मा मे दर्शने चरित्रे च।
आत्मा प्रत्याख्याने आत्मा मे संवरे योगे ॥५८॥

अर्थ—भावलिंगी मुनि विचारै है जो– मेरै ज्ञानभाव प्रगट है ताविपैं आत्माहीकी भावना है कछू ज्ञान न्यारा वस्तु नांही है ज्ञान है सो आत्माही है, तैसैं दर्शनविषैं भी आत्माही है, वहुरि चारित्र है सो ज्ञानविपैं थिरता रहनाहै सो या विषैं भी आत्माही है, बहुरि प्रत्याख्यान आगामी परद्रव्यका संबंध छोड़ना है सो या भावविषैं आत्माही है, वहुरि संवर परद्रव्यके भावरूप न परिणमनेंकाहै सो या भावविषैं भी मेरै आत्माही है, वहुरि योग नाम एकाग्र चिंतारूप समाधि ध्यानका है सो या भावविपैं भी मेरै आत्माही हैं ॥

भावार्थ—ज्ञानादिक कछू न्यारे पदार्थ तौ हैं नांही, आत्माहीके भाव है संज्ञादिकके भेदतैं न्यारे कहिये हैं, तहां अभेददृष्टिकरि देखिये तब ये सर्वभाव आत्माहीहैं तातैं भावलिंगी मुनिके अभेद अनुभवमैं विकल्प नांही है; तातैं निर्विकल्प अनुभवतैं सिद्धिहै यह जाणि ऐसैं करै है ॥ ५८ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ़ करते कहै हैं,—

अनुष्टुप श्लोक-एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥

संस्कृत—एकः मे शाश्वतः आत्मा ज्ञानदर्शनलक्षणः।
शेषाः मे बाह्याः भावाः सर्वे संयोगलक्षणाः ॥५९॥

अर्थ—भावलिंगी विचारै है जो ज्ञान दर्शन जाका लक्षण ऐसा अर शाश्वता नित्य ऐसा आत्मा है सोही एक मेरा है बाकी भाव हैं ते मोतैं बाह्य हैं ते सर्वही संयोगस्वरूप हैं परद्रव्य हैं ॥

भावार्थ—ज्ञानदर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा है सो तौ मेरा रूप है एक स्वरूप है अर अन्य परद्रव्य हैं ते मोतैं बाह्य हैं सर्व संयोगस्वरूप है, भिन्न हैं, यह भावना भावलिंगी मुनिकै है ॥ ४९ ॥

आगैं कहै है जो मोक्ष चाहै है सो ऐसैं आत्माकी भावना करै,

गाथा—भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविसुद्धणिम्मलं चेव ।
लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छसि सासयं सुक्खं ॥६०

संस्कृत—भावय भावशुद्धं आत्मानं सुविशुद्धनिर्मलं चैव ।
लघु चतुर्गति च्युत्वा यदि इच्छसि शाश्वतं सौख्यम् ॥

अर्थ—हे मुनिजन हो! जो च्यारगतिरूप संसारतैं छुटिकरि शीघ्र शाश्वता सुखरूप मोक्ष तुम चाहोहौ तौ भावकरि शुद्ध जैसैं होय तैसैं अतिशयकरि विशुद्ध निर्मल आत्माकूं भावौ ॥

भावार्थ—जो संसारतैं निवृत्तिकरि मोक्ष चाहोहौ तौ द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मतैं रहित शुद्ध आत्माकूं भावौ ऐसा उपदेश है ॥ ६० ॥

आगैं कहै हैं जो आत्माकूं भावै सो याका स्वभावकूं जाणि भावै सो मोक्ष पावै,—

गाथा—जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो ।
सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं ॥६१॥

संस्कृत—यः जीवः भावयन् जीवस्वभावं सुभावसंयुक्तः ।
सः जरामरणविनाशं करोति स्फुटं लभते निर्वाणम् ॥

अर्थ—जो भव्यपुरुष जीवकूं भावता संता भले भावकरि संयुक्त भया जीवका स्वभावकूं जाणि करि भावै सो जरा मरणका विनाशकरि प्रगट निर्वाणकूं पावै है॥

भावार्थ—जीव ऐसा नाम तौ लोकमैं प्रसिद्ध है परन्तु याका स्वभाव कैसा है ऐसा लोककै यथार्थ ज्ञान नाहीं अर मतांतरके दोषतैं याका स्वरूप विपर्यय होय रह्या है तातैं याका यथार्थ स्वरूप जांनि भावैं हैं ते संसारतैं निवृत्त होय मोक्ष पावैं हैं॥ ६१॥

आगैं जीवका स्वरूप सर्वज्ञदेव कह्या है सो कहै है,—

गाथा—जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहाओ य चेयणासहिओ।
सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिम्मित्तो॥६२॥

संस्कृत—जीवः जिनप्रज्ञप्तः ज्ञानस्वभावः च चेतनासहितः।
सः जीवः ज्ञातव्यः कर्मक्षयकरणनिमित्तः॥६२॥

अर्थ—जिन सर्वज्ञ देव जीवका स्वरूप ऐसा कह्या है;—जीव है सो चेतनासहित है बहुरि ज्ञानस्वभाव है, ऐसा जीवका भावनां कर्मका क्षयकै निमित्त जाननां॥

भावार्थ—जीवका चेतनासहित विशेषण कियातैं तौ चार्वाक जीवकूं चेतनासहित न मानै है ताका निराकरण है। बहुरि ज्ञानस्वभाव-विशेषणतैं सांख्यमती ज्ञानकूं प्रधान धर्म मानै है जीवकूं उदासीन नित्य चेतनारूप मानै है ताका निराकरण है, तथा नैयायिकमती गुण गुणीका भेद मांनि ज्ञानकूं सदा भिन्न मानै है ताका निराकरण है। बहुरि ऐसा जीवका स्वरूपका भावनां कर्मका क्षयकै निमित्त होय है, अन्य प्रकार भया मिथ्याभाव है॥ ६२॥

आगैं कहै है जो जे पुरुष जीवका अस्तित्व मानैं हैं ते सिद्ध होय हैं;—

गाथा—जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ ।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमतीदा ॥६३॥

संस्कृत—येषां जीवस्वभावः नास्ति अभावः च सर्वथा तत्र ।
ते भवंति भिन्नदेहाः सिद्धाः वचोगोचरातीताः ॥६३

अर्थ—जिनि भव्यजीवनिकै जीवनामा पदार्थ सद्भावरूप है अर सर्वथा अभावरूप नांही है ते भव्यजीव देह तैं भिन्न ऐसे सिद्ध होय हैं, ते कैसे हैं सिद्ध–वचनगोचरतैं अतीत है ॥

भावार्थ—जीव है सो द्रव्यपर्यायस्वरूप है सो कथंचित् अस्तिस्वरूप है कथंचित् नास्तिस्वरूप है तहां पर्याय अनित्य है या जीवकै कर्मके निमित्ततैं मनुष्य तिर्यंच देव नारक पर्याय होय हैं ताका कदाचित् अभाव देखि जीवका सर्वथा अभाव मानैं है। ताकै संबोधनकूं ऐसा कह्या है–जो जीवका द्रव्यदृष्टिकरि नित्य स्वभाव है, पर्यायका अभाव होतैं सर्वथा अभाव न मानै है सो देहतैं भिन्न होय सिद्ध होय है, ते सिद्ध वचनगोचर नांही है, अर जे देहकूं विनसता देखि जीवका सर्वथा नाश मानैं हैं ते मिथ्या दृष्टी हैं, ते सिद्ध कैसैं होय न होय ॥ ६३ ॥

आगैं कहै है जो जीवका स्वरूप वचनकै अगोचर है अर अनुभवगम्य है सो ऐसा है;—

गाथा—अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेयणागुणमसद्दं[1] ।
आणमलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥६४॥

संस्कृत—अरसमरूपमगंधं अव्यक्तं चेतनागुणं अशब्दम् ।
जानीहि अलिंगग्रहणं जीवं अनिर्दिष्टसंस्थानम् ॥६४

१— संस्कृत मुद्रित प्रतिमें 'चेयगागुणसमद्द' ऐसा प्राकृत पाठ है जिसका चेतनागुणसमार्द्र" ऐसा संस्कृत है, वचनिका प्रतियोंमें ऊपरि लिखित पाठ है।

अर्थ—हे भव्य! तू जीवका स्वरूप ऐसा जानि-कैसा है अरस कहिये पंच प्रकार खाटो मीठो कडो कषायलो खारो रसकरि रहित है बहुरि कालो पीलो लाल सुफेद हऱ्यो या प्रकार अरूप कहिये पांच प्रकार रूप करि रहित है; बहुरि दोय प्रकार गंधकरि रहित है बहुरि अव्यक्त कहिये इन्द्रियनिके गोचरव्यक्त नांही है, बहुरि चेतनागुण है जामैं, बहुरि अशब्द कहिये शब्दकरि रहित है, बहुरि अलिंगग्रहण कहिये जाका कोऊ चिह्न इंद्रियद्वारै ग्रहणमैं आता नांही, अर अनिर्दिष्ट संस्थान कहिये चौकूंणा गोल आदि कछू आकार जाका कह्या जाता नांही ऐसा जीव जाणौं ॥

भावार्थ—रस रूप गंध शब्द येतौ पुद्गलके गुण हैं तिनिका निषेधरूप जीव कह्या, बहुरि अव्यक्त अलिंगग्रहण अनिर्दिष्टसंस्थान कह्या, सो ये भी पुद्गलके स्वभावकी अपेक्षाकरि निषेधरूपही जीव कह्या, अर चेतनागुण कह्या सो ये जीवका विधिरूप कह्या। सो निषेध अपेक्षा तौ वचनकै अगोचर जाननां अर विधि अपेक्षा स्वसंवेदगोचर जाननां; ऐसैं जीवका स्वरूप जांनि अनुभवगोचर करनां। यह गाथा समयसार प्रवचनसार ग्रंथमैं भी है सो याका व्याख्यान टीकाकार विशेषकरि कह्या है सो तहांतै जाननां॥ ६४ ॥

आगैं जीवका स्वभाव ज्ञानस्वरूप भावनां कह्या सो वह ज्ञानकै प्रकार भावनां सो कहै है;—

गाथा—भावहि पंचपयारं णाणं अण्णाणणासणं सिग्धं।
भावणभावियसहिओ दिवसिवसुहभायणो होइ ॥६५॥

संस्कृत—भावय पंचप्रकारं ज्ञानं अज्ञाननाशनं शीघ्रम्।
भावनाभावितसहितः दिवशिवसुखभाजनं भवति ६५

अर्थ—हे भव्यजन ! तू यह ज्ञान पांच प्रकार भाय, कैसा है यह ज्ञान—अज्ञानका नाशकरनेंवाला है, कैसा भया भाय भावनाकरि भावित जो भाव तिससहित भाय, बहुरि कैसा भया शीघ्र भाय, यातैं तू दिव कहिये स्वर्ग शिव कहिये मोक्ष ताका भाजन होय ॥

भावार्थ—यद्यपि ज्ञान जाननस्वभावकरि एक प्रकार है तौऊ कर्मके क्षयोपशम क्षयकी अपेक्षा पंच प्रकार भया है तामैं मिथ्यात्वभावकी अपेक्षाकरि मतिश्रुत अवधि ये तीन मिथ्याज्ञानभी कहाये हैं, तातैं मिथ्याज्ञानका अभाव करनेंकूं मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ज्ञानस्वरूप पंच प्रकार सम्यग्ज्ञान जांनि तिनिकूं भावनां, परमार्थ विचार तैं ज्ञान एकही प्रकार है, यह ज्ञानकी भावना स्वर्गमोक्षकी दाता है ॥ ६५ ॥

आगैं कहै है जो—पढनां सुननांभी भावविना कछू है नांही;—

गाथा—पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिएण।
भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं ॥६६॥

संस्कृत—पठितेनापि किं क्रियते किं वा श्रुतेन भावरहितेन।
भावः कारणभूतः सागारानगारभूतानाम् ॥६६॥

अर्थ—भावरहित पढनां सुननां तिनिकरि कहा कीजिये कछूभी कार्यकारी नांही है तातैं श्रावकपणां तथा मुनिपणां इनिका कारणभूत भावही है ॥

भावार्थ—मोक्षमार्गमैं एकदेश सर्वदेश व्रतनिकी प्रवृत्तिरूप मुनिश्रावकपणां है सो दोऊका कारणभूत निश्चय सम्यग्दर्शनादिक भाव हैं, तहां भावविना व्रतक्रियाकी कथनी कछू कार्यकारि नांही है, तातैं ऐसा उपदेश है जो भावविना पढनां सुननां आदिकरि कहा कीजिये, केवल खेदमात्र है, तातैं भावसहित कछू करो सो सफल है। इहां ऐसा आशय है जो कोऊ जानैगा पढ़नां सुननांही ज्ञान है सो ऐसैं नांही है, पढ़ि सुनिकरि

आपकूं ज्ञानस्वरूप जांनि अनुभव करै तब भाव जानिये है; तातैं बार बार भावनाकरि भाव लगायेही सिद्धि है ॥ ६६ ॥

आगैं कहै है जो—बाह्य नग्नपणांही करि ही सिद्धि होय तौ नग्न तौ सारेही होय हैं;—

गाथा—दव्वेण सयल णग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया।
परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तणं पत्ता ॥६७॥

संस्कृत—द्रव्येण सकला नग्नाः नारकतिर्यंचश्च सकलसंघाताः।
परिणामेन अशुद्धाः न भावश्रमणत्वं प्राप्ताः ॥६७॥

अर्थ—द्रव्यकरि बाह्य तौ सकल प्राणी नागा होय हैं नारकी जीव अर तिर्यंच जीव तौ निरन्तर वस्त्रादिककरि रहित नागाही रहैं हैं, बहुरि सकलसंघात कहनेंतैं अन्य मनुष्य आदिक भी कारण पाय नग्न होय हैं तौऊ परिणामकरि अशुद्ध हैं तातैं भावश्रमणपणांकूं प्राप्त नांही भये ॥

भावार्थ—जो नग्न रहे ही मुनिलिंग होय तौ नारकी तिर्यंच आदि सकल जीवसमूह नग्न रहैं हैं ते सर्वही मुनि ठहरैं तातैं मुनिपणां तौ भाव शुद्ध भयेही होय है, अशुद्ध भाव होय तेतैं द्रव्यकरि नग्न भी होय तौ भावमुनिपणां न पावै है ॥ ६७ ॥

आगैं याही अर्थकूं दृढ करनेंकूं केवल नग्नपणां निष्फल दिखावै है;—

गाथा—णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमई।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं ॥६८॥

संस्कृत—नग्नः प्राप्नोति दुःखं नग्नः संसारसागरे भ्रमति।
नग्नः न लभते बोधिं जिनभावनावर्जितः सुचिरं ६८

अर्थ—नग्न है सो सदा दुःख पावै है, बहुरि नग्न है सो सदा संसारसमुद्रमैं भ्रमै है, बहुरि नग्न है सो बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान

चारित्ररूप स्वानुभव ताहि न पावै है, कैसा है नग्न—जो जिन भावनाकरि वर्जित है सो ॥

भावार्थ—जिनभावना जो सम्यग्दर्शन भावना तिसकरि वर्जित जो जीव है सो नग्न भी रहै तौ बोधि जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग ताकूं न पावै है याहीतैं संसारसमुद्रमैं भ्रमता संसारहीमैं दुःखकूं पावै है तथा वर्त्तमानमैं भी जो पुरुष नागा होय है सो दुःखहीकूं पावै है, सुख तौ भावमुनि नागा होय ते ही पावैं हैं ॥ ६८ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करनेंकूं कहै है जो द्रव्यनग्न होय मुनि कहावै ताका अपयश होय है;—

गाथा—अयसाण भायणेण य किं ते णग्गेण पावमलिणेण ।
पेसुण्णहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण ॥६९॥

संस्कृत—अयशसां भाजनेन किं ते नग्नेन पापमलिनेन ।
पैशून्यहासमत्सरमायाबहुलेन श्रमणेन ॥६९॥

अर्थ—हे मुने ! तेरे ऐसे नग्नपणांकरि तथा मुनिपणांकरि कहा साध्य है, कैसा है—पैशून्य कहिये अन्यका दोष कहनेंका स्वभाव, हास्य कहिये अन्यका हास्य करनां, मत्सर कहिये आपसमानतैं ईर्षा राखि परकूं नीचा पाडनेंकी बुद्धि, माया कहिये कुटिल परिणाम, ये भाव हैं बहुत प्रचुर जामैं, याहीतैं कैसा है पापकरि मलिन है, याहीतैं कैसा है अयश कहिये अपकीर्त्ति तिनिका भाजन है ॥

भावार्थ—पैशून्य आदि पापनिकरि मैला ऐसा नग्नपणांस्वरूप मुनिपणांकरि कहा साध्य है ? उलटा अपकीर्त्तिका भाजन होय व्यवहारधर्मकी हास्य करावनहार होय है; तातैं भावलिंगी होनां योग्य है—यह उपदेश है ॥ ६९ ॥

आगैं ऐसैं भावलिंगी होनां यह उपदेश करै है;—

गाथा—पयडहिं जिणवरलिंगं अब्भिंतरभावदोसपरिसुद्धो।
भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियई ॥७०॥

संस्कृत—प्रकटय जिनवरलिंगं अभ्यन्तरभावदोपपरिशुद्धः।
भावमलेन च जीवः बाह्यसंगे मलिनयति ॥७०॥

अर्थ—हे आत्मन्! तू अभ्यन्तर भावदोषनिकरि अत्यंतशुद्ध ऐसा जिनवरलिंग कहिये बाह्य निर्ग्रन्थलिंग प्रगटकरि, भावशुद्धि विनां द्रव्य-लिंग विगडि जायगा जासैं भावमलिनकरि जीव है सो बाह्य परिग्रहविषैं मलिन होय है ॥

भावार्थ—जो भाव शुद्धकरि द्रव्यलिंग धारै तौ भ्रष्ट न होय अर भाव मलिन होय तौ बाह्य भी परिग्रहकी संगतिकरि द्रव्यलिंगभी विगाडै तातैं प्रधानपणैं भावलिंगहीका उपदेश है, विशुद्ध भाव विना बाह्य भेष धारणां योग्य नांही ॥ ७० ॥

आगैं कहै है जो भावरहित नग्न मुनि है सो हास्यका स्थान है;—

गाथा—धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लुसमो।
णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ॥७१॥

संस्कृत—धर्मे निप्रवासः दोपावासः च इक्षुपुष्पसमः।
निष्फलनिर्गुणकारः नटश्रमणः नग्नरूपेण ॥७१॥

अर्थ—धर्म कहिये अपनां स्वभाव तथा दशलक्षणस्वरूप तिसविषैं जाका वास नांही सो जीव दोषनिका आवास है अथवा दोष जामैं वसैहै सो इक्षुके फूलसमानहै जाकै कछू फल नांही अर गंधादिक गुण नांही सो ऐसा मुनि तौ नग्नरूपकरि नटश्रमण कहिये नाचनेंवाला भांडका स्वांग सारिखा है ॥

भावार्थ—जाकै धर्ममैं वासना नांही तातैं क्रोधादिक दोष ही वसै अर दिगंबररूप धारै तौ वह मुनि इक्षुके फूल सारिखा निर्गुण अर निष्फल है ऐसे मुनिकै मोक्षरूप फल न लागै, अर सम्यग्ज्ञानादिक गुण जामैं नांही तब नग्न भया भांडकासा स्वांग दीखै, सो भी भांड नाचैं तब शृंगारादिक करि नाचैं तौ शोभा पावै, नग्न होय नाचै तब हास्यकूं पावै तैसैं केवल द्रव्य नागा हास्यका स्थानक है ॥ ७१ ॥

आगैं इसही अर्थका समर्थनरूप कहै है जो—द्रव्यलिंगी वोधि समाधि जैसी जिनमार्गमैं कही है तैसी नांही पावै है;—

गाथा—जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा ।
न लहंति ते समाहिं वोहिं जिणसासणे विमले ॥७२॥

संस्कृत—ये रागसंगयुक्ताः जिनभावनारहितद्रव्यनिर्ग्रंथाः ।
न लभंते ते समाधिं वोधिं जिनशासने विमले ॥७२

अर्थ—जे मुनि राग कहिये अभ्यंतर परद्रव्यसूं प्रीति सोही भया संग कहिये परिग्रह ताकरि युक्त है, वहुरि जिनभावना कहिये शुद्धस्व-रूपकी भावनाकरि रहित हैं ते द्रव्यनिर्ग्रन्थ हैं तौहू निर्मल जिनशासन-विषैं जो समाधि कहिये धर्मशुक्लध्यान अर वोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग ताहि न पावै है ॥

भावार्थ—द्रव्यलिंगी अभ्यन्तरका राग छोडै नांही परमात्माकूं भावै नांही तव कैसैं मोक्षमार्ग पावै तथा समाधिमरण कैसैं पावै ॥ ७२ ॥

आगैं कहै है जो—पहलैं मिथ्यात्व आदिक दोष छोड़िकरि भावकरि नग्न होय पीछैं द्रव्यमुनि होय यह मार्ग है;—

गाथा—भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं ।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए ॥७३॥

संस्कृत—भावेन भवति नग्नः मिथ्यात्वादीन् च दोषान् त्यक्त्वा।
पश्चात् द्रव्येण मुनिः प्रकटयति लिंगं जिनाज्ञया ॥७३

अर्थ—पहलै मिथ्यात्व आदि दोषनिकूं छोड़ि अर भावकरि अंतरंग नग्न होय एकरूप शुद्ध आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण करै पीछैं मुनि द्रव्यकरि बाह्य लिंग जिन आज्ञाकरि प्रगट करै यह मार्ग है ॥

भावार्थ—भाव शुद्ध हुवा विना पहलैं ही दिगंबररूप धारि ले तौ पीछैं भाव विगडै तब भ्रष्ट होय, अर भ्रष्ट होय मुनि भी कहावो करै तौ मार्गकी हास्य करावै तातैं जिन आज्ञा यही है—भाव शुद्ध करि बाह्य मुनिपणां प्रगट करो ॥ ७३ ॥

आगैं कहै है जो—शुद्ध भावही स्वर्गमोक्षका कारण है, मलिनभाव संसारका कारण हैं;—

गाथा—भावो वि दिव्वसिवसुक्खभायणो भाववज्जिओ सवणो।
कम्ममलमलिणचित्तो तिरियालयभायणो पावो ॥७४॥

संस्कृत—भावः अपि दिव्यशिवसौख्यभाजनं भाववर्जितः श्रमणः
कर्ममलमलिनचित्तः तिर्यगालयभाजनं पापः ॥७४॥

अर्थ—भाव है सो ही स्वर्ग मोक्षका कारण है बहुरि भावकरि वर्जित श्रमण है सो पापस्वरूप है तिर्यंचगतिका स्थानक है, कैसा है श्रमण—कर्ममलकरि मलिन हैं चित्त जाका ॥

भावार्थ—भावकरि शुद्ध है सो तौ स्वर्ग मोक्षका पात्र है अर भावकरि मलिन है सो तिर्यंचगतिमैं निवास करै है ॥ ७४ ॥

आगैं फेरि भावके फलका माहात्म्य कहै है;—

गाथा—खयरामरमणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विउला।
चक्कहररायलच्छी लं[1]भइ वोही सुभावेण ॥७५॥

[1]—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'लब्भेइ वोही ण भव्वणुआ' ऐसा पाठ है।

संस्कृत—खचरामरमनुजकरांजलिमालाभिश्च संस्तुता विपुला।
चक्रधरराजलक्ष्मीः लभ्यते बोधिः सुभावेन ॥७५॥

अर्थ—सुभाव कहिये भले भाव करि मंदकषायरूप विशुद्ध भाव करि चक्रवर्त्ती आदि राजा तिनिकी विपुल कहिये बड़ी लक्ष्मी पावै है, कैसी है—खचर कहिये विद्याधर अमर कहिये देव मनुज कहिये मनुष्य इनिकी अंजुलीमाला कहिये हस्तनिकी अंजुली तिनिकी पंक्ति करि संस्तुत कहिये नमस्कारपूर्वक स्तुति करनें योग्य है, बहुरि केवल यह लक्ष्मीही नांही पावै है बोधि कहिये रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग भी पावै है॥

भावार्थ—विशुद्ध भावनिका यह माहात्म्य है ॥ ७५ ॥

आगैं भावनिका विशेष कहै हैं;—

गाथा—भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं च अट्टरुद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं ॥ ७६ ॥

संस्कृत—भावः त्रिविधप्रकारः शुभोऽशुभः शुद्ध एव ज्ञातव्यः।
अशुभश्च आर्त्तरौद्रं शुभः धर्म्यं जिनवरेन्द्रैः ॥ ७६ ॥

अर्थ—जिनवरदेव भाव तीनप्रकार कह्या है:—शुभ, अशुभ, शुद्ध ऐसैं। तहां अशुभ तौ आर्त्तरौद्र ये ध्यान है अर शुभ है सो धर्मध्यान है ॥ ७६ ॥

गाथा—सुद्धं सुद्धसहावं अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।
इदिजिणवरेहिं भणियं जं सेयं तं समायरह ॥७७॥

संस्कृत—शुद्धः शुद्धस्वभावः आत्मा आत्मनि सः च ज्ञातव्यः।
इति जिनवरैः भणितं यः श्रेयान् तं समाचर ॥७७॥

अर्थ—बहुरि शुद्ध है सो अपनां शुद्धस्वभाव आपहीमैं है ऐसैं जिनवरदेव कह्या है सो जाननां तिनिमैं जो कल्याणरूप होय ताकूं अंगीकार करौ॥

भावार्थ—भगवान भाव तीन प्रकार कह्या है; शुभ, अशुभ, शुद्ध। तहां अशुभ तौ आर्तरौद्र ध्यान हैं सो तौ अतिमलिन हैं त्याज्य ही हैं, बहुरि शुभ है सो धर्मध्यान है सो यह कथंचित् उपादेय है जातैं मंदकषायरूप विशुद्ध भावकी प्राप्ति है, बहुरि शुद्ध भाव है सो सर्वथा उपादेय है जातैं यह आत्माका स्वरूपही है। ऐसैं हेय उपादेय जांनि त्याग ग्रहण करनां तातैं ऐसा कह्या है जो कल्याणकारी होय सो अंगीकार करनां यह जिनंदेवका उपदेश है॥ ७७॥

आगैं कहै है जो जिनशासनका ऐसा माहात्म्य है;—

गाथा—पयलियमाणकसाओ पयलियसिच्छत्तमोहसमचित्तो।
पावइ तिहुवणसारं वोही जिणसासणे जीवो॥ ७८॥

संस्कृत—प्रगलितमानकषायः प्रगलितमिथ्यात्वमोहसमचित्तः।
आप्नोति त्रिभुवनसारं बोधिं जिनशासने जीवः॥७८॥

अर्थ—यह जीव है सो जिनशासनविषैं तीन भुवनमैं सार ऐसी बोधि कहिये रत्नभयात्मक मोक्ष मार्ग ताहि पावै है, कैसा भया संता प्रगलितमानकषाय कहिये प्रकर्षकरि गल्या है मान कषाय जाका, काहू परद्रव्यसूं अहंकाररूप गर्व नांही करै है, बहुरि कैसा भया संता प्रगलित कहिये गलिगया है नष्ट भया है मिथ्यात्वका उदयरूप मोह जाका याहीतैं समचित्त है परद्रव्यविषैं ममकाररूप मिथ्यात्व अर इष्ट अनिष्टबुद्धिरूप रागद्वेष जाकै नांही है॥

भावार्थ— मिथ्यात्वभाव अर कषाय भावका स्वरूप अन्य मतविषैं यथार्थ नांही, यह कथनी या वीतरागरूप जिनमतमैं ही है; तातैं यह जीव मिथ्यात्व कषायके अभावरूप मोक्षमार्ग तीन भवनमैं सार जिनमतका सेवनही तैं पावैं है, अन्यत्र नांही॥

आगैं कहै है जो—जिनशासनविषैं ऐसा मुनिही तीर्थंकर प्रकृति बांधै है;—

गाथा—विसयविरत्तो सवणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण।
तित्थयर नामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण ॥ ७९ ॥

संस्कृत—विषयविरक्तः श्रमणः षोडशवरकारणानि भावयित्वा।
तीर्थंकरनामकर्म बध्नाति अचिरेण कालेन ॥ ७९ ॥

अर्थ—इन्द्रियनिके विषयनिकरि विरक्त है चित्त जाका ऐसा श्रमण कहिये मुनि है सो सोलह कारण भावनाकूं भाय तीर्थंकर नाम प्रकृति है ताहि थोरेहीं कालकरि बांधे है ॥

भावार्थ—यह भावका माहात्म्य है, विषयनितैं विरक्त भाव होय सोलह कारण भावना भावे तौ अचिंत्य है माहात्म्य जाका ऐसी तीन लोककरि पूज्य तीर्थंकर नामा प्रकृति बांधे ताकूं भोगि अर मोक्षकूं प्राप्त होय। इहां सोलह कारण भावनाके नाम;—दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्त्यकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, सन्मार्गप्रभावना, प्रवचनवात्सल्य, ऐसैं सोलह भावना हैं। इनिका स्वरूप तत्वार्थ सूत्रकी टीकातैं जाननां। इनिमैं सम्यग्दर्शन प्रधान है, यह न होय अर पंदरह भावनाका व्यवहार होय तौ कार्यकारी नांही; अर यह होय तौ पंदरह भावनाका कार्य यही करिले, ऐसैं जाननां ॥

आगैं भावकी विशुद्धितानिमित्त आचरण कहै हैं;—

गाथा—बारसविहतवयरणं तेरसकिरियाउ भाव तिविहेण।
धरहि मणमत्तदुरियं णाणांकुसएण मुणिपवर ॥८०॥

संस्कृत—द्वादशविधतपश्चरणं त्रयोदश क्रियाः भावय त्रिविधेन।
धर मनोमत्तदुरितं ज्ञानाङ्कुशेन मुनिप्रवर ! ॥ ८० ॥

अर्थ—हे मुनिप्रवर ! मुनिनिमैं श्रेष्ठ ! तू वारह प्रकार तप चर अर तेरह प्रकार क्रिया मन वच कायकरि भाय, अर ज्ञानरूप अंकुशकरि मनरूप माते हाथीकूं धारि अपने वशमैं राखि ॥

भावार्थ—यह मनरूप हस्ती मदोन्मत्त वहुत है सो तपश्चरण क्रियादिकसहित ज्ञानरूप अंकुशहीतैं वशि होय है तातैं यह उपदेश है जो तपश्चरण क्रियादिकसहित ज्ञानरूप अंकुशहीतैं वशिहोय है और प्रकार नांही । इहां वारह तपके नामः—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्या, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश ये तौ छहप्रकार बाह्यतप हैं; वहुरि प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान ये छह प्रकार अभ्यंतर तप हैं; इनिका स्वरूप तत्वार्थसूत्रकी टीकातैं जाननां । वहुरि तेरह क्रिया ऐसैं;—पंच परमेष्ठीकूं नमस्कार ये पांच क्रिया; छह आवश्यकक्रिया निषिधिकाक्रिया, आसिकाक्रिया । ऐसैं भाव शुद्ध होनेंके कारण कहे ॥ ८० ॥

आगैं द्रव्यभावरूप सामान्यकरि जिनलिंगका स्वरूप कहै हैं;—

गाथा—पंचविहचेलचायं खिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू ।
भावं भाविय पुव्वं जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं ॥८१॥

संस्कृत—पंचविधचेलत्यागं क्षितिशयनं द्विविधसंयमं भिक्षुः ।
भावं भावयित्वा पूर्वं जिनलिंगं निर्मलं शुद्धम्॥८१॥

अर्थ—निर्मल शुद्ध जिनलिंग ऐसा है—जहां पंचप्रकार वस्त्रका त्याग है, वहुरि जहां भूमिविषैं शयन है, वहुरि जहां दोय प्रकार संयम है, वहुरि जहां भिक्षाभोजन है, वहुरि भावितपूर्व कहिये पहलैं शुद्ध आत्माका

स्वरूप परद्रव्यतैं भिन्न सम्यग्दर्शनज्ञान चरित्रमयी भया वारंवार भावनाकरि अनुभव किया ऐसा जामैं भाव है ऐसा निर्मल कहिये वाह्यमलरहित शुद्ध कहिये अन्तर्मलरहित जिनलिंग है ॥

भावार्थ—इहां लिंग द्रव्य भावकरि दोयप्रकार है तहां द्रव्य तौ बाह्य त्याग अपेक्षा है जामैं पांचप्रकार वस्त्रका त्याग है, ते पंच प्रकार ऐसैं;—अंडज कहिये रेसमतैं उपज्या, बोंडुज कहिये कपासतैं उपज्या, रोमज कहिये ऊनतैं उपज्या, वल्कलज कहिये वृक्षकी त्वचा छालितैं उपज्या, चर्मज कहिये मृग आदिककी चर्मतैं उपज्या, ऐसैं पांच प्रकार कहे; तहां ऐसैं नांही जाननां जो—इनि सिवाय और वस्त्र ग्राह्य है—ये तौ उपलक्षणमात्र कहे हैं तातैं सर्वही वस्त्रमात्रका त्याग जाननां। बहुरि भूमिविषैं सोवनां बैठनां तहां काष्ठ तृण भी गिणि लेनां। बहुरि इंद्रिय मनका वशि करनां छह कायके जीवनिकी रक्षा करनां ऐसैं दोय प्रकार संयम है। बहुरि भिक्षा भोजन करनां जामैं कृत कारित अनुमोदनाका दोष न लागै—छियालीस दोष टलै, बत्तीस अंतराय टलै ऐसैं यथाविधि आहार करै। ऐसैं तौ बाह्यलिंग है। बहुरि पूर्वैं कह्या तैसैं होय सो भावलिंग है। ऐसैं दोय प्रकार शुद्ध जिनलिंग कह्या है, अन्य प्रकार श्वेतांवरादिक कहैं हैं सो जिनलिंग नांही है ॥ ८१ ॥

आगैं जिनधर्मकी महिमा कहै है;—

गाथा—जह रयणाणं पवरं वज्जं जह तरुगणाण गोसीरं।
तह धम्माणं पवरं जिणधम्मं भाविभवमहणं ॥८२॥

१—मुद्रीत संस्कृतसटीक प्रतिमें "भावि भवमहणं" ऐसे दो पद हैं जिनकी संस्कृत "भावय भवमथनं" इस प्रकार है।

संस्कृत—यथा रत्नानां प्रवरं वज्रं यथा तरुगणानां गोशीरम्।
तथा धर्माणां प्रवरं जिनधर्मं भाविभवमथनम् ॥८२॥

अर्थ—जैसैं रत्ननिविषैं प्रवर कहिये श्रेष्ठ उत्तम वज्र कहिये हीरा है बहुरि जैसैं तरुगण कहिये बडे वृक्षनिविषैं प्रवर श्रेष्ठ उत्तम गोसीर कहिये बावन चन्दन है तैसैं धर्मनिविषैं उत्तम श्रेष्ठ जिनधर्म है, कैसा है जिनधर्म—भाविभवमथन कहिये आगामी संसारका मथन करनेंवाला है यातैं मोक्ष होय है॥

भावार्थ—धर्म ऐसा सामान्य नाम तौ लोकमैं प्रसिद्ध है अर लोक अनेक प्रकारकरि क्रियाकांडादिकनैं धर्म जांनि सेवै है, तहां परीक्षा किये मोक्षकी प्राप्ति करनेंवाला जिनधर्मही है अन्य सर्व संसारके कारण हैं ते क्रियाकांडादिक संसारहीमैं राखैं हैं, कदाचित् संसारके भोगकी प्राप्ति करै हैं तौऊ फेरि भोगनिमैं लीन होय तब एकेंद्रियादि पर्याय पावै तथा नरककूं पावै है ऐसैं अन्यधर्म नाममात्र हैं तातैं उत्तम जिनधर्म जाननां ८२

आगैं शिष्य पूछै है जो–जिनधर्म उत्तम कह्या सो धर्मका कहा स्वरूप है? ताका स्वरूप कहै है जो धर्म ऐसा है;—

गाथा—पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो ॥८३॥

संस्कृत—पूजादिषु व्रतसहितं पुण्यं हि जिनैः शासने भणितम्।
मोहक्षोभविहीनः परिणामः आत्मनः धर्मः ॥८३॥

अर्थ—जिनशासनविषैं जिनेंद्रदेव ऐसैं कह्या है जो पूजा आदिककै विषैं अर व्रतसहित होय सो तौ पुण्य है बहुरि मोहके क्षोभकरि रहित जो आत्माका परिणाम सो धर्म है॥

भावार्थ—लौकिक जन तथा अन्यमती केई कहैं हैं जो—पूजा आदिक शुभक्रिया तिनिविषैं अर व्रतक्रियासंहित है सो जिनधर्म है सो

ऐसैं नांहीं है। जिनमतमैं जिनभगवान ऐसैं कह्या है जो पूजादिकविषैं अर व्रतसहित होय सो तौ पुण्य है, तहां पूजा अर आदि शब्द करि भक्ति वंदना वैयावृत्त्य आदिक लेनां यह तौ देव गुरु शास्त्रकै अर्थि होय है बहुरि उपवास आदिक व्रत हैं सो शुभक्रियाहैं इनिमैं आत्माका रागसहित शुभपरिणाम है ताकरि पुण्यकर्म निपजैहैं तातैं इनिकूं पुण्य कहे हैं, याका फल स्वर्गादिक भोगकी प्राप्ति है। बहुरि मोहका क्षोभ रहित आत्माके परिणाम लेणें, तहां मिथ्यात्व तौ अतत्वार्थश्रद्धानहै, बहुरि क्रोध मान अरति शोक भय जुगुप्सा ये छह तौ द्वेषप्रकृति हैं बहुरि माया लोभ हास्य रति पुरुष स्त्री नपुंसक ये तीन विकार ऐसैं सात प्रकृति रागरूप हैं इनिके निमित्ततैं आत्माका ज्ञानदर्शनस्वभाव विकारसहित क्षोभरूप चलाचल व्याकुल होय है यातैं इनिका विकारनितैं रहित होय तब शुद्ध दर्शनज्ञानरूप निश्चय होय सो आत्माका धर्म है; इस धर्मतैं आत्माकै आगामी कर्मका तौ आस्रव रुकि संवर होय है अर पूर्वें बंधे कर्म तिनिकी निर्जरा होय है, संपूर्ण निर्जरा होय तब मोक्ष होय है; तथा एकदेश मोहके क्षोभकी हानि होय है तातैं शुभपरिणामकूं भी उपचार करि धर्म कहिये है, अर जे केवल शुभपरिणामहीकूं धर्म मांनि संतुष्टहैं तिनिकै धर्मकी प्राप्ति नांहीं है, यह जिनमतका उपदेश है ॥८३॥

आगैं कहै है जो—पुण्यहीकूं धर्म जांणि श्रद्धै है तिनिकै केवल भोगका निमित्त है कर्मक्षयका निमित्त नांहीं;—

गाथा—सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि च तह पुणो वि फासेदि।
पुण्णं भोयणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥८४॥

संस्कृत—श्रद्दधाति च प्रत्येति च रोचते च तथा पुनरपि स्पृशति।
पुण्यं भोगनिमित्तं न हि तत् कर्मक्षयनिमित्तम् ॥८४

अर्थ—जे पुरुष पुण्यकूं धर्म जांणि श्रद्धान करैं हैं बहुरि प्रतीति करैं हैं बहुरि रुचि करैं है बहुरि स्पर्शैं हैं तिनिकै पुण्य भोगका निमित्त है यातैं स्वर्गादिक भोग पावैं हैं, बहुरि सो पुण्य कर्मका क्षयका निमित्त न होय है, यह प्रगट जानो॥

भावार्थ—शुभक्रियारूप पुण्यकूं धर्म जांणि याका श्रद्धान ज्ञान आचरण करै है ताकै पुण्यकर्मका बंध होय है ताकरि स्वर्गादिके भोगकी प्राप्ति होय है, अर ताकरि कर्मका क्षयरूप संवर निर्जरा मोक्ष न होय॥ ८४॥

आगैं कहै है जो आत्माका स्वभावरूप धर्म्म है सो ही मोक्षका कारण है ऐसा नियम है;—

गाथा—अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।
संसारतरणहेदू धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं॥८५॥

संस्कृत—आत्मा आत्मनि रतः रागादिषु सकलदोषपरित्यक्तः।
संसारतरणहेतुः धर्म इति जिनैः निर्दिष्टम्॥८५॥

अर्थ—जो आत्मा आत्माहीविषैं रत होय, कैसा भया रत होय—रागादिक समस्त दोषनिकरि रहित भया संता ऐसा धर्म जिनेश्वरदेवनैं संसारसमुद्रतैं तिरणेंका कारण कह्या है॥

भावार्थ—जो पूर्वे कह्याथा मोहके क्षोभकरि रहित आत्माका परिणाम है सो धर्म है सो ऐसा धर्मही संसारतैं पारकरि मोक्षका कारण भगवान कह्या है, यह नियम है॥ ८५॥

आगैं याही अर्थके दृढ करनेंकूं कहै हैं जो—आत्माकूं इष्ट नांही करै है अर समस्त पुण्यकूं आचरण करै है तौऊ सिद्धिकूं न पावै है;—

गाथा—अह पुणु अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥८६

संस्कृत—अथ पुनः आत्मानं नेच्छति पुण्यानि करोति
निरवशेषानि ।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः८६

अर्थ—अथवा जो पुरुष अत्माकूं नांही इष्ट करै है ताका स्वरूप न जानैं है अंगीकार नांही करै है अर सर्व प्रकार समस्त पुण्यकूं करै है तौऊ सिद्धि कहिये मोक्ष ताहि नहीं पावै है बहुरि वह पुरुष संसारहीमैं तिष्ठ्या रहै है ॥

भावार्थ—आत्मिकधर्म धार्‍यां विना सर्वप्रकार पुण्यका आचरण करै तौऊ मोक्ष न होय संसारहीमैं रहै है, कदाचित् स्वर्गादिक भोग पावै तौ तहां भोगनिमैं आसक्त होय वसै, तहांतैं चय एकेंद्रियादिक होय संसारहीमैं भ्रमैं है ॥ ८६ ॥

आगैं इस कारणकरि आत्माहीका श्रद्धान करौ प्रयत्नकरि जाणौ मोक्ष पावौ ऐसा उपदेश करै है;—

गाथा—एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण ।
जेण य लभेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण ॥८७॥

संस्कृत—एतेन कारणेन च तं आत्मानं श्रद्धत्त त्रिविधेन ।
येन च लभध्वं मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन ॥ ८७ ॥

अर्थ—पूर्वैं कह्याथा जो आत्माका धर्म तौ मोक्ष है तिसही कारण कहै है जो—हे भव्यजीव हो ! तुम तिस आत्माकूं प्रयत्नकरि सर्वप्रकार उद्यमकरि यथार्थ जानो, बहुरि तिस आत्माकूं श्रद्धो, प्रतीतिकरो, आचरो, मन वचन कायकरि ऐसैं करो जाकरि मोक्ष पावो ॥

भावार्थ—जाके जानें श्रद्धान करे मोक्ष होय ताहीका जानना श्रद्धना मोक्षप्राप्ति करै है तातैं आत्माका जाननां सर्वप्रकार उद्यमकरि करनां याहीतैं मोक्षकी प्राप्ति होय है, तातैं भव्यजीवनिकूं यही उपदेश है॥८७॥

आगैं कहै है बाह्यहिंसादिक किया विनाही अशुद्धभावतैं तंदुलमत्स्य-तुल्य जीवभी सातवैं नरक गया तब अन्य बडे जीवनिकी कहा कथा?

गाथा—मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं॥ ८८॥

संस्कृत—मत्स्यः अपि शालिसिक्थः अशुद्धभावः गतः महा-नरकम्।
इति ज्ञात्वा आत्मानं भावय जिनभावनां नित्यम्॥८८

अर्थ—हे भव्यजीव! तू देखि शालिसिक्थ कहिये तंदुलनामा मत्स्य है सो भी अशुद्धभावस्वरूप भया संता महानरक कहिये सातवैं नरक गया इस हेतुतैं तोकूं उपदेश करै है जो अपनें आत्माकूं जाननेंकूं निरंतर जिनभावना भाय॥

भावार्थ—अशुद्धभावके माहात्म्यकरि तंदुल मत्स्य अलपजीवभी सातवैं नरक गया तौ अन्य बडाजीव क्यों नरक न जाय तातैं भाव शुद्ध करनेंका उपदेश है। अर भाव शुद्ध भये अपनां परका स्वरूप जाननां होय है, अर अपनां परका स्वरूपका ज्ञान जिनदेवकी आज्ञाकी भावना निरन्तर भाये होय है; तातैं जिनदेवकी आज्ञाकी भावना निरंतर करनां योग्य है।

तंदुल मत्स्यकी कथा ऐसै है—काकंदीपुरीका राजा सूरसेन था सो मांसभक्षी भया अतिलोलुपी निरन्तर मांस भक्षणका अभिप्राय राखै ताकै पितृप्रियनामा रसोईदार सो अनेक जीवनिका मांस निरन्तर भक्षण

करावै ताकूं सर्प डस्या सो मरिकरि स्वयंभूरमणसमुद्रमैं महामत्स्य भया अर राजा सूरसेनभी मरि वहांही वा महामत्स्यके कानमैं तंदुल मत्स्य भया, तहां महामत्स्यके मुखमैं अनेकजीव आवै अर निकासि जाय तब तंदुल मत्स्य तिनिकूं देखिकरि विचारै जो ये महामत्स्य निर्भागी है जो मुखमैं आये जीवनिकूं भखै नांही है, मेरा शरीर जो एता बडा होता तौ या समुद्रके सर्व जीवनिकूं भखता; ऐसे भावनेके पापतैं जीवनिकूं भखे विनाही सातवैं नरक गया अर महामत्स्य तौ भखणेंवाला था सो तौ नरक जायही जाय, यातैं अशुद्धभावसहित बाह्य पाप करनां तौ नरकका कारणहै ही परन्तु बाह्य हिंसादिक पापके किये बिना केवल अशुद्धभावही तिस समान है, तातैं भावमैं अशुभ ध्यान छोड़ि शुभध्यान करनां योग्य है। इहां ऐसा भी जाननां जो पहलैं राज पायाथा सो पूर्वैं पुण्य किया था ताका फलथा पीछैं कुभाव भये तब नरक गया यातैं आत्मज्ञान विना केवल पुण्यही मोक्षका साधन नांही है ॥ ८८ ॥

आगैं कहै है जो भावरहितनिका बाह्य परिग्रहका त्यागादिक सर्व निष्प्रयोजन है;—

गाथा—बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो।
सयलो णाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं ॥८९॥

संस्कृत—बाह्यसंगत्यागः गिरिसरिद्दरीकंदरादौ आवासः।
सकलं ध्यानाध्ययनं निरर्थकं भावरहितानाम्॥८९॥

अर्थ—जे पुरुष भावकरि रहित हैं शुद्ध आत्माकी भावनारहितहैं अर बाह्य आचरणकरि सन्तुष्टहैं तिनिका बाह्य परिग्रहका त्यागहै सो निरर्थकहै, बहुरि गिरि कहिये पर्वत दरी कहिये पर्वतकी गुफा सरित् कहिये नदीकै निकट कंदर कहिये पर्वतका जलकरि विदऱ्या स्थानक

इत्यादिकविषैं आवास कहिये वसनां निरर्थक है, बहुरि ध्यान करनां आसनकरि मनकूं थांभनां अध्ययन कहिये पढ़ना ये सब निरर्थक है ॥

भावार्थ—बाह्य क्रियाका फल आत्मज्ञानसहित होय तौ सफल होय नांतरि सर्व निरर्थक है, पुण्यका फल होय तौऊ संसारकाही कारण है मोक्षफल नांही ॥ ८९ ॥

आगैं उपदेश करै है जो—भावशुद्धकै अर्थि इन्द्रियादिक वशि करौ भावशुद्धविनां बाह्य भेषका आडंबर मति करौ;—

गाथा—भंजसु इंदियसेणं भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण ।
मा जणरंजणकरणं वाहिरवयवेस तं कुणसु ॥९०॥

संस्कृत—भंग्धि इन्द्रियसेनां भंग्धि मनोमर्कटं प्रयत्नेन ।
मा जनरंजनकरणं बहिर्व्रतवेष ! त्वंकार्षीः ॥९०॥

अर्थ—हे मुने ! तू इंद्रियकी सेना है ताहि भंजनकरि विषयनिमैं रमावैमति; बहुरि मनरूप बंदर है ताहि प्रयत्नकरि बड़ा उद्यमकरि भंजनकरि वशीभूतकरि, बहुरि बाह्यव्रतका भेप लोकका रंजन करनेंवाला मति धारण करै।

भावार्थ—बाह्य मुनिका भेप लोकका रंजन करनेंवाला है तातैं यह उपदेश है, लोकरंजनतैं कछू परमार्थ सिद्धि नांही तातैं इन्द्रिय मनके वश करनेकूं बाह्य यत्न करै तौ श्रेष्ठ है अर इन्द्रिय मन वशि किये विना केवल लोकरंजनमात्र भेप धारनेंमैं कछू परमार्थसिद्धि है नांही ॥९०॥

आगैं फेरि उपदेश करै है;—

गाथा—णवणोकसायवग्गं मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए ।
चेइयपवयणगुरुणं करेहिं भत्तिं जिणाणाए ॥९१॥

संस्कृत—नवनोकपायवर्गं मिथ्यात्वं त्यज भावशुद्ध्या ।
चैत्यप्रवचनगुरूणां कुरु भक्तिं जिनाज्ञया ॥९१॥

अर्थ—हे मुने ! तू नव जे हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद ये नोकषायवर्ग वहुरि मिथ्यात्व इनिकूं छोड़ि, वहुरि जिनआज्ञाकरि चैत्य प्रवचन गुरु इनिकी भक्ति करि ॥ ९१ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

गाथा—तित्थयरभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
भावहि अणुदिणु अतुलं विसुद्धभावेण सुयणाणं ॥९२॥

संस्कृत—तीर्थंकरभाषितार्थं गणधरदेवैः ग्रथितं सम्यक् ।
भावय अनुदिनं अतुलं विशुद्धभावेन श्रुतज्ञानम् ॥९२॥

अर्थ—हे मुने ! तू तीर्थंकर भगवाननैं कह्या अर गणधर देवनिनैं गूंथ्या शास्त्ररूप रचना करी ऐसा श्रुतज्ञान है ताहि सम्यक् प्रकार भावशुद्धिकरि निरन्तर भाय, कैसा है श्रुतज्ञान—अतुल है या वरावर अन्यमतका भाष्या श्रुतज्ञान नांही है ॥ ९२ ॥

ऐसैं किये कहा होय है ? सो कहै हैं;—

गाथा—पीऊण[1] णाणसलिलं णिम्महतिसडाहसोसउम्मुक्का ।
हुंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ॥ ९३ ॥

संस्कृत—प्राप्य ज्ञानसलिलं निर्मथ्यतृषादाहशोषोन्मुक्ताः ।
भवंति शिवालयवासिनः त्रिभुवनचूडामणयः सिद्धाः ॥९३

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकार भाव शुद्ध किये ज्ञानरूप जलकूं पीय करि सिद्ध होय हैं, कैसैं हैं सिद्ध—निर्मथ्य कहिये मथ्या न जाय ऐसा तृषा दाह शोष ताकरि रहित हैं ऐसे सिद्ध होय हैं ज्ञानरूप जलपियेका ये फल है, वहुरि कैसे हैं सिद्ध—शिवालय कहिये मुक्तिरूप महल ताके वसनेंवाले हैं लोकके शिखरपरि जिनका वास है, याहीतैं कैसे हैं—

१—एक वचनिका प्रतिमें 'पीऊण' ऐसा पाठ है जिसका संस्कृत 'पीत्वा' है अर्थात् 'पी कर'।

तीन भवनके चूडामणि हैं मुकुटमणि हैं तथा तीन भवनमैं ऐसा सुख नांही ऐसा परमानंद अविनाशी सुख नांही, ऐसा परमानंद अविनाशी सुखकूं भोगवैं हैं, ऐसे तीन भवनके मुकुटमणि हैं ॥

भावार्थ—शुद्ध भाव किये ज्ञानरूप जल पिये तृष्णा दाह शोष मिटै है तातैं ऐसैं कह्या है जो परमानंदरूप सिद्ध होय है ॥ ९३ ॥

आगैं भावशुद्धिकै अर्थि फेरि उपदेश करै है;—

गाथा—दस दस दोसुपरीसह सहदि मुणी सयलकाल काएण।
सुत्तेण अप्पमत्तो संजमघादं पमुत्तूण ॥ ९४ ॥

संस्कृत—दश दश द्वौ सुपरीषहान् सहस्व मुने ! सकलकालं कायेन।
सूत्रेण अप्रमत्तः संयमघातं प्रमुच्य ॥ ९४ ॥

अर्थ—हे मुने ! तू दश दश दोय कहिये बाईस जे सुपरीषह कहिये अतिशयकरि सहनेंयोग्य ऐसे परीषह तिनिकूं सूत्रेण कहिये जैसैं जिनवचनमैं कहे तिसरीतिकरि निःप्रमादी भया संता संयमका घात निवारिकरि अर तेरे कायकरि सदा काल निरंतर सहि ॥

भावार्थ—जैसैं संयम न बिगडै अर प्रमादका निवारण होय तैसैं निरन्तर मुनि क्षुधा तृषा आदिक बाईस परीषह सहै। इनिका सहनेंका प्रयोजन सूत्रमैं ऐसा कह्या है जो—इनिके सहनेंतैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संयमके मार्गतैं छूटनां न होय परिणाम दृढ होय है ॥ ९४ ॥

आगैं कहै है जो—परीषह सहनेंमैं दृढ होय तौ उपसर्ग आये भी दृढ रहै चिगै नांही, ताका दृष्टान्त कहै हैं;—

गाथा—जहपत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुकएण।
तह साहू वि ण[1] भिज्जइ उवसग्गपरीषहेहिंतो ॥९५॥

1—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'तह साहू ण विभिज्जइ' ऐसा पाठ है।

संस्कृत—यथा प्रस्तरः न भिद्यते परिस्थितः दीर्घकालमुदकेन ।
तथा साधुरपि न भिद्यते उपसर्गपरीषहेभ्यः ॥९५॥

अर्थ—जैसैं पाषाण है सो जलकरि बहुतकाल तिष्ठया भी भेदकूं प्राप्त न होय है तैसैं साधु है सो उपसर्ग परीषहनिकरि नांहीं भिदै है॥

भावार्थ—पाषाण ऐसा कठिन है जो जलमैं बहुतकाल रहै तौऊ तामैं जल प्रवेश न करै तैसैं साधुके परिणाम ऐसे दृढ होय है जो उपसर्ग परीषह आये संयमके परिणामतैं च्युत न होय हैं, अर पूर्वैं कह्या जो संयमका घात जैसैं न होय तैसैं परीषह सहै जो कदाचित् संयमका घात होता जानैं तौ जैसैं घात न होय तैसैं करै ॥ ९५ ॥

आगैं परीषह आये भाव शुद्ध रहै ऐसा उपाय कहै है;—

गाथा—भावहि अणुवेक्खाओ अवरे पणवीसभावणा भावि ।
भावरहिएण किं पुण बाहिरलिंगेण कायव्वं ॥९६॥

संस्कृत—भावय अनुप्रेक्षाः अपराः पंचविंशतिभावनाः भावय ।
भावरहितेन किं पुनः बाह्यलिंगेन कर्त्तव्यम् ॥९६॥

अर्थ—हे मुने ! तू अनुप्रेक्षा कहिये अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा हैं तिनहिं भाय, बहुरि अपर कहिये और पांच महाव्रतनिकी पचीस भावना कही हैं तिनहि भाय, भावरहित जो बाह्य लिंग है ताकरि कहा कर्त्तव्य है ? कछू भी नांही ॥

भावार्थ—कष्ट आये बारह अनुप्रेक्षा चिंतवन करनें योग्य हैं तिनिके नाम—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्म इनिका अर पचीस भावनाका भावनां बडा उपाय है । इनिका बारंबारा चिंतवन किये कष्टमैं परिणाम बिगडै नांही, तातैं यह उपदेश है ॥ ९६ ॥

आगैं फेरि भावशुद्ध रखनेंकूं ज्ञानका अभ्यास करै है;—

गाथा—सव्वविरओ वि भावहि णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं।
जीवसमासाइं मुणी चउदसगुणठाणणामाइं ॥ ९७ ॥

संस्कृत—सर्वविरतः अपि भावय नव पदार्थान् सप्त तत्वानि।
जीवसमासान् मुने! चतुर्दशगुणस्थाननामानि ॥९७॥

अर्थ—हे मुने तू सर्व परिग्रहादिकतैं विरक्त भया है महाव्रतनिकरि सहित है तौउ भावविशुद्धिकै अर्थि नवपदार्थ सप्त तत्व चउदह जीवसमास चउदह गुणस्थान इनिके नाम लक्षण भेद इत्यादिकनिकी भावना करि ॥

भावार्थ—पदार्थनिका स्वरूपका चिंतवन करनां भावशुद्धिका बडा उपाय है तातैं यह उपदेश है। इनिका नाम स्वरूप अन्यग्रंथनितैं जाननां ॥ ९७ ॥

आगैं भावशुद्धिकै अर्थि अन्य उपाय कहै है;—

गाथा—णवविहबंभं पयडहि अब्बंभं दसविहं पमोत्तूण।
मेहुणसण्णासत्तो भमिओसि भवण्णवे भीमे ॥ ९८ ॥

संस्कृत—नवविधब्रह्मचर्यं प्रकटय अब्रह्म दशविधं प्रमुच्य।
मैथुनसंज्ञासक्तः भ्रमितोऽसि भवार्णवे भीमे ॥९८॥

अर्थ—हे जीव! तू नव प्रकार ब्रह्मचर्य है ताहि प्रगटकरि भावनिमैं प्रत्यक्ष करि, पूर्वै कहाकरि—दशप्रकार अब्रह्म है ताहि छोड़िकरि, ये उपदेश काहेतैं दिया जातैं तू मैथुनसंज्ञा जो कामसवन की अभिलापा ताविषैं आसक्त भया अशुद्ध भावकरि इस भीम भयानक संसाररूप समुद्रविषैं भ्रम्या ॥

भावार्थ—यह प्राणी मैथुनसंज्ञाविषैं आसक्त भया गृहस्थपणां आदिक अनेक उपायकरि स्त्रीसेवनादिक अशुद्धभावकरि अशुभ कार्यनिमैं प्रवर्तै है ताकरि इस भयानक संसारसमुद्रविषैं भ्रमै है तातैं यह उपदेश है जो दशप्रकार अब्रह्मकूं छोडि नव प्रकार ब्रह्मचर्यकूं अंगीकार करो। तहां दशविध अब्रह्म तौ ऐसैं–प्रथम तौ स्त्रीका चिंतवन होय १ पीछैं देखनेंकी चिंता होय २ पीछैं निश्वास डारै ३ पीछैं ज्वर उपजै ४ पीछैं दाह उपजै ५ पीछैं कामकी रुचि उपजै ६ पीछैं मूर्च्छा होय ७ पीछैं उन्माद उपजै ८ पीछैं जीवनेंका संदेह उपजै ९ पीछैं मरण होय १० ऐसैं दश प्रकार अब्रह्म है। बहुरि नवविध ब्रह्मचर्य ऐसैं—नवकारणनितैं ब्रह्मचर्य बिगडे है तिनिकै नाम–स्त्री सेवनेंका अभिलाष १ स्त्रीका अंगका स्पर्शन २ पुष्ट रसका सेवन ३ स्त्रीकरि संसक्त वस्तुका सेवन शय्या आदिक ४ स्त्रीका मुख नेत्र आदिकनिका देखनां ५ स्त्रीका सत्कार पुरस्कार करनां ६ पहलैं स्त्रीका सेवन किया ताकी यादि करनां ८ आगामी स्त्रीसेवनका अभिलाष करनां ८ मनवांछित इष्ट विषयनिका सेवनां ९ ऐसैं नव प्रकार हैं तिनिका वर्जनां सो नवभेदरूप ब्रह्मचर्य है। अथवा मन वचन काय कृतकारित अनुमोदना करि ब्रह्मचर्य पालनां ऐसैं भी नव प्रकार कहिये है। ऐसैं करनां सो भी भाव शुद्ध होनेंका उपाय है ॥ ९८ ॥

आगैं कहै है जो भावसहित मुनि है सो आराधनाका चतुष्ककूं पावै है, भावविना सो भी संसारमैं भ्रमै है;—

गाथा—भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च।
भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे ॥९९॥

संस्कृत—भावसहितश्च मुनीनः प्राप्नोति आराधनाचतुष्कं च।
भावरहितश्च मुनिवर ! भ्रमति चिरं दीर्घसंसारे॥९९

अर्थ—हे मुनिवर ! जो भावसहित है सो दर्शन ज्ञान चारित्र तप ऐसा आराधनका चतुष्यकूं पावै है सो मुनिनिमैं प्रधान है, बहुरि, जो भावरहित मुनि है सो बहुतकाल दीर्घसंसारमैं भ्रमै है ॥

भावार्थ—निश्चय सम्यक्त्वका शुद्ध आत्माका अनुभूतिरूप श्रद्धान है सो ही भाव है ऐसे भावसहित होय ताकै च्यार आराधना होय हैं ताका फल अरहंत सिद्ध पद है बहुरि ऐसे भावकरि रहित होय ताकै आराधना न होय ताका फल संसारका भ्रमण है, ऐसा जाणि भाव शुद्ध करनां यह उपदेश है ॥ ९९ ॥

आगैं भावहीके फलका विशेष कहै है;—

गाथा—पावंति भावसवणा कल्लाणपरंपराइं सोक्खाइं ।
दुक्खाइं दव्वसवणा णरतिरियकुदेवजोणीए ॥१००॥

संस्कृत—प्राप्नुवंति भावश्रमणाः कल्याणपरंपराः सौख्यानि ।
दुःखानि द्रव्यश्रमणाः नरतिर्यकुदेवयोनौ ॥१००॥

अर्थ—जे भावश्रमण है भावमुनि है ते कल्याणकी परंपरा जामैं ऐसे सुखनिकूं पावै हैं बहुरि जे द्रव्य श्रमण हैं ते तिर्यंच मनुष्य कुदेव योनिविषैं दुःखनिकूं पावै है ॥

भावार्थ—भावमुनि सम्यग्दर्शनसहित हैं ते तौ सोलै कारण भावनां भाय गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्वाण पंच कल्याण तिनिसहित तीर्थंकर पद पाय मोक्ष पावैं हैं, बहुरि जे सम्यग्दर्शनरहित द्रव्यमुनि हैं ते तिर्यंच मनुष्य कुदेव योनि पावैं हैं। यह भावके विशेषतैं फलका विशेष है ॥ १०० ॥

आगैं कहै है जो अशुद्ध भावकरि अशुद्धही आहार किया यातैं दुर्गतिही पाई;—

गाथा—छायासदोसदूसियमसणं गसिउं असुद्धभावेण।
पत्तोसि महावसणं तिरियगईए अणप्पवसो ॥ १०१ ॥

संस्कृत—षट्चत्वारिंशद्दोषदूषितमशनं ग्रसितं अशुद्धभावेन।
प्राप्तः असि महाव्यसनं तिर्यग्गतौ अनात्मवशः॥१०१

अर्थ—हे मुने! तैं अशुद्ध भावकरि छियालीस दोषनिकरि दूषित अशुद्ध अशन कहिये आहार ग्रस्या खाया ताकारण करि तिर्यंचगतिविषैं पराधीन भया संता महान बडा व्यसन कहिये कष्ट ताकूं प्राप्त भया॥

भावार्थ—मुनि आहार करै सो छियालीस दोषरहित शुद्ध करै है बत्तीस अंतराय टालै है चौदह मलदोषरहित करै है, सो जो मुनि होयकरि सदोष आहार करै तौ जानिये याके भावभी शुद्ध नांही ताकूं यह उपदेश है जो हे मुने! तैं दोषसहित अशुद्ध आहार किया तातैं तिर्यंच गतिमैं पूर्वैं भ्रम्या कष्ट सह्या तातैं भाव शुद्ध करि शुद्ध आहार करि, ज्यो फेरि नांही भ्रमैं। छियालीस दोषनिमैं सोलह तौ उद्गम दोष हैं ते आहारके उपजनेंके हैं ते श्रावक आश्रित हैं, बहुरि सोलह उत्पादन दोष हैं ते मुनिके आश्रय हैं, बहुरि दश दोष एषणांके हैं ते आहारके आश्रित है; बहुरि च्यार प्रमाणादिक है। इनिका नाम तथा स्वरूप मूलाचार आचारसारग्रंथतैं जाननां॥ १०१॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—सच्चित्तभत्तपाणं गिद्धी दप्पेणऽधी पभुत्तूणं[1]।
पत्तोसि तिव्वदुक्खं अणाइकालेण तं चित्त[2] ॥१०२॥

१-मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'पभुत्तुण' इसकी संस्कृत 'प्रभुक्त्वा' की है।

२-मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'चित्त' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'चित्त' है अर्थात् 'हे चित्त' ऐसा संबोधनपद किया है।

संस्कृत—सचित्तभक्तपानं गृद्ध्या दर्पेण अधीः प्रभुज्य।
प्राप्तोऽसि तीव्रदुःखं अनादिकालेन त्वं चिन्तय १०२

अर्थ—हे जीव! तू दुर्बुद्धी अज्ञानी भया संता अतिचार करि तथा अतिगर्व उद्धतपणांकरि सचित्त भोजन तथा पान जीवनिसहित आहार पानी लेकरि अनादिकालतैं लगाय तीव्र दुःखकूं पाया ताहि चिंतवनकरि विचारि॥

भावार्थ—मुनिकूं उपदेश करै है जो—अनादिकालतैं लगाय जेतैं अज्ञानी रह्या जीवका स्वरूप न जान्यां तेतैं सचित्त जीवनि सहित आहार पानी करता संता संसारमैं तीव्र नरकादिकका दुःख पाया अब मुनि होय करि भाव शुद्धकरि सचित्त आहार पानी मति करै नांतरि फेरि पूर्ववत् दुःख भोगवैगा॥ १०२॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—कंदं मूलं वीयं पुप्फं पत्तादि किंचि सच्चित्तं।
असिऊण माणगव्वं भमिओसि अणंतसंसारे॥१०३॥

संस्कृत—कंदं मूलं बीजं पुष्पं पत्रादि किंचित् सचित्तम्।
अशित्वा मानगर्वे भ्रमितः असि अनंतसंसारे॥१०३

अर्थ—कंद कहिये जमीकंद आदिक, वीज कहिये वीज चणा आदि अन्नादिक, मूल कहिये आदो मूला गाजर आदिक, पुष्प कहिये फूल, पत्र कहिये नागरवेल आदिक, इनिकूं आदि लेकरि जो कछू सचित्त वस्तु ताहि मानकरि गर्वकरि भक्षण करी; ताकरि हे जीव! तू अनंत-संसारविषैं भ्रम्या॥

भावार्थ—कन्दमूलादिक सचित्त अनंतजीवनिकी काय है तथा अन्य वनस्पति बीजादिक सचित हैं तिनिकूं भक्षण किया। तहां प्रथम तौ

मान करि जो हम तपस्वी हैं हमारै घरवार नांही वनके पुष्प फलादिक खाय करि तपस्या करैं हैं ऐसैं मिथ्यादृष्टी तपस्वी होय मानकरि खाये तथा गर्वकरि उद्धत होय दोष गिन्यां नांही स्वच्छंद होय सर्व भक्षी भया। ऐसैं इनि कंदादिककूं खाय यही जीव संसारमैं भ्रम्या अब मुनि होय इनिका भक्षण मति करै, ऐसा उपदेश है। अर अन्यमतके तपस्वी कंदमूलादिक फल फूल खाय आपकूं महंत मानैंहैं तिनिका निषेध है॥ १०३॥

आगैं विनय आदिका उपदेश करै है तहां प्रथमही विनयका वर्णन है;—

गाथा—विणयं पंचपयारं पालहि मणवयणकायजोएण।
अविणयणरा सुविहियं तत्तो मुत्तिं न पावंति॥१०४॥

संस्कृत—विनयः पंचप्रकारं पालय मनोवचनकाययोगेन।
अविनतनराः सुविहितां ततो मुक्तिं न प्राप्नुवंति॥१०४

अर्थ—हे मुने! जा कारणतैं अविनयवान नर हैं ते भले प्रकार विहित जो मुक्ति ताहि न पावै है अभ्युदय तीर्थंकरादिसहित मुक्ति न पावै है तातैं हम उपदेश करैं हैं जो हस्त जोडनां पगां पडनां आएतैं उठनां सामां जानां अनुकूल वचन कहनां यह पंचप्रकार विनय अथवा ज्ञान दर्शन चारित्र तप अर इनिका धारक पुरुष इनिका विनय करनां ऐसैं पंचप्रकार विनयकूं तू मन वचन काय तीनूं योगनिकरि पालि॥

भावार्थ—विनयविना मुक्ति नांही तातैं विनयका उपदेश है; विनयमैं बडे गुण हैं ज्ञानाकी प्राप्ति होय है मानकषायका नाश होय है शिष्टाचारका पालनां है कलहका निवारण है इत्यादि विनयके गुण जाननें; तातैं सम्यग्दर्शनादिकरि जे महान हैं तिनिका विनय करनां यह

उपदेश है, अर जे विनय विना जिनमार्गतैं भ्रष्ट भये वस्त्रादिकसहित जे मोक्षमार्ग माननें लगे तिनिका निषेध है ॥ १०४ ॥

आगैं भक्तिरूप वैयावृत्यका उपदेश करै है;—

गाथा—णियसत्तिए महाजस भत्तीराएण णिच्चकालम्मि।
तं कुण जिणभत्तिपरं विज्जावच्चं दसवियप्पं ॥१०५॥

संस्कृत—निजशक्त्या महायशः! भक्तिरागेण नित्यकाले।
त्वं कुरु जिनभक्तिपरं वैयावृत्त्यं दशविकल्पम् ॥१०५॥

अर्थ— हे महायश! हे मुने! भक्तिका रागकरि तिस वैयावृत्यकूं सदाकाल अपनी शक्तिकरि तू करि, कैसैं—जिनभक्तिविषैं तत्पर होय तैसैं, कैसा है वैयावृत्य—दशविकल्प है दशभेदरूप है; वैयावृत्य नाम परके दुःख कष्ट आये टहल बंदगी करनेंका है, ताके दशभेद—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वि, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ ये दशभेद मुनिके हैं तिनिका कीजिये है तातैं दशभेद कहे हैं॥ १०५ ॥

आगैं अपनें दोषकूं गुरु पासि कहनां ऐसी गर्हाका उपदेश करै है;—

गाथा—जं किंचिकयं दोसं मणवयकाएहिं असुहभावेणं।
तं गरहि गुरुसयासे गारव मायं च मोत्तूण ॥१०६॥

संस्कृत—यःकश्चित् कृतः दोषः मनोवचःकायैः अशुभभावेन।
तं गर्ह गुरुसकाशे गारवं मायां च मुक्त्वा ॥१०६॥

अर्थ— हे मुने! जो कछु मन वचन कायकरि अशुभ भावनितैं प्रतिज्ञामैं दोष लग्या होय ताकूं गुरु पासि अपनां गौरव कहिये अपनां महंतपणां गर्व छोडिकरि बहुरि माया कहिये कपट छोडि करि मन वचन काय सरल करि गर्हाकरि वचन प्रकासि ॥

भावार्थ—आपकूं कोई दोष लाग्या होय अर निष्कपट होय गुरूकूं कहै तौ वह दोष निवृत्त होय, अर आप शल्यवान रहै तौ मुनिपदमैं यह बडा दोष है, तातैं अपनां दोष छिपावनां नांही, जैसा होय तैसा सरलबुद्धितैं गुरुनिपासि कहनां तब दोष मिटै, यह उपदेश है। कालके निमित्ततैं मुनिपदतैं भ्रष्ट भये पीछैं गुरुनिवासि प्रायश्चित्त न लिया तब विपरीत होय संप्रदाय न्यारा बांध्या, ऐसैं विपर्यय भया ॥ १०६ ॥

आगैं क्षमाका उपदेश करै है;—

गाथा—दुज्जणवयणचडक्कं णिट्ठुरकडुयं सहंति सप्पुरिसा।
कम्ममलणासणट्ठं भावेण य णिम्ममा सवणा॥१०७॥

संस्कृत—दुर्जनवचनचपेटां निष्ठुरकटुकं सहन्ते सत्पुरुषाः।
कर्ममलनाशनार्थं भावेन च निर्ममाः श्रमणाः॥१०७॥

अर्थ—सत्पुरुष मुनि हैं ते दुर्जनके वचनरूप चपेट जो निष्ठुर कहिये कठोर दयारहित अर कटुक कहिये सुनतेंही काननिकूं कड़ा सूल समान लागै ऐसी चपेट है ताहि सहैं हैं, ते कौन अर्थि सहैं हैं—कर्मनिके नाश होनेंके अर्थि पूर्वैं अशुभकर्म बांध्या था ताके निमित्ततैं दुर्जननैं कटुक वचन कह्या आप सुन्यां ताकूं उपशम परिणामतैं आप सहै तब अशुभकर्म उदय दो (इ) खिरि गया ऐसैं कटुकवचन सहे कर्मका नाश होय है, बहुरि ते मुनि सत्पुरुष कैसे हैं अपनें भावकरि वचनादिककरि निर्ममत्व हैं वचनतैं तथा मान कषायतैं अर देहादिकतैं ममत्व नांही है, ममत्व होय तौ दुर्वचन सह्या न जाय, यह न जानै जो ये मोकूं दुर्वचन कह्या, तातैं ममत्वके अभावतैं दुर्वचन सहै है। तातैं मुनि होय करि काहूतैं क्रोध न करनां यह उपदेश है। लौकिकमैं भी जे बडे पुरुष हैं ते दुर्वचन सुनिकै क्रोध न करैं हैं तब मुनिकूं तौ सहनां उचितही है, जे क्रोध करैं हैं ते कहवेके तपस्वी हैं, सांचे तपस्वी नांही ॥ १०७ ॥

आगैं क्षमाका फल कहै है;—

गाथा—पावं खवइ असेसं खमाय पडिमंडिओ य मुणिपवरो।
खेयरअमरणराणं पसंसणीओ धुवं होइ ॥१०८॥

संस्कृत—पापं क्षिपति अशेषं क्षमया परिमंडितः च मुनिप्रवरः।
खेचरामरनराणां प्रशंसनीयः ध्रुवं भवति ॥१०८॥

अर्थ—जो मुनिप्रवर मुनिनमैं श्रेष्ठ प्रधान क्रोधके अभावरूप क्षमा करि मंडित है सो मुनि समस्त पापकूं क्षय करै है, बहुरि विद्याधर देव मनुष्यनिकरि प्रशंसा करनेंयोग्य निश्चयकरि होय है॥

भावार्थ—क्षमा गुण वडा प्रधान है जातैं सर्वकै स्तुति करनेंयोग्य पुरुष होय, जे मुनि हैं तिनिकै उत्तमक्षमा होय है ते तौ सर्व मनुष्य देव विद्याधरनिकै स्तुतियोग्य होयही होय अर तिनिकै सर्व पापका क्षय होयही होय, तातैं क्षमा करनां योग्य है ऐसा उपदेश है। क्रोधी सर्वकै निंदनें योग्य होय हैं तातैं क्रोधका छोडनां श्रेष्ठ हैं॥ १०८॥

आगैं ऐसैं क्षमागुण जांनि क्षमा करनां क्रोध छोडनां ऐसैं कहै है;—

गाथा—इय णाऊण खमागुण खमेहि तिविहेण सयलजीवाणं।
चिरसंचियकोहसिहिं वरखमसलिलेण सिंचेह॥१०९॥

संस्कृत—इति ज्ञात्वा क्षमागुण! क्षमस्व त्रिविधेन सकलजीवान्।
चिरसंचितक्रोधशिखिनं वरक्षमासलिलेन सिंच १०९

अर्थ—हे क्षमागुण मुने! क्षमा है गुण जाकै ऐसा मुनिका संबोधन है, इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार क्षमागुणकूं जाणि अर सकलजीवनिपरि मन वचन कायकरि क्षमाकरि, बहुरि बहुत काल करि संचय किया जो क्रोधरूप अग्नि ताहि क्षमारूप जलकरि सींचे, बुझाय॥

भावार्थ—क्रोधरूप अग्निहै सो पुरुषमैं भले गुण हैं तिनिकूं दग्ध करनेंवाला है अर परजीवनिका घात करनेंवाला है तातैं याकूं क्षमारूप

जलकरि बुझावनां, अन्य प्रकार यह बुझै नांही, अर क्षमा गुण सर्व गुणनिमैं प्रधान है। तातैं यह उपदेश है जो क्रोधकूं छोड़ि क्षमा ग्रहण करनां ॥ १०९ ॥

आगैं दीक्षाकालादिककी भावनाका उपदेश करै है,—

गाथा—दिक्खाकालाईयं[1] भावहि अवियारदंसणविसुद्धो[2] ।
उत्तमबोहिणिमित्तं असारसाराणि मुणिऊण ॥११०॥

संस्कृत—दीक्षाकालादिकं भावय अविकारदर्शनविशुद्धः ।
उत्तमबोधिनिमित्तं असारसाराणि[3] ज्ञात्वा ॥११०॥

अर्थ—हे मुने! तू दीक्षाकाल आदिककी भावना करि, कैसा भया संता:—अविकार कहिये अतीचाररहित जो निर्मल सम्यग्दर्शन ताकरि सहित भया संता, पूर्वैं कहाकरि संसारकूं असार जाणिकरि, काहेकै अर्थि—उत्तमबोधि कहिये सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रकी प्राप्तिकै निमित्त ॥

भावार्थ—दीक्षा लेहै तब संसार भोगकूं असार जाणि अत्यंत वैराग्य उपजै है तैसैंही ताकै आदिशब्दतैं रोगोत्पत्ति मरणकालादिक जाननां तिनिकालनिमैं जैसे भाव होय तैसेही संसारकूं असार जाणि विशुद्ध सम्यग्दर्शनसहित भया संता उत्तमबोधि जो जामैं केवलज्ञान उपजै है ताकै अर्थि दीक्षाकालादिककी निरन्तर भावनाकरणी, ऐसा उपदेश है।११०

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'दीक्खाकालईयं' इसकी संस्कृत 'दीक्षाकालादीयं' की है।

२—मुद्रितसंस्कृत प्रतिमें 'अविचार दंसणविशुद्धो' ऐसे दो पद किये हैं जिनकी संस्कृत 'हे अविचार! दर्शनविशुद्धः' इस प्रकार है।

३—संस्कृत टीकामें 'असारसाराणि' का अर्थ 'सार और असारको जान कर' ऐसा किया है।

आगैं भावलिंग शुद्धकरि द्रव्यलिंग सेवनेंका उपदेश करै है,—

गाथा—सेवहि चउविहलिंगं अब्भंतरलिंगसुद्धिमावण्णो।
बाहिरलिंगमकज्जं होइ फुडं भावरहियाणं ॥१११॥

संस्कृत—सेवस्व चतुर्विधलिंगं अभ्यंतरलिंगशुद्धिमापन्नः।
बाह्यलिंगमकार्यं भवति स्फुटं भावरहितानाम् ॥१११

अर्थ—हे मुनिवर! तू अभ्यंतरलिंगकी शुद्धि कहिये शुद्धताकूं प्राप्त भया संता च्यार प्रकार बाह्यलिंग है ताहि सेवन करि जातैं जे भावरहित हैं तिनिकै प्रगटपणैं बाह्यलिंग अकार्य है, कार्यकारी नांही है॥

भावार्थ—जे भावकी शुद्धताकरि रहित हैं अपनी आत्माका यथार्थ श्रद्धान ज्ञान आचरण जिनकै नांही तिनिकै बाह्यलिंग कछू कार्यकारी नांही है, कारण पाय तत्काल विगडे है, तातैं यह उपदेश है—पहलैं भावकी शुद्धताकरि द्रव्यलिंग धारणां। सो यह द्रव्यलिंग च्यारि प्रकार कह्या, ताकी सूचना ऐसी जो—मस्तकका, डाढीका, मूंछका, केशांका तौ लौंच करनां तीन चिह्न तौ ये अर चौथा नीचले केश राखनां, अथवा वस्त्रका त्याग, केशनिका लौंच करनां, शरीरका स्नानादिककरि संस्कार न करनां, प्रतिलेखन मयूरपिच्छका राखनां, ऐसैंभी च्यार प्रकार बाह्यलिंग कह्या है। ऐसैं सर्व बाह्य वस्त्रादिककरि रहित नग्न रहनां, ऐसा नग्नरूप भावविशुद्धिविना हास्यका ठिकाना है अर कछू उत्तम फलभी नांही है॥ १११ ॥

आगैं कहै है जो—भाव विगडनेंके कारण च्यार संज्ञा हैं तिनिकरि संसार भ्रमण होय है, यह दिखावै है;—

गाथा—आहारभयपरिग्गहमेहुणसण्णाहि मोहिओसि तुमं।
भमिओ संसारवणे अणाइकालं अणप्पवसो ॥११२॥

संस्कृत—आहारभयपरिग्रहमैथुनसंज्ञाभिः मोहितः असि त्वम् ।
भ्रमितः संसारवने अनादिकालं अनात्मवशः ॥११२॥

अर्थ—हे मुने! तू आहार भय मैथुन परिग्रह ये च्यारि संज्ञा तिनि- करि मोहित भया अनादिकालतैं लगाय पराधीन भया संता संसाररूप वनमैं भ्रम्या ॥

भावार्थ—संज्ञा नाम वांछाका चेत रहनेंका है सो आहारकी दिशि भयकी दिशि मैथुनकी दिशि परिग्रहकी दिशि प्राणीकै निरंतर चेत रहै है, यह जन्मान्तरमैं चली जाय है जन्म लेतेही तत्काल उघडै है, याहीके निमित्ततैं कर्मनिका वंध करि संसारवनमैं भ्रमैं है, तातैं मुनिनिकूं यह उपदेश है जो अब इनि संज्ञानिका अभाव करौ ॥ ११२ ॥

आगैं कहै है जो बाह्य उत्तरगुणकी प्रवृत्तिभी भाव शुद्ध करि करणीं;—

गाथा—बाहिरसयणत्तावणतरुमूलाईणि उत्तरगुणाणि ।
पालहि भावविसुद्धो पूयालाभं[1] ण ईहंतो ॥ ११३ ॥

संस्कृत—बहिःशयनातापनतरुमूलादीन् उत्तरगुणान् ।
पालय भावविशुद्धः पूजालाभं न ईहमानः ॥११३॥

अर्थ—हे मुनिवर! तू भावकरि विशुद्ध भया संता पूजालाभादिककूं न चाहता संता बाह्य शयन आतापन वृक्षमूलयोग धारनां इत्यादिक उत्त- रगुण हैं तिनिकूं पालि ॥

भावार्थ—शीतकालमैं बाह्य चौडै सोवनां बैठनां, ग्रीष्मकालमैं पर्वतके शिखर सूर्यसन्मुख आतापनयोग धरनां, वर्षाकालमैं वृक्षकै मूल योग धरनां जहां बूंद वृक्षपरि पडै पीछैं भेली होय शरीरपरि पडै तहां किछू

1—संस्कृत मुद्रित प्रतिमें "नईहंतो" ऐसा एक पद किया है जिसकी संस्कृत 'अनीहमानः' ऐसी की है ।

प्रासुकका भी संकल्प अर बाधा बहुत इनिकूं आदि लेकरि ये उत्तरगुण हैं तिनिका पालनां भी भाव शुद्धकरि करनां। भावशुद्धि विना करै तौ तत्काल विगडै अर फल किछू नांही तातैं भाव शुद्ध करि करनेका उपदेश है। ऐसा तौ न जाननां जो इनिका बाह्य करनां निषेधै है, ये भी करनें अर भाव शुद्ध करनां यह आशय है। अर केवल पूजाला-भादिकै अर्थि अपनीं महंतता दिखावनेंकै अर्थि करै तौ कछू फललाभकी प्राप्ति नांही है॥ ११३॥

आगैं तत्त्वकी भावना करनेंका उपदेश करै है;—

गाथा—भावहि पढमं तच्चं विदियं तदियं चउत्थ पंचमयं।
तियरणसुद्धो अप्पं अणाइणिहणं तिवग्गहरं॥११४॥

संस्कृत—भावय प्रथमं तत्त्वं द्वितीयं तृतीयं चतुर्थं पंचमकम्।
त्रिकरणशुद्धः आत्मानं अनादिनिधनं त्रिवर्गहरम् ११४

अर्थ—हे मुने! तू प्रथमतत्त्व जो जीवतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि द्वितीयतत्त्व जो अजीवतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि तृतीयतत्व जो आस्रवतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि चतुर्थतत्त्व जो बंधतत्व ताकूं भाय, बहुरि पंचमतत्व जो संवरतत्व ताकूं भाय, बहुरि त्रिकरण कहिये मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि शुद्ध भया संता आत्माकूं भाय, कैसा है आत्मा आनादिनिधन है, बहुरि कैसा है त्रिवर्ग कहिये धर्म अर्थ काम इनिका हरनेंवाला है॥

भावार्थ—प्रथम जीवतत्त्वकी भावना तौ सामान्य जीव दर्शन ज्ञान-मयी चेतना स्वरूप है ताकी भावना करनीं पीछैं ऐसा मैं हूं ऐसैं आत्मतत्त्वकी भावना करनीं, बहुरि दूसरा अजीवतत्त्व है सो सामान्य अचेतन जड है सो पांचभेदरूप पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल है

इनिकूं विचारणें पीछे भावना करनीं जो ये मैं नांहीं हूं, बहुरि तीसरा आस्रवतत्त्व है सो जीव पुद्गलके संयोगजनित भाव हैं तिनिमैं अनादिकर्मसंबंधतैं जीवके भाव तौ रागद्वेष मोह हैं अर अजीव पुद्गलके भावकर्मका उदयरूप मिथ्यात्व अविरत कषाय योग ये द्रव्य आस्रव हैं तिनिकी भावना करनीं जो ये मेरै होय हैं मेरै रागद्वेपमोह भाव हैं तिनिकरि कर्मका बंध होय है तिनितैं संसार होय है तातैं तिनिका कर्त्ता न होनां, बहुरि चौथा बंधतत्त्व है सो मैं रागद्वेषमोहरूप परिणमूंहूं सो तौ मेरा चेतनाका विभाव है इनितैं बंधे हैं ते पुद्गल हैं अर कर्म पुद्गल हैं अर कर्म पुद्गल ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार होय बंधै है ते स्वभाव प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशरूप च्यार प्रकार होय बंधै हैं ते मेरे विभाव तथा पुद्गलकर्म सर्व हेय हैं संसारके कारण हैं मोकूं रागद्वेप मोहरूप न होनां ऐसैं भावना करनीं, बहुरि पांचवा तत्व संवर है सो रागद्वेपमोहरूप जीवके विभाव हैं तिनिका न होनां अर दर्शन ज्ञानरूप चेतनाभाव थिर होनां यह संवर है सो अपना भाव है अर याही करि पुद्गल कर्मजनित भ्रमण मिटै है। ऐसैं इनि पांच तत्त्वनिकी भावना करनेमैं आत्मतत्वकी भावना प्रधान है ताकरि कर्मकी निर्जरा होय मोक्ष होय है, आत्मा भाव शुद्ध अनुक्रमतैं होनां यह तौ निर्जरातत्व भया अर सर्व कर्मका अभाव होनां यह मोक्षतत्त्व भया। ऐसैं सात तत्त्वकी भावना करनीं। याहीतैं आत्मतत्त्वका विशेषण किया जो आत्मतत्व कैसा है—धर्म अर्थ काम इस त्रिवर्गका अभाव करै है याकी भावनातैं त्रिवर्गतैं न्यारा चौथा पुरुषार्थ मोक्ष है सो होय है। बहुरि यह आत्मा ज्ञानदर्शनमयीचेतनास्वरूप अनादिनिधन है जाका आदि भी नांही अर निधन कहिये नाश भी नांही। बहुरि भावना नाम बार बार अभ्यास करनां चिंतवन करनेंका है सो मन करि वचनकरि कायकरि आपं करना तथा परकूं करावनां करतेकूं भला

जाननां, ऐसैं त्रिकरण शुद्ध करि भावना करनी। माया मिथ्या निदान शल्य न राखणीं, ख्याति लाभ पूजाका आशय न राखनां ऐसैं तत्वकी भावना करनेंतैं भाव शुद्ध होय हैं। याका उदाहरण ऐसा जो—स्त्री आदि इंद्रियगोचर होय तब ताकै विषैं तत्व विचारनां जो ये स्त्री है सो कहा है ? जीवनामक तत्वकी एक पर्याय है अर याका शरीर है सो पुद्गलतत्वकी पर्याय है अर यह हावभाव चेष्टा करै है सो या जीवकै तौ विकार भया है सो आस्रवतत्व है अर बाह्य चेष्टा पुद्गलकी है, या विकारतैं या स्त्रीकी आत्माकै कर्मका बंध होय है, यहु विकार याकै न होय तौ आस्रव बंध याकै न होय। बहुरि कदाचित् मैं भी याकूं देखि विकाररूप परिणमूं तौ मेरै भी आस्रव बंध होय तातैं मोकूं विकाररूप न होनां यह संवर तत्व है बनैं तौ कछू उपदेश करि याका विकार मेटूं ऐसैं तत्वकी भावनातैं अपना भाव अशुद्ध न होय तातैं जो दृष्टि-गोचर पदार्थ आवै ताविषैं ऐसैं तत्वकी भावनां राखणीं यह तत्वकी भावनाका उपदेश है॥ ११४॥

आगैं कहै है—ऐसैं तत्वकी भावना जेतैं नांही तेतैं मोक्ष नांही,—

गाथा—जाव ण भावइ तच्चं जाव ण चिंतेइ चिंतणीयाइं।
तावण पावइ जीवो जरमरणविवज्जियं ठाणं॥११५॥

संस्कृत—यावन्न भावयति तत्त्वं यावन्न चिंतयति चिंतनीयानि।
तावन्न प्राप्नोति जीवः जरामरणविवर्जितं स्थानम् ११५

अर्थ—हे मुने ! जेतैं यह जीव आदि तत्वनिकूं नांहीं भावै है, बहुरि चिंतवन करनें योग्यकूं नांही चिंतै है तेतैं जरा अर मरणकरि रहित जो स्थान मोक्ष ताहि नांही पावै है॥

भावार्थ—तत्वकी भावना तौ पूर्वैं कही सो चिंतवन करनें योग्य धर्म शुक्लध्यानका विषयभूत सो ध्येय वस्तु अपनां शुद्ध दर्शनमयी

चेतनाभाव अर ऐसाही अरहंत सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप ताका चिंतवनां जेतैं या आत्माकै नांही तेतैं संसारतैं निवृत्त होनां नांही, तातैं तत्वकी भावना अर शुद्धस्वरूपका ध्यानका उपाय निरन्तर राखणां यह उपदेश है ॥ ११५ ॥

आगैं कहै है जो—पाप पुण्यका अर बंध मोक्षका कारण परिणाम ही है,—

गाथा—पावं हवइ असेसं पुण्णमसेसं च हवइ परिणामा।
परिणामादो बंधो मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥११६॥

संस्कृत—पापं भवति अशेषं पुण्यमशेषं च भवति परिणामात्।
परिणामाद्बंधः मोक्षः जिनशासने दृष्टः ॥ ११६ ॥

अर्थ—पाप पुण्य बंध मोक्षका कारण परिणामही कह्या तहां जीवके मिथ्यात्व विषय कषाय अशुभलेश्यारूप तीव्र परिणाम होय तिनितैं तौ पापास्त्रवका बंध होय है, बहुरि परमेष्ठीकी भक्ति जीवनिकी दया इत्यादिक मंदकषाय शुभलेश्यारूप परिणाम होय तातैं पुण्यास्त्रवका बंध होय है, अर शुद्ध परिणाम रहित विभावरूप परिणामतैं बंध होय है। तहां शुद्ध भावकै सन्मुख रहनां ताके अनुकूल शुभ परिणाम राखनें अशुभ परिणाम सर्वथा मेटनां, यह उपदेश है ॥ ११६ ॥

आगैं पुण्य पापका बंध जैसे भावनिकरि होय तिनिकूं कहै है, तहां प्रथमही पापबंधके परिणाम कहै है;—

गाथा—मिच्छत्त तह कसायाऽसंजमजोगेहिं असुहलेसेहिं।
बंधइ असुहं कम्मं जिणवयणपरम्मुहो जीवो ॥११७॥

संस्कृत—मिथ्यात्वं तथा कषायासंयमयोगैः अशुभलेश्यैः।
बध्नाति अशुभं कर्म जिनवचनपराङ्मुखः जीवः ११७

अर्थ—मिथ्यात्व तथा कषाय अर असंयम अर योग ते कैसे, अशुभ है लेश्या जिनिमैं ऐसे भावनि करि तौ यह जीव अशुभ कर्मकूं बांधै है; कैसा जीव अशुभ कर्मकूं बांधै है—जिनवचनतैं पराङ्मुख है सो पाप बांधै है ॥

भावार्थ—मिथ्यात्व भाव तौ तत्वार्थका श्रद्धानरहित परिणाम है, बहुरि कषाय क्रोधादिक हैं, अर असंयम परद्रव्यके ग्रहणरूप है त्यागरूप भाव नांही, ऐसे इंद्रियनिके विषयनितैं प्रीति जीवनिकी विराधनासहित भाव है, योग मनवचनकायके निमित्ततैं आत्मप्रदेशका चलनां है। ये भाव हैं ते जब तीव्रकषायसहित कृष्णनील कापोत अशुभ लेश्यारूप होय तब या जीवकै पापकर्मका बंध होय है। तहां पापबंध करनेंवाला जीव कैसा है—ताकै जिनवचनकी श्रद्धा नांही, इस विशेषणका आशय यह जो अन्य मतके श्रद्धानीकै जो कदाचित् शुभलेश्याके निमित्ततैं पुण्यकाभी बंध होय तौ ताकूं पापहीमैं गिणिये, अर जो जिन आज्ञामैं प्रवर्तै है ताकै कदाचित् पापभी बंधै तौ वह पुण्यजीवनिकी ही पंक्तिमैं गिणिये है, मिथ्यादृष्टीकूं पापजीवनिमैं गिण्या है सम्यग्दृष्टीकूं पुण्यजीवनिमैं गिण्या है। ऐसैं पापबंधके कारण कहे ॥ ११७ ॥

आगैं यातैं उलटा जीव है सो पुण्य बांधै है, ऐसैं कहै हैं;—

गाथा—तव्विवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावसुद्धिमावण्णो ।
दुविहपयारं बंधइ संखेपेणेव वज्जरियं ॥११८॥

संस्कृत—तद्विपरीतः बध्नाति शुभकर्म भावशुद्धिमापन्नः ।
द्विविधप्रकारं बध्नाति संक्षेपेणैव कथितम् ॥११८॥

अर्थ—तिस पूर्वोक्त जिनवचनका श्रद्धांनी मिथ्यात्वरहित सम्यग्दृष्टी जीव है सो शुभकर्मकूं बांधै है कैसा है जीव भावनिकी जो

वशुद्धि ताकूं प्राप्त है । ऐसैं दोऊ प्रकार दोऊ शुभाशुभ कर्म बांधे हैं यह संक्षेपकरि जिन कह्या ॥

भावार्थ—पूर्वैं कह्या जिनवचनतैं पराङ्मुख मिथ्यात्वसहित जीव तिसतैं विपरीत कहिये जिन आज्ञाका श्रद्धानी सम्यग्दृष्टी जीव हैं सो विशुद्धभावकूं प्राप्त भया शुभकर्मकूं बांधे है जातैं याके सम्यक्त्वके माहात्म्यकरि ऐसे उज्ज्वल भाव हैं ताकरि मिथ्यात्वकी लार बंध होती पापप्रकृतिनिका अभाव है, कदाचित् किंचित् कोई पापप्रकृति बंधै है तिनिका अनुभाग मंद होय है कछू तीव्र पापफलका दाता नांही तातैं सम्यग्दृष्टी शुभकर्महीका बांधनेंवाला है । ऐसैं शुभ अशुभ कर्मके बंधका संक्षेपकरि विधान सर्वज्ञदेवनैं कह्या है सो जाननां ॥ ११९ ॥

आगैं कहै है जो–हे मुने ! तू ऐसी भावनाकरि;—

गाथा—णाणावरणादीहिं य अट्ठहिं कम्मेहिं वेढिओ य अहं ।
डहिऊण इण्हि पयडमि अणंतणाणाइगुणचित्तां ११९

संस्कृत—ज्ञानावरणादिभिः च अष्टभिः कर्मभिः वेष्टितश्च अहं ।
दग्ध्वा इदानीं प्रकटयामि अनंतज्ञानादिगुणचेतनां ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू ऐसी भावनाकरि जो मैं ज्ञानवरणकूं आदि लेकरि आठ कर्म हैं तिनितैं वेढयाहूं यातैं इनिकूं भस्मकरि अनंतज्ञानादि गुण निजस्वरूप चेतनाकूं प्रगट करूं ॥

भावार्थ—आपकूं कर्मनिकरि वेढया मानैं अर तिनिकरि अनंतज्ञानादि गुण आच्छादे मानैं तब तिनि कर्मनिका नाश करनां विचारै, तातैं कर्मनिका बंधकी अर तिनिका अभावकी भावना करनेंका उपदेश है, अर कर्मनिका अभाव शुद्धस्वरूपके ध्यावनेंतैं होय है सो करनेंका उपदेश है । कर्म आठ हैं ते ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ये तो घातिया कर्म हैं; इनिकी प्रकृति सैंतालीस हैं, तिनिमैं केवलज्ञाना-

वरणतैं तौ अनंतज्ञान आच्छादित है, अर केवलदर्शनावरणतैं अनंतदर्शन आच्छादित है, अर मोहनीयतैं अनंतसुख प्रगट न होय है अर अंतँरायतैं अनंतवीर्य प्रगट न होय है सो इनिका नाश करनां। बहुरि च्यारि अघाति कर्म हैं तिनितैं अव्याबाध अगुरुलघु सूक्ष्मता अवगाहना ये गुण प्रगट न होय हैं, इनि अघातिकर्मनिकी प्रकृति एकसौ एक है। तिनि घातिकर्मनिका नाश भये अघातिकर्मनिका स्वयमेव अभाव होय है, ऐसैं जाननां॥ ११९॥

आगैं इनि कर्मनिका नाश होनेंकूं अनेक प्रकार उपदेश है ताकूं संक्षेपकरि कहै हैं;——

गाथा—सीलसहस्सट्ठारस चउरासीगुणगणाण लक्खाइं।
भावहि अणुदिणु णिहिलं असप्पलावेण किं बहुणा॥१२०

संस्कृत—शीलसहस्राष्टादश चतुरशीतिगुणगणानां लक्षाणि।
भावय अनुदिनं निखिलं असत्प्रलापेन किं बहुना१२०

अर्थ—शील तौ अठारह हजार भेदरूप है बहुरि उत्तरगुण चौरासी लाख हैं तहां आचार्य कहै है जो—हे मुने! बहुत झूंठे प्रलापरूप निरर्थक वचनकरि कहा? इनि शीलनिकूं अर उत्तरगुणनिकूं सर्वकूं तू निरन्तर भाय, इनिकी भावना चिंतवन अभ्यास निरन्तर राखि, इनिकी प्राप्ति होय तैसैं करि॥

भावार्थ—आत्मा जीवनामा वस्तु है सो अनंतधर्मस्वरूप है, संक्षेपकरि याकी दोय परिणति हैं, एक स्वाभाविक एक विभावरूप। तामैं स्वाभाविक तौ शुद्धदर्शनज्ञानमयी चेतनापरिणाम है; अर विभावपरिणाम कर्मके निमित्ततैं हैं, ते प्रधानकरि तौ मोहकर्मके निमित्ततैं भये संक्षेपकरि मिथ्यात्व रागद्वेष हैं तिनिके विस्तारकरि अनेक भेद हैं। बहुरि अन्यकर्मके उदयकरि विभाव होय हैं तिनिमैं पौरुष प्रधान नांही तातैं

उपदेश अपेक्षा ते गौण हैं। ऐसैं ये शील अर उत्तरगुण स्वभाव विभाव परिणतिके भेदतैं भेदरूपकरि कहे हैं, तहां शीलकी तौ दोय प्रकार प्ररूपणा है–एकतौ स्वद्रव्य परद्रव्यके विभाग अपेक्षा है अर स्त्रींके संसर्गकी अपेक्षा है। तहां परद्रव्यका संसर्ग मन वचन काय करि होय अर कृत कारित अनुमोदनाकरि होय सो न करणां, इनिकूं परस्पर गुणें नव भेद होंय। बहुरि आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार संज्ञा हैं इनिकरि परद्रव्यका संसर्ग होय हैं ताका न होनां यातैं नवभेदनिकूं च्यार संज्ञानितैं गुणें छत्तीस होंय। बहुरि पांच इंद्रियनिके निमित्ततैं विषयनिका संसर्ग होय है तिनिकी प्रवृत्तिका अभावरूप पांच इंद्रियनिकरि छत्तीसकूं गुणें एकसौ अस्सी होंय हैं। बहुरि पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रत्येक साधारण यें तौ एकेंद्रिय अर द्वीन्द्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय ऐसैं दशभेदरूप जीवनिका संसर्ग इनिकी हिंसारूप प्रवर्त्तनेंतैं परिणाम विभावरूप होय हैं सो न करणां, ऐसैं एकसौ अस्सी भेदनिकूं दशकरि गुणें अठारासै होय। बहुरि क्रोधादिक कषाय अर असंयम परिणामतैं परद्रव्यसंबंधी विभावपरिणाम होय हैं तिनिके अभावरूप दश लक्षण धर्म हैं तिनितैं गुणें अठारह हजार होय हैं। ऐसैं परद्रव्यके संसर्गरूप कुशीलके अभावरूप शीलके अठारह हजार भेद हैं इनिकें पाले परम ब्रह्मचर्य होय हैं, ब्रह्म कहिये आत्मा ताविषैं प्रवर्त्तनां रमनां ताकूं ब्रह्मचर्य कहिये है।

बहुरि स्त्रींके संसर्गकी अपेक्षा ऐसैं है,—स्त्री दोय प्रकार, तहां अचेतन स्त्री तौ काष्ठ पाषाण लेप कहिये चित्राम ये तान मन अर काय इनि दोयकरि संसर्ग होय, इहां वचन नांही तातैं दोयकरि गुणों छह होय। बहुरि कृतकारित अनुमोदनाकरि गुणें अठारह होय। बहुरि पांच इन्द्रियनिकरि गुणें निव्वै होय। बहुरि द्रव्य भावकरि गुणें एक

सौ अस्सी होय। बहुरि क्रोध मान माया लोभ इनि च्यार कषायनिकरि गुणें सातसैवीस होय। बहुरि चेतन स्त्री देवी मनुष्यणी तिर्यंचणी ऐसैं तीन, सो इनि तीननिनैं मन वचन कायकरि गुणें नव होय। तिनिकूं कृत कारित अनुमोदनाकरि गुणें सत्ताईस होय। तिनिकूं पांच इन्द्रियनितैं गुणें एकसौ पैंतीस होय तिनिकूं द्रव्य अर भाव इनि दोयकरि गुणें दोयसै सत्तरि होय। तिनिकूं च्यार संज्ञातैं गुणें एक हजार अस्सी होय। इनिकूं अनंतानुबधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलन क्रोध मान माया लोभ इनि सोलह कषायनितैं गुणें सतराहजार दोयसै अस्सी होय है। ऐसैं अचेतनस्त्रीके सातसैवीस मिलाये अठारह हजार होय हैं, ऐसैं स्त्रीके संसर्गतैं विकार परिणाम होय ते कुशील हैं इनिका अभावरूप परिणाम ते शील हैं याकूं भी ब्रह्मचर्यसंज्ञा है॥

बहुरि चौरासी लाख उत्तरगुण ऐसैं है जो आत्माके विभाव परिणामनिके बाह्यकारणनिकी अपेक्षा भेद होय है, तिनिके अभावरूप ये गुणनिके भेद हैं, तिनि विभावनिका संक्षेपकरि भेदनिकी गणना ऐसैं;— हिंसा १ अनृत २ स्तेय ३ मैथुन ४ परिग्रह ५ क्रोध ६ मान ७ माया ८ लोभ ९ भय १० जुगुप्सा ११ अरति १२ शोक १३ मनोदुष्टत्व १४ वचनदुष्टत्व १५ कायदुष्टत्व १६ मिथ्यात्वं १७ प्रमाद १८ पैशून्य १९ अज्ञान २० इन्द्रियनिका अनुग्रह २१ ऐसैं इकईस दोष है; तिनिकूं अतिक्रम व्यतिक्रम अतीचार अनाचार इनि च्यारनितैं गुणें चौरासी होय हैं। बहुरि पृथ्वी अप तेज वायु प्रत्येक साधारण ये तौ थावर एकेंद्रिय जीव छह अर विकल तीन पंचेंद्रिय एक ऐसैं जीवनीका दश भेद तिनिका परस्पर आरंभतैं घात होत परस्पर गुणें सौ (१००) होय इनितैं चौरासीकूं गुणें चौरासी सौ होय है। बहुरि तिनिकूं दश शील विराधनातैं गुणें चौराशी हजार होय, तिनि दशके नाम—स्त्रीसंसर्ग १ पुष्टरसभोजन २

गंधमाल्यका ग्रहण ३ शयनासन सुंदरका ग्रहण ४ भूषणका मंडन ५ गीतवादित्रका प्रसंग ६ धनका संप्रयोजन ७ कुशीलका संसर्ग ८ राज-सेवा ९ रात्रिसंचरण १० ये दश शील विराधना हैं। बहुरि तिनिकूं आलोचनाके दश दोष हैं जो गुरुनि पासि लगे दोषनिकी आलोचना करै सो सरल होय न करै कछू शल्य राखै ताके दश भेद किये हैं तिनितैं गुणें आठ लाख चालीस हजार होय है। बहुरि आलोचनाकूं आदि देय प्रायश्चित्तके भेद है तिनितैं गुणें चौरासीलाख होय है। सो सर्व दोषनिके भेद है इनिका अभावतैं गुण है इनिकी भावना राखै चिंतवन अभ्यास राखै इनिकी संपूर्ण प्राप्ति होनेंका उपाय राखै, ऐसैं, इनिकी भावनाका उपदेश है। आचार्य कहै है जो बारवार बहुत वच-नके प्रलाप करितौ कछू साध्य नांही जो कछू आत्माके भावकी प्रवृ-त्तिके व्यवहारके भेद है तिनिकूं गुण संज्ञा है तिनिकी भावना राखणी बहुरि इहां एता और जाननां जो--गुणस्थान चौदह कहे है तिस परि-पाटीकरि गुण दोषनिका विचार है। तहां मिथ्यात्व सासादन मिश्र इनि तीननिमैं तौ विभावपरणतिही है तहां तौ गुणका विचार नांही। बहुरि अविरत देशविरत आदिमैं गुणका एकदेश आवै है, तहां अविरतमैं मिथ्यात्व अनंतानुबंधी कषायके अभावरूप गुणका एकदेश सम्यक्त्व अर तीव्र राग द्वेषका अभावरूप गुण आवै है, बहुरि देश विरतमैं कछू व्रतका एकदेश आवै है। अर प्रमत्तमैं महाव्रतरूप सामायिक चारित्रका एकदेश आवै है जातैं पापसंबंधी तौ राग द्वेष तहां नांही परन्तु धर्म-संबंधी राग अर सामायिक राग द्वेषका अभावका नाम है तातैं सामा-यिकका एकदेशही कहिये, अर इहां स्वरूपके सन्मुख होनेविषैं क्रियाकांडके संबंधतैं प्रमाद है तातैं प्रमत्त नाम दिया है। बहुरि अप्रमत्तविषैं स्वरूप साधनेंविषैं प्रमादतौ नांही परन्तु कछू स्वरूपके साधनेंका राग व्यक्त है तातैं

तहांभी सामायिकका एकदेशही कहिये। बहुरि अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरणविषैं राग व्यक्त नांही अव्यक्तकषायका सद्भाव है तातैं सामायिक चारित्रकी पूर्णता कही। बहुरि सूक्ष्मसांपराय है सो अव्यक्तकषायभी सूक्ष्म रहिगई तातैं याका नाम सूक्ष्मसांपराय दिया। बहुरि उपशांतमोह क्षीणमोहविषैं कषायका अभावही है तातैं जैसा आत्माका मोहविकाररहित शुद्ध स्वरूप था ताका अनुभव भया तातैं यथाख्यात चारित्र नाम पाया, ऐसैं मोह-कर्मके अभावकी अपेक्षा तौ तहांही उत्तरगुणनिकी पूर्णता कहिये परन्तु आत्माका स्वरूप अनंतज्ञानादि स्वरूप है सो घातिकर्मके नाश भये अनंतज्ञानादि प्रगट होय तब सयोगकेवली कहिये तहांभी कछू योग-निकी प्रवृत्ति है यातैं अयोगकेवली चौदमां गुणस्थान है तहां योगनिकी प्रवृत्ति मिटि अवस्थित आत्मा होय जाय है तब चौरासीलाख उत्तरगुण-निकी पूर्णता कहिये। ऐसैं गुणस्थाननिकी अपेक्षा उत्तरगुणनिकी प्रवृत्ति विचारणी। ये बाह्य अपेक्षा भेद है अंतरंग अपेक्षा विचारिये तब संख्यात असंख्यात अनंत भेद होय हैं, ऐसैं जाननां॥ १२०॥

आगैं भेदनिका विकल्पतैं रहित होय ध्यान करनेंका उपदेश करै हैं;—

गाथा—झायहि धम्मं सुक्कं अट्ट रउद्दं च झाण मुत्तूण।
रुद्दट्ट झाइयाइं इमेण जीवेण चिरकालं॥१२१॥

संस्कृत—ध्याय धर्म्यं शुक्लं आर्त्तं रौद्रं च ध्यानं मुक्त्वा।
रौद्रार्त्ते ध्याते अनेन जीवेन चिरकालम्॥१२१॥

अर्थ—हे मुने! तू आर्त्तरौद्र ध्यानकूं छांडि अर शुक्लध्यान हैं तिनिहिं ध्याय जातैं रौद्र अर आर्त्तध्यानतौ या जीवनैं अनादितैं लगाय बहुतकाल ध्याये॥

भावार्थ—आर्त्तरौद्र ध्यान तौ अशुभ हैं संसारके कारण हैं तहां ये दोष ध्यान तौ जीवकै बिना उपदेशही अनादितैं प्रवर्त्तै हैं तातैं तिनिकूं

छोडनेंका उपदेश है। बहुरि धर्मशुक्ल ध्यान हैं ते स्वर्ग मोक्षके कारण हैं इनिकूं कबहूं ध्याये नांही तातैं तिनिकूं ध्यावनेंका उपदेश है। तहां ध्यानका स्वरूप एकाग्रचिंतानिरोध कह्या है—तहां धर्मध्यानमैं तौ धर्मानुरागका सद्भाव है सो धर्मकै मोक्षमार्गके कारणविषैं रागसहित एकाग्रचिंतानिरोध होय है तातैं शुभरागके निमित्ततैं पुण्यबंधभी होय है अर विशुद्धताके निमित्ततैं पापकर्मकी निर्जराभी होय है। बहुरि शुक्लध्यानमैं आठवें नवमें दशमें गुणस्थान तौ अव्यक्तराग है तहां अनुभव अपेक्षा उपयोग उज्ज्वल है तातैं शुक्लनाम पाया है अर यातैं ऊपरिके गुणस्थाननिमैं राग कषायका अभावही है तातैं सर्वथाही उपयोग उज्ज्वल है तहां शुक्लध्यान युक्तही है। तहां एता विशेष और है जो उपयोगका एकाग्रपणां रूप ध्यानकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्तकी कही है तिस अपेक्षा तेरमें चौदमें गुणस्थान ध्यानका उपचार है अर योगक्रियाके थंमनकी अपेक्षा ध्यान कह्या है। यह शुक्लध्यान कर्मकी निर्जराकरि जीवकूं मोक्ष प्राप्त करै है, ऐसैं ध्यानका उपदेश जाननां॥ १२१॥

आगैं कहै है यह ध्यान भावलिंगी मुनिनिकूं मोक्ष करै है;—

गाथा—जे के विं दव्वसवणा इंदियसुहआउला ण छिंदंति।
छिंदंति भावसवणा झाणकुठारेहिं भवरुक्खं ॥१२२॥

संस्कृत—ये केऽपि द्रव्यश्रमणा इन्द्रियसुखाकुलाः न छिंदन्ति।
छिन्दन्ति भावश्रमणाः ध्यानकुठारैः भववृक्षम् १२२

अर्थ—केई द्रव्यलिंगी श्रमण हैं ते तौ इन्द्रियसुखविषैं व्याकुल हैं तिनिकै यह धर्मशुक्लध्यान होय नांही ते तौ संसाररूप वृक्षके काटनेंकूं समर्थ नांही हैं, बहुरि जे भावलिंगी श्रमण हैं ते ध्यानरूप कुहाडेनिकरि संसाररूप वृक्षकूं काटैं हैं॥

भावार्थ—जे मुनि द्रव्यलिंग तौ धारैं हैं परन्तु परमार्थ सुखका अनुभव जिनिकै न भया तातैं इस लोक परलोकविषैं इंद्रियनिका सुखहीकूं चाहैं हैं तपश्चरणादिक भी याही अभिलाषतैं करैं हैं तिनिकै धर्म शुक्लध्यान काहे तैं होय? न होय, बहुरि जिनिमैं परमार्थसुखका आस्वाद लिया तिनिकूं इंद्रियसुख दुःख भास्या, तातैं परमार्थ सुखका उपाय धर्म शुक्लध्यान है ताकूं करि संसारका अभाव करैं हैं तातैं भावलिंगी होय ध्यानका अभ्यास करनां॥ १२२॥

आगैं इसही अर्थकूं दृष्टान्तकरि दृढ करै है,—

गाथा—जह दीवो गब्भहरे मारुयवाहाविवज्जिओ जलइ।
तह रायानिलरहिओ झाणपईवो वि पज्जलइ॥१२३॥

संस्कृत—यथा दीपः गर्भगृहे मारुतबाधाविवर्जितः ज्वलति।
तथा रागानिलरहितः ध्यानप्रदीपः अपि प्रज्वलति॥

अर्थ—जैसैं दीपक है सो गर्भगृह कहिये जहां पवनका संचार नांही ऐसा मध्यका घर ताविषैं पवनकी बाधाकरि रहित निश्चल भया उज्ज्वलै है उद्योत करै है तैसैं अंतरंग मनविषैं रागरूपी पवनकरि रहित ध्यानरूपी दीपक भी प्रज्वलै है एकाग्र होय ठहरै है आत्मरूपकूं प्रकाशै है॥

भावार्थ—पूर्वै कह्याथा जो इन्द्रियसुखकरि व्याकुल हैं तिनिकै शुभध्यान न होय है ताका यह दीपकका दृष्टान्त है—जहां इन्द्रियनिके सुखविषैं जो राग सोही भई पवन सो विद्यमान है तिनिकै ध्यानरूपी दीपक कैसैं निर्बाध उद्योत करै? न करै, अर जिनिकै यह रागरूप पवन बाधा न करै तिनिकै ध्यानरूप दीपक निश्चल ठहरै है॥ १२३॥

आगैं कहै है—जो ध्यानविषैं परमार्थ ध्येय शुद्ध आत्माका स्वरूप है तिसस्वरूपरूपके आराधनेंविषैं नायक प्रधान पंच परमेष्ठी हैं तिनिकूं ध्यावनां, यह उपदेश करै है;—

गाथा—झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए।
णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे ॥१२४॥

संस्कृत—ध्याय पंच अपि गुरून् मंगलचतुः शरणपरिकरितान्।
नरसुरखेचरमहितान् आराधनानायकान् वीरान् १२४

अर्थ—हे मुने! तू पंच गुरु कहिये पंच परमेष्ठी हैं तिनहिं ध्याय, इहां 'अपि' शब्द है सो शुद्धात्मस्वरूपके ध्यानकूं सूचै है, ते पंच परमेष्ठी कैसे हैं—मंगल कहिये पापका गालण अथवा सुखका देना अर चउशरण कहिये च्यार शरण अर लोक कहिये लोकके प्राणी तिनिकरि अरहंत सिद्ध साधु केवलि प्रणीत धर्म ये परिकरित कहिये परिवारित हैं युक्त हैं, बहुरि नर सुर विद्याधरनिकरि महित हैं पूज्य हैं लोकोत्तम कहै हैं, बहुरि आराधानके नायक हैं, बहुरि वीर हैं कर्मनिके जीतनेंकूं सुभट हैं तथा विशिष्ट लक्ष्मांकूं प्राप्त हैं तथा देहैं, ऐसे पंच परम गुरुकूं ध्याय ॥

भावार्थ—इहां पंच परमेष्ठीकूं ध्यावनां कह्या तहां ध्यानविषैं विघ्नके निवारनेवाले च्यार मंगलस्वरूप कहे ते येही हैं, बहुरि च्यार शरण अर लोकोत्तम कहे हैं ते भी इनिहीकूं कहे हैं; इनिसिवाय प्राणीकूं अन्य शरणां रक्षा करनेंवालाभी नाहीं है, अर लोकविषैं उत्तमभी येही हैं, बहुरि आराधना दर्शन ज्ञान चारित्र तप ये च्यार हैं ताकै नायक स्वामीभी येही हैं, कर्मनिकूं जीतनेंवालेभी येही हैं। तातैं ध्यानके कर्त्ताकूं इनिका ध्यान श्रेष्ठ है, शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति इनिहीके ध्यानतैं होय है तातैं यह उपदेश है ॥ १२४ ॥

आगै ध्यान है सो ज्ञानका एकाग्र होनां है सो ज्ञानका अनुभवनका उपदेश करै है;—

गाथा—णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण।
आहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिवा होंति ॥१२५॥

संस्कृत—ज्ञानमयविमलशीतलसलिलं प्राप्य भव्याः भावेन।
व्याधिजरामरणवेदनादाहविमुक्ताः शिवाः भवन्ति॥

अर्थ—भव्यजीव हैं ते ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल है ताहि सम्यक्त्वभावकरि सहित पीयकरि अर व्याधिस्वरूप जो जरा मरण ताकी वेदना पीडा ताहि भस्म करि मुक्त कहिये संसारतैं रहित शिव कहिये परमानंद सुखरूप होय हैं॥

भावार्थ—जैसैं निर्मल अर शीतल ऐसे जलके पीये पित्तका दाहरूप व्याधि मिटै अर साता होय है तैसैं यह ज्ञान है सो जब रागादिकमलतैं रहित निर्मल होय अर आकुलतारहित शांतभावरूप होय ताकी भावनाकरि रुचि श्रद्धा प्रतीतिकरि पीवै यासूं तन्मय होय तौ जरा मरणरूप दाह वेदना मिटि जाय अर संसारतैं निर्वृत्त होय सुखरूप होय, तातैं भव्यजीवनिकूं यह उपदेश है जो ज्ञानमैं लीन होहू॥ १२५॥

आगैं कहै है जो—या ध्यानरूप अग्निकरि संसारका बीज आठ कर्म एक वार दग्ध भये पीछैं फेरि संसार न होय है, सो यह बीज भावमुनिकै दग्ध होय है;—

गाथा—जह बीयम्मि य दड्ढे ण वि रोहइ अंकुरो य महिबीढे।
तह कम्मबीयदड्ढे भवंकुरो भावसवणाणं ॥१२६॥

संस्कृत—यथा बीजे च दग्धे नापि रोहति अंकुरश्च महीपीठे।
तथा कर्मबीजदग्धे भवांकुरः भावश्रमणानाम् ॥१२६॥

अर्थ—जैसैं पृथ्वीके स्थलविषैं बीज दग्ध होतैं संतैं तिसका अंकुर है सो फेरि नांही ऊगै है तैसैं जे भावलिंगी श्रमण हैं तिनिकैं संसारका

कर्मरूपी बीज दग्ध हो जाय है, यातैं संसाररूप अंकुरा फेरि नांही होय है ॥

भावार्थ—संसारका बीज ज्ञानावरणादिक कर्म है सो कर्म भावश्रमणकै ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध हो जाय है तातैं फेरि संसाररूप अंकुरा काहेतैं होय ? तातैं भावश्रमण होय धर्म शुक्लध्यानतैं कर्मका नाश करनां योग्य है, यह उपदेश है। कोई सर्वथा एकांती अन्यथा कहै जो कर्म अनादि है ताका अंत भी नांही, ताका यह निषेध भी है, बीज अनादि है सो एक बार दग्ध भये पीछैं फेरि न ऊगै तैसैं जाननां ॥ १२६ ॥

आगैं संक्षेपकरि उपदेश करै है,—

गाथा—भावसवणो वि पावइ सुक्खाइं दुहाइं दव्वसवणो य।
इय णाउं गुणदोसे भावेण य संजुदो होइ ॥१२७॥

संस्कृत—भावश्रमणः अपि प्राप्नोति सुखानि दुःखानि द्रव्यश्रमणश्च।
इति ज्ञात्वा गुणदोषान् भावेन च संयुतः भव ॥१२७॥

अर्थ—भावश्रमण तौ सुखनिकूं पावै है बहुरि द्रव्यश्रमण है सो दुःखनिकूं पावै है ऐसैं गुण दोषनिकूं जाणि हे जीव तू भावकरि संयुक्त संयमी होहु ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनसहित तौ भावश्रमण होय है सो संसारका अभावकरि सुखनिकूं पावै है, अर मिथ्यात्वसहित द्रव्यश्रमण भेषमात्र होय है सो संसारका अभाव न करि सकै है तातैं दुःखनिकूं पावै है यातैं उपदेश करै है जो दोऊका गुण दोष जाणि भावसंयमी होनां योग्य है, यह सर्व उपदेशका संक्षेप है ॥ १२७ ॥

आगैं फेरिभी याहीका उपदेश अर्थरूप संक्षेपकरि कहै है,—

गाथा—तित्थयरगणहराइं अब्भुदयपरंपराइं सोक्खाइं ।
पावंति भावसहिया संखेवि जिणेहिं वज्जरियं ॥१२८॥

संस्कृत—तीर्थंकरगणधरादीनि अभ्युदयपरंपराणि सौख्यानि ।
प्राप्नुवंति भावश्रमणाः संक्षेपेण जिनैः भणितम् १२८

अर्थ—जे भावसहित मुनि हैं ते अभ्युदयसहित तीर्थंकर गणधर आदि पदवीके सुख तिनिकूं पावैं हैं यह संक्षेपकरि कह्या है ॥

भावार्थ—तीर्थंकर गणधर चक्रवर्त्ती आदि पदवीके सुख वडे अभ्युदयसहित हैं तिनहिं भावसहित सम्यग्दृष्टी मुनि हैं ते पावैं हैं, यह सर्व उपदेशका संक्षेपकरि उपदेश कह्या है तातैं भावसहित मुनि होनां योग्य है ॥ १२८ ॥

आगैं आचार्य कहै है जो-जे भावश्रमण हैं ते धन्य हैं तिनिकूं हमारा नमस्कार होहू;—

गाथा—ते धण्णा ताण णमो दंसणवरणाणचरणसुद्धाणं ।
भावसहियाण णिच्चं तिविहेण पणट्ठमायाणं ॥१२९॥

संस्कृत—ते धन्याः तेभ्यः नमः दर्शनवरज्ञानचरणशुद्धेभ्यः ।
भावसहितेभ्यः नित्यं त्रिविधेन प्रणष्टमायेभ्यः १२९

अर्थ—आचार्य कहै है जो—जे मुनि सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ विशिष्ट ज्ञान अर निर्दोप चारित्र इनिकरि शुद्ध हैं याहीतैं भावकरि सहित हैं, बहुरि प्रणष्ट भई है माया कहिये कपटपरिणाम जिनिकै ऐसे हैं ते धन्य हैं तिनिकै अर्थि हमारा मन वचन कायकरि सदा नमस्कार होहु ॥

भावार्थ—भावलिंगीनिमैं दर्शन ज्ञान चारित्रकरि जे शुद्ध हैं तिनिकी आचार्यनिकैं भक्ति उपजी है तातैं तिनिकूं धन्य कहिकरि नमस्कार किया है सो युक्त है, जिनिकै मोक्षमार्गविषैं अनुराग है जे तिनिमैं मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिमैं प्रधानता दीखै तिनिकूं नमस्कार करैं ही करैं ॥ १२९ ॥

आगैं कहै हैं-जे भावश्रमण है ते देवादिककी ऋद्धि देखि मोहकूं प्राप्त न होय है;—

गाथा—इड्ढिमतुलं विउव्विय किण्णरकिंपुरिसअमरखयरेहिं।
तेहिं वि ण जाइ मोहं जिणभावणभाविओ धीरो॥१३०॥

संस्कृत—ऋद्धिमतुलां विकुर्वद्भिः[1] किंनरकिंपुरुषामरखचरैः।
तैरपि न याति मोहं जिनभावनाभावितः धीरः १३०

अर्थ—जिनभावना जो सम्यक्त्वभावना ताकरि वासित जो जीव है सो किंनर किंपुरुष देव अर कल्पवासी देव अर विद्याधर इनिकरि विक्रियारूप विस्तारी जो अतुल ऋद्धि तिनिकरि मोहकूं प्राप्त न होय है जातैं कैसा है सम्यग्दर्ष्टी जीव—धीर है दृढबुद्धि है निःशंकित अंगका धारक है॥

भावार्थ—जिसकै जिनसम्यक्त्व दृढ है तिसकै संसारकी ऋद्धि तृणवत् है परमार्थसुखहीकी भावना है विनाशीक ऋद्धिकी वांछा काहेकूं होय?॥ १३०॥

आगैं इसहीका समर्थन है जो—ऐसी ऋद्धि ही न चाहै तौ अन्य सांसारिक सुखकी कहा कथा?;—

गाथा—किं पुण गच्छइ मोहं णरसुरसुक्खाण अप्पसाराणं।
जाणंतो पस्संतो चिंतंतो मोक्ख मुणिधवलो॥१३१॥

संस्कृत—किं पुनः गच्छति मोहं नरसुरसुखानां अल्पसाराणाम्।
जानन् पश्यन् चिंतयन् मोक्षं मुनिधवलः॥१३१॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव पूर्वोक्त प्रकारकी ही ऋद्धिकूं न चाहै तौ मुनिधवल कहिये मुनिप्रधान है सो अन्य जे मनुष्य देवनिके सुख

१—संस्कृत मुद्रित प्रतिमें 'विकृतां' ऐसा पाठ है।

भोगादिक जिनिमैं अल्पसार ऐसे जिनिविषैं कहा मोहकूं प्राप्त होय? कैसा है मुनिधवल—मोक्षकूं जानता है तिसहीकी तरफ दृष्टि है तिसहीका चिंतवन करै है॥

भावार्थ—जे मुनिप्रधान हैं तिनिकी भावना मोक्षके सुखनिमैं है ते बडी बडी देव विद्याधरनिकी फैलाई विक्रियाऋद्धि विषैंही लालसा न करै तौ किंचित्मात्र विनाशीक जे मनुष्य देवनिका भोगादिकका सुख तिनिविषैं वांछा कैसैं करै? न करै॥ १३१॥

आगैं उपदेश करै है जो—जेतैं जरा आदिक न आवैं ते तैं अपनां हित करौ;—

गाथा—उत्थरइ जा ण जरओ रोयग्गी जा ण डहइ देहउडिं।
इंदियबलं न वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहियं॥१३२

संस्कृत—आक्रमते यावन्न जरा रोगाग्निर्यावन्न दहति देहकुटीम्।
इन्द्रियबलं न विगलति तावत् त्वं कुरु आत्महितम् १३२

अर्थ—हे मुने! जेतैं तेरै जरा वृद्धपणां न आवै बहुरि रोगरूप अग्नि तेरी देहरूप कुटीकूं जेतैं दग्ध न करै बहुरि जेतैं इन्द्रियनिका बल न घटै तेतैं अपनां हितकूं करि॥

भावार्थ—वृद्ध अवस्थामैं देह रोगनिकरि जर्जरी होय इंद्रिय क्षीण पड़ै तब असमर्थ भया इस लोकके कार्य उठनां बैठनां भी न करि सकै तब परलोक संबंधी तपश्चरणादिक तथा ज्ञानाभ्यास स्वरूपका अनुभवादिक कार्य कैसैं करै तातैं यह उपदेश है जो—जेतैं सामर्थ्य है तेतैं अपनां हितरूप कार्य करिल्यो॥ १३२॥

आगैं अहिंसाधर्मका उपदेश वर्णन करै है;—

गाथा—छज्जीव षडायदणं णिच्चं मणवयणकायजोएहिं ।
कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुव्वं महासत्तं[1] ॥१३३॥

संस्कृत—षट्[2]जीवान् षडायतनानां नित्यं मनोवचनकाययोगैः ।
कुरु दयां परिहर मुनिवर भावय अपूर्वं महासत्त्वम् ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू छहकायके जीवनिकी दयाकरि, वहुरि छह अनायतनकूं परिहरि छोडि, कैसैं छोडि—मन वचन कायके योगनिकरि छोडि; वहुरि अपूर्व जो पूर्वैं न भया ऐसा महासत्त्व कहिये सर्व जीवनिमें व्यापक महासत्त्व चेतनाभाव ताहि भाय ॥

भावार्थ—अनादिकालतैं जीवका स्वरूप चेतनास्वरूप न जाण्या तातैं जीवनिकी हिंसा करी तातैं यह उपदेश है जो अब जीवात्माका स्वरूप जांणि छह कायके जीवनिकी दया करि। वहुरि अनादिहीतैं आप्त आगम पदार्थका अर इनका सेवनेंवालाका स्वरूप जाण्यां नांही तातैं अनाप्त आदि छह अनायतन जे मोक्षमार्गके ठिकाणे नांही तिनिकूं भले जांणि सेवन किया तातैं यह उपदेश है जो—अनायतनका परिहार करि जीवका स्वरूपका उपदेशक ये दोऊही तैं पूर्वैं जाणें नांही भाया नाहीं तातैं अब भाय, ऐसा उपदेश है ॥ १३३ ॥

आगैं कहै है जो—जीवका तथा उपदेश करनेंवालाका स्वरूप जाण्यां विना सर्वजीवनिके प्राणनिका आहार किया ऐसैं दिखावै है,—

गाथा—दसविहपाणाहारो अणंतभवसायरे भमंतेण ।
भोयसुहकारणट्ठं कदो य तिविहेण सयलजीवाणं १३४

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'महासत्त' ऐसा संवोधनपद किया है जिसकी संस्कृत 'महासत्त्व' है।

२—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'षट्जीवषडायतनानां' एक पद किया है।

संस्कृत—दशविधप्राणाहारः अनंतभवसागरे भ्रमता।
भोगसुखकारणार्थं कृतश्च त्रिविधेन सकलजीवानां॥

अर्थ—हे मुने! तैं अनंतभवसागरमैं भ्रमता सकल त्रस थावर जीवनिके दशविध प्राणनिका आहार, भोग सुखकै कारणकै अर्थि मन वचनकायकरि किया॥

भावार्थ—अनादिकालतैं जिनमतका उपदेशविना अज्ञानी भयातैं त्रसथावर जीवनिके प्राणनिका आहार किया तातैं अब जीवनिका स्वरूप जांणि जीवनिकी दया पालि भोगाभिलाप छोडि, यह उपदेश है॥१३४॥

फेरि कहै है—ऐसैं प्राणीनिकी हिंसाकरि संसारमैं भ्रमिकरि दुःख पाया;—

गाथा—पाणिवहेहि महाजस चउरासीलक्खजोणिमज्झम्मि।
उप्पजंत मरंतो पत्तोसि निरंतरं दुक्खं॥१३५॥

संस्कृत—प्राणिवधैः महायशः! चतुरशीतिलक्षयोनिमध्ये।
उत्पद्यमानः म्रियमाणः प्राप्तोऽसि निरंतरं दुःखम्॥१३५॥

अर्थ—हे मुने! हे महायश! तैं प्राणीनिके घातकरि चौरासी लाख योनिकै मध्य उपजतैं अर मरतैं निरंतर दुःख पाया॥

भावार्थ—जिनमतके उपदेश विना जीवनिकी हिंसा करि यह जीव चौरासी लाख योनिमैं उपजै है अर मरै है, हिंसातैं कर्मबंध होय है, कर्म बंधके उदयतैं उत्पत्तिमरणरूप संसार होय है; ऐसैं जन्म मरणका दुःख सहै है तातैं जीवनिकी दयाका उपदेश है॥

आगैं तिस दयाहीका उपदेश करै है;—

गाथा—जीवाणमभयदाणं देहि मुणी पाणिभूयसत्ताणं।
कल्लाणसुहणिमित्तं परंपरा तिविहसुद्धीए॥१३६॥

संस्कृत—जीवानामभयदानं देहि मुने प्राणिभूतसत्त्वानाम् ।
कल्याणसुखनिमित्तं परंपरया त्रिविधशुद्ध्या ॥१३६॥

अर्थ—हे मुने ! जीवनिकूं अर प्राणीभूत सत्त्व इनिकूं अपनां परंपरायकरि कल्याण अर सुख ताकै अर्थि मन वचन कायकी शुद्धताकरि अभयदान दे ॥

भावार्थ—जीव तौ पंचेंद्रियनिकूं कहे हैं अर प्राणी विकलत्रयकूं कहे हैं अर भूत वनस्पतीकूं कहे है अर सत्त्व पृथ्वी अप तेज वायु इनिकूं कहे हैं। इनि सर्व जीवनिकूं आप समान जांणि अभयदान देनेंका उपदेश है, यातैं शुभ प्रकृतिनिका बंध होनेंतैं अभ्युदयका सुख होय है परंपराकरि तीर्थंकरपद पाय मोक्ष पावै है, यह उपदेश है ॥ १३६ ॥

आगैं यह जीव षट् अनायतनके प्रसंगकरि मिथ्यात्वतैं संसारमैं भ्रमै है ताका स्वरूप कहै है, तहां प्रथमही मिथ्यात्वके भेदनिकूं कहै है;—

गाथा—असियसय किरियवाई अक्किरियाणं च होइ चुलसीदी ।
सत्तट्ठी अण्णाणी वेणैया होंति बत्तीसा ॥१३७॥

संस्कृत—अशीतिशतं क्रियावादिनामक्रियाणं च भवति चतुरशीतिः ।
सप्तषष्टिरज्ञानिनां वैनयिकानां भवति द्वात्रिंशत् १३७

अर्थ—एकसौ अस्सी तौ क्रियावादी हैं चौरासी अक्रियावादीनिके भेद हैं अज्ञानी सडसठि भेदरूप हैं विनयवादी बत्तीस हैं ॥

भावार्थ—वस्तुका स्वरूप अनंत धर्म स्वरूप सर्वज्ञ कह्या है सो प्रमाण नयकरि सत्यार्थ सधै है, तहां जिन्होंके मतमैं सर्वज्ञ नांही तथा सर्वज्ञका स्वरूप यथार्थ निश्चयकरि ताका श्रद्धान न किया ऐसे अन्य-

वादी तिनिनैं वस्तुका एक धर्म ग्रहणकरि तिसका पक्षपात किया जो-हमनैं ऐसैं मान्या है सो ऐसैंही है अन्य प्रकार नांही है। ऐसैं विधि निषेधकरि एक एक धर्मके पक्षपाती भये तिनके ये संक्षेपकरि तीनसह तेरसठि भेद भये।

तहां केई तौ गमन करनां बैठनां खडा रहनां खानां पीनां सोवनां उप-जनां विनसनां देखनां जाननां करनां भोगनां भूलनां यादि करनां प्रीति करनां हर्ष करनां विषाद करनां द्वेष करनां जीवनां मरनां इत्यादिक क्रिया हैं तिनिकूं जीवादिक पदार्थनिकै देखि कोई कैसी क्रियाका पक्ष किया है कोईनें कैसी क्रियाका पक्ष किया है ऐसें परस्पर क्रियाविवादकरि भेद भये हैं तिनिके संक्षेपकरि एकसौ अस्सी भेद निरूपण किये हैं, विस्तार किये बहुत होय हैं। बहुरि केई अक्रियावादी हैं तिनिनैं जीवादिक पदा-र्थनिविषैं क्रियाका अभाव मांनि परस्पर विवाद करैं हैं, केई कहैं हैं जीव जानैं नांही है, केई कहैं हैं कछू करै नांही हैं, केई कहैं हैं भोगवै नांही है, केई कहैं है उपजै नांही है, केई कहै हैं विनसै नांही है, केई कहैं हैं गमन नांही करै है, केई कहैं हैं तिष्ठै नांही है इत्यादिक क्रियाके अभा-वका पक्षपातकरि सर्वथा एकान्ती होय हैं तिनिके संक्षेपकरि चौरासी भेद किये हैं बहुरि केई अज्ञानवादी हैं, तिनिमें केई तौ सर्वज्ञका अभाव मानैं हैं, केई कहैं हैं जीव अस्ति है यह कौन जानैं, केई कहैं हैं जीव नास्ति हैं यह कौन जानैं, केई कहैं हैं जीव नित्य है यह कौन जानैं, केई कहैं हैं जीव अनित्य है यह कौन जानैं; इत्यादिक संशय विपर्यय अनध्यवसायरूप भये विवाद करैं हैं, तिनिके संक्षेपकरि सडसठि भेद कहे हैं। बहुरि केई, विनयवादी हैं, ते केई कहैं है देवादिकका विनयतैं सिद्धि है, केई कहैं है गुरुके, विनयतैं सिद्धि है, केई कहैं है माताके विनयतैं सिद्धि है, केई कहैं हैं पिताके विनयतैं सिद्धि है केई कहैं हैं

राजाके विनयतैं सिद्धि है, केई कहैं हैं सर्वके विनयतैं सिद्धि है इत्यादिक विवाद करैं हैं तिनिके संक्षेपकरि वत्तीस भेद किये है। ऐसैं सर्वथा एकांतीनिके तीनसह तरेसठि भेद संक्षेपकरि किये हैं, विस्तार किये वहुत होय हैं इनिमैं केई ईस्वरवादी है केई कालवादी हैं, केई स्वभाववादी है, केई विनयवादी हैं, केई आत्मावादी हैं तिनिका स्वरूप गोमट्टसारादि ग्रंथनितैं जाननां, ऐसैं मिथ्यात्वके भेद हैं ॥ १३७ ॥

आगैं कहै है—अभव्यजीव है सो अपनी प्रकृतिकूं छोड़ै नांही ताका मिथ्यात्व मिटै नांही है;—

गाथा—ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठ वि आयण्णिऊण जिणधम्मं।
गुडदुद्धं पि पिवंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥१३८॥

संस्कृत—न मुंचति प्रकृतिमभव्यः सुष्ठु अपि आकर्ण्य जिनधर्मम्
गुडदुग्धमपि पिवंतः न पन्नगाः निर्विषाः भवंति १३८

अर्थ—अभव्यजीव है सो भलै प्रकार जिनधर्म है ताहि सुणिकरिभी अपनी प्रकृति स्वभाव है ताहि न छोडै है, इहां दृष्टांत जे सर्प हैं ते गुडसहित दुग्धकूं पीवते संते भी विषरहित नांही होय हैं ॥

भावार्थ—जो कारण पाय भी न छूटै ताकूं प्रकृति स्वभाव कहिये है, जो अभव्यका स्वभाव यह है जो अनेकांत है तत्वस्वरूप जामैं ऐसा वीतरागविज्ञानस्वरूप जिनधर्म मिथ्यात्व का मैटनेंवाला है ताका भलैंप्रकार स्वरूप सुणिकरिभी जाका मिथ्यात्वस्वरूप भाव वदलैं नांही है सो यह वस्तुका स्वरूप है काहूका किया नांही। इहां उपदेश अपेक्षा ऐसैं जाननां जो अभव्यरूप प्रकृति तौ सर्वज्ञगम्य है तथापि अभव्यकी प्रकृति सारिखी प्रकृति न राखणी, मिथ्यात्व छोडनां यह उपदेश है ॥ १३८ ॥

आगैं याही अर्थकूं दृढ करै है;—

गाथा—मिच्छत्तछण्णदिट्ठी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं।
धम्मं जिणपण्णत्तं अभव्वजीवो ण रोचेदि ॥१३९॥

संस्कृत—मिथ्यात्वछन्नदृष्टिः दुर्धिया दुर्मतैः दोषैः।
धर्मं जिनप्रज्ञप्तं अभव्यजीवः न रोचयति ॥१३९॥

अर्थ—अभव्यजीव है सो जिनप्रणीत धर्म है ताहि न रोचै है न श्रद्धै है रुचि न करै है, जातैं कैसा है अभव्यजीव दुर्मत जे सर्वथा एकान्ती तिनिके प्ररूपे अन्यमत तेही भये दोष तिनिकरि अपनी दुर्बुद्धिकरि मिथ्यात्वतैं आच्छादित है बुद्धि जाकी॥

भावार्थ—मिथ्यात्वके उपदेशकरि अपनी दुर्बुद्धिकरि जाकै मिथ्या दृष्टि है ताकूं जिनधर्म न रुचै है तब जाणिये यह अभव्यजीवके भाव हैं यथार्थ अभव्यजीवकूं तौ सर्वज्ञ जाणैं है अर ये अभव्यके चिह्न है तिनितैं परीक्षाकरि जानिये हैं॥ १३९॥

आगैं कहै है जो ऐसे मिथ्यात्वके निमित्ततैं दुर्गतिका पात्र होय है

गाथा—कुच्छियधम्मम्मि रओ कुच्छियपासंडि भत्तिसंजुत्तो।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छियगइभायणो होइ॥१४०॥

संस्कृत—कुत्सितधर्मे रतः कुत्सितपाषंडिभक्तिसंयुक्तः।
कुत्सिततपः कुर्वन् कुत्सितगतिभाजनं भवति १४०

भावार्थ—आचार्य कहै है जो—कुत्सित निंद्य मिथ्याधर्ममैं रत है लीन है, अर जो पाषंडी निंद्यभेषी तिनिकी भक्तिसंयुक्त है बहुरि जो निंद्य मिथ्याधर्म सेवै मिथ्यादृष्टीनिकी भक्ति करै मिथ्या अज्ञानतप करै सो दुर्गतिहि पावै तातैं मिथ्यात्व छोडनां यह उपदेश है॥ १४०॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ़ करते संते ऐसैं कहै है जो ऐसें मिथ्यात्व-करि मोह्या जीव संसारमैं भ्रम्या;—

गाथा—इय मिच्छत्तावासे कुणयकुसत्थेहिं मोहिओ जीवो ।
भमिओ अणाइकालं संसारे धीर चिंतेहि ॥१४१॥

संस्कृत—इति मिथ्यात्वावासे कुनयकुशास्त्रैः मोहितः जीवः ।
भ्रमितः अनादिकालं संसारे धीर! चिन्तय ॥१४१॥

अर्थ—इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार मिथ्यात्वका आवास ठिकाणां जो यह मिथ्यादृष्टीनिका संसार ताविषैं कुनय जो सर्वथा एकान्त तिनिसहित जे कुशास्त्र तिनिकरि मोह्या वेचेत भया जो यह जीव सो अनादिकालतैं लगाय संसारविषैं भ्रम्या, ऐसैं हे धीर ! मुने ! तू विचारि ॥

भावार्थ—आचार्य कहै है जो पूर्वोक्त तीनसौ तरेसठि कुवादिनिकरि सर्वथा एकांतपक्षरूप कुनयकरि रचे शास्त्र तिनिकरि मोहित भया यह जीव संसारविषैं अनादितैं भ्रमै है, सो हे धीरमुनि ! अब ऐसे कुवादि-निकी संगतिभी मति करै, यह उपदेश है ॥ १४१ ॥

आगैं कहै है जो पूर्वोक्त तीनसौ तरेसठि पाषंडीनिका मार्ग छोड़ि जिनमार्गविषैं मन लगावो;—

गाथा—पासंडी तिण्णि सया तिसट्ठिभेया उमग्ग मुत्तूण ।
रुंभहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा ॥१४२॥

संस्कृत—पाषण्डिनः त्रीणि शतानि त्रिषष्टिभेदाः उन्मार्गं मुक्त्वा ।
रुन्द्धि मनः जिनमार्गे असत्प्रलापेन किं बहुना १४२

अर्थ—हे जीव ! तीनसौ तरेसठि पाषंडी कहे तिनिका मार्गकूं छोड़ि अर जिनमार्गविषैं अपनें मनकूं थांमि यह संक्षेप है, और निरर्थक प्रला-परूप कहनेंकरि कहा ? ॥

भावार्थ—ऐसैं मिथ्यात्वका निरूपण किया तहां आचार्य कहै है जो–वहुत निरर्थक वचनालापकरि कहा? एता ही संक्षेप करि कहै हैं–जो तीनसौ तरेसठि कुवादि पापंडी कहे तिनिका मार्ग छोडिकरि जिन-मार्गविषैं मनकूं थांभनां, अन्यत्र जानें न देनां। इहां इतनां विशेप और जाननां जो–कालदोपतैं इस पंचमकालमैं अनेक पक्षपातकरि मतांतर भये हैं तिनिकूं भी मिथ्या जांणि तिनिका प्रसंग न करनां, सर्वथा एकान्तका पक्षपात छोड़ि अनेकान्तरूप जिनवचनका शरण लेणां ॥ १४२ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनका निरूपण करै हैं, तहां कहै है–जो सम्यग्दर्शन रहित प्राणी है सो चालता मृतक है,—

गाथा—जीवविमुक्को सवओ दंसणमुक्को य होइ चलसवओ।
सवओ लोयअपुज्जो लोउत्तरयम्मि चलसवओ ॥१४३॥

संस्कृत—जीवविमुक्तः शवः दर्शनमुक्तश्च भवति चलशवः।
शवः लोके अपूज्यः लोकोत्तरे चलशवः ॥१४३॥

अर्थ—लोकविषैं जीवकरि रहित होय ताकूं शव कहिये मृतक मुरदा कहिये है तैसेंही जो सम्यग्दर्शनकरि रहित पुरुष है सो चालता मृतक है, वहुरि मृतक तौ लोकविषैं अपूज्यहै अग्निकरि दग्ध कीजिये है तथा पृथ्वीमैं गाडिये है अर दर्शनरहित चालता मुरदाहै सो लोकोत्तर जे मुनि सम्यग्दृष्टी तिनिकै विषैं अपूज्यहैं ते ताकूं वंदनादिक नांही करैं हैं, मुनि-भेप धरैं तौऊ संघवाह्य राखैं हैं अथवा परलोकमैं निंद्यगति पाय अपूज्य होय हैं ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन विना पुरुष मृतकतुल्य है ॥ १४३ ॥

आगैं सम्यक्त्वका महान्‌पणां कहै है,—

गाथा—जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाणं।
अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविहधम्माणं १४४

संस्कृत–यथा तारकाणां चन्द्रः मृगराजः मृगकुलानां सर्वेषाम् ।
अधिकः तथा सम्यक्त्वं ऋषिश्रावकद्विविधधर्माणाम् १४४

अर्थ—जैसैं तारानिके समूहविषैं चंद्रमा अधिक है बहुरि मृगकुल कहिये पशूनिके समूहविषैं मृगराज कहिये सिंह सो अधिक है तैसैं ऋषि कहिये मुनि अर श्रावक ऐसैं दोय प्रकार धर्मनिविषैं सम्यक्त्व है सो अधिक है ॥

भावार्थ—व्यवहारधर्मकी जेती प्रवृत्ति हैं तिनिमैं सम्यक्त्व अधिक है या विनां सर्व संसारमार्ग बंधका कारण है ॥ १४४ ॥

फेरि कहै हैं;—

गाथा—जह फणिराओ सोहइ[1] फणमणिमाणिक्ककिरणविप्फुरिओ
तह विमलदंसणधरो जिणभत्तीपवयणे[2] जीवो ॥१४५॥

संस्कृत—यथा फणिराजः शोभते फणमणिमाणिक्य-
किरणविस्फुरितः ।
तथा विमलदर्शनधरः जिनभक्तिः प्रवचने जीवः१४५

अर्थ—जैसैं फणिराज कहिये धरणेंद्र है सो फण जो सहस्र फण तिनिमैं जे मणि तिनके मध्य जे रक्त माणिक्य तार्का किरणनिकरि विस्फुरित कहिये देदीप्यमान सोहै है तैसैं निर्मल सम्यग्दर्शनका धारक जीव है सो जिनभक्तिसहित है यातैं प्रवचन जो मोक्षमार्गका प्ररूपण तात्रिपैं सोहै है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वसहित जीवकी जिन प्रवचनविषैं बड़ी अधिकता है जहां तहां शास्त्रविषैं सम्यक्त्वकी ही प्रधानता कही है ॥ १४५ ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें ' रेहइ ' ऐसा पाठ है जिसका 'राजते' संस्कृत है।
२—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'जिणभत्तीपवयणो' ऐसा एकपदरूप पद है जिसकी संस्कृत " जिनभक्तिप्रवचनः" है। यह पाठ यतिभंग सा मालूम होता है।

आगैं सम्यग्दर्शनसहित लिंग है ताकी महिमा कहै है;—

गाथा—जह तारायणसहियं ससहरबिंबं खमंडले विमले।
भाविय तववयविमलं जिणलिंगं दंसणविसुद्धं ॥१४६॥

संस्कृत—यथा तारागणसहितं शशधरबिंबं खमंडले विमले।
भावितं तपोव्रतविमलं जिनलिंगं दर्शनविशुद्धम् १४६

अर्थ—जैसैं निर्मल आकाशमंडलविषैं तारानिके समूह सहित चंद्रमाका बिंब सोहै है तैसैंही जिनशासनविषैं दर्शनकरि विशुद्ध अर भावित किये जे तप अर व्रत तिनिकरि निर्मल जिनलिंग है सो सोहै है॥

भावार्थ—जिनलिंग कहिये निर्ग्रन्थ मुनिभेष है सो यद्यपि तपव्रतनिकरि सहित निर्मल है तौऊ सम्यग्दर्शन विनां सोहै नहीं, या सहित होय तब अत्यंत शोभायमान होय है॥ १४६॥

आगैं कहै है जो ऐसैं जाणिकरि दर्शनरत्नकूं धारो, ऐसैं उपदेश करै है;—

गाथा—इय णाउं गुणदोसं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणाणं सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥१४७॥

संस्कृत—इति ज्ञात्वा गुणदोषं दर्शनरत्नं धरत भावेन।
सारं गुणरत्नानां सोपानं प्रथमं मोक्षस्य ॥१४७॥

अर्थ—हे मुने! तू इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वके तौ गुण अर मिथ्यात्वके दोष तिनहिं जाणिकरि सम्यक्त्वरूप रत्न है ताहि भावकरि धरि, कैसा है सम्यक्त्वरत्न—गुणरूप जे रत्न हैं तिनिमैं सार है उत्तम है, बहुरि कैसा है—मोक्षरूप मंदिरका प्रथम सोपान है चढ़नेकी पहली पैडी है॥

1—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'तह वयविमलं' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'तथा व्रतविमलं' है। २ इस गाथाका चतुर्थ पाद यतिभंग है। इसकी जगह पर 'जिणलिंगं दंसणेण सुविसुद्धं' होना ठीक जंचता है।

भावार्थ—जेते व्यवहार मोक्षमार्गके अंग हैं गृहस्थकै तौ दानपूजादिक अर मुनिकै महाव्रत शीलसंयमादिक, तिनिमैं सर्वमैं सार सम्यग्दर्शन है यातैं सर्व सफल है, तातैं मिथ्यात्वकूं छोड़ि सम्यग्दर्शन अंगीकार करनां यह प्रधान उपदेश है ॥ १४७ ॥

आगैं कहै है जो सम्यग्दर्शन होय है सो जीव पदार्थका स्वरूप जांनि याकी भावना करै ताका श्रद्धानकरि अर आपकूं जीव पदार्थ जानि अनुभवकरि प्रतीति करै ताकै होय है सो यह जीव पदार्थ कैसा है ताका स्वरूप कहै है;—

गाथा—कत्ता भोइ अमुत्तो सरीरमित्तो अणाइणिहणो य।
दंसणणाणुवओगो णिद्दिट्ठो जिणवरिंदेहिं ॥१४८॥

संस्कृत—कर्त्ता भोक्ता अमूर्त्तः शरीरमात्रः अनादिनिधनः च।
दर्शनज्ञानोपयोगः जीवः निर्दिष्टः जिनवरेन्द्रैः १४८

अर्थ—जीवनामा पदार्थ है सो कैसा है–कर्त्ता है, भोगी है अमूर्त्तीकहै, शरीर प्रमाण है, अनादिनिधन है, दर्शन ज्ञान है उपयोग जाकै ऐसा है सो जिनवरेन्द्र जो सर्वज्ञदेव वीतराग तिसनैं कह्या है॥

भावार्थ—इहां जीवनामा पदार्थके छह विशेषण कहै तिनिका आशय ऐसा जो–कर्त्ता कह्या सो निश्चयनयकरि तौ अपनां अशुद्ध रागादिक भाव तिनिका अज्ञान अवस्थामैं आप कर्त्ता है अर व्यवहारनयकरि पुद्गल कर्म जे ज्ञानावरण आदि तिनिका कर्त्ता है अर शुद्धनयकरि अपनें शुद्धभावका कर्त्ता है । बहुरि भोगी कह्या सो निश्चयनयकरि तौ अपनां ज्ञानदर्शन मयी चेतनभावका भोक्ता है, अर व्यवहारनयकरि पुद्गलकर्मका फल जो सुख दुःख आदिक ताका भोक्ता है । बहुरि अमूर्त्तीक कह्या सो निश्चयकरि तौ स्पर्श रस गंधवर्ण शब्द ये पुद्गलके गुण

पर्याय है तिनिकरि रहित अमूर्त्तीक है अर व्यवहारकरि जेतैं पुद्गल-कर्मतैं बंध्या है तेतैं मूर्त्तीक भी कहिये है। बहुरि शरीरपरिमाण कह्या सो निश्चयनयकरि तौ असंख्यातप्रदेशी लोकपरिमाण है परन्तु संकोच विस्तारशक्तिकरि शरीरतैं कछू घाटि प्रदेश प्रमाण आकार रहै है। बहुरि अनादिनिधन कह्या सो पर्यायदृष्टिकरि देखिये तब तौ उपजै विनसै है तौऊ द्रव्यदृष्टिकरि देखिये तब अनादिनिधन सदा नित्य अविनाशी है। बहुरि दर्शन ज्ञान उपयोगसहित कह्या सो देखनां जाननां-रूप उपयोगस्वरूप चेतनारूप है। बहुरि इनि विशेषणनिकरि अन्यमती अन्यप्रकार सर्वथा एकान्तकरि मानैं हैं तिनिका निषेध भी जाननां, सो कैसैं ? कर्त्ताविशेषणकरि तौ सांख्यमती सर्वथा अकर्त्ता मानै है ताका निषेध है। बहुरि भोक्ता विशेषणकरि बौद्धमती क्षणिक मांनि कहै है कर्मकूं करै और, अर भोगवै और है, ताका निषेध है, जो जीव कर्म करै है ताका फल सो ही जीव भोगवै है ऐसैं बौद्धमतीके कहनेंका निषेध है। बहुरि अमूर्त्तीक कहनेंतैं मीमांसक आदिक इस शरीरसहित मूर्त्तीक ही मानैं है ताका निषेध है। बहुरि शरीरप्रमाण कहनेंतैं नैयायिक वैशेषिक वेदान्ती आदि सर्वथा सर्वव्यापक मानैं हैं ताका निषेध है। बहुरि अनादिनिधन कहनेंतैं बौद्धमती सर्वथा क्षणस्थायी मानै है ताका निषेध है। बहुरि दर्शनज्ञानउपयोगमयी कहनेंतैं सांख्यमती तौ ज्ञानरहित चेतनामात्र मानै है, अर नैयायिक वैशेषिक गुणगुणीकै सर्वथा भेद मांनि ज्ञान अर जीवकै सर्वथा भेद मानैं है, अर बौद्धमतका विशेष विज्ञानाद्वै-तवादी ज्ञानमात्रही मानै है, अर वेदान्ती ज्ञानका कछू निरूपण न करै है, तिनिका निषेध है। ऐसैं सर्वका कह्या जीवका स्वरूप जांणि आपकूं ऐसा मांनि श्रद्धा रुचि प्रतीति करणीं। बहुरि जीव कहनेंहीमैं अजीव पदार्थ जान्यां जाय है, अजीव न होय तौ जीव नाम कैसैं कहता तातैं

अजीवका स्वरूप कह्या है तैसा ताका श्रद्धान आगम अनुसार करनां। ऐसैं अजीव पदार्थका स्वरूप जांणि अर इनि दोऊनिके संयोगतैं अन्य आश्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष इनि भावनिकी प्रवृत्ति होय है, तिनिका आगमअनुसार स्वरूप जांणि श्रद्धान किये सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय है, ऐसैं जाननां॥ १४८॥

आगैं कहै है जो—यह जीव ज्ञान दर्शन उपयोगमयी है तौऊ अनादि पुद्गल कर्मसंयोगतैं याकै ज्ञान दर्शनकी पूर्णता न होय है तातैं अल्प ज्ञानदर्शन अनुभवमैं आवै है, अर तिनिमैं भी अज्ञानके निमित्ततैं इष्ट अनिष्ट बुद्धिरूप राग द्वेष मोहभावकरि ज्ञान दर्शनमैं कलुपतारूप सुख दुःखादिक भाव अनुभवनमैं आवै है, यह जीव निजभावनारूप सम्यग्दर्शनकूं प्राप्त होय है तव ज्ञानदर्शन सुख वीर्यके घातक कर्मनिका नाश करै है, ऐसा दिखावै है;—

गाथा—दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराइयं कम्मं।
णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तो॥१४९॥

संस्कृत—दर्शनज्ञानावरणं मोहनीयं अन्तरायकं कर्म।
निष्ठापयति भव्यजीवः सम्यक् जिनभावनायुक्तः१४९

अर्थ—सम्यक् प्रकार जिनभावनाकरि युक्त भव्यजीव है सो ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ये च्यार घातिकर्म हैं तिनिकूं निष्ठापन करै है संपूर्ण अभाव करै है॥

भावार्थ—दर्शनका घातकतौ दर्शनावरण कर्म है, ज्ञानका घातक ज्ञानावरण कर्म है, सुखका घातक मोहनीय कर्म है, वीर्यका घातक अंतरायकर्म है, तिनिका नाशकूं सम्यक् प्रकार जिनभावना कहिये जिन आज्ञा मांनि जीव अजीव आदि तत्त्वका यथार्थ निश्चयकरि श्रद्धावान

भया होय सो जीव करै है, तातैं जिन आज्ञा मांनि यथार्थ श्रद्धान करनां यह उपदेश है ॥ १४८ ॥

आगैं कहै है इनि घाति कर्मनिका नाश भये अनंतचतुष्टय प्रकट होय हैं;—

गाथा—बलसोक्खणाणदंसण चत्तारि वि पायडा गुणा होंति।
णट्ठे घाइचउक्के लोयालोयं पयासेदि ॥१५०॥

संस्कृत—बलसौख्यज्ञानदर्शनानि चत्वारोऽपि प्रकटा गुणा भवंति।
नष्टे घातिचतुष्के लोकालोकं प्रकाशयति ॥१५०॥

अर्थ—पूर्वोक्त घातिकर्मका चतुष्क ताका नाश भये बल सुख ज्ञान दर्शन ये च्यार गुण प्रगट होय हैं, बहुरि जीवके ये गुण प्रकट होय तब लोकालोककूं प्रकाशै है ॥

भावार्थ—घातिकर्मका नाश भये अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनंतसुख अनंतवीर्य ये अनंतचतुष्टय प्रकट होय है। तहां अनंत दर्शनज्ञानतैं तौ षट्द्रव्यकरि भऱ्या जो यह लोक तामैं जीव अनंतानंत अर पुद्गल तिनितैंभी अनंतानंत गुणें अर धर्म अधर्म आकाश ये तीन द्रव्य अर असंख्याते लोकाणू इनि सर्व द्रव्यनिके अतीत अनागत वर्त्तमान काल संबंधी अनंतपर्याय न्यारे न्यारेकूं एकैं काल देखै है अर जानै है, अर अनंतसुखकरि अत्यंततृप्तिरूप है, अर अनन्तशक्तिकरि अब काहू निमित्तकरि अवस्था पलटै नांही है। ऐसैं अनंतचतुष्टयरूप जीवका निजस्वभाव प्रगट होय है तातैं जीवके स्वरूपका ऐसा परमार्थकरि श्रद्धान करनां सो ही सम्यग्दर्शन है ॥ १५० ॥

आगैं जाकै अनंतचतुष्टय प्रगट होय ताकूं परमात्मा कहिये है ताके अनेक नाम हैं तिनिमैं केतेक प्रगटकरि कहिये है;—

गाथा—णाणी सिव परमेट्ठी सव्वण्हू विण्हु चउमुहो बुद्धो ।
अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुडं॥१५१॥

संस्कृत—ज्ञानी शिवः परमेष्ठी सर्वज्ञः विष्णुः चतुर्मुखः बुद्धः ।
आत्मा अपि च परमात्मा कर्मविमुक्तः च भवति स्फुटम्

अर्थ—परमात्मा है सो ऐसा है–ज्ञानी है, शिव है, परमेष्ठी है, सर्वज्ञ है, विष्णु है, चतुर्मुख ब्रह्मा है, बुद्ध है, आत्मा है, परमात्मा है, कर्मकरि विमुक्त कहिये रहित है, यह प्रगट जाणों ॥

भावार्थ—ज्ञानी कहनेंतैं तौ सांख्यमती ज्ञानरहित उदासीन चैतन्यरहित मानै है ताका निषेध है बहुरि शिव है सर्वकल्याणपरिपूर्ण है जैसैं सांख्यमती नैयायिक वैशेषिक मानै है तैसा नांही है, बहुरि परमेष्ठी है परम उत्कृष्ट पदविषैं तिष्ठै है अथवा उत्कृष्ट इष्टत्व स्वभाव है जैसैं अन्य मती केई अपनां इष्ट किछू थापि ताकूं परमेष्ठी कहैं हैं तैसैं नांही है, बहुरि सर्वज्ञ है सर्व लोकालोककूं जाणैं है अन्य केई कोई एक प्रकरण संबंधी सर्व वात जाणै ताकूं भी सर्वज्ञ कहै है तैसा नांही है, बहुरि विष्णु है जाकै ज्ञान सर्व ज्ञेयमैं व्यापक है–अन्यमती वेदान्ती आदि कहै हैं जो सर्व पदार्थनिमैं आप है सो ऐसैं नांही है, बहुरि चतुर्मुख कहनेंतैं केवली अरहंतकै समवसरणमैं च्यार मुख च्यारूं दिशामैं दीखै हैं ऐसा अतिशय हैं तातैं चतुर्मुख कहिये है–अन्यमती ब्रह्माकूं चतुर्मुख कहैं हैं सो ऐसा ब्रह्मा कोई है नांही, बहुरि बुद्ध है सर्वका ज्ञाता है बौद्धमती क्षणिककूं बुद्ध कहैं हैं तैसा नांही है बहुरि आत्मा है अपनें स्वभावहीविषैं निरन्तर प्रवर्तै है–अन्यमती वेदन्ती सर्व विषैं प्रवर्तता आत्माकूं मानैं हैं तैसा नांही है, बहुरि परमात्मा है आत्माका पूर्णरूप अनंतचतुष्टय जाकैं प्रगट भया है तातैं परमात्मा है बहुरि कर्मजे आत्माके स्वभावके घातक घातिकर्म तिनितैं रहित भया है तातैं कर्मविमुक्त है अथवा

कछू करनेंयोग्य कार्य न रह्या तातैं भी कर्मविप्रमुक्त है सांख्यमती नैयायिक सदाही कर्मरहित मानैं हैं तैसैं नांही हैं ऐसैं परमात्माके सार्थक नाम हैं अन्यमती अपने इष्टके नाम एकही कहै हैं तिनिका सर्वथा एकान्तका अभिप्रायकरि अर्थ विगडैं है सो यथार्थ नांही। अरहंतके ये नाम नयविवक्षातैं सत्यार्थ है, ऐसैं जाननां ॥ १५१ ॥

आगैं आचार्य कहै है जो—ऐसा देव है सो मोकूं उत्तम बोधि द्यो;—

गाथा—इस घाइकम्ममुक्को अट्ठारहदोसवज्जियो सयलो।
तिहुवणभवणपदीवो देऊ मम उत्तमं बोहिं ॥१५२॥

संस्कृत—इति घातिकर्ममुक्तः अष्टादशदोषवर्जितः सकलः।
त्रिभुवनभवनप्रदीपः ददातु मह्यं उत्तमां बोधिम् १५२

अर्थ—इति कहिये ऐसैं घाति कर्मनिकरि रहित क्षुधा तृषा आदि पूर्वोक्त अठारह दोषनिकरि वर्जित सकल कहिये शरीरसहित अर तीन भुवनरूपी भवनके प्रकाशनेंकूं प्रकृष्टदीपक तुल्य देव है सो मोकूं उत्तम बोधि कहिये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति द्यो, ऐसैं आचार्यनें प्रार्थना करी है ॥

भावार्थ—इहां और तौ पूर्वोक्त प्रकार जाननां, अर सकल विशेषण है ताका यह आशय है जो मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिके उपदेशके वचन प्रवर्तें विना न होय अर वचनकी प्रवृत्ति शरीर विना न होय तातैं अरहंतका आयुकर्मका उदयतैं शरीरसहित अवस्थान रहै है, अर सुस्वर आदि नामकर्मके उदयतैं बचनकी प्रवृत्ति होय है, ऐसैं अनेक जीवनिका कल्याण करनेवाला उपदेश प्रवर्तैं है। अन्यमतीनिकै ऐसा अवस्थान परमात्माकै संभवै नांही तातैं उपदेशकी प्रवृत्ति न बणै तब मोक्षमार्गका उपदेश भी न प्रवर्त्तैं ऐसैं जाननां ॥ १५२ ॥

आगैं कहै है—जे ऐसे अरहंत जिनेश्वरके चरणनिकूं नमैं हैं ते संसारकी जन्मरूप वेलिकूं काटै है,—

गाथा—जिणवरचरणंवुरुहं णमंति जे परमभत्तिराएण।
ते जम्मवेलिमूलं खणंति वरभावसत्थेण ॥१५३॥

संस्कृत—जिनवरचरणांवुरुहं नमंति ये परमभक्तिरागेण।
ते जन्मवल्लीमूलं खनंति वरभावशस्त्रेण ॥१५३॥

अर्थ—जे पुरुष परमभक्ति अनुरागकरि जिनवरके चरण कमलनिकूं नमैं हैं ते श्रेष्ठभावरूप शस्त्रकरि जन्म कहिये संसार सोई भई वेलि ताका मूल जो मिथ्यात्व आदि कर्म ताहि खणैं हैं खादि डारैं हैं॥

भावार्थ—अपनीं जो श्रद्धा रुचि प्रतीति ताकरि जिनेश्वर देवकूं नमैं हैं ताका सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ वीतरागपणांकूं जाणि भक्तिके अनुरागकरि नमस्कार करैं हैं, तव जाणिये सम्यग्दर्शन की प्राप्ति ताका ये चिह्न है तातैं जाणिये याकै मिथ्यात्वका नाश भया, अव आगामी संसारकी वृद्धि याकै न होयगी—ऐसा जनाया है॥ १५३॥

आगैं कहै है जो—जिनसम्यक्त्वकूं प्राप्त भया पुरुष है सो आगामी कर्मकरि न लिपै है;—

गाथा—जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो १५४

संस्कृत—यथा सलिलेन न लिप्यते कमलिनीपत्रं स्वभावप्रकृत्या।
तथा भावेन न लिप्यते कषायविषयैः सत्पुरुषः १५४

अर्थ—जैसैं कमलिनीका पत्र है सो अपनें प्रकृतिस्वभावकरि जलकरि नांही लिपै है तैसैं सम्यग्दृष्टी सत्पुरुष है सो अपनें भावकरि क्रोधादिक कषाय अर इंद्रियके विषय इनिकरि नांही लिपै है॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी पुरुषकै मिथ्यात्व अर अनंतानुबंधीकषायका तौ सर्वथा अभावही है अन्य कषायका यथासंभव अभाव है, तहां मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके अभावतैं ऐसा भाव होय है। जो परद्रव्यमात्रका तौ कर्त्तापणांकी बुद्धि नांही है अर अब शेष कषायके उदयतैं कछू राग द्वेष प्रवर्त्तै है तिनिकूं कर्मके उदयके निमित्ततैं भये जानै है तातैं तिनिविषैं भी कर्त्तापणांकी बुद्धि नांहीं है तथापि तिनि भावनिकूं रोगवत् भये जांणि भले न जाणै है; ऐसे भाव करि कषाय विषयनितैं प्रीति बुद्धि नांही तातैं तिनितैं न लिपै है, जलकमलवत् निर्लेप रहै है। यातैं आगामी कर्मका बंध न होय है संसारकी वृद्धि नांही होय है, ऐसा आशय जानना॥ १५४॥

आगैं आचार्य कहै है जो–जे पूर्वोक्त भावकरि सहित सम्यग्दृष्टी सत्पुरुष हैं ते ही सकल शील संयमादि गुणनिकरि संयुक्त हैं, अन्य नांही;—

गाथा—ते वि य भणामिहं जे सयलकलासीलसंजमगुणेहिं।
बहुदोसाणावासो सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो॥

संस्कृत–तान् अपि च भणामि ये सकलकलाशीलसंयमगुणैः।
बहुदोषाणामावासः सुमलिनचित्तः न श्रावकसमः सः॥

अर्थ—पूर्वोक्त भावकरि सहित सम्यग्दृष्टी पुरुष हैं अर शील संयम गुणनिकरि सकल कला कहिये संपूर्ण कलावान होय हैं, तिनिहीकूं हम मुनि कहैं हैं। बहुरि जो सम्यग्दृष्टी नांहीं है मलिनचित्तकरि सहित मिथ्यादृष्टी है अर बहुत दोषनिका आवास है ठिकाणां है सो तौ भेष धारै है तौऊ श्रावकसमानभी नांही है॥

भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी है अर शील कहिये उत्तर गुण अर संयम कहिये मूलगुण तिनिकरि सहित है सो मुनि है। अर जो मिथ्यादृष्टी

कहिये मिथ्यात्वकरि जाका चित्त मलिन है अर क्रोधादि विकाररूप बहुत दोष जामैं पाइये हैं सो तौ मुनिभेष धारै है तौऊ श्रावकसमानभी नांही है, श्रावक सम्यग्दृष्टी होय अर गृहस्थाचारके पापनिकरि सहित होय तौऊ जिस बराबरि केवल भेषी मुनि नांही है, ऐसैं आचार्य कहै है ॥ १५५ ॥

आगैं कहै है जो—सम्यग्दृष्टी होयकरि जिनिनैं कषायरूप सुभट जीते तेही धीर वीर हैं;—

गाथा—ते धीरवीरपुरिसा खमदमखग्गेण विप्फुरंतेण ।
दुज्जयपवलवलुद्धरकसायभड णिज्जिया जेहिं ॥१५६॥

संस्कृत—ते धीरवीरपुरुषाः क्षमादमखड्गेण विस्फुरता ।
दुर्जयप्रबलबलोद्धतकषायभटाः निर्जिता यैः ॥१५६॥

अर्थ—ज्यां पुरुषां क्षमा अर इंद्रियनिका दमन सो ही भया विस्फुरता कहिये सवान्या हूवा मलिनता रहित उज्ज्वल तीक्ष्ण खड्ग ताकरि जिनिका जीतनां कठिन ऐसे दुर्जय अर प्रवल वलकरि उद्धत ऐसे कषायरूप सुभटानिकूं जीतैं ते धीरवीर सुभट हैं, अन्य संग्रामादिकमैं जीतैं ते कहनेके सुभट हैं ॥

भावार्थ—युद्धमैं जीतनेंवाले शूरवीर तौ लोकमैं वहुत हैं अर जे कषायनिकूं जीतैं हैं ते विरले हैं ते मुनिप्रधान हैं ते ही शूरवीरनिमैं प्रधान हैं, जे सम्यग्दृष्टी होय कषायानिकूं जीति चारित्रवान होय हैं ते मोक्ष पावैं हैं; यह आशय है ॥ १५६ ॥

आगैं कहै है जो—जे आप दर्शन ज्ञान चारित्ररूप होय अन्यकूं तिनिसहित करैं ते धन्य है,—

गाथा—धण्णा ते भयवंता दंसणणाणग्गपवरहत्थेहिं।
विसयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं॥१५७॥

संस्कृत—ते धन्याः भगवंतः दर्शनज्ञानाग्रप्रवरहस्तैः।
विषयमकरधरपतिताः भव्याः उत्तारिताः यैः॥१५७॥

अर्थ—ज्यां सत्पुरुषां विषयरूप मकरधर जो समुद्र ताविषैं पड्या जे भव्यजीव तिनिकूं पार उतार्‍या, काहेकरि दर्शन अर ज्ञान तेही भये अग्र मुख्य दोय हाथ तिनिकरि उतारे, ते मुनि प्रधान भगवान इंद्रादिककरि पूज्य ज्ञानी धन्य हैं॥

भावार्थ—इस संसार समुद्रतैं आप तिरै अर अन्यकूं त्यारैं ते मुनि धन्य है। धनादिक सामग्रीसहितकूं धन्य कहिये हैं ते कहबेके धन्य हैं॥ १५७॥

आगैं फेरि ऐसे मुनिनिकी महिमा करै है,—

गाथा—मायावेल्लि असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा।
विसयविसपुप्फफुल्लिय लुणंति मुणि णाणसत्थेहिं १५८

संस्कृत—मायावल्लीं अशेषां मोहमहातरुवरे आरूढाम्।
विषयविषपुष्पपुष्पितां लुनंति मुनयः ज्ञानशस्त्रैः१५८

अर्थ—मुनि हैं ते माया कहिये कपटरूपी वेलि है ताहि ज्ञानरूपी शस्त्रकरि समस्तकूं काटै हैं, कैसी है मायावेलि मोह रूपी जो महा बडा वृक्ष तापरि आरूढ है चढी है, वहुरि कैसी है विषयरूपी विषके पुष्प निकरि फूलि रही है॥

भावार्थ—यह मायाकषाय है सो गूढ है याका विस्तार भी बहुत है मुनिनि ताई फैलै है, तातैं जे मुनि ज्ञानकरि याकूं काटैं हैं ते सांचे मुनि हैं, तेही मोक्ष पावै हैं॥ १५८॥

आगैं फेरि तिनि मुनिनिका सामर्थ्यकूं कहै है,

गाथा—मोहमयगारवेहिं य मुक्का जे करुणभावसंजुत्ता ।
ते सव्वदुरियखंभं हणंति चारित्तखग्गेण ॥१५९॥

संस्कृत—मोहमदगारवैः च मुक्ताः ये करुणाभावसंयुक्ताः ।
ते सर्वदुरितस्तंभं घ्नंति चारित्रखड्गेन ॥१५९॥

अर्थ—जे मुनि मोह मद गौरव इनिकरि रहित हैं अर करुणा भावकरि सहित है चारित्ररूपी खड्गकरि पापरूपी स्तंभ है ताहि हणैं हैं, मूलतैं काटैं है ॥

भावार्थ—मोह तौ परद्रव्यसूं ममत्व भाव सो कहिये, मद जात्यादिक परद्रव्यादिक संबंधतैं गर्व होय ताकूं कहिये गौरव तीन प्रकार है—ऋद्धिगौरव अर सातगौरव अर रसगौरव, तहां ऋद्धिगौरव जो कछू तपोबलकरि अपनी महंतता लोकमैं होय ताका आपका मद आवै तामैं हर्ष मानैं, बहुरि सातगौरव जो अपनें शरीरमैं रोगादिक न उपजै तब सुख मानैं प्रमादयुक्त होय अपनां महंतपणां मानैं, बहुरि रसगौरव जो मिष्ट पुष्ट रसीला आहारादिक मिलै ताके निमित्ततैं प्रमत्त होय शयनादिक करै । ऐसा गौरव इनिकरि तौ रहित हैं अर परजीवनिकी करुणाकरि युक्त हैं—ऐसा नांही जो परजीवसूं मोहममत्व नांही है यातैं निर्दय होय तिनिकूं हणैं, जेतैं राग अंश रहै तेतैं परजीवनिकी करुणांही करै उपकारबुद्धि रहै । ऐसे ज्ञानीमुनि पाप जो अशुभकर्म ताकूं चारित्रके बलतैं नाश करैं हैं ॥ १५९ ॥

आगैं कहै है जो—ऐसे मूलगुण अर उत्तरगुणानकरि मंडित मुनि हैं ते जिनमतमैं शोभैं हैं;—

गाथा—गुणगणमणिमालाए जिणमयगयणे णिसायरमुणिंदो।
तारावलिपरियरिओ पुण्णिमइंदुव्व पवणपहे ॥१६०॥

संस्कृत—गुणगणमणिमालया जिनमतगगने निशाकरमुनींद्रः।
तारावलीपरिकरितः पूर्णिमेन्दुरिव पवनपथे ॥१६०॥

अर्थ—जैसैं पवनपथ जो आकाश ताविषैं तारानिकी पंक्तिकरि परिधारतैं वेष्टित पूर्णमासीका चंद्रमा सोभै है तैसैं जिनमतरूप आकाशविषैं गुणनिके समूह सो ही भई मणिनिकी माला ताकरि मुनीन्द्ररूप चंद्रमा सोभै है।

भावार्थ—अठ्ठाईस मूलगुण दशलक्षण धर्म तीन गुप्ति चौरासीलाख उत्तरगुण इत्यादि गुणनिकी मालाकरि सहित मुनि है सो जिनमतमैं चंद्रमावत् सोभै है ऐसे मुनि अन्यमतमैं नांही ॥ १६० ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं जिनकैं विशुद्ध भाव हैं ते सत्पुरुष तीर्थंकर आदिक पदका सुखनिकूं पावैं हैं;—

गाथा—चक्कहररामकेसवसुरवरजिणगणहराइसोक्खाइं।
चारणमुणिरिद्धीओ विसुद्धभावा णरा पत्ता ॥१६१॥

संस्कृत—चक्रधररामकेशवसुरवरजिनगणधरादिसौख्यानि।
चारणमुन्यर्द्धीः विशुद्धभावा नराः प्राप्ताः ॥१६१॥

अर्थ—विशुद्ध हैं भाव जिनिके ऐसे नर मुनि हैं ते चक्रधर कहिये चक्रवर्त्ती षट् खंडका राजेन्द्र, राम कहिये बलभद्र, केशव कहिये नारायण अर्द्धचक्री, सुरवर कहिये देवनिका इंद्र, जिन कहिये तीर्थंकर पंच कल्याण करि सहित तीन लोककरि पूज्य पदवी, गणधर कहिये च्यार ज्ञान सप्तऋद्धिके धारक मुनि, इनिके सुखनिकूं; बहुरि चारणमुनि कहिये

आकाशगामिनी आदिऋद्धि जिनिकै पाइये तिनिकी ऋद्धि इनिकूं प्राप्त भये ॥

भावार्थ—पूर्वें ऐसे निर्मल भावके धारक पुरुष भये ते ऐसी पदवीके सुखनिकूं प्राप्त भये, अब ते ऐसे होंहिंगे ते पावैंगे, ऐसैं जाननां ॥१६१

आगैं कहै है मुक्तिका सुख भी ऐसे ही पावैं हैं;—

गाथा—सिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमंपरमविमलमतुलं ।
पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणभाविया जीवा ॥१६२॥

संस्कृत–शिवमजरामरलिंगं अनुपममुत्तमं परमविमलमतुलम् ।
प्राप्तो वरसिद्धिसुखं जिनभावनाभाविता जीवाः॥१६२

अर्थ—जे जिनभावनाकरि भावित साहित जीव हैं तेही सिद्धि कहिये मोक्ष ताके सुखकूं पावैं हैं, कैसा है सिद्धिसुख–शिव है कल्याणरूप है काहू प्रकार, उपद्रवसहित नांही है, बहुरि कैसा है–अजरामरलिंग है वृद्ध होनां अर मरनां इनि दोऊनितैं रहित है लिंग कहिये चिह्न जाका बहुरि कैसा है अनुपम है जाकै संसारीक सुखकी उपमा लागै नांही, बहुरि कैसा है उत्तम कहिये सर्वोत्तम है बहुरि परम कहिये सर्वोत्कृष्ट है, बहुरि कैसा है–महार्घ्य है महान् अर्घ्य पूज्य प्रशंसायोग्य है, बहुरि कैसा है विमल है कर्मके मल तथा रागादिकमलकरि रहित है, बहुरि कैसा है अतुल है याकी बराबर, संसारीक सुख नांही; ऐसा सुखकूं जिनभक्त पावै है अन्यका भक्त न पावैं है ॥ १६२ ॥

आगैं आचार्य प्रार्थना करै है जो ऐसे सिद्धिसुखकुं प्राप्त भये सिद्ध भगवान ते मोकूं भावकी शुद्धताकूं द्यो;

गाथा—ते मे तिहुवणमहिया सिद्धा सुद्धा णिरंजणा णिच्चा ।
दिंतु वरभावसुद्धिं दंसण णाणे चरित्ते य ॥१६३॥

संस्कृत—ते मे त्रिभुवनमहिताः सिद्धाः शुद्धाः निरंजनाः नित्याः।
दददु वरभावशुद्धिं दर्शने ज्ञाने चारित्रे च ॥१६३॥

अर्थ—सिद्ध भगवान हैं ते मोकूं दर्शन ज्ञान विषैं अर चारित्रविषैं श्रेष्ट उत्तमभावकी शुद्धता द्यो, कैसे हैं सिद्ध भगवान तीन भवनकरि पूजनीक है, वहुरि कैसे हैं—शुद्ध हैं द्रव्यकर्म नोकर्मरूप मलकरि रहित हैं, वहुरि कैसे हैं—निरंजन हैं रागादिकर्म करि रहित हैं, वहुरि जिनकै कर्मका उपजनां नांही है, वहुरि कैसै हैं नित्य हैं पाये स्वभावका फेरि नाश नाही है।

भावार्थ—आचार्य शुद्धभावका फल सिद्ध अवस्था, अर जे निश्चयकरि इस फलकूं प्राप्त भये सिद्ध, तिनितैं यही प्रार्थना करी है जो शुद्ध भावकी पूर्णता हमारैं होहू ॥ १६३ ॥

आगैं भावके कथनकूं संकोचै हैं;—

गाथा—किं जंपिएण वहुणा अत्थो धम्मो य काममोक्खो य।
अण्णे वि य वावारा भावम्मि परिट्ठिया सव्वे ॥१६४

संस्कृत—किं जल्पितेन वहुना अर्थः धर्मः च काममोक्षः च।
अन्ये अपि च व्यापाराः भावे परिस्थिताः सर्वे १६४

अर्थ—आचार्य कहैं है जो वहुत कहनें करि कहा? धर्म अर्थ काम मोक्ष वहुरि अन्य जो किछू व्यापार है सो सर्वही शुद्धभावके विषैं समस्तपणांकरि तिष्टया है॥

भावार्थ—पुरुषके च्यार प्रयोजन प्रधान हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। वहुरि अन्यभी जो किछू मंत्रसाधनादिक व्यापार हैं ते आत्माके शुद्ध चैतन्य परिणामस्वरूप भावविषैं तिष्टैं हैं, शुद्धभावतैं सर्व सिद्धि है ऐसा संक्षेपकरि कहनां जांणों, वहुत कहा कहना? ॥ १६४ ॥

आगैं इस भावपाहुडकूं पूर्ण करै है ताका पढनें सुननें भावनें का उपदेश करै है,—

गाथा—इय भावपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहि देसियं सम्मं ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं ॥१६५

संस्कृत—इति भावप्राभृतमिदं सर्वबुद्धैः देशितं सम्यक् ।
यः पठति शृणोति भावयति सः प्राप्नोति
अविचलं स्थानम् ॥१६५॥

अर्थ—इति कहिये या प्रकार या भावपाहुडकूं सर्वबुद्ध जे सर्वज्ञदेव तिनिनैं उपदेश्या हैं सो याकूं जो भव्यजीव सम्यक् प्रकार पढ़ै सुनैं याकूं भावै सो शास्वता सुखका स्थानक जो मोक्ष ताहि पावै है ॥

भावार्थ—यह भावपाहुड ग्रंथ है सो सर्वज्ञकी परंपराकरि अर्थ ले आचार्यनैं कह्या हैं तातैं सर्वज्ञहीका उपदेश्या है, केवल छद्मस्थहीका कह्या नांही है तातैं आचार्य अपनां कर्त्तव्य प्रधानकरि न कह्या है। अर याके पढनें सुननेंका फल मोक्ष कह्या सो युक्तही है शुद्धभावतैं मोक्ष होय है अर याके पढे शुद्धभाव होय हैं, ऐसैं परंपरा मोक्षका कारण याका पढनां सुननां धारणां भावना करनां है। तातैं भव्यजीव हैं ते या भावपाहुडकूं पढौ सुनौ सुनावौ भावौ निरंतर अभ्यास करौ ज्यों शुद्धभाव होय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी पूर्णताकूं पाय मोक्ष पावौ तहां परमानंदरूप शास्वतासुखकूं भोगवौ ॥

ऐसैं श्रीकुंदकुन्दनामा आचार्य भावपाहुडग्रंथ पूर्ण किया।

याका संक्षेप ऐसा हैं जो—जीवनामा वस्तुका एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतनास्वभाव है। ताकी शुद्ध अशुद्ध दोय परणति हैं—तहां शुद्धदर्शनज्ञानोपयोगरूप परिणमनां सो तौ शुद्ध परिणति है याकूं शुद्ध-

भाव कहिये है। बहुरि कर्मके निमित्ततैं राग द्वेष मोहादिक विभावरूप परिणमनां सो अशुद्धपरणति है याकूं अशुद्ध भाव कहिये। तहां कर्मका निमित्त अनादितैं है तातैं अशुद्धभावरूप अनादिहीतैं परिणमै है, तिस भावतैं शुभ अशुभ कर्मका बंध होय है तिस बंधके उदयतैं फेरि अशुद्धभावरूप परिणमै है अनादिसंतान चल्या आवै है। तहां जब इष्टदेवतादिककी भक्ति जीवनिकी दया उपकार मंदकषायरूप परिणमै तब तौ शुभकर्मका बंध करै है, ताके निमित्ततैं देवादिक पर्याय पाय किछू सुखी होय है। बहुरि तब विषय कषाय तीव्र परिणामरूप परिणमै तब पापका बंध करै है, ताके उदयतैं नरकादिक पर्याय पाय दु:खी होय है। ऐसैं संसारमैं अशुद्धभावतैं अनादितैं यहु जीव भ्रमै है, बहुरि जब कोई काल ऐसा आवै जामैं जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ वीतरागका उपदेशकी प्राप्ति होय अर ताका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण करै तब अपनां अर परका भेदज्ञानकरि शुद्ध अशुद्ध भावका स्वरूप जांणि अपनां हित अहितका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण होय तब शुद्धदर्शनज्ञानमयी शुद्ध चेतनाका परिणमनकूं तौ हित जानैं ताका फल संसारकी निवृत्ति है ताकूं जानैं, अर अशुद्धभावका फल संसार है ताकूं जानैं, तब शुद्धभावका अंगीकार अर अशुद्ध भावका त्यागका उपाय करै। तहां उपायका स्वरूप जैसा सर्वज्ञ वीतरागके आगममैं कह्या है तैसैं करै— तहां ताका स्वरूप निश्चयव्यवहारात्मक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग कह्या हैं। तहां निश्चय तौ शुद्ध स्वरूपका श्रद्धान ज्ञान चारित्रकूं कह्या है अर व्यवहार जिनदेव सर्वज्ञ वीतराग तथा ताके वचन तथा तिनि वचननिकै अनुसार प्रवर्त्तनेंवाले मुनि श्रावक तिनिकी भक्ति वंदनां विनय वैयावृत्त्य करै, सो है, जातैं ये मोक्षमार्गमैं प्रवर्त्तावनेंकूं उपकारी हैं उपकारीका माननां न्याय है उपकार

लोपनां अन्याय है। बहुरि स्वरूपके साधक अहिंसा आदि महाव्रत अर रत्नत्रयरूप प्रवृत्ति समिति गुप्तिरूप प्रवर्त्तनां, अर इनिविषैं दोष लगे अपनी निन्दा गर्हादिक करनां, गुरुनिका दिया प्रायश्चित्त लेनां, शक्तिसारू तप करनां, परीषह सहनां, दशलक्षण धर्म विषैं प्रवर्त्तनां इत्यादि शुद्धात्माकै अनुकूल क्रियारूप प्रवर्त्तनां, इनिमैं किछू रागका अंश रहै जेतैं शुभकर्मका बंध होय है तौऊ सो प्रधान नांही जातैं इनिमैं प्रवर्त्तनें वालेकै शुभकर्मके फलकी इच्छा नांही है तातैं अबंधतुल्य है; इत्यादि प्रवृत्ति आगमोक्त व्यवहार मोक्षमार्ग है यामैं प्रवृत्तिरूप परिणामें है तौऊ निवृत्तिप्रधान हैं तातैं निश्चय मोक्षमार्गमैं विरोध नांही है। ऐसैं निश्चय-व्यवहारस्वरूप मोक्षमार्गका संक्षेप है, याहीकूं शुद्ध भाव कह्या है तहां भी यामैं सम्यग्दर्शन प्रधानकरि कह्या है जातैं सम्यग्दर्शनविना सर्व व्यवहार मोक्षका कारण नांही, अर सम्यग्दर्शनका व्यवहारमैं जिनदेवकी भक्ति प्रधान है, यह सम्यग्दर्शनके जनावनेंकूं मुख्य चिह्न है तातैं जिन-भक्ति निरंतर करनीं, अर जिनआज्ञा मांनि आगमोक्त मार्गमैं प्रवर्त्तनां यह श्रीगुरुनिका उपदेश है, अन्य जिन आज्ञा सिवाय सर्व कुमार्ग हैं तिनिका प्रसंग छोडनां, ऐसैं करे आतमकल्याण होय है॥

छप्पय।

जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै,
कर्म निमितकूं पाय अशुद्धभावनि विस्तारै।
कर्म शुभाशुभ बांधि उदै भरमै संसारै,
पावै दुःख अनंत च्यारि गतिमैं डुलि सारै॥
सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब।
निजशुद्धभाव धरि कर्महरि लहै मोक्ष भरमै न तब॥

दोहा।

मंगलमय परमातमा शुद्धभाव अविकार।
नमूं पाय पाऊं स्वपद जाचूँ यहै करार ॥२॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित मोक्षप्राभृतकी।
जयपुरनिवासि पं० जयचन्द्रजीछावड़ाकृत-
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥ ५ ॥

अथ मोक्षपाहुड ।

—:०:—

[६]

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ मोक्षपाहुडकी वचनिका लिख्यते ।

तहां प्रथमही मंगलकै अर्थि सिद्धनिकूं नमस्कार करै है;—

दोहा ।

अष्ट कर्मको नाश करि शुद्ध अष्ट गुण पाय ।
भये सिद्ध निज ध्यानतैं नमूं मोक्षसुखदाय ॥१॥

ऐसैं मंगलकै अर्थि सिद्धनिकूं नमस्कारकरि अर श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत मोक्षपाहुडग्रंथ प्राकृत गाथाबंध है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है । तहां प्रथम ही आचार्य मंगलकै अर्थि परमात्माकूं नमस्कार करै है;—

गाथा—णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण ।
चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स ॥१॥

संस्कृत—ज्ञानमय आत्मा उपलब्धः येन क्षरितकर्मणा ।
त्यक्त्वा च परद्रव्यं नमो नमस्तस्मै देवाय ॥१॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो–जानैं परद्रव्यकूं छोडिकरि झटितकर्म कहिये खिरे हैं द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म जाकै ऐसा होयकरि अर ज्ञानमयी आत्माकूं पाया, ऐसे देवके अर्थि हमारा नमस्कार होहू नमस्कार होहू । दोय वार कहनेमैं अतिप्रीतियुक्त भाव जनाये हैं ॥

भावार्थ—इहां मोक्षपाहुडका प्रारंभ है तहां जिननैं समस्त परद्रव्यकूं छोडि कर्मका अभावकरि केवलज्ञानानंद स्वरूप मोक्षपद पाया तिस देवकूं मंगलकै अर्थि नमस्कार किया सो यह युक्त है, जहां जैसा प्रकरण तहां तैसी योग्यता। इहां भावमोक्षतौ अरहंतकै, अर द्रव्यभावकरि दोऊ प्रकार सिद्ध परमेष्ठीकै है यातैं दोऊकूं नमस्कार जाननां ॥ १ ॥

आगैं ऐसैं नमस्कार करि ग्रंथ करनेंकी प्रतिज्ञा करै है;—

गाथा—णमिऊण य तं देवं अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं।
वोच्छं परमप्पाणं परमपयं परमजोईणं ॥२॥

संस्कृत—नत्वा च तं देवं अनंतवरज्ञानदर्शनं शुद्धम्।
वक्ष्ये परमात्मानं परमपदं परमयोगिनाम् ॥२॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो—तिस पूर्वोक्त देवकूं नमस्कारकरि अर परमात्मा जो उत्कृष्ट शुद्ध आत्मा ताहि परम योगीश्वर जे उत्कृष्ट योग्य ध्यानके धरनहारे मुनिराज तिनि प्रति कहूंगा, कैसा है पूर्वोक्त देव—अनंत अर श्रेष्ठ जो ज्ञानदर्शन ते जाकै पाइये है, बहुरि विशुद्ध है कर्ममलकरि रहित है, अथवा कैसा है परमात्मा अनंत है वर कहिये श्रेष्ठ है ज्ञान अर दर्शन जामैं, बहुरि कैसा है—परम उत्कृष्ट है पद जाका ॥

भावार्थ—इस ग्रंथमैं मोक्षकूं जिस कारणतैं पावै अर जैसा मोक्षपद है तैसाका वर्णन करियेगा, तिस रीति तिसहीकी प्रतिज्ञा करी है। बहुरि योगीश्वरनिप्रति कहियेगा, याका आशय यह है जो—ऐसे मोक्षपदकूं शुद्ध परमात्माका ध्यानतैं पाइये है, तहां तिस ध्यानकी योग्यता योगीश्वरनिकै ही प्रधान है, गृहस्थनिकै यह ध्यान प्रधान नांही ॥ २ ॥

आगैं कहै है जो—जिस परमात्माकूं कहनेंकी प्रतिज्ञा करी है तिसकूं योगी ध्यानी मुनि जांणि तिसकूं ध्याय परम पद पावै है;—

गाथा—जं जाणिऊण जोई जोअत्थो जोइऊण अणवरयं ।
अव्वावाहमणंतं अणोवमं लहइ णिव्वाणं ॥३॥

संस्कृत—यत् ज्ञात्वा योगी योगस्थः दृष्ट्वा अनवरतम् ।
अव्याबाधमनंतं अनुपमं लभते निर्वाणम् ॥३॥

अर्थ—आगैं कहैंगे जो परमात्मा ताकूं जांनिकरि योगी जो मुनि सो योग जो ध्यान ताविषैं तिष्ठया हूवा निरन्तर तिस परमात्माकूं अनुभवगोचरकरि निर्वाणकूं प्राप्त होय है, कैसा है निर्वाण—अव्याबाध है जहां काहू प्रकारकी बाधा नांही है, बहुरि कैसा है—अनंत है जाका नाश नांही है, बहुरि कैसा है—अनुपम है जाकूं काहूकी उपमा लागै नांही ॥

भावार्थ—आचार्य कहै है ऐसे परमात्माकूं आगैं कहियेगा तिसकूं ध्यानविषैं मुनि निरन्तर अनुभवन करि अर केवलज्ञान उपजाय निर्वाणकूं पावै । इहां यह तात्पर्य है—जो परमात्माका ध्यानतैं मोक्ष होय है ॥३॥

आगैं परमात्मा कैसा है—ऐसैं जनावनेंके अर्थि आत्माकूं तीन प्रकारकरि दिखावै है;—

गाथा—तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु[1] देहीणं ।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतोवाएण चयहि बहिरप्पा ॥४॥

संस्कृत—त्रिप्रकारः स आत्मा परमन्तः बहिः स्फुटं देहिनाम् ।
तत्र परं ध्यायते अन्तरुपायेन त्यज बहिरात्मानं ॥४॥

अर्थ—सो आत्मा प्राणीनिकै तीन प्रकार है—अंतरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा, ऐसैं । तहां अन्तरात्माके उपायकरि बहिरात्माकूं छोडिकरि परमात्माकूं ध्यायजे ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'हु हेऊणं' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'तु हित्वा' की है ।

भावार्थ—बहिरात्माकूं छोडि अंतरात्मारूप होय परमात्माकूं ध्यावनां, यातैं मोक्ष होय है ॥४॥

आगैं तीन प्रकार आत्माका स्वरूप दिखावै है;—

गाथा—अक्खाणि बाहिरप्पा अंतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो।
कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भणए देवो ॥५॥

संस्कृत—अक्षाणि बहिरात्मा अन्तरात्मा स्फुटं आत्मसंकल्पः।
कर्मकलंकविमुक्तः परमात्मा भण्यते देवः ॥ ५ ॥

अर्थ—अक्ष जे इंद्रिय स्पर्शनादिक तेतौ बाह्य आत्मा हैं जातैं इंद्रियनिकरि स्पर्श आदि विषयनिका ज्ञान होय तब लोक कहै ऐसैं ही जो इंद्रिय है सो ही आत्मा है, ऐसैं जो इंद्रियनिकूं बाह्य आत्मा कहिये। बहुरि अंतरात्मा है सो अन्तरंगविषैं आत्माका प्रगट अनुभवगोचर संकल्प है, शरीर इंद्रियनितैं न्यारा मनकै द्वारै देखनें जाननेंवाला है सो मैं हूं, ऐसैं स्वसंवेदनगोचर संकल्प सो ही अन्तरात्मा है। बहुरि कर्म जो द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक अर भावकर्म राग द्वेष मोहादिक नोकर्म शरीरादिक सो ही भया कलंकमल तिसकरि विमुक्त रहित अनंतज्ञानादिकगुणसहित सो ही परमात्मा है, सो ही देव है, अन्यकूं देव कहनां उपचार है॥

भावार्थ—बाह्य आत्मा तौ इंद्रियनिकूं कह्या, अर अंतरात्मा देहमैं तिष्ठता देखनां जाननां जाकै पाइये ऐसा मनकै द्वारै संकल्प सो है, बहुरि परमात्मा कर्मकलंकसूं रहित कह्या। सो इहां ऐसा जनाया है जो—यह जीवही जेतैं बाह्य शरीरादिकहीकूं आत्मा जानै है तेतैं तौ बहिरात्मा है संसारी है, बहुरि जब येही जीव अंतरंगविषैं आत्माकूं जानै है तब यह सम्यग्दष्टी होय है तब अंतरात्मा है, अर यह जीव जब परमात्माका ध्यान करि कर्मकलंकसूं रहित होय तब पहलै तौ केवलज्ञान उपजाय

अरहंत होय है, पीछैं सिद्धपदकूं पावै है, इनि दोऊहीकूं परमात्मा कहिये है। अरहंत तौ भावकलंकरहित हैं अर सिद्ध द्रव्यभावरूप दोऊ प्रकार कलंक रहित है, ऐसैं जाननां ॥ ५ ॥

आगैं तिस परमात्माका विशेषणकरि स्वरूप कहै है,—

गाथा—मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा।
परमेट्ठी परमजिणो सिवंकरो सासओ सिद्धो ॥६॥

संस्कृत—मलरहितः कलत्यक्तः अनिंद्रियः केवलः विशुद्धात्मा।
परमेष्ठी परमजिनः शिवंकरः शाश्वतः सिद्धः ॥६॥

अर्थ—परमात्मा ऐसाहै—प्रथम तौ मलरहित है द्रव्यकर्म भावकर्मरूप मलकरि रहित है, बहुरि कलत्यक्त कहिये शरीरकरि रहित है, बहुरि अनिंद्रिय कहिये इन्द्रियनिकरि रहित है अथवा अनिंदित कहिये काहू प्रकार निंदायुक्त नांही है सर्व प्रकार प्रशंसा योग्य है, बहुरि केवल कहिये केवलज्ञानमयी है, बहुरि विशुद्धात्मा कहिये विशेष करि शुद्ध है आत्मा स्वरूप जाका, ज्ञानमैं ज्ञेयके आकार प्रतिभासै है तौहू तिनिस्वरूप न हो है तथापि तिनितैं रागद्वेष नांही है, बहुरि परमेष्ठी है परमपदविषैं तिष्ठै है, बहुरि परम जिन है सर्व कर्मकूं जीतै है, बहुरि शिवंकर है भव्य जीवनिकै परम मंगल तथा मोक्षकूं करै है, बहुरि शाश्वता है अविनाशी है, बहुरि सिद्ध है अपनें स्वरूपकी सिद्धिकरि निर्वाणपदकूं प्राप्त भये हैं ॥

भावार्थ—ऐसा परमात्मा है, ऐसे परमात्माका ध्यान करै सो ऐसाही होय है ॥ ६ ॥

आगैं सो ही उपदेश करै है;—

गाथा—आरुहवि अंतरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥७॥

संस्कृत—आरुह्य अंतरात्मानं बहिरात्मानं त्यक्त्वा त्रिविधेन।
ध्यायते परमात्मा उपदिष्टं जिनवरेन्द्रैः ॥७॥

अर्थ—बहिरात्माकूं मन वचन कायकरि छोडि अन्तरात्माका आश्रय लेयकरि परमात्माकूं ध्यायजे, यह जिनवरेन्द्र तीर्थंकर परमदेवनिनैं उपदेश्या है॥

भावार्थ—परमात्माका ध्यान करनेंका उपदेश प्रधान करि कह्या है यातैं मोक्ष पावै है॥ ७॥

आगैं बहिरात्माकी प्रवृत्ति कहै है;—

गाथा—बहिरत्थे फुरियमणो इंदियदारेण णियसरूवचओ।
णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ॥८॥

संस्कृत—बहिरर्थे स्फुरितमनाः इन्द्रियद्वारेण निजस्वरूपच्युतः।
निजदेहं आत्मानं अध्यवस्यति मूढदृष्टिस्तु॥८॥

अर्थ—मूढदृष्टी अज्ञानी मोही मिथ्यादृष्टी है सो बाह्य पदार्थ जे धन धान्य कुटुंब आदि इष्ट पदार्थ तिनिविषैं स्फुरित है तत्पर है मन जाका, बहुरि इंद्रियका द्वार करि अपनें स्वरूपतैं च्युत है इन्द्रियनिकूं ही आत्मा जानै है, ऐसा भया संता अपनां देह है ताहीकूं आत्मा जानै है निश्चय करै है; ऐसा मिथ्यादृष्टी बहिरात्मा है॥

भावार्थ—ऐसा बहिरात्माका भाव है ताकूं छोडनां॥ ८॥

आगैं कहै है जो—मिथ्यादृष्टी अपनां देह सारिखा पर देहकूं देखि तिसकूं परका आत्मा मानै है;—

गाथा—णियदेहसरित्थं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण।
अच्चेयणं पि गहियं झाइज्जइ परमभाएण॥९॥

संस्कृत–निजदेहसदृशं दृष्ट्वा परविग्रहं प्रयत्नेन ।
अचेतनं अपि गृहीतं ध्यायते परमभावेन ॥९॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टी पुरुष अपनां देह सारिखा परका देहकूं देखिकरि यह देह अचेतन है तौऊ मिथ्याभावकरि आत्मभावकरि बडा यत्न करि परका आत्मा ध्यावै है ॥

भावार्थ—बहिरात्मा मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्वकर्मका उदयकरि मिथ्याभाव है सो आपनां देहकूं आपा जानैं है तैसैंही परका देह अचेतन है तौऊ ताकूं परका आत्मा जानि ध्यावै है मानै है तामैं बडा यत्न करै है यातैं ऐसे भावकूं छोडनां यह तात्पर्य है ॥ ९ ॥

आगैं कहै है जो ऐसीही मांनितैं पर मनुष्यदिविषैं मोह प्रवर्तै है;—

गाथा—सपरज्झवसाएणं देहेसु य अविदिदत्थमप्पाणं ।
सुयदाराईविसए मणुयाणं वड्ढए मोहो ॥१०॥

संस्कृत–स्वपराध्यवसायेन देहेषु च अविदितार्थमात्मानम् ।
सुतदारादिविषये मनुजानां वर्द्धते मोहः ॥१०॥

अर्थ—ऐसे देहविषैं स्वपरका अध्यवसाय कहिये निश्चय ताकरि मनुष्यनिकै सुत दारादिक जीवनिविषैं मोह प्रवर्तै है, कैसे हैं मनुष्य—अविदित कहिये नांही जान्यां है अर्थ कहिये पदार्थ ताका आत्मा कहिये स्वरूप ज्यां ॥

भावार्थ—जिनि मनुष्यनिनैं जीव अजीव पदार्थका स्वरूप यथार्थ न जाण्यां तिनिकै देहविषैं स्वपराध्यवसाय है अपनां देहकूं आपका आत्मा जानैं है अर परका देहकूं परका आत्मा जानैं है तिनिकै पुत्र स्त्री आदि कुटुंबविषैं मोह ममत्व होय है, जब जीव अजीवका स्वरूप जानैं तब देहकूं अजीव मानैं, आत्मकूं अमूर्तीक चेतन जानैं आपनां आत्माकूं

आपा मानैं परका आत्माकूं पर जानैं, तब परविषैं ममत्व नांही होय। तातैं जीवादिक पदार्थका स्वरूप नीकैं जांनि मोह न करनां यह जनाया है ॥ १० ॥

आगैं कहै है जो—मोहकर्मके उदयकरि मिथ्याज्ञान अर मिथ्याभाव होय है ताकरि आगामी भवविषैं भी यहं मनुष्य देहकूं चाहै है;—

गाथा—मिच्छाणाणेसु रओ मिच्छाभावेण भाविओ संतो।
मोहोदएण पुणरवि अंगं सम्मण्णए मणुओ ॥११॥

संस्कृत—मिथ्याज्ञानेषु रतः मिथ्याभावेन भावितः सन्।
मोहोदयेन पुनरपि अंगं मन्यते मनुजः ॥११॥

अर्थ—यह मनुष्य है सो मोहकर्मके उदयकरि मिथ्याज्ञानकरि मिथ्याभावकरि भाया संता फेरि भी आगामी जन्मविषैं इस अंगकूं देहकूं सन्मानैं है भला मांनि चाहै है ॥

भावार्थ—मोहकर्मकी प्रकृति जो मिथ्यात्व ताके उदयकरि ज्ञानभी मिथ्या होय है परद्रव्यकूं अपनां जानैं है, बहुरि तिस मिथ्यात्वहीकरि मिथ्या श्रद्धान होय है ताकरि निरन्तर परद्रव्य विषैं यह भावना रहै है जो—यह मेरै सदा प्राप्त होहू, यातैं यह प्राणी आगामी देहकूं भला जाणि चाहै है ॥ ११ ॥

आगैं कहै है-जो मुनि देहविषैं निरपेक्ष है देहकूं नांही चाहै है यामैं ममत्व न करै है सो निर्वाणकूं पावै है,—

गाथा—जो देहे णिरवेक्खो णिद्दंदो णिम्ममो णिरारंभो।
आदसहावे सुरओ जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥१२॥

१—मुद्रित सं. प्रतिमें 'सं मण्णए' ऐसा प्राकृतपाठ जिसका 'स्वं मन्यते' ऐसा संस्कृत पाठ है।

संस्कृत—यः देहे निरपेक्षः निर्द्वन्द्वः निर्ममः निरारंभः।
आत्मस्वभावे सुरतः योगी सः लभते निर्वाणम् ॥१२॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि, देहविषैं निरपेक्ष है देहकूं नांही चाहै है उदासीन है, बहुरि निर्द्वन्द्व है राग द्वेषरूप इच्छा अनिष्ट मांनितैं रहित है, बहुरि निर्ममत्त्व है देहादिक विषैं 'यह मेरा' ऐसी बुद्धितैं रहित है, बहुरि निरारंभ है या देहकै अर्थि तथा अन्य लौकिक प्रयोजनकै अर्थि आरंभतैं रहित है, बहुरि आत्मस्वभावविषैं रत है लीन है निरन्तर स्वभावकी भावनासहित है सो मुनि निर्वाणकूं पावै है॥

भावार्थ—जो बहिरात्माके भावकूं छोडि अन्तरात्मा होय परमात्मामैं लीन होय है सो मोक्ष पावै है। यह उपदेश जनाया है॥ १२॥

आगैं बंधका अर मोक्षका कारणका संक्षेपरूप आगमका वचन कहै है;—

गाथा—परदव्वरओ वज्झदि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं।
एसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स ॥१३॥

संस्कृत—परद्रव्यरतः बध्यते विरतः मुच्यते विविधकर्मभिः।
एषः जिनोपदेशः समासतः बंधमोक्षस्य ॥१३॥

अर्थ—जो जीव परद्रव्यविषैं रत है रागी है सो तौ अनेक प्रकारके कर्मनिकरि बंधै है कर्मनिका बंध करै है, बहुरि जो परद्रव्यविषैं विरत है रागी नाही है सो अनेक प्रकारके कर्मनितैं छूटै है, यह बंधका अर मोक्षका संक्षेपकरि जिनदेवका उपदेश है॥

भावार्थ—बंध मोक्षके कारणकी कथनी अनेक प्रकार करि है ताका यह संक्षेप है—जो परद्रव्यसूं रागभाव सो तौ बंधका कारण अर विरागभाव सो मोक्षका कारण है, ऐसा संक्षेपकरि जिनेन्द्रका उपदेश है॥ १३॥

आगैं कहै है जो स्वद्रव्यविषैं रत है सो सम्यग्दष्टी होय है अर कर्मका नाश करै है;—

गाथा—सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्टी हवेइ सो[1] साहू।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्टट्ठकम्माइं[2] ॥१४॥

संस्कृत—स्वद्रव्यरतः श्रमणः सम्यग्दृष्टिः भवति सः साधुः।
सम्यक्त्वपरिणतः पुनः क्षपयति[3] दुष्टाष्टकर्माणि ॥१४॥

अर्थ—जो मुनि स्वद्रव्य जो अपनां आत्मा ताविषैं रत है रुचि सहित है सो नियमकरि सम्यग्दष्टी है, वहुरि सो ही सम्यक्त्व भावरूप परिणम्या संता दुष्ट जे आठ कर्म तिनिकूं क्षेपै है, नाश करै है॥

भावार्थ—यह भी कर्मके नाश करनेंका कारणका संक्षेप कथन है जो अपनां स्वरूपकी श्रद्धा रुचि प्रतीति आचरणकरि युक्त है सो नियमकरि सम्यग्दर्ष्टी है, इस सम्यक्त्वभाव करि परिणम्या मुनि आठ कर्मका नाश करि निर्वाण पावै है॥ १४॥

आगैं कहै है जो परद्रव्यविषैं रत है सो मिथ्यादष्टी भया कर्मकूं बांधै है;—

गाथा—जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू।
मिच्छत्तपरिणदो उण वज्झदि दुट्टट्ठकम्मेहिं॥१५॥

संस्कृत—यः पुनः परद्रव्यरतः मिथ्यादृष्टिः भवति सः साधुः।
मिथ्यात्वपरिणतः पुनः बध्यते दुष्टाष्टकर्मभिः॥१५॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'सो साहू' के स्थानमें 'णियमेण' ऐसा पाठ है।

२—मु. सं. प्रतिमें 'दुट्टट्ठकम्माणि' ऐसा पाठ है।

३—मु. सं. प्रतिमें 'क्षिपते' ऐसा पाठ है।

अर्थ—पुनः कहिये वहुरि जो साधु परद्रव्यविषैं रत है रागी है सो मिथ्यादृष्टी होय है, वहुरि सो मिथ्यात्वभावरूप परिणम्यां संता दुष्ट जे अष्ट कर्म तिनिकरि वंधै है ॥

भावार्थ—यह वंधके कारणका संपेक्ष है तहां साधु कहनें तैं ऐसा जनाया है जो वाह्य परिग्रह छोडि निर्ग्रन्थ होय तौ हू मिथ्यादृष्टी भया संता दुष्ट जे संसारके दुःख देनेंवाले अष्ट कर्म तिनिकरि वंधै है ॥१५॥

आगैं कहै है जो—परद्रव्यहीतैं दुर्गति होय है अर स्वद्रव्यहीतैं सुगति होय है;—

गाथा—परदव्वादो दुग्गइ सद्दव्वादो हु सग्गई होई।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरय इयरम्मि ॥१६॥

संस्कृत—परद्रव्यात् दुर्गतिः स्वद्रव्यात् स्फुटं सुगतिः भवति।
इति ज्ञात्वा स्वद्रव्ये कुरुत रतिं विरतिं इतरस्मिन् १६

अर्थ—परद्रव्यतैं तौ दुर्गति होय है, वहुरि स्वद्रव्यतैं सुगति होय है यह प्रगट जाणौं, जातैं हे भव्य जीव हो ? तुम ऐसैं जाणिकरि स्वद्रव्यविषैं रति करो अर इतर जो परद्रव्य तातैं विरति करौ ॥

भावार्थ—लोकमैं भी यह रीति है अपनें द्रव्यसूं रति करि अपनां ही भोगवै है सो सुख पावै है ताकूं कछु आपदा न आवै है, वहुरि परद्रव्यसूं प्रीतिकरि जैसैं तैसैं लेकरि भोगवै है ताक दुःख होय है आपदा आवै है। तातैं आचार्य संक्षेपकरि उपदेश किया जो—अपनां आत्मस्वभावविषैं तौं रति करौ यातैं सुगति है स्वर्गादिक भी याही तैं होय है अर मोक्षभी याही तैं होय है, वहुरि परद्रव्यतैं प्रीति मति करौ यातैं दुर्गति होय है संसारमैं भ्रमण होय है। इहां कोई कहै जो—स्वद्रव्यमैं लीन भये मोक्ष होय है अर सुगति दुर्गति तौ परद्रव्यकी प्रीतितैं होय है ? ताकूं कहिये जो—यह सत्य है, परन्तु इहां आशय तैं कह्या है जो—

परद्रव्यतैं विरक्त होय स्वद्रव्यमैं लीन होय तब विशुद्धता बहुत होय है, तिस विशुद्धताके निमित्ततैं शुभकर्मभी बंधै है अर अत्यंत विशुद्धता होय तब कर्मकी निर्जरा होय मोक्ष होय है तातैं सुगति दुर्गतिका होनां कह्या तैसैं युक्त है, ऐसैं जाननां ॥ १६ ॥

आगैं शिष्य पूछै है जो—परद्रव्य कैसा है ? ताका उत्तर आचार्य कहै है;—

गाथा—आदसहावादण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवइ ।
तं परदव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरसीहिं ॥१७॥

संस्कृत—आत्मस्वभावादन्यत् सचित्ताचित्तमिश्रितं भवति ।
तत् परद्रव्यं भणितं अवितथं सर्वदर्शिभिः ॥१७॥

अर्थ—आत्मस्वभावतैं अन्य जो किछू सचित्त तौ स्त्री पुत्रादिक जीवसहित वस्तु बहुरि अचित्त धन धान्य हिरण्य सुवर्णादिक अचेतन वस्तु बहुरि मिश्र आभूषणादिसहित मनुष्य तथा कुटुंबसहित गृहादिक ये सर्व परद्रव्य हैं, ऐसैं जानैं जीवादिक पदार्थका स्वरूप न जाण्या ताकै जनावनेंकै आर्थि सर्वदर्शी सर्वज्ञ भगवाननैं कह्या है अथवा 'अवितथं' कहिये सत्यार्थ कह्या है ॥

भावार्थ—अपनां ज्ञानस्वरूप आत्मा सिवाय अन्य अचेतन मिश्र वस्तु हैं ते सर्वही परद्रव्य हैं ऐसैं अज्ञानीकै जनावनेंकूं सर्वज्ञदेवनैं कह्या है ॥ १७ ॥

आगैं कहै है जो—आत्मस्वभाव स्वद्रव्य कह्या सो ऐसा है;—

गाथा—दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं ।
सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवइ सद्दव्वं ॥१८॥

संस्कृत—दुष्टाष्टकर्मरहितं अनुपमं ज्ञानविग्रहं नित्यम् ।
शुद्धं जिनैः भणितं आत्मा भवति स्वद्रव्यम् ॥१८॥

अर्थ—दुष्ट जे संसारके दुःख देनेवाले ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्म तिनिकरि रहित अर जाकूं काहूकी उपमा नांही ऐसा अनुपम अर ज्ञानही है विग्रह कहिये शरीर जाकै ऐसा अर नित्य जाका नाश नांही अविनाशी अर शुद्ध कहिये विकाररहित केवलज्ञानमयी आत्मा जिन भगवान सर्वज्ञदेवनैं कह्या सो स्वद्रव्य है ॥

भावार्थ—ज्ञानानंदमय अमूर्त्तिक ज्ञानमूर्त्ति अपनां आत्मा है सो ही एक स्वद्रव्य है अन्य सर्व चेतन अचेतन मिश्र परद्रव्य हैं ॥ १८ ॥

आगैं कहै है जो—जे ऐसे निजद्रव्यकूं ध्यावैं हैं ते निर्वाण पावैं हैं;—

गाथा—जे झायंति सदव्वं परदव्वपरम्मुहा हु सुचरित्ता ।
ते जिणवराण मग्गे अणुलग्गा लहदि णिव्वाणं ॥१९॥

संस्कृत—ये ध्यायंति स्वद्रव्यं परद्रव्यपराङ्मुखास्तु सुचरित्राः ।
ते जिनवराणां मार्गे अनुलग्नाः लभंते निर्वाणम् ॥१९॥

अर्थ—जे मुनि परद्रव्यतैं पराङ्मुख भये संते स्वद्रव्य जो निज आत्मद्रव्य ताहि ध्यावैं है ते प्रगट सुचरित्रा कहिये निर्दोष चारित्रयुक्त भये संते जिनवर तीर्थंकरनिके मार्गकूं अनुलग्न भये लागे संते निर्वाणकूं पावैं हैं ॥

भावार्थ—परद्रव्यका त्यागकरि जे अपनां स्वरूपकूं ध्यावैं हैं ते निश्चयचारित्ररूप होय जिनमार्गमैं लागे ते मोक्ष पावैं हैं ॥ १९ ॥

आगैं कहै है जो–जिनमार्गमैं लग्या योगी शुद्धात्माकूं ध्याय मोक्ष पावै है तौ कहा ताकरि स्वर्ग नहीं पावै? पावैही पावै,

गाथा—जिणवरमएण जोई झाणे झाएइ सुद्धमप्पाणं ।
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं ॥२०॥

संस्कृत—जिनवरमतेन योगी ध्याने ध्यायति शुद्धमात्मानम्।
येन लभते निर्वाणं न लभते किं तेन सुरलोकम् ॥२०॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि है सो जिनवर भगवानके मतकरि शुद्ध आत्माकूं ध्यानविषैं ध्यावै है ताकरि निर्वाणकूं पावै है तौ ताकरि कहा स्वर्ग लोक न पावै? पावैही पावै ॥ २० ॥

भावार्थ—कोई जानैंगा जो जिनमार्गमैं लागि आत्माकूं ध्यावै सो मोक्ष पावै अर स्वर्ग तौ यातैं होय नांही, ताकूं कह्या है जो जिनमार्गमैं प्रवर्त्तनेंवाला शुद्ध आत्माकूं ध्याय मोक्ष पावै है तौ ताकरि स्वर्गलोक कहा कठिन है? यह तौ ताके मार्गमैं ही है ॥ २० ॥

आगैं या अर्थकूं दृष्टान्तकरि दृढ करै है,

गाथा—जो जाइ जोयणसयं दियहेणेक्केण लेइ गुरुभारं।
सो किं कोसद्धं पि हु ण सक्कए जाहु भुवणयले ॥२१॥

संस्कृत—यः याति योजनशतं दिवसेनैकेन लात्वा गुरुभारम्।
स किं क्रोशार्द्धमपि स्फुटं न शक्नोति यातुं भुवनतले २१

अर्थ—जो पुरुष वडा भार लेय एक दिनकरि सौ योजन जाय सो या भुवनतलविषैं आध कोश कहा न जाय? यह प्रगट जाणो ॥

भावार्थ—जो पुरुष वडा भार लेय एक दिनमैं सौ योजन चालै ताकै आधकोश चालनां तौ अत्यंत सुगम भया, तैसैंही जिनमार्गतैं मोक्ष पावै तौ स्वर्ग पावनां तौ अत्यंत सुगम है ॥ २१ ॥

आगैं याही अर्थका अन्य दृष्टान्त कहै है;—

गाथा—जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो संगामएहिं सव्वेहिं।
सो किं जिप्पइ इक्किं णरेण संगामए सुहडो ॥ २२ ॥

संस्कृत—यः कोट्या न जीयते सुभटः संग्रामकैः सर्वैः।
स किं जीयते एकेन नरेण संग्रामे सुभटः ॥ २२ ॥

अर्थ—जो कोई सुभट संग्राममैं सर्वही संग्रामके करनेंवालेनिकरि सहित कोडि नरनिकूं सुगमताकरि जीतै सो सुभट एक नरकूं कहा न जीतै ? जीतैही ॥

भावार्थ—जो जिनमार्गमैं प्रवर्त्तैं सो कर्मका नाश करै तौ कहा स्वर्गका रोकनेंवाला एक पापकर्म ताका नाश न करै ? करैही करै २२

आगैं कहै है जो—स्वर्ग तौ तपकरि सर्वही पावै है परन्तु ध्यानका योगकरि स्वर्ग पावै है सो तिस ध्यानके योगकरि मोक्ष भी पावै है;—

गाथा—सग्गं तवेण सव्वो वि पावए किंतु झाणजोएण ।
जो पावइ सो पावइ परलोये सासयं सोक्खं ॥२३॥

संस्कृत—स्वर्गं तपसा सर्वः अपि प्राप्नोति किन्तु ध्यानयोगेन ।
यः प्राप्नोति सः प्राप्नोति परलोके शाश्वतं सौख्यम् २३

अर्थ—स्वर्ग तौ तपकरि सर्वही पावै है तथापि जो ध्यानके योगकरि स्वर्ग पावै है सो ही ध्यानके योगकरि परलोकविषैं शाश्वता सुखकूं पावै है ॥

भावार्थ—कायक्लेशादिक तप तौ सर्वही मतके धारक करैं हैं ते तपस्वी मंदकषायके निमित्ततैं सर्वही स्वर्गकूं पावैं हैं, बहुरि जो ध्यानकरि स्वर्ग पावै है सो जिनमार्गविषैं कह्या तैसा ध्यानके योगकरि परलोकविषैं शास्वता है सुख जाविषैं ऐसा निर्वाणकूं पावै है ॥ २३ ॥

आगैं ध्यानके योगकरि मोक्षकूं पावै है ताकूं दृष्टान्त दार्ष्टान्तकरि दृढ करै है;—

गाथा—अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य ।
कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि ॥ २४ ॥

संस्कृत—अतिशोभनयोगेन शुद्धं हेम भवति यथा तथा च ।
कालादिलब्ध्या आत्मा परमात्मा भवति ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसैं सुवर्ण पाषाण है सो सोधनेंकी सामग्रीके संबंधकरि शुद्ध सुवर्ण होय है तैसैं काल आदि लब्धि जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप सामग्रीकी प्राप्ति ताकरि यहु आत्मा कर्मके संयोगकरि अशुद्ध है सो ही परमात्मा होय है ॥ २४ ॥

भावार्थ—सुगम है ॥ २४ ॥

आगैं कहै है जो-संसारविषैं व्रत तपकरि स्वर्ग होय है सो व्रत तप भला है अव्रतादिकरि नरकादिक गति होय है सो अव्रतादिक श्रेष्ठ नांही;—

गाथा—वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं ॥२५॥

संस्कृत—वरं व्रततपोभिः स्वर्गः मा दुःखं भवतु नरके इतरैः।
छायातपस्थितानां प्रतिपालयतां गुरुभेदः ॥२५॥

अर्थ—व्रत अर तपकरि स्वर्ग होय है सो श्रेष्ठ है, बहुरि इतर जो अव्रत अर अतप, तिनिकरि प्राणीकै नरकगतिविषैं दुःख होय है सो मति होहु, श्रेष्ठ नांही। छाया अर आतपकै विषैं तिष्ठनेंवालेके जे प्रतिपालक कारण हैं तिनिकै बड़ा भेद है॥

भावार्थ—जैसैं छायाका कारण तौ वृक्षादिक है, तिनिकरि छाया कोई बैठै सो सुख पावै, बहुरि आतापका कारण सूर्य अग्नि आदिक है तिनिके निमित्ततैं आताप होय ताविषैं बैठै सो दुःख पावै ऐसैं इनिमैं बडा भेद है; तैसैं जो व्रत तपकूं आचरै सो स्वर्गका सुख पावै अर इनिकूं न आचरै विषय कषायादिककूं सेवै सो नरकके दुःख पावै, ऐसैं इनिमैं बडा भेद है। तातैं इहां कहनेंका यह आशय है जो जेतैं निर्वाण न होय तेतैं व्रत तप आदिकमैं प्रवर्त्तनां श्रेष्ठ है यातैं सांसारिक सुखकी प्राप्ति है अर निर्वाणके साधनें विषैं भी ये सहकारी हैं। विषय कषायादिककी प्रवृत्तिका फल तौ केवल नरकादिकके दुःख हैं सो तिनि दुःख-

निके कारणनिकूं सेवनां यह तौ बडी भूलि है, ऐसैं जाननां ॥ २५ ॥

आगै कहै है जो–संसारमैं रहै जेतैं व्रत तप पालनां श्रेष्ठ कह्या परन्तु जो संसारतैं नीसन्या चाहै हैं सो आत्माकूं ध्यावो;—

गाथा—जो इच्छइ णिस्सरिहुं संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ[1]।
कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं ॥२६॥

संस्कृत–यः इच्छति निःसर्त्तुं संसारमहार्णवात् रुद्रात् ।
कर्मेन्धनानां दहनं सः ध्यायति आत्मानं शुद्धम् ॥२६॥

अर्थ—जो जीव रुद्र कहिये वडा विस्ताररूप जो संसाररूप समुद्र तातैं नीसरणेंकूं चाहै है सो जीव कर्मरूप इंधनका दहन करनेवाला जो शुद्ध आत्मा ताहि ध्यावै है ॥

भावार्थ—निर्वाणकी प्राप्ति कर्मका नाश होय तव होय है अर कर्मका नाश शुद्धात्माके ध्यानतैं होय है सो संसारतैं नीसरि मोक्षकूं चाहै है सो शुद्ध आत्मा जो कर्ममलतैं रहित अनंत चतुष्टयसहित परमात्माकूं ध्यावै है, मोक्षका उपाय या विना अन्य नांही है ॥ २६ ॥

आगै आत्माकूं कैसे ध्यावै ताकी विधि दिखावै है;—

गाथा—सव्वे कसाय मुत्तं गारवमयरायदोसवामोहं ।
लोयववहारविरदो अप्पा झाएइ झाणत्थो ॥२७॥

संस्कृत–सर्वान् कषायान् मुक्त्वा गारवमदरागदोषव्यामोहम् ।
लोकव्यवहारविरतः आत्मानं ध्यायति ध्यानस्थः २७

अर्थ—मुनि है सो सर्व कषायनिकूं छोडि तथा गारव मद राग द्वेष तथा मोह इनिकूं छोडिकरि अर लोकव्यवहारतैं विरक्त भया ध्यान विषै तिष्ठ्या आत्माकूं ध्यावै है ॥ २७ ॥

१–मुद्रित सं. प्रतिमें "संसारमहण्णवस्स रुद्दस्स" ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत "संसारमहार्णवस्य रुद्रस्य" एसी है ।

भावार्थ—मुनि आत्माकूं ध्यावै सो ऐसा भया ध्यावै—प्रथम तौ क्रोध मान माया लोभ ये कषाय हैं इनि सर्वनिकूं छांडै, बहुरि गारवकूं छोडै, बहुरि मद जाति आदिका भेद आठ प्रकार है ताकूं छोडै बहुरि राग द्वेषकूं छोडै बहुरि लोकव्यवहार जो संघमैं रहनेंमैं परस्पर विनयाचार वैयावृत्त्य धर्मोपदेश पढना पढावनां है ताकूं भी छौडे ध्यानविषैं तिष्ठै ऐसै आत्माकूं ध्यावै॥

इहां कोई पूछै—सर्व कषायका छोडनां कह्या है तामैं तौ सर्व गारव मदादिक आय गये न्यारे काहेकूं कहे? ताका समाधान ऐसैं जो—सर्व कषायनिमैं गर्भित हैं तौऊ विशेष जनावनेंकूं न्यारे कहे हैं तहां कषायकी प्रवृत्ति तौ ऐसै है जो—आपके अनिष्ट होय तासूं क्रोध करै अन्यकूं नीचा मांनि मान करै काहूं कार्यनिमित्त कपट करै आहारादिविषै लोभ करै बहुरि यह गारव है सो—रस, ऋद्धि, सात, ऐसै तीन प्रकार है सो ये यद्यपि मानकषायमैं गर्भित है तौऊ प्रमादकी बहुलता इनिमैं है तातैं न्यारे कहे है। बहुरि मद जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या ऐश्वर्य इनिका होय है सो न करै। बहुरि राग द्वेष प्रीति अप्रीतिकूं कहिये है, काहूसूं प्रीति करनां काहूसूं अप्रीति करनां, ऐसैं लक्षणके विशेषतैं भेद करि कह्या। बहुरि मोह नाम परसूं ममत्व भावका है, संसारका ममत्व तौ मुनिकै है ही नांही अर धर्मानुरागतैं शिष्य आदिविषैं ममत्वका व्यवहार है सो ये भी छोडै। ऐसैं भेदविवक्षाकरि न्यारे कहे हैं, ये ध्यानके घातक भाव हैं इनिकूं छोडे विना ध्यान होय नांही जातैं जैसैं ध्यान होय तैसैं करै॥ २७॥

आगैं याहीकूं विशेष करि कहै है,—

गाथा—मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेण।
मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अप्पा॥२८॥

संस्कृत–मिथ्यात्वं अज्ञानं पापं पुण्यं त्यक्त्वा त्रिविधेन।
मौनव्रतेन योगी योगस्थः द्योतयति आत्मानम् ॥२८॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि है सो मिथ्यात्व अज्ञान पाप पुण्य इनिकूं मन वचन कायकरि छोडि मौनव्रतकरि ध्यानविषैं तिष्ठ्या आत्माकूं ध्यावै है॥

भावार्थ—केई अन्यमती योगी ध्यानी कहावैं हैं तातैं जैनलिंगी भी कोई द्रव्यलिंग धरे होय ताके निषेध निमित्त ऐसैं कह्या है जो—मिथ्यात्व अर अज्ञानकूं छोडि आत्माका स्वरूप यथार्थ जांनि श्रद्धान जानैं न किया ताकै मिथ्यात्व अज्ञान तौ लग्या रह्या तब ध्यान काहेका होय, बहुरि पुण्य पाप दोऊ बंधस्वरूप हैं इनि विषैं प्रीति अप्रीति रहै जेतैं मोक्षका स्वरूप जान्यां नांही तब ध्यान काहेका होय, बहुरि मन वचनकी प्रवृत्ति छोडि मौन न करै तौ एकाग्रता कैसैं होय। तातैं मिथ्यात्व अज्ञान पुण्य पाप मन वचन काय की प्रवृत्ति छोडना ध्यान-विषैं युक्त कह्या है ऐसैं आत्माकूं ध्याये मोक्ष होय है॥ २८॥

आगैं ध्यान करनेंवाला मौन करि तिष्ठै है सो कहा विचारि करि तिष्ठै है, सो कहै है,—

अनु० छंदः–जं मया दिस्सदे रूवं तं ण जाणादि सव्वहा।
जाणगं दिस्सदे णंतं[1] तम्हा जंपेमि केण हं॥२९॥

संस्कृत–यत् मया दृश्यते रूपं तत् न जानाति सर्वथा।
ज्ञायकं दृश्यते न तत् तस्मात् जल्पामि केन अहम् २९

अर्थ—जारूपकूं मैं देखूं हूं सो रूप मूर्तीक वस्तु है जड है अचे-तन है सर्व प्रकार करि कछू ही जाणै नांही है, अर मैं ज्ञायकहूं सो

1—मु. सं. प्रतिमें 'णतं' इसकी संस्कृत 'अनन्तः' की है।

अमूर्तीकहूं यह जड अचेतन है सर्व प्रकार करि कछूही जाणैं नांही है, तातैं मैं कौनसूं बोलूं ॥

भावार्थ—जो दूजा कोऊ परस्पर बात करनें वाला होय तब परस्पर बोलनां संभवै, सो आत्मा तौ अमूर्तीक—ताकै वचन बोलनां नांही, अर जो रूपी पुद्गल है सो अचेतन है कछू जाणैं नांही देखै नांही। तातैं ध्यान करनेंवाला कहै है—मैं कौनसूं बोलूं तातैं मेरै मौन है ॥ २९ ॥

आगैं कहै है जो—ऐसैं ध्यान करतैं सर्व कर्मके आस्रवका निरोध करि संचित कर्मका नाश करै है;—

श्लोक—सव्वासवणिरोहेण कम्मं खवइ संचियं ।
जोयत्थो जाणए जोई जिणदेवेण भासियं ॥३०॥

संस्कृत—सर्वास्रवनिरोधेन कर्म क्षपयति संचितम् ।
योगस्थः जानाति योगी जिनदेवेन भाषितम् ॥३०॥

अर्थ—योग ध्यानविषैं तिष्ठ्या योगी मुनि है सो सर्व कर्मके आस्रवका निरोधकरि संवरयुक्त भया पूर्वैं बांधे जे कर्म ते संचयरूप हैं तिनिका क्षय करै है ऐसैं जिनदेवनैं कह्या है सो जाणिये ॥

भावार्थ—ध्यानकरि कर्मका आस्रव रुकै यातैं आगामी बन्ध होय नांही अर पूर्व संचे कर्मकी निर्जरा होय है तब केवलज्ञान उपजाय मोक्ष प्राप्त होय है, यह आत्माके ध्यानका माहात्म्य है ॥ ३० ॥

आगैं कहै है जो व्यवहारमैं तत्पर है ताकै यह ध्यान नांही;—

गाथा—जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि ।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ॥३१॥

संस्कृत—यः सुप्तः व्यवहारे सः योगी जागर्ति स्वकार्ये ।
यः जागर्ति व्यवहारे सः सुप्तः आत्मनः कार्ये ॥३१॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि व्यवहारमैं सूता है सो अपनां स्वरूपका कार्यविषैं जागै है, बहुरि जो व्यवहारविषैं जागै है सो अपना आत्मकार्यविषैं सूता है ॥

भावार्थ—मुनिकै संसारी व्यवहार तौ कछू है नांही, अर जो है तौ मुनि काहेका ? पाखंडी है। बहुरि धर्मका व्यवहार संघमैं रहनां महाव्रतादिक पालनां ऐसे व्यवहारमैं भी तत्पर नांही हैं, सर्व प्रवृत्तिकी निवृत्ति करि ध्यान करैं हैं, सो व्यवहारमैं सूता कहिये, अर अपनें आत्मस्वरूपमैं लीन भया देखै है जाणैं है सो अपनें आत्मकार्यविषैं जागै है। बहुरि जो इस व्यवहारमैं तत्पर है सावधान है स्वरूपकी दृष्टि नांही है सो व्यवहारमैं जागता कहिये ॥ ३१ ॥

आगैं यह कहै है जो—योगी पूर्वोक्त कथनकूं जाणि व्यवहारकूं छोडि आत्मकार्य करै है;—

गाथा—इय जाणिऊण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं ।
झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेहिं[1] ॥३२॥

संस्कृत—इति ज्ञात्वा योगी व्यवहारं त्यजति सर्वथा सर्वम् ।
ध्यायति परमात्मानं यथा भणितं जिनवरेन्द्रैः ॥३२॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त कथनकूं जाणिकरि योगी ध्यानी मुनि है सो व्यवहार सर्व प्रकारही छोडै है अर परमात्माकूं ध्यावै है, कैसैं ध्यावै है—जैसैं जिनवरेंद्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेवनैं कह्या है तैसैं ध्यावै है ॥

भावार्थ—सर्वथा सर्व व्यवहारकूं छोडनां कह्या, ताका तौ आशय यह जो—लोकव्यवहार तथा धर्मव्यवहार सर्वही छोडे ध्यान होय है। अर जैसैं जिनदेवनैं कह्या तैसैं परमात्माका ध्यान करनां सो अन्यमती

१—मु. सं. प्रतिमें ' जिणवरिंदेण ' ऐसा पाठ है, जिसकी संस्कृत ' जिनवरेन्द्रेण ' है।

परमात्माका स्वरूप अनेक प्रकार अन्यथा कहै है, ताका ध्यानका भी अन्यथा उपदेश करै है, ताका निषेध है। जिनदेवनैं परमात्माका तथा ध्यानका स्वरूप कह्या सो सत्यार्थ है प्रमाणभूत है तैसैंही योगीश्वर करैं हैं, तेई निर्वाणकूं पावैं हैं ॥ ३२ ॥

आगैं जिनदेवनैं जैसैं ध्यान अध्ययनकी प्रवृत्ति कही है तैसैं उपदेश करै है;—

गाथा—पंचमहव्वयजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
रयणत्तयसंजुत्तो झाणज्झयणं सदा कुणह ॥ ३३ ॥

गाथा—पंचमहाव्रतयुक्तः पंचसु समितिषु तिसृषु गुप्तिषु।
रत्नत्रयसंयुक्तः ध्यानाध्ययनं सदा कुरु ॥ ३३ ॥

अर्थ—आचार्य कहैं है जो—पांच महाव्रतकरियुक्त भया, बहुरि पांच समिति तीन गुप्ति इनिविषैं युक्त भया, बहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जो रत्नत्रय तिसकरि संयुक्त भया, हे मुनिजनहो? तुम ध्यान अर अध्ययन शास्त्रका अभ्यास ताहि करौ ॥

भावार्थ—अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रहत्याग ये तौ पांच महाव्रत, अर ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपणा प्रतिष्ठापना ये पांच समिति, अर मन वचन कायका निग्रहरूप तीन गुप्ति, यहु तेरह प्रकार चारित्र जिनदेवनै कह्या है तिसकरि युक्त होय, अर निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कह्या है इनिकरि युक्त होय करि ध्यान अर अध्ययन करवाका उपदेश है। तहां प्रधान तौ ध्यान है ही अर तिसमैं न थंभै तब शास्त्रका अभ्यासमैं मन लगावै यही ध्यानतुल्य है जातैं शास्त्रमैं परमात्माका स्वरूपका निर्णय है सो यह ध्यानहीका अंग है ॥ ३३ ॥

आगैं कहै है जो रत्नत्रयकूं आराधै है सो जीव आराधक ही है,

गाथा—रयणत्तयमाराहं जीवो आराहओ मुणेयव्वो ।
आराहणाविहाणं तस्स फलं केवलं णाणं ॥३४॥

संस्कृत—रत्नत्रयमाराधयन् जीवः आराधकः ज्ञातव्यः ।
आराधनाविधानं तस्य फलं केवलज्ञानम् ॥३४॥

अर्थ—रत्नत्रय जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ताहि आराधता जीव है सो आराधक जाननां, अर जो आराधनाका विधान है ताका फल केवलज्ञान है ॥

भावार्थ—जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं आराधै है सो केवलज्ञानकूं पावै है सो जिनमार्गमैं प्रसिद्ध है ॥ ३४ ॥

आगैं कहै है जो शुद्ध आत्मा है सो केवलज्ञान है अर केवलज्ञान है सो शुद्धात्मा है;—

गाथा—सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरसी य ।
सो जिणवरेहिं भणियो जाण तुमं केवलं णाणं॥३५॥

संस्कृत—सिद्धः शुद्धः आत्मा सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च ।
सः जिनवरैः भणितः जानीहि त्वं केवलं ज्ञानम्॥३५॥

अर्थ—आत्मा जिनवर सर्वज्ञदेवनैं ऐसा कह्या है, कैसा है— सिद्ध; काहूकरि निपज्या नांही है स्वयंसिद्ध है, बहुरि शुद्ध है कर्ममलतैं रहित है, बहुरि सर्वज्ञ है सर्व लोकालोककूं जानै है बहुरि सर्वदर्शी है सर्व लोक अलोककूं देखै है, ऐसा आत्मा है सो मुने ! तिसहीकूं तू केवलज्ञान जांणि अथवा तिस केवलज्ञानहीकूं आत्मा जांणि । आत्मामैं अर ज्ञानमैं कछू प्रदेश भेद है नांही, गुण गुणी भेद है सो गौण है । यह आराधनाका फल पूर्वै केवलज्ञान कह्या, सो है ॥ ३५ ॥

आगैं कहै है जो योगी जिनदेवके मतकरि रत्नत्रयकूं आराधै है सो आत्माकूं ध्यावै है;—

गाथा—रयणत्तयं पि जोइ आराहइ जो हु जिणवरमएण।
सो झायदि अप्पाणं परिहरइ परं ण संदेहो ॥३६॥

संस्कृत—रत्नत्रयमपि योगी आराधयति यः स्फुटं जिनवरमतेन।
सः ध्यायति आत्मानं परिहरति परं न सन्देहः ॥३६॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि जिनेश्वरदेवके मतकी आज्ञाकरि रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं निश्चयकरि आराधै है सो प्रगटपणैं आत्माहीकूं ध्यावै है जातैं रत्नत्रय आत्माका गुण है। अर गुण गुणीमैं भेद नांही, रत्नत्रयकी आराधना है सो आत्माहीका आराधन है सो ही परद्रव्यकूं छोडै है यामैं संदेह नांही ॥ ३६ ॥

भावार्थ—सुगम है ॥ ३६ ॥

आगैं पूछ्या जो आत्माविषैं रत्नत्रय कैसैं है ताका उत्तर आचार्य कहै है;—

गाथा—जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं णेयं।
तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं ॥३७॥

संस्कृत—यत् जानाति तत् ज्ञानं यत्पश्यति तच्च दर्शनं ज्ञेयम्।
तत् चारित्रं भणितं परिहारः पुण्यपापानाम् ॥३७॥

अर्थ—जो जाणै सो ज्ञान है, जो देखै सो दर्शन है, बहुरि जो पुण्य अर पापका परिहार है सो चारित्र है; ऐसैं जाननां ॥

भावार्थ—इहां जाननेंवाला अर देखनेंवाला अर त्यागनेंवाला दर्शन ज्ञान चारित्रकूं कह्या सो ये तौ गुणीके गुण हैं ते कर्त्ता होय नांही यातैं जानन देखन त्यागन क्रियाका कर्त्ता आत्मा है, यातैं ये तीनूं आत्माही हैं, गुण गुणीमैं किछू प्रदेश भेद है नांही। ऐसैं रत्नत्रय है सो आत्माही है, ऐसैं जाननां ॥ ३७ ॥

आगैं इसही अर्थकूं अन्य प्रकार करि कहै है,—

गाथा—तच्चरुई सम्मत्तं तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं ।
चारित्तं परिहारो पयंपियं जिणवरिंदेहिं ॥३८॥

संस्कृत—तत्वरुचिः सम्यक्त्वं तत्वग्रहणं च भवति संज्ञानम् ।
चारित्रं परिहारः प्रजल्पितं जिनवरेन्द्रैः ॥३८॥

अर्थ—तत्वरुचि है सो सम्यक्त्व है, तत्त्वका ग्रहण है सो सम्यग्ज्ञान है, परिहार है सो चारित्रहै, ऐसैं जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेवनैं कह्या है॥

भावार्थ—जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा बंध मोक्ष इनि तत्वनिका श्रद्धान रुचि प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है, बहुरि तिनिहीका जाननां सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि परद्रव्यका परिहार तिसंसंबंधी क्रियाकी निवृत्ति सो चारित्र है; ऐसैं जिनेश्वरदेवनैं कह्या है, इनिकूं निश्चय व्यवहार नय करि आगमकै अनुसार साधनां ॥ ३८ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनकूं प्रधानकरि कहै है;—

गाथा—दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं ।
दंसणविहीणपुरिसो न लहइ तं इच्छियं लाहं ॥३९॥

संस्कृत—दर्शनशुद्धः शुद्धः दर्शनशुद्धः लभते निर्वाणम् ।
दर्शनविहीनपुरुषः न लभते तं इष्टं लाभम् ॥३९॥

अर्थ—जो पुरुष दर्शनकरि शुद्ध है सो ही शुद्ध है जातैं दर्शन शुद्ध है सो निर्वाणकूं पावै है, बहुरि जो पुरुष सम्यग्दर्शनकरि रहित है सो पुरुष ईप्सित लाभ जो मोक्ष ताहि न पावै है॥

भावार्थ—लोकमैं प्रसिद्ध है जो कोई पुरुष कछू वस्तु चाहै ताकी रुचि प्रतीति श्रद्धा न होय तौ ताकी प्राप्ति न होय यातैं सम्यग्दर्शनही निर्वाणकी प्राप्ति विषैं प्रधान है ॥ ३९ ॥

आगैं कहै है जो—ऐसा सम्यग्दर्शनका ग्रहणका उपदेश सार है ताकूं जो मानैं है सो सम्यत्क्व है;—

गाथा—इय उवएसं सारं जरमरणहरं खु मण्णए जं तु।
तं सम्मत्तं भणियं सवणाणं सावयाणं पि ॥४०॥

संस्कृत—इति उपदेशं सारं जरामरणहरं स्फुटं मन्यते यत्तु।
तत् सम्यक्त्वं भणितं श्रमणानां श्रावकाणामपि ॥४०॥

अर्थ—इति कहिये ऐसा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका उपदेश है सो सार है जरा मरणका हरणेंवाला है तहां याकूं जो मानैं है श्रद्धै है सो ही सम्यक्त्व कह्या है सो मुनिनिकूं तथा श्रावकनिकूं सर्वहीकूं कह्या है तातैं सम्यक्त्वपूर्वक ज्ञान चारित्रकूं अंगीकार करौ॥

भावार्थ—जीवके जे ते भाव हैं तिनिमैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र सार हैं उत्तम हैं जीवके हित हैं, बहुरि तिनिमैं भी सम्यग्दर्शन प्रधान हैं जातैं याविनां ज्ञान चारित्रभी मिथ्या कहावै है तातैं सम्यग्दर्शनकूं प्रधान जांणि पहलैं अंगीकार करनां, यह उपदेश मुनि तथा श्रावक सवहीकूं है ॥ ४० ॥

आगैं सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कहै है;—

गाथा—जीवाजीवविहत्ती जोई जाणेइ जिणवरमएण।
तं सण्णाणं भणियं अवियत्थं सव्वदरसीहिं ॥ ४१ ॥

संस्कृत—जीवाजीवविभक्तिं योगी जानाति जिनवरमतेन।
तत् संज्ञानं भणितं अवितथं सर्वदर्शिभिः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जो योगी मुनि जीव अजीव पदार्थका भेद जिनवरके मतकरि जाणै है सो सम्यग्ज्ञान सर्वदर्शी सर्वका देखनेंवाला सर्वज्ञदेवनैं कह्या है सो ही सत्यार्थ है, अन्य छद्मस्थका कह्या सत्यार्थ नांही असत्यार्थ है, सर्वज्ञका कह्या ही सत्यार्थ है॥

भावार्थ—सर्वज्ञदेव जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये छह द्रव्य कहे हैं तिनिमैं जीव तौ दर्शनज्ञानमयी चेतना स्वरूप कह्या है सो अमूर्त्तीक है स्पर्श रस गंध वर्ण इनितैं रहित है अर पुद्गल आदि पांच अजीव कहे हैं ते अचेतन हैं जड हैं। तिनिमैं पुद्गल स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दसहित मूर्तीक है इंद्रियगोचर है, अन्य अमूर्तीक हैं; तहां आकाशादि च्यारि तौ जैसैं हैं तैसैं तिष्ठै हैं, अर जीव पुद्गलकै अनादिसंबंध है छद्मस्थकै इंद्रियगोचर पुद्गलस्कंध हैं तिनिकूं ग्रहणकरि रागद्वेष मोहरूप परिणमै है शरीरादिकूं आपा मानै है तथा इष्ट अनिष्ट मांनि रागद्वेषरूप होय है यातैं नवीन पुद्गल कर्मरूप होय बंधकूं प्राप्त होय है, यह निमित्त नैमित्तिकभाव है; ऐसैं यह जीव अज्ञानी भया संता जीव पुद्गलका भेदकूं न जांनि मिथ्याज्ञानी होय है। यातैं आचार्य कहै है जो जिनदेवके मततैं जीव अजीवका भेद जानि सम्यग्ज्ञानका स्वरूप जाननां, बहुरि यह जिनदेव कह्या सो ही सत्यार्थ है प्रमाण नयकरि ऐसैं ही सिद्ध होय है जातैं जिनदेव सर्वज्ञ है सो सर्व वस्तुकूं प्रत्यक्ष देखि-करि कह्या है। अन्यमती छद्मस्थ हैं तिनिनैं अपनी बुद्धिमैं आया तैसैं कल्पना करि कह्या है सो प्रमाणसिद्ध नांही; तिनिमैं केई वेदान्ती तौ एक ब्रह्ममात्र कहैं है अन्य किछू वस्तुभूत नांही मायारूप अवस्तु है ऐसैं मानैं हैं, अर केई नैयायिक वैशेषिक जीवकूं सर्वथा नित्य सर्वगत कहैं हैं जीवकै अर ज्ञानगुणकै सर्वथा भेद मानैं हैं अर अन्य कार्यमात्र हैं तिनिकूं ईश्वर करै है ऐसैं मानैं हैं, बहुरि केई सांख्यमती पुरुषकूं उदासीन चैतन्यस्वरूप मांनि सर्वथा अकर्त्ता मानैं हैं ज्ञानकूं प्रधा-नका धर्म मानैं हैं, केई बौद्धमती सर्व वस्तुकूं क्षणिक मानैं हैं सर्वथा अनित्य मानैं हैं तिनिमैं भी मतभेद अनेक हैं, केई विज्ञानमात्र तत्व मानैं हैं केई सर्वथा शून्य मानैं हैं कोई अन्यप्रकार मानैं हैं, बहुरि मीमांसक

कर्मकांडमात्रही तत्व मानैं हैं जीवकूं अणुमात्र मानैं है तौऊ कछू परमार्थ नित्य वस्तु नांही इत्यादि मानैं हैं, बहुरि चार्वाकमती जीवकूं तत्व मानैं नांही पंचभूततैं जीवकी उत्पत्ति मानैं हैं। इत्यादि बुद्धिकल्पित तत्व मांनि परस्पर विवाद करैं हैं, सो युक्तही है—वस्तुका पूर्णरूप दीखै नांही तब जैसैं अंधे हस्तीका विवाद करै तैसैं विवादही होय; तातैं जिनदेव सर्वज्ञ है वस्तुका पूर्णरूप देख्या है सोही कह्या है सो प्रमाण नयनिकरि अनेकान्तस्वरूप सिद्ध होय है सो इनिकी चर्चा हेतुवादके जैनके न्यायशास्त्र है तिनितैं जानी जाय है; यातैं यह उपदेश है—जिनमतमैं जीवाजीवका स्वरूप सत्यार्थ कह्या है ताकूं जानैं है सो सम्यग्ज्ञान है ऐसा जांणि जिनदेवकी आज्ञा मांनि सम्यग्ज्ञानकूं अंगीकार करनां, याहीतैं सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति होय है, ऐसैं जाननां ॥

आगैं सम्यक्चारित्रका स्वरूप कहै हैं;—

गाथा—जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं।
तं चारित्तं भणियं अवियप्पं कम्मरहिएहिं ॥ ४२ ॥

संस्कृत—यत् ज्ञात्वा योगी परिहारं करोति पुण्यपापानाम्।
तत् चारित्रं भणितं अविकल्पं कर्मरहितैः ॥ ४२ ॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि है सो तिस पूर्वोक्त जीवका भेदरूप सत्यार्थ सम्यग्ज्ञान ताहि जानिकरि अर पुण्य तथा पाप इनि दोऊनिका परिहार करै त्यागकरै सो चारित्र घातिकर्मतैं रहित जो सर्वज्ञ देव तानैं कह्या है, कैसा है निर्विकल्प है प्रवृत्तिरूप जे क्रियाके विकल्प तिनिकरि रहित है ॥ ४२ ॥

भावार्थ—चारित्र निश्चय व्यवहार भेदकरि दोय भेदरूप है, तहां महाव्रत समिति गुप्तिके भेदकरि कह्या है सो तौ व्यवहार है तिनिमैं प्रवृत्तिरूप क्रिया है सो शुभकर्मरूप बंध करै है अर इनि क्रियानिमैं

जेता अंशा निवृत्ति है ताका फल बंध नांही है, ताका फल कर्मकी एक देश निर्जरा है। अर सर्व कर्मतैं रहित अपनां आत्मस्वरूप होनां सो निश्चय चारित्र है ताका फल कर्मका नाशही है, सो यह पुण्य पापके परिहाररूप निर्विकल्प है, पापका तौ त्याग मुनिकै है ही, अर पुण्यका त्याग ऐसैं जो-शुभ क्रियाका फल पुण्य कर्मका बंध है ताकी वांछा नांही है; बंधके नाशका उपाय निर्विकल्प निश्चय चारित्रका प्रधान उद्यम है। ऐसैं इहां निर्विकल्प पुण्य पापकरि रहित ऐसा निश्चय चारित्र कह्या है। चौदहवें गुणस्थानके अंतसमय पूर्ण चारित्र होय है, तिसतैं लगताही मोक्ष होय है ऐसा सिद्धांत है॥ ४२॥

आगैं कहै है जो-ऐसे रत्नत्रयसहित भया तप संयम समिति पालता शुद्धात्माकूं ध्यावता मुनि निर्वाण पावै है;—

गाथा—जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए।
सो पावइ परमपयं झायंतो अप्पयं सुद्धं ॥४३॥

संस्कृत—यः रत्नत्रययुक्तः करोति तपः संयतः स्वशक्त्या।
सः प्राप्नोति परमपदं ध्यायन् आत्मानं शुद्धम्॥४३॥

अर्थ—जो मुनि रत्नत्रयसंयुक्त भया संता संयमी अपनी शक्तिसारू तप करै है सो शुद्ध आत्माकूं ध्यावता संता परमपद जो निर्वाण ताहि पावै है॥

भावार्थ—जो मुनि संयमी पंच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति यह तेरह प्रकार चारित्र सोही प्रवृत्तिरूप व्यवहार चारित्र संयम ताकूं अंगीकार करि अर पूर्वोक्त प्रकार निश्चय चारित्रकरि युक्त भया अपनी शक्तिसारू उपवास कायक्लेशादि बाह्य तप करै है सो मुनि अन्तरंग तप जो ध्यान ताकरि शुद्ध आत्माकूं एकाग्र चित्तकरि ध्यावता सन्ता निर्वाणकूं पावै है॥ ४३॥

आगैं कहै है जो—ध्यानी मुनि ऐसा भया परमात्माकूं ध्यावै है;—

गाथा—तिहि तिण्णि धरवि णिच्चं तियरहिओ तह तिएण परियरिओ।
दोदोसविप्पमुक्को परमप्पा झायए जोई ॥४४॥

संस्कृत—त्रिभिः त्रीन् धृत्वा नित्यं त्रिकरहितः तथा त्रिकेण परिकरितः।
द्विदोषविप्रमुक्तः परमात्मानं ध्यायते योगी ॥४४॥

अर्थ—'त्रिभिः' कहिये मन वचन कायकरि, "त्रीन्" कहिये वर्षा शीत उष्ण तीन कालयोग तिनिहि धरि करि, बहुरि त्रिकरहित कहिये माया मिथ्या निदान तीन शल्य तीनकरि रहित भया, तथा "त्रिकेण परिकरितः" दर्शन ज्ञान चारित्र करि मंडित भया, बहुरि दो दोष कहिये राग द्वेष तेही भये दोष तिनिकरि रहित भया योगी ध्यानी मुनि है सो परमात्मा जो सर्वकर्मरहित शुद्ध परमात्मा ताकूं ध्यावै है॥

भावार्थ—मन वचन कायकरि तीन काल योग धरि परमात्माकूं ध्यावै सो ऐसें कष्ट मैं दृढ रहै तब जाणिये याकै ध्यानकी सिद्धि है, कष्ट आये चिगिजाय तब ध्यानकी सिद्धि काहेकी? बहुरि कोई प्रकारकी चित्तमैं शल्य रहै तब चित्त एकाग्र होय नांही तब ध्यान कैसैं होय? तातैं शल्य रहित कह्या, बहुरि श्रद्धान ज्ञान आचरण यथार्थ न होय तब ध्यान काहेका तातैं दर्शन ज्ञान चारित्र मंडित कह्या, बहुरि राग द्वेष इष्ट अनिष्ट बुद्धि रहै तब ध्यान कैसैं होय? तातैं परमात्माका ध्यान करै सो ऐसा होय करै, यह तात्पर्य है॥ ४४॥

आगैं कहै है जो—ऐसा होय सो उत्तम सुखकूं पावै है;—

गाथा—मयमायकोहरहिओ लोहेण विवज्जिओ य जो जीवो।
णिम्मलसहावजुत्तो सो पावइ उत्तमं सोक्खं ॥४५॥

संस्कृत—मदमायाक्रोधरहितः लोभेन विवर्जितश्च यः जीवः ।
निर्मलस्वभावयुक्तः सः प्राप्नोति उत्तमं सौख्यम् ४५

अर्थ—जो जीव मद माया क्रोध इनिकरि रहित होय बहुरि लोभकरि विशेषकरि रहित होय सो जीव निर्मल विशुद्ध स्वभावयुक्त भया उत्तम सुखकूं पावै है ॥

भावार्थ—लोकमैं ऐसैं है जो मद कहिये अतिमानी बहुरि माया कपट अर क्रोध इनिकरि रहित होय अर लोभकरि विशेष रहित होय सो सुख पावै है, तीव्रकषायी अति आकुलतायुक्त होय निरंतर दुखी रहै है; सो यह रीति मोक्षमार्गमैं भी जाणूं—जो क्रोध मान माया लोभ च्यार कषायतैं रहित होय है तब निर्मल भाव होय तब यथाख्यात चारित्र पाय उत्तम सुख पावै है ॥ ४५ ॥

आगैं कहै है जो विषय कषायनिमैं आसक्त है परमात्माकी भावनातैं रहित है रौद्रपरिणामी है सो जिनमतसूं पराङ्मुख है सो मोक्षके सुखनिकूं नांही पावै है,—

गाथा—विसयकसाएहिं जुदो रुद्दो परमप्पभावरहियमणो ।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणमुद्दपरम्मुहो जीवो ॥४६॥

संस्कृत—विषयकषायैः युक्तः रुद्रः परमात्मभावरहितमनाः ।
सः न लभते सिद्धिसुखं जिनमुद्रापराङ्मुखः जीवः ४६

अर्थ—जो जीव विषय कषायनिकरि युक्त है, बहुरि रुद्रपरिणामी है हिंसादिक विषयकषायादिक पापनिविषैं हर्षसहित प्रवर्त्तै है, बहुरि परमात्माकी भावनाकरि रहित है चित्त जाका ऐसा जीव जिनमुद्रातैं पराङ्मुख है सो ऐसा सिद्धिसुख जो मोक्षका सुख ताहि नांही पावै है ॥

भावार्थ—जिनमतमैं ऐसा उपदेश है जो हिंसादिक पापनितैं विरक्त अर विषय कषायनिमैं आसक्त नांही अर परमात्माका स्वरूप जाणि

तिसकी भावनासहित जीव होय है सो मोक्ष पावै है तातैं जिनमतकी मुद्रासूं जो पराङ्मुख है ताकै काहेतैं मोक्ष होय संसारहीमैं भ्रमै है। इहां रुद्रका विशेषण किया है ताका ऐसा भी आशय हैं जो रुद्र ग्यारा होय हैं ते विषय कषायनिमैं आसक्त होय जिनमुद्रातैं भ्रष्ट होय हैं तिनकै मोक्ष न होय है, तिनिकी कथा पुराणनितैं जाननी ॥ ४६ ॥

आगैं कहै है जो—जिनमुद्रातैं मोक्ष होय है सो यहु मुद्रा जिनि जीवनिकूं न रुचै है ते संसारमैं ही तिष्टैं हैं;—

गाथा—जिणमुद्दं सिद्धिसुहं हवेइ णियमेण जिणवरुद्दिट्ठा।
सिविणे वि ण रुच्चइ पुण जीवा अच्छंति भवगहणे ४७

संस्कृत—जिनमुद्रा सिद्धिसुखं भवति नियमेन जिनवरोद्दिष्टा।
स्वप्नेऽपि न रोचते पुनः जीवाः तिष्ठंति भवगहने ४७

अर्थ—जिनमुद्रा है सो ही सिद्धिसुख है मुक्तिसुखही है, यह कारणविषैं कार्यका उपचार जाननां, जिनमुद्रा मोक्षका कारण है मोक्षसुख ताका कार्य है कैसी है जिनमुद्रा—जिन भगवाननैं जैसी कही है तैसीही है। तहां ऐसी जिनमुद्रा जो जीवकूं साक्षात् तौ दूरिही रहो स्वप्नविषैंभी कदाचित् भी न रुचै है ताका स्वप्ना आवै है तौहू अवज्ञा आवै है तौ सो जीव संसाररूप गहन वनविषैं तिष्ठै है मोक्षके सुखकूं नांही पावै है॥

भावार्थ—जिनदेवभाषित जिनमुद्रा मोक्षका कारण है सो मोक्षरूप ही है जातैं जिनमुद्राके धारक वर्तमानमैंभी स्वाधीन सुखकूं भोगवैं हैं अर पीछैं मोक्षके सुख पावै है। अर जा जीवकूं यह न रुचै है सो मोक्ष नांही पावै हैं संसारहीमैं रहैं हैं॥ ४७॥

आगैं कहै हैं जो परमात्माकूं ध्यावै हैं सो योगी लोभरहित होय नवीन कर्मका आस्रव नांही करैं हैं;—

गाथा—परमप्पय झायंतो जोई मुचेइ मलदलोहेण ।
णादियदि णवं कम्मं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥४८॥

संस्कृत-परमात्मानं ध्यायन् योगी मुच्यते मलदलोभेन ।
नाद्रियते नवं कर्म निर्दिष्टं जिनवरेन्द्रैः ॥४८॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी परमात्माकूं ध्यावता संता वर्ते है सो मल-का देनहारा जो लोभकषाय ताकरि छूटिये हैं ताकैं लोभ मल न लागैं हैं याहीतैं नवीन कर्मका आस्रव ताकै न होय यह जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेवनैं कह्या है ॥

भावार्थ—मुनिभी होय अर परजन्मसंबंधी प्रातिका लोभ होय निदान करैं ताकैं परमात्माका ध्यान नांहीं यातैं जो परमात्माका ध्यान करै ताकै इस लोक परलोकसंबंधी परद्रव्यका कछू भी लोभ न होय है याहीतैं ताकै नवीनकर्मका आस्रव न होय है, यह जिनदेव कही है। यह लोभ-कषाय ऐसा है जो—दशम गुणस्थान तांई पहुंचि अव्यक्त होय भी आत्माकै मल लगावै है तातैं याका काटनाही युक्त है। अथवा जहां तांई मोक्षकी चाहरूप लोभ रहै तहां तांई मोक्ष न होय तातैं लोभका अत्यन्त निषेध है ॥ ४८ ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं निर्लोभी होय दृढ सम्यक्त्व ज्ञान चारित्रवान होय परमात्माकूं ध्यावै सो परमपदकूं पावै है;—

गाथा—होऊण दिढचरित्तो दिढसम्मत्तेण भावियमईओ ।
झायंतो अप्पाणं परमपयं पावए जोई ॥४९॥

संस्कृत-भूत्वा दृढचरित्रः दृढसम्यक्त्वेन भावितमतिः ।
ध्यायन्नात्मानं परमपदं प्राप्नोति योगी ॥४९॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार योगी ध्यानी मुनि दृढसम्यक्त्वकरि भावित है मति जाकी बहुरि दृढ है चारित्र जाकै ऐसा होयकरि आत्माकूं ध्यावता संता परमपद जो परमात्मपद ताकूं पावै है ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप दृढ होय परीषह आये न चिगै, ऐसैं आत्माकूं ध्यावै सो परमपद पावै यह तात्पर्य है॥ ४८॥

आगैं दर्शन ज्ञान चारित्रतैं निर्वाण होय है ऐसा कहते आये सो तहां दर्शन ज्ञान तौ जीवका स्वरूप है ते जाणें, अर चारित्र कहा है? ऐसी आशंकाका उत्तर कहै है,—

गाथा—चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो।
सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो ॥५०॥

संस्कृत—चरणं भवति स्वधर्मः धर्मः सः भवति आत्मसमभावः।
स रागरोपरहितः जीवस्य अनन्यपरिणामः ॥५०॥

अर्थ—स्वधर्म कहिये आत्माका धर्म है सो चरण कहिये चारित्र है, वहुरि धर्म है सो आत्मासमभाव है सर्व जीवनिविषैं समानभाव है जो अपना धर्म है सोही सर्व जीवनिमैं है अथवा सर्व जीवनिकूं आपसमान माननां है, वहुरि जो आत्मस्वभावसूं रागद्वेषकरि रहित है काहूतैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि नांही है ऐसा चारित्र है सो जैसैं जीवके दर्शन ज्ञान है तैसैंही अनन्य परिणाम है जीवहीका भाव है॥

भावार्थ—चारित्र है सो ज्ञान विषैं रागद्वेषरहित निराकुलतारूप थिरता भाव है सो जीवहीका अभेदरूप परिणाम है, कछू अन्य वस्तु नांही है॥ ५०॥

आगैं जीवके परिणामकै स्वच्छताकूं दृष्टान्तकरि दिखावै है,

गाथा—जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो।
तह रागादिविजुत्तो जीवो हवदि हु अणण्णविहो ५१

संस्कृत—यथा स्फटिकमणिः विशुद्धः परद्रव्ययुतः भवत्यन्यः सः
तथा रागादिवियुक्तः जीवः भवति स्फुटमन्यान्यविधः

अर्थ—जैसैं स्फटिकमणि विशुद्ध है निर्मल है उज्ज्वल है सो परद्रव्य जो पीत रक्त हरित पुष्पादिक तिनिकरि युक्त भया अन्य सा दीखै पीतादिवर्णमयी दीखै, तैसैं जीव है सो विशुद्ध है स्वच्छस्वभाव है सो रागद्वेषादिक भावकरि युक्त भया संता अन्य अन्य प्रकार भया दीखै है यह प्रगट है ॥

भावार्थ—इहां ऐसा जाननां जे रागादि विकार हैं ते पुद्गलके विकार हैं अर यहु जीवके ज्ञानविषैं आय झलकै तब तिनितैं उपयुक्त भया ऐसैं जानै जो ये भाव मेरेही हैं तिनिका भेदज्ञान न होय तब जीव अन्य अन्य प्रकाररूप अनुभवमैं आवै है तहां स्फटिकमणिका दृष्टान्त है ताकै अन्यद्रव्य पुष्पादिकका डांक लागै तब अन्यसा दीखै है, ऐसैं जीवके स्वच्छभावकी विचित्रता जाननीं ॥ ५१ ॥

याहीतैं आगै कहै है जो जेतैं मुनिकै रागद्वेषका अंश होय है तेतैं सम्यग्दर्शनकूं धारता भी ऐसा होय है;—

गाथा—देव गुरुम्मिय भत्तो साहम्मिय संजदेसु अणुरत्तो ।
सम्मत्तमुव्वहंतो झाणरओ होइ जोई सो ॥५२॥

संस्कृत—देवे गुरौ च भक्तः साधर्मिके च संयतेषु अनुरक्तः ।
सम्यक्त्वमुद्वहन् ध्यानरतः भवति योगी सः ॥५२॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्त्वकूं धारता संता है अर जे तैं यथाख्यात चारित्रकूं न प्राप्त होय है तेतैं देव जो अरहंत सिद्ध अरु गुरु जो शिक्षादीक्षाका देनेवाला इनि विषैं तौ भक्तियुक्त होय है इनिकी भक्ति विनय सहित होय है, बहुरि अन्य संयमी मुनि आपसमान धर्मसहित हैं तिनिविषैं अनुरक्त है अनुरागसहित होय है सो ही मुनि ध्यानविषैं प्रीतिवान होय है, अर मुनि होयकरिभी देव गुरु साधर्मीनिविषैं भक्ति अनुरागसहित न होय ताकूं ध्यानकै विषैं रुचिवान न कहिये जातैं ध्यान

होय ताकै ध्यानवालासूं रुचि प्रीति होय, ध्यानवाले न रुचैं तब जानिये याकूं ध्यान भी न रुचै ऐसैं जाननां ॥ ५२ ॥

आगैं कहै है जो—ध्यान सम्यग्ज्ञानीकै होय है सो ही तप करि कर्मका क्षय करै है;—

गाथा—उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण ॥५३॥

संस्कृत—उग्रतपसाऽज्ञानी यत् कर्म क्षपयति भवैर्बहुकैः।
तज्ज्ञानी त्रिभिः गुप्तः क्षपयति अन्तर्मुहूर्त्तेन ॥५३॥

अर्थ—अज्ञानी है सो उग्र कहिये तीव्र जो तप ताकरि बहुत भवनिकरि जो कर्म क्षय करै है तिस कर्मकूं ज्ञानी मुनि तीन गुप्तिकरि युक्त भया अन्तर्मूहूर्तकरि क्षय करै है ॥

भावार्थ—जो ज्ञानका सामर्थ्य है सो तीव्र तपकाभी सामर्थ्य नांही जातैं ऐसैं है—जो अज्ञानी अनेक कष्ट सहि करि तीव्र तपकूं करतां संता कोड्यां भवनिकरि जो कर्मका क्षय करै सो आत्म भावनासहित ज्ञानी मुनि तिस कर्मकूं अन्तर्मुहूर्तमैं क्षय करै है, यह ज्ञानका सामर्थ्य है ॥ ५३ ॥

आगैं कहै है जो इष्ट वस्तुका संबंधकरि परद्रव्यविषैं रागद्वेष करै है सो तिस भाव करि अज्ञानी होय है, ज्ञानी यातैं उलटा है:—

गाथा—सुहजोएण सुभावं परदव्वे कुणइ रागदो साहू।
सो तेण हु अण्णाणी णाणी एत्तो हु विवरीओ ॥५४॥

संस्कृत—शुभयोगेन सुभावं परद्रव्ये करोति रागतः साधुः।
सः तेन तु अज्ञानी ज्ञानी एतस्मात्तु विपरीतः ॥५४॥

अर्थ—शुभ योग कहिये आपकै इष्ट वस्तु ताका योग संबंधकरि परद्रव्यविषैं सुभाव कहिये प्रीतिभाव ताहि करै है सो प्रगट राग द्वेष

है; इष्टविषैं राग भया तव अनिष्ट वस्तुविषैं द्वेषभाव होयहीं; ऐसैं जो राग द्वेष करै है सो तिस कारणकरि रागी द्वेपी अज्ञानी है, वहुरि यातैं विपरीत कहिये उलटा है परद्रव्यविषैं राग द्वेष नांहीं करै है सो ज्ञानी है ॥

भावार्थ—ज्ञानी सम्यग्दृष्टी मुनिकै परद्रव्यविषैं रागद्वेष नांहीं है जातैं राग जाकूं कहिये जो—परद्रव्यकूं सर्वथा इष्ट मांनि राग करै तैसैंही अनिष्ट मांनि द्वेष करै, सो सम्यग्ज्ञानी परद्रव्यकूं इष्ट अनिष्ट कल्पै नांहीं तव काहेकूं राग द्वेष होय, चारित्रमोहके उदयतैं कछू धर्मराग होय ताकूं भी रोग जांणि भला न जाणैं तव अन्यसूं कैसैं राग होय, परद्रव्यसूं राग द्वेष करै सो तौ अज्ञानी है; ऐसैं जाननां ॥ ५४ ॥

आगैं कहै है जो जैसैं परद्रव्यकै विषैं रागभाव होय है तैसैं मोक्षकै निमित्तभी राग होय तौ सो भी राग आस्रवका कारण है, सो भी ज्ञानी न करै;—

गाथा—आसवहेदू य तहा भावं मोक्खस्स कारणं हवदि ।
सो तेण हु अण्णाणी आदसहावा हु विवरीओ ॥५५॥

संस्कृत—आस्रवहेतुश्च तथा भावः मोक्षस्य कारणं भवति ।
सः तेन तु अज्ञानी आत्मस्वभावात्तु विपरीतः ॥५५॥

अर्थ—जैसैं परद्रव्यविषैं राग कर्मवंधका कारण पूर्वैं कह्या तैसाहीं राग भाव जो मोक्षनिमित्तभी होय तौ आस्रवहीका कारण है कर्मका वंधही करै है तिस कारणकरि जो मोक्षकूं परद्रव्यकी ज्यों इष्ट मानि तैसैंही रागभाव करै तौ सो जीव मुनिभी अज्ञानी है जातैं कैसा है सो आत्मस्वभावतैं विपरीत है, आत्मस्वभावकूं जान्यां नांही ॥

भावार्थ—मोक्ष तौ सर्व कर्मनितैं रहित अपनांही स्वभाव है आपकूं सर्व कर्म रहित होनां, तातैं ये भी रागभाव ज्ञानीके न होय; यद्यपि

चारित्र मोहका उदय होय तौ तिस रागकूं बंधका कारण जांनि रोगवत् छोड्या चाहै तौ ज्ञानी है ही, अर इस रागभावकूं भला जांणि आप करै तौ अज्ञानी है आत्माका स्वभाव सर्व रागादिकतैं रहित है ताकूं यानैं न जान्यां; ऐसैं रागभावकूं मोक्षका कारण अर भला जांनि करै ताका निषेध जाननां ॥ ५५ ॥

आगैं कहै हैं जो—कर्महीं मात्र सिद्धि मानै है तानैं आत्मस्वभाव जान्यां नांही सो अज्ञानी है जिनमततैं प्रतिकूल है;—

गाथा—जो कम्मजादमइओ सहावणाणस्स खंडदूसयरो ।
सो तेण दु अण्णाणी जिणसासणदूसगो भणिदो॥५६॥

संस्कृत—यः कर्मजातमतिकः स्वभावज्ञानस्य खंडदूषणकरः ।
सः तेन तु अज्ञानी जिनशासनदूषकः भणितः ॥५६॥

अर्थ—जो कर्महीकै विषैं उपजै है बुद्धि जाकै ऐसा पुरुष है सो स्वभावज्ञान जो केवलज्ञान ताकूं खंडरूप दूषणका करनैंवाला है, इंद्रियज्ञान खंडखंडरूप है अपनें अपनें विषयकूं जानैं है तिसमात्रही ज्ञानकूं मानैं है तिस कारणकरि ऐसैं माननैंवाला अज्ञानी है जिनमतका दूषण करै है ॥

भावार्थ—मीमांसकमती कर्मवादी हैं सर्वज्ञकूं मानैं नांही, इन्द्रियज्ञानमात्रही ज्ञानकूं मानैं हैं, केवलज्ञानकूं मानैं नांही, ताका इहां निषेध किया है जातैं जिनमतमैं आत्माका स्वभाव सर्वका जाननैंवाला केवलज्ञानस्वरूप कह्या है सो कर्मके निमित्ततैं आच्छादित होय इंद्रियनिकै द्वारै क्षयोपशमके निमित्ततैं खंडरूप भया खंड खंड विषयनिकूं जानैं है, कर्मका नाश भये केवलज्ञान प्रगट होय तब आत्मा सर्वज्ञ होय है ऐसैं मीमांसक मती मानैं नांही सो अज्ञानी है जिनमततैं

प्रतिकूल है कर्ममात्रहीके विषैं जाकी बुद्धि गत होय रही है; ऐसैं कोऊ और भी मानैं सो ऐसाही जाननां ॥ ५६ ॥

आगैं कहै है जो ज्ञान चारित्र रहित होय अर तप सम्यक्त्व रहित होय अर अन्य भी क्रिया भावपूर्वक न होय तौ ऐसैं केवल लिंग भेष-मात्रही करि कहा सुख है? किछू भी नांही;—

गाथा—णाणं चरित्तहीणं दंसणहीणं तवेहिं संजुत्तं ।
अण्णेसु भावरहियं लिंगग्गहणेण किं सोक्खं ॥५७॥

संस्कृत—ज्ञानं चारित्रहीनं दर्शनहीनं तपोभिः संयुक्तम् ।
अन्येषु भावरहितं लिंगग्रहणेन किं सौख्यम् ॥५७॥

अर्थ—जहां ज्ञान तौ चारित्ररहित है, बहुरि जहां तपकरि तौ युक्त है अर दर्शन जो सम्यक्त्व ताकरि रहित है, बहुरि अन्य भी आवश्यक आदि क्रिया हैं तिनि विषैं शुद्धभाव नांही है; ऐसैं लिंग जो भेष ताके ग्रहणविषैं कहा सुख है ॥

भावार्थ—कोई मुनि भेषमात्र तौ मुनि भयो अर शास्त्र भी पढैं हैं ताकूं कहै है जो—शास्त्र पढि ज्ञान तौ किया परन्तु निश्चय चारित्र जो शुद्ध आत्माका अनुभवरूप तथा बाह्य चारित्र निर्दोष न किया अर तपका क्लेश बहुत किया अर सम्यक्त्व भावना न भई अर आवश्यक आदि बाह्य क्रियाकरी अर भाव शुद्ध न लगाया तौ ऐसै बाह्य भेषमात्रमैं तौ क्लेश ही भया कुछ शान्तभावरूप सुख तौ न भया अर यहु भेष परलोकके सुखके विषैं भी कारण न भया; तातैं सम्यक्त्वपूर्वक भेष धारनां श्रेष्ठ है ॥ ५७ ॥

आगैं सांख्यमती आदिका आशयका निषेध करै है;

गाथा—अच्चेयणं पि चेदा जो मण्णइ सो हवेइ अण्णाणी ।
सो पुण णाणी भणिओ जो मण्णइ चेयणे चेदा ॥५८

संस्कृत—अचेतनेपि चेतनं यः मन्यते सः भवति अज्ञानी।
सः पुनः ज्ञानी भणितः यः मन्यते चेतने चेतनम् ५८

अर्थ—जो अचेतनविषैं चेतनकूं मानैं है सो अज्ञानी है बहुरि जो चेतनविषैं ही चेतनकूं मानै है सो ज्ञानी कह्या है॥

भावार्थ—सांख्यमती ऐसैं कहै है जो पुरुष तौ उदासीन चेतनास्वरूप नित्य है अर यह ज्ञान है सो प्रधान धर्म है, ताके मतमैं सो पुरुषकूं उदासीन चेतनास्वरूप मान्यां सो ज्ञान विना तौ जडही भया, ज्ञानविना चेतन काहेका? बहुरि ज्ञानकूं प्रधानका धर्म मान्या अर प्रधानकूं जड मान्यां तब अचेतनविषैं चेतनामानी तब अज्ञानीही भया। बहुरि नैयायिक वैशेषिकमती गुण गुणीकै सर्वथा भेद मानैं है तब चेतना गुण जीवतैं न्यारा मान्यां तब जीव तौ अचेतनही रह्या ऐसैं अचेतनविषैं चेतनपणां मान्या। बहुरि भूतवादी चार्वाक भूत पृथ्वी आदिकतैं चेतनता उपजी मानै है तहां भूत तौ जड है तिनिविषैं चेतनता कैसैं उपजै। इत्यादिक अन्य भी केई मानैं हैं ते सारे अज्ञानी हैं तातैं चेतनविषैं ही चेतन मानै सो ज्ञानी है, यह जिनमत है॥ ५८॥

आगैं कहै है जो तपरहित तौ ज्ञान अर ज्ञानरहित तप ये दोऊ ही अकार्य हैं दोऊ संयुक्त भयेही निर्वाण है;—

गाथा—तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेणं संजुत्तो लहइ णिव्वाणं॥ ५९॥

संस्कृत—तपोरहितं यत् ज्ञानं ज्ञानवियुक्तं तपः अपि अकृतार्थम्।
तस्मात् ज्ञानतपसा संयुक्तः लभते निर्वाणम्॥ ५९॥

अर्थ—जो ज्ञान तपरहित है बहुरि जो तप है सो भी ज्ञानरहित है तौ दोऊही अकार्य हैं तातैं ज्ञान तपकरि संयुक्त है सो निर्वाणकूं पावै है॥

भावार्थ—अन्यमती सांख्यादिक कोई तौ ज्ञानचर्चा तौ वहुत करै है अर कहै है–ज्ञानहीतैं मुक्ति है अर तप करै नांही, विपयकपायनिकूं प्रधानका धर्म मांनि स्वच्छंद प्रवर्त्तैं। वहुरि केई ज्ञानकूं निष्फल मांनि अर ताकूं यथार्थ जानैं नांही अर तप क्लेशादिकहीतैं सिद्धि मांनि ताके करनेमैं तत्पर रहै। तहां आचार्य कहै है–ये दोऊही अज्ञानी हैं जे ज्ञान-सहित तप करै हैं ते ज्ञानी हैं वेही मोक्ष पावैं हैं, यह अनेकांतस्वरूप जिनमतका उपदेश है ॥ ५९ ॥

आगैं याही अर्थकूं उदाहरणतैं दृढ करै है;—

गाथा—धुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं।
णाऊण धुवं कुज्जा तवयरणं णाणजुत्तो वि ॥ ६० ॥

संस्कृत-ध्रुवसिद्धिस्तीर्थंकरः चतुर्ज्ञानयुतः करोति तपश्चरणम्।
ज्ञात्वा ध्रुवं कुर्यात् तपश्चरणं ज्ञानयुक्तः अपि ॥६०॥

अर्थ—आचार्य कहै है-देखो जाकै नियमकरि मोक्ष होनी है अर च्यार ज्ञान मति श्रुत अवधि मनःपर्यय इनिकरि युक्त है ऐसा तीर्थंकर है सो भी तपश्चरण करै है, ऐसैं निश्चयकरि जांनि ज्ञानकरि युक्त होतैं भी तप करनां योग्य है ॥

भावार्थ—तीर्थंकर मति श्रुति अवधि इनि तीन ज्ञान सहित तौ जनमै है वहुरि दीक्षा लेतैंही मनःपर्यय ज्ञान उपजै है वहुरि मोक्ष जाकै नियम-करि होनी है तौऊ तप करै है, तातैं ऐसा जांनि ज्ञान होतैंभी तप कर-नेविषैं तत्पर होनां, ज्ञानमात्रहीतैं मुक्ति न माननीं ॥ ६० ॥

आगैं जो वाह्यलिंगकरि सहित है अर अभ्यंतरलिंगरहित है सो स्वरू-पाचरण चारित्रतैं भ्रष्ट भया मोक्षमार्गका विनाश करनेवाला है, ऐसा सामान्यकरि कहै है;—

गाथा—बाहिरलिंगेण जुदो अब्भंतरलिंगरहियपरियम्मो।
सो सगचरित्तभट्ठो मोक्खपहविणासगो साहू ॥६१॥

संस्कृत—बाह्यलिंगेन युतः अभ्यंतरलिंगरहितपरिकर्म्मा।
सः स्वकचारित्रभ्रष्टः मोक्षपथविनाशकः साधुः॥६१॥

अर्थ—जो जीव बाह्यलिंग भेषकरि संयुक्त है, अर अभ्यंतरलिंग जो परद्रव्यतैं सर्व रागादिक ममत्वभावतैं रहित आत्माका अनुभवन ताकरि रहित है परिकर्म कहिये परिवर्त्तन जामैं ऐसा मुनि है सो स्वकचारित्र कहिये अपनां आत्मस्वरूपका आचरण जो चारित्र ताकरि भ्रष्ट है, याहीतैं मोक्षमार्गका विनाश करनेंवाला है॥

भावार्थ—यह संक्षेपकरि कह्या जानूं जो बाह्यलिंगसंयुक्त है अर अभ्यंतर कहिये भावलिंग रहित है सो स्वरूपाचरण चारित्रतैं भ्रष्ट भया मोक्षमार्गका नाश करनेंवाला है॥ ६१॥

आगैं कहै है—जो सुखकरि भाया ज्ञान है सो दुःख आये नष्ट होय है तातैं तपश्चरणसहित ज्ञानकूं भावनां;—

अनुष्टुपः—सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहाबलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावए॥६२॥

संस्कृत—सुखेन भावितं ज्ञानं दुःखे जाते विनश्यति।
तस्मात् यथाबलं योगी आत्मानं दुःखैः भावयेत्॥६२॥

अर्थ—जो सुखकरि भाया हुवा ज्ञान है सो उपसर्ग परीषहादिकरि दुःखकूं उपजेतैं नष्ट होजाय है तातैं यह उपदेश है जो योगी ध्यानी मुनि है सो तपश्चरणादिके कष्ट दुःखसहित आत्माकूं भावै॥

भावार्थ—तपश्चरणका कष्ट अंगीकार करि ज्ञानकूं भावै तौ परीषह आये ज्ञानभावनातैं चिगै नांही तातैं शक्तिसारू दुःख सहित ज्ञानकूं भावना,

सुखहीमैं भावै दुःख आये व्याकुल होय तब ज्ञानभावना न रहै; तातैं यह उपदेश है ॥ ६२ ॥

आगै कहै हैं जो—आहार आसन निद्रा इनिकूं जीतिकरि आत्माकूं ध्यावनां;—

गाथा—आहारासणणिद्दाजयं च काऊण जिणवरमएण ।
झायव्वो णियअप्पा णाऊणं गुरुपसाएण ॥६३॥

संस्कृत—आहारासननिद्राजयं च कृत्वा जिनवरमतेन ।
ध्यातव्यः निजात्मा ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन ॥६३॥

अर्थ—आहार आसन निद्रा इनिकूं जीतिकरि अर जिनवरके मत करि गुरुके प्रसादकरि जानि निज आत्माकूं ध्यावणां ॥

भावार्थ—आहार आसन निद्राकूं जीतिकरि आत्माकूं ध्यावनां तौ अन्यमतीभी कहै हैं परन्तु तिनिकै यथार्थ विधान नांहीं तातैं आचार्य कहै है कि जैसैं जिनमतमैं कह्या है तिस विधानकूं गुरुनिके प्रसादकरि जांनि अर ध्याये सफल है, जैसैं जैनसिद्धान्तमैं आत्माका स्वरूप तथा ध्यानका स्वरूप अर आहार आसन निद्रा इनिके जीतनेंका विधान कह्या है तैसैं जांनिकरि तिनिमैं प्रवर्त्तनां ॥ ६३ ॥

आगैं आत्माकूं ध्यावनां सो आत्मा कैसा है, सो कहै है,—

गाथा—अप्पा चरित्तवंतो दंसणणाणेण संजुदो अप्पा ।
सो झायव्वो णिच्चं णाऊणं गुरुपसाएण ॥६४॥

संस्कृत—आत्मा चारित्रवान् दर्शनज्ञानेन संयुतः आत्मा ।
सः ध्यातव्यः नित्यं ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन ॥६४॥

अर्थ—आत्मा है सो चारित्रवान् है बहुरि दर्शन ज्ञानकरि सहित है ऐसा आत्मा गुरुके प्रसादकरि जानि ध्यावनां ॥

भावार्थ—आत्माका रूप दर्शनज्ञानचारित्रमयी है सो याका रूप जैनगुरुनिके प्रसादकरि जान्या जाय है। अन्यमती अपनी बुद्धिकल्पित जैसें तैसें मानि ध्यावैं हैं तिनिकै यथार्थ सिद्धि नांहीं; तातैं जैनमतकै अनुसार ध्यावनां ऐसा उपदेश है॥ ६४॥

आगैं कहैं हैं--आत्माका जाननां भावनां विषयनितैं विरक्त होनां ये उत्तरोत्तर दुःखतैं पाइये है;—

गाथा—दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियसहावपुरिसो विसयेसु विरज्जए दुक्खं ॥६५॥

संस्कृत-दुःखेन ज्ञायते आत्मा आत्मानं ज्ञात्वा भावना दुःखम्।
भावितस्वभावपुरुषः विषयेषु विरज्यति दुःखम् ॥६५॥

अर्थ—प्रथम तौ आत्माकूं जानिये है सो दुःखतैं जानिये है, बहुरि आत्माकूं जानिकरि भी भावना करनां फेरि फेरि याहीका अनुभव करनां दुःखतैं होय है, बहुरि कदाचित् भावनां भी कोई प्रकार होय तौ भाया है जिनभावना जानैं ऐसा पुरुष विषयनिविषैं विरक्त बडे दुःखतैं होय है॥

भावार्थ—आत्माका जाननां भावनां विषयनितैं विरक्त होनां उत्तरोत्तर यह योग मिलनां बहुत दुर्लभ है, यातैं यह उपदेश है जो—योग मिले प्रमादी न होनां॥ ६५॥

आगैं कहैं हैं जेतैं विषयनिमैं यह मनुष्य प्रवर्त्तै है तेतैं आत्मज्ञान न होय है;—

गाथा—ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं ॥६६॥

संस्कृत-तावन्न ज्ञायते आत्मा विषयेषु नरः प्रवर्त्तते यावत्।
विषये विरक्तचित्तः योगी जानाति आत्मानम् ॥६६॥

अर्थ—जेतैं यह मनुष्य इन्द्रियनिके विषयनिविषैं प्रवर्तै है तेतैं आत्माकूं नांही जानैं है तातैं योगी ध्यानी मुनि है सो विषयनिविषैं विरक्त है चित्त जाका ऐसा भया संता आत्माकूं जानैं है ॥

भावार्थ—जीवका स्वभावके उपयोगकी ऐसी स्वच्छता है जो जिस ज्ञेय पदार्थसूं उपयुक्त होय तैसाही हो जाय है, तातैं आचार्य कहै हैं जो—जेतैं विषयनिमैं चित्त रहै तेतैं तिनिरूप रहै है आत्माका अनुभव नांही होय; तातैं योगी मुनि ऐसा विचारि विषयनितैं विरक्त होय आत्मामैं उपयोग लगावै तब आत्माकूं जानै अनुभवै तातैं विषयनितैं विरक्त होनां यह उपदेश है ॥ ६६ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करै है जो आत्माकूं जानि करिभी भावना विना संसारहीमैं रहै है;—

गाथा—अप्पा णाऊण णरा केई सब्भावभावपब्भट्ठा ।
हिंडंति चाउरंगं विसयेसु विमोहिया मूढा ॥६७॥

संस्कृत—आत्मानं ज्ञात्वा नराः केचित् सद्भावभावप्रभ्रष्टाः ।
हिण्डन्ते चातुरंगं विषयेषु विमोहिताः मूढाः ॥६७॥

अर्थ—केई मनुष्य आत्माकूं जानिकरिभी अपनें स्वभावकी भावनातैं अत्यंत भ्रष्ट भये विषयनिविषैं मोहित होय करि अज्ञानी मूर्ख च्यार गति-रूप संसारविषैं भ्रमै है ॥ ६७ ॥

भावार्थ—पहलैं कह्याथा जो आत्माकूं जाननां भावनां विषयनितैं विरक्त होनां ये उत्तरोत्तर दुर्लभ पाइये है, तहां विषयनिमैं लग्या प्रथम तौ आत्माकूं जानैं नांही ऐसैं कह्या, अब इहां ऐसैं कह्या जो आत्माकूं जानिकरिभी विषयनिकै वशीभूत भया भावना न करै तौ संसारहीमैं भ्रमै है; तातैं आत्माकूं जानि विषयनितैं विरक्त होनां यह उपदेश है ॥ ६७ ॥

आगैं कहै है—जो विषयनितैं विरक्त होय आत्माकूं जानि करि भावै हैं ते संसारकूं छोडैं हैं;—

गाथा—जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाऊण भावणासहिया।
छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥६८॥

संस्कृत—ये पुनः विषयविरक्ताः आत्मानं ज्ञात्वा भावनासहिताः।
त्यजन्ति चातुरंगं तपोगुणयुक्ताः न सन्देहः ॥६८॥

अर्थ—पुनः कहिये बहुरि जे पुरुष मुनि विषयनितैं विरक्त होयकरि आत्माकूं जांनि भावै हैं बारंबार भावनाकरि अनुभवैं हैं ते तप कहिये बारह प्रकार तप अर मूलगुण उत्तरगुणनिकरि युक्त भये संसारकूं छोडैं हैं, मोक्ष पावैं हैं॥

भावार्थ—विषयनितैं विरक्त होय आत्माकूं जानि भावना करनीं यातैं संसारतैं छूटि मोक्ष पावो, यह उपदेश है॥ ६८॥

आगैं कहै है जो परद्रव्यविषैं लेशमात्रभी राग होय तौ सो पुरुष अज्ञानी है, अपनां स्वरूप जान्यां नांही;

गाथा—परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो।
सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीओ ॥६९॥

संस्कृत—परमाणुप्रमाणं वा परद्रव्ये रतिर्भवति मोहात्।
सः मूढः अज्ञानी आत्मस्वभावात् विपरीतः ॥६९॥

अर्थ—जा पुरुषकै परद्रव्यविषैं परमाणुप्रमाणभी लेशमात्र मोहतैं रति कहिये राग प्रीति होय तौ सो पुरुष मूढ है, अज्ञानी है आत्मस्वभावतैं विपरीत है॥

भावार्थ—भेदविज्ञान भये पीछैं जीव अजीवकूं न्यारे जानैं तब परद्रव्यकूं अपनां न जानैं तब तिसतैं राग भी न होय, अर जो राग होय तौ—जानिये—यानैं आपा परका भेद जान्यां नांही, अज्ञानी है,

आत्मस्वभावतैं प्रतिकूल है; अर ज्ञानी भये पीछैं चारित्रमोहका उदय रहैं जेतैं कछूक राग रहै है ताकूं कर्मजन्य अपराध मानै है, तिस रागतैं राग नांही है तातैं विरक्त ही है तातैं ज्ञानी परद्रव्यतैं रागी न कहिये; ऐसैं जाननां ॥

आगैं इस अर्थकूं संक्षेपकरि कहै है;—

गाथा—अप्पा झायंताणं दंसणसुद्धीण दिढचरित्ताणं ।
होदि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं ॥७०॥

संस्कृत—आत्मानं ध्यायतां दर्शनशुद्धीनां दृढचारित्राणाम् ।
भवति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम् ॥७०॥

अर्थ—जे पूर्वोक्त प्रकार बिषयनिसूं विरक्त है चित्त जिनिका, बहुरि आत्माकूं ध्यायते संते वर्त्तै हैं, बहुरि बाह्य अभ्यंतर दर्शनकी शुद्धता जिनिकै है, बहुरि दृढ चारित्र जिनिकै है, तिनिकै निश्चयकरि निर्वाण होय है ॥

भावार्थ—पूर्वैं कह्या जो विषयनिसूं विरक्त होय आत्माका स्वरूप जांनि जे आत्माकी भावना करैं हैं ते संसारतैं छूटैं हैं, तिसही अर्थकूं संक्षेपकरि कह्या है—जो इंद्रियनिके विषयनिसूं विरक्त होय बाह्य अभ्यंतर दर्शनकी शुद्धताकरि दृढ चारित्र पालै हैं तिनिकै नियमकरि निर्वाणकी प्राप्ति होय है, इंद्रियनिके विषयनिविषैं आसक्तता है सो सर्व अनर्थका मूल है तातैं इनितैं विरक्त भये उपयोग आत्मामैं लागै जब कार्य सिद्धि होय है ॥ ७० ॥

आगैं कहै है जो परद्रव्यविषैं राग है सो संसारका कारण है तातैं योगीश्वर आत्माविषैं भावना करै है;—

अनुष्टुप—जेण रागो परे दव्वे संसारस्स हि कारणं ।
तेणावि जोइणो णिच्चं कुज्जा अप्पे समावणा ७१

संस्कृत-येन रागः परे द्रव्ये संसारस्य हि कारणम् ।
तेनापि योगी नित्यं कुर्यात् आत्मनि स्वभावनाम् ७१

अर्थ—जा कारणकरि परद्रव्यविषैं राग है सो संसारहीका कारण है तिस कारणही करि योगीश्वर मुनि है ते नित्य आत्माहीविषैं भावना करै हैं ॥

भावार्थ—कोई ऐसी आशंका करै जो—परद्रव्यविषैं राग करे कहा होय है ? परद्रव्य है सो पर है ही, अपनैं राग जिसकाल भया तिसकाल है पीछैं मिटि जाय है ताकूं उपदेश किया है—परद्रव्यसूं राग किये परद्रव्य अपनीं लार लागै है यह प्रसिद्ध है बहुरि अपनें रागका संस्कार दृढ होय है तब परलोक तांई भी चल्या जाय है यह तौ युक्ति सिद्ध है; अर जिनागममैं रागतैं कर्मका बंध कह्याहै तिसका उदय अन्य जन्मकूं कारण है ऐसैं परद्रव्यविषैं रागतैं संसार होय है; तातैं योगीश्वर मुनि परद्रव्यतैं राग छोडि आत्माविषैं निरन्तर भावना राखै है ॥ ७१ ॥

आगैं कहै है जो ऐसे समभावतैं चारित्र होय है;—

अनुष्टुप-णिंदाए य पसंसाए दुक्खे य सुहएसु य ।
सत्तूणं चेव बंधूणं चारित्तं समभावदो ॥७२॥

संस्कृत-निंदायां च प्रशंसायां दुःखे च सुखेषु च ।
शत्रूणां चैव बंधूनां चारित्रं समभावतः ॥७२॥

अर्थ—निंदाविषैं बहुरि प्रशंसाविषैं बहुरि दुःखविषैं बहुरि सुखविषैं बहुरि शत्रूनिविषैं बहुरि बंधु मित्रनिविषैं समभाव जो समतापरिणाम रागद्वेषतैं रहितपणां, ऐसे भावतैं चारित्र होय है ॥

भावार्थ—चारित्रका स्वरूप यहु कह्या है जो आत्माका स्वभाव है सो कर्मके निमित्ततैं ज्ञानविषैं परद्रव्यतैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि होय है,

तिस इष्ट अनिष्ट बुद्धिका अभावतैं ज्ञानहीमैं उपयोग लागैं ताकूं शुद्धोपयोग कहिये है सो ही चारित्र है, सो यह होय जहां निन्दा प्रशंसा दुःख सुख शंत्रु मित्रविषैं समान बुद्धि होय है, निन्दा प्रशंसाका द्विधाभाव मोहकर्मका उदयजन्य है, याका अभाव सो ही शुद्धोपयोगरूप चारित्र है ॥ ७२ ॥

आगैं कहै है—जो केई मूर्ख ऐसैं कहै हैं जो अबार पंचमकाल है सो आत्मध्यानका काल नांही, तिनिका निषेध करै है,—

गाथा—चरियावरिया वदसमिदिवज्जिया सुद्धभावपब्भट्टा ।
केई जंपंति णरा ण हु कालो झाणजोयस्स ॥७३॥

संस्कृत—चर्यावृताः व्रतसमितिवर्जिताः शुद्धभावप्रभ्रष्टाः ।
केचित् जल्पंति नराः न स्फुटं कालः ध्यानयोगस्य ७३

अर्थ—जो केई नर कहिये मनुष्य ऐसे हैं जो चर्या कहिये आचारक्रिया सो है आवृत जिनकै चारित्र मोहका उदय प्रबल है ताकरि चर्या प्रकट न होय है याहीतैं व्रतसमितिकरि रहित हैं बहुरि मिथ्या अभिप्रायकरि शुद्धभावतैं अत्यंत भ्रष्ट हैं, ते ऐसैं कहैं हैं जो—अबार पंचमकाल है सो यहु काल प्रगट ध्यान योगका नांही ॥ ७३ ॥

ते प्राणी कैसे हैं सो आगैं कहै हैं;—

गाथा—सम्मत्तणाणरहिओ अभव्वजीवो हु मोक्खपरिमुक्को ।
संसारसुहे सुरदो ण हु कालो भणइ झाणस्स ॥७४॥

संस्कृत—सम्यक्त्वज्ञानरहितः अभव्यजीवः स्फुटं मोक्षपरिमुक्तः।
संसारसुखे सुरतः न स्फुटं कालः भणति ध्यानस्य ७४

अर्थ—पूर्वोक्त ध्यानका अभाव कहनेंवाला जीव कैसा है सम्यक्त्व अर ज्ञानकरि रहित है अभव्य है याहीतैं मोक्षकरि रहित है, अर संसारके

इंद्रिय सुख है तिनिहीकूं भले जांनि तिनिमैं रत है, आसक्त है, यातैं कहै है—जो अबार ध्यानका काल नांही ॥

भावार्थ—जाकूं इंद्रियनिके सुखही प्रिय लागैं हैं अर जीवाजीव पदार्थका श्रद्धान ज्ञानतैं रहित है, सो ऐसैं कहै है जो अबार ध्यानका काल नांही। यातैं जानिये है—ऐसैं कहनेंवाला अभव्य है याकै मोक्ष न होयगी ॥ ७४ ॥

फेरि कहै है जो अबार ध्यानका काल न कहै है तानैं पंच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्तिका स्वरूप जान्यां नांही;—

गाथा—पंचसु महव्वदेसु य पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
जो मूढो अण्णाणी ण हु कालोभणइ झाणस्स ॥७५॥

संस्कृत-पंचसु महाव्रतेषु च पंचसु समितिषु तिसृषु गुप्तिषु।
यः मूढः अज्ञानी न स्फुटं कालः भणिति ध्यानस्य ७५

अर्थ—जो पांच महाव्रत पांचसमिति तीन गुप्ति इनि विषैं मूढ है अज्ञानी है इनिका स्वरूप नांही जानैं है अर चारित्रमोहके तीव्र उदयतैं इनिकूं पालि न सकै है, सो ऐसैं कहै हैं जो अबार ध्यानका काल नांही है ॥ ७५ ॥

आगैं कहै है जो अबार इस पंचमकालमैं धर्मध्यान होय है, यह न मानैं है सो अज्ञानी है,

गाथा—भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी ॥७६॥

संस्कृत-भरते दुःषमकाले धर्मध्यानं भवति साधोः।
तदात्मस्वभावस्थिते न हि मन्यते सोऽपि अज्ञानी ७६

अर्थ—इस भरतक्षेत्रविषैं दुःषमकाल जो पंचमकाल ताविषैं साधु मुनिकै धर्मध्यान होय है सो यह धर्मध्यान आत्मस्वभावकै विषैं स्थित है

तिस मुनिकै होय है; यह न मानैं सो अज्ञानी है जाकूं धर्मध्यानका स्वरूपका ज्ञान नांही ॥

भावार्थ—जिनसूत्रमैं इस भरतक्षेत्र पंचमकालमैं आत्माभावनाविषैं स्थित मुनिकै धर्मध्यान कह्या है; जो यह न मानैं सो आज्ञानी है, जाकूं धर्मध्यानके स्वरूपका ज्ञान नांहीं ॥ ७६ ॥

आगैं कहै हैं—जो अबार कालमैंभी रत्नत्रयका धारी मुनि होय सो स्वर्गविषैं लौकान्तिकपणां इन्द्रपणां पाय तहांतैं चय मोक्ष जाय है, ऐसैं जिनसूत्रमैं कह्या है;—

गाथा—अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इंदत्तं ।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ॥७७॥

संस्कृत—अद्य अपि त्रिरत्नशुद्धा आत्मानं ध्यात्वा लभंते इन्द्रत्वम्
लौकान्तिकदेवत्त्वं ततः च्युत्वा निर्वृतिं यांति ॥७७॥

अर्थ—अबार इस पंचमकालमैंभी जे मुनि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र शुद्धकरि संयुक्त होय हैं ते आत्माकूं ध्यायकरि इंद्रपणां पावैं हैं तथा लौकांतिकदेवपणां पावैं हैं, बहुरि तहांतैं चय करि निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं ॥

भावार्थ—कोई कहै है जो अबार इस पंचमकालमैं जिनसूत्रमैं मोक्ष होनां कह्या नाहीं तातै ध्यानका करनां तौ निष्फल खेद है, ताकूं कहै है रे भाई ! मोक्ष जानो निषेध्यो है अर शुक्लध्यान निषेध्यो है; धर्मध्यान तौ निषेध्या नांहीं अबार जे मुनि रत्नत्रयकरि शुद्ध भये धर्मध्यानमैं लीन होय आत्माकूं ध्यावैं हैं ते मुनि स्वर्गमैं इन्द्रपणां पावैं हैं अथवा लौकान्तिकदेव एकाभवतारी हैं तिनिमैं जाय उपजै हैं तहांतैं चयकरि मनुष्य होय मोक्ष पावैं हैं। ऐसै धर्मध्यानतैं परंपरा मोक्ष होय तब सर्वथा निषेध

काहेकूं कीजिये, जे निषेध करैं ते अज्ञानी मिथ्यादृष्टी हैं तिनिकूं विषयकषायनिमैं स्वच्छन्द रहनां है तातैं ऐसैं कहैं है॥ ७७ ॥

आगैं कहै है जो अबार कालमैं ध्यानका अभाव मांनि अर मुनि लिंगपहलैं ग्रहण किया तिसकूं गौणकरि पापमैं प्रवर्त्तै है ते मोक्षमार्गतैं च्युत हैं;—

गाथा—जे पावमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥

संस्कृत—ये पापमोहितमतयः लिंगं गृहीत्वा जिनवरेन्द्राणाम्।
पापं कुर्वन्ति पापाः ते त्यक्त्वा मोक्षमार्गे ॥७८॥

अर्थ—जे पापकर्मकरि मोहित है बुद्धि जिनिकी ऐसे हैं ते जिनवरेन्द्र तीर्थंकरका लिंग ग्रहण करिभी पाप करैं हैं ते पापी मोक्षमार्गतैं च्युत हैं॥

भावार्थ—जे पहलैं निर्ग्रंथ लिंग धार्या पीछैं ऐसी पाप बुद्धि उपजी—जो अबार ध्यानका तौ काल नांहीं तातैं काहेकूं प्रयास करैं, ऐसैं विचारि अर पापमैं प्रवर्त्तनें लगिजाय हैं, ते पापी हैं, तिनिकै मोक्षमार्ग नांही॥ ७२ ॥

आगैं कहैं हैं जो—जे मोक्षमार्गतैं च्युत हैं ते कैसे हैं;—

गाथा—जे पंचचेलसत्ता ग्रंथग्गाहीय जायणासीला।
आधाकम्मम्मि रया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७९॥

संस्कृत—ये पंचचेलसक्ताः ग्रंथग्राहिणः याचनाशीलाः।
अधः कर्मणि रताः ते त्यक्ताः मोक्षमार्गे ॥७९॥

अर्थ—पंच प्रकारके चेल कहिये वस्त्र तिनिविषैं आसक्त हैं; अंडज, कर्पासज, वल्कल, चर्मज, रोमज ऐसैं पंच प्रकार वस्त्रमैं सूं कोई एक वस्त्रकूं ग्रहण करैं हैं, वहुरि ग्रंथग्राही कहिये परिग्रहके ग्रहण करनेंवाले

हैं, वहुरि याचनाशील कहिये याचना मागनेंकाही जिनिका स्वभाव है, वहुरि अध:कर्म जो पापकर्म ताविषैं रत हैं सदोष आहार करैं हैं ते मोक्षमार्गतैं च्युत हैं ॥

भावार्थ—इहां आशय ऐसा है जो पहलैं तौ निर्ग्रंथ दिगंवर मुनि भये थे पाछैं कालदोष विचारि चारित्र पालनेंकूं असमर्थ होय निर्ग्रन्थ लिंगतैं भ्रष्ट होय वस्त्रादिक अंगीकार किया, परिग्रह राखनेंलगे याचना करने लगें अध:-कर्म औद्देशिक आहार करनेंलगे तिनिका निषेध है ते मोक्षमार्गतैं च्युत हैं। पहलैं तौ भद्रवाहुस्वामी निर्ग्रन्थ थे। पीछैं दुर्भिक्षकालमैं भ्रष्ट होय अर्द्ध-फालक कहावै थे पीछैं तिनिमैं श्वेतांवर भये तिनिमैं तिनिनैं तिस भेषके पोखनेंकूं सूत्र वनाये तिनिमैं केई कल्पित आचरण तथा तिसकी साधक कथा लिखी। वहुरि इनि सिवाय अन्य भी केई भेष वदले, ऐसैं काल दोषतैं भ्रष्टनिका संप्रदाय प्रवर्त्तैं है सो यह मोक्षमार्ग नांही है, ऐसा जनाया है। यातैं इनिभ्रष्टनिकूं देखि ऐसा ही मोक्षमार्ग है, ऐसा श्रद्धान न करनां ॥ ७९ ॥

आगैं कहै है जो मोक्षमार्गी तौ ऐसे मुनि हैं;—

गाथा—णिग्गंथमोहमुक्का वावीसपरीषहा जियकसाया ।
पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ॥८०॥

संस्कृत—निर्ग्रंथाः मोहमुक्ताः द्वाविंशतिपरीषहाः जितकषायाः ।
पापारंभविमुक्ताः ते गृहीताः मोक्षमार्गे ॥८०॥

अर्थ—जे मुनि निर्ग्रंथ हैं परिग्रहकरि रहित हैं, वहुरि मोह करि रहित हैं काहू परद्रव्यसूं ममत्वभाव जिनिकै नांही है, वहुरि बाईस परी-षहनिका सहना जिनिकै पाइये है, वहुरि जीते हैं क्रोधादि कषाय जिनिनैं, वहुरि पापारंभकरि रहित हैं गृहस्थके करनेका आरंभादिक पाप है

तिसमैं नांही प्रवर्त्तें हैं, ऐसे हैं ते मुनि मोक्षमार्गमैं ग्रहण किये हैं माने हैं ॥

भावार्थ—मुनि हैं ते लौकिक कष्टनितैं रहित हैं जैसा जिनेश्वर मोक्ष-मार्ग बाह्य अभ्यंतर परिग्रहतैं रहित नग्न दिगंबररूप कह्या है तैसैं प्रवर्त्तें हैं ते ही मोक्षमार्गी हैं, अन्य मोक्षमार्गी नांही हैं ॥ ८० ॥

आगैं फेरि मोक्षमार्गीकी प्रवृत्ति कहैं हैं;—

गाथा—उद्धद्धमज्झलोये केई मज्झं ण अहयमेगागी।
इयभावणाए जोई पावंति हु सासयं ठाणं ॥८१॥

संस्कृत—उर्ध्वाधोमध्यलोके केचित् मम न अहकमेकाकी।
इति भावनया योगिनः प्राप्नुवंति स्फुटं शाश्वतं स्थानं ॥

अर्थ—मुनि ऐसी भावना करै—ऊर्ध्वलोक मध्यलोक अधोलोक इनि तीनूं लोकमैं मेरा कोई भी नांही है, मैं एकाकी आत्माहूं, ऐसी भावना करि योगी मुनि प्रगटपणैं शास्वता सुख है ताहि पावै है ॥

भावार्थ—मुनि ऐसी भावना करै जो त्रिलोकमैं जीव एकाकी है याका संबंधी दूजा कोई नांही है, ये परमार्थरूप एकत्व भावना है सो जा मुनिकै ऐसी भावना निरन्तर रहै है सो ही मोक्षमार्गी है, जो भेष लेकरि भी लौकिकजननिसूं लाल पाल राखै है सो मोक्षमार्गी नांही ॥ ८१ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—देवगुरूणं भत्ता णिव्वेयपरंपरा विचिंतिंता।
झाणरया सुचरित्ता ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ॥८२॥

संस्कृत—देवगुरूणां भक्ताः निर्वेदपरंपरां विचिन्तयन्तः।
ध्यानरताः सुचरित्राः ते गृहीताः मोक्षमार्गे ॥८२॥

अर्थ—जे मुनि देव गुरुनिके भक्त हैं बहुरि निर्वेद कहिये संसार देह भोगतैं विरागताकी परंपराकूं चिंतवन करैं है, बहुरि ध्यानके विषैं

रत हैं रक्त हैं तत्पर हैं बहुरि भला है चारित्र जिनिकै, ते मोक्षमार्गविषैं ग्रहण किये हैं ॥

भावार्थ—जिनिमैं मोक्षमार्ग पाया ऐसा अरहंत सर्वज्ञ वीतराग देव अर तिसके अनुसारी बडे मुनि दीक्षा शिक्षा देनेंवाले गुरु तिनिकी तौ भक्तियुक्त होय, बहुरि संसार देह भोगसूं विरक्त होय मुनि भये तैसैंही जिनकै वैराग्यभावना है, बहुरि आत्मानुभवनरूप शुद्ध उपयोगरूप एकाग्रता सोही भया ध्यान ताविषैं तत्पर है, बहुरि व्रत समिति गुप्तिरूप निश्चयव्यवहारात्मक सम्यक्त्वचारित्र जिनिकै पाईये है तेही मुनि मोक्षमार्गी है, अन्य भेषी मोक्षमार्गी नांही ॥ ८२ ॥

आगैं निश्चयनयकरि ध्यान ऐसैं करनां, ऐसैं कहै हैं;—

गाथा—णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो ।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥८३॥

संस्कृत—निश्चयनयस्य एवं आत्मा आत्मनि आत्मने सुरतः ।
सः भवति स्फुटं सुचरित्रः योगी सः लभते निर्वाणम् ॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो निश्चयनयका ऐसा अभिप्राय है—जो आत्मा आत्महीविषैं आपहीकै अर्थि भलैप्रकार रत होय सो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्चारित्रवान भया संता निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—निश्चयनयका स्वरूप ऐसा है जो—एक द्रव्यकी अवस्था जैसी होय ताहीकूं कहै। तहां आत्माकी दोय अवस्था;—एक तौ अज्ञान अवस्था अर एक ज्ञान अवस्था। तहां जेतैं अज्ञान अवस्था रहै तेतै तौ बंधपर्यायकूं आत्मा जानैं जो मैं मनुष्यहूं मैं पशुहूं मैं क्रोधीहूं, मैं मानीहूं, मैं मायावीहूं, मैं पुण्यवान धनवानहूं, मैं निर्धन दरिद्रीहूं, मैं राजाहूं, मैं रंकहूं, मैं मुनिहूं, मैं श्रावकहूं इत्यादि पर्यायनिविषैं

आपा मानैं तिनि पर्यायनिविषैं लीन है तब मिथ्यादृष्टी है अज्ञानी है, याका फल संसार है ताकूं भोगवै है। बहुरि जब जिनमतके प्रसादकरि जीव अजीव पदार्थनिका ज्ञान होय तब आपा परका भेद जानि ज्ञानी होय तब ऐसैं जानैं जो—मैं शुद्धज्ञानदर्शनमयी चेतनास्वरूपहूं अन्य मेरा किछूभी नांही, तब यह आत्मा आपहीविषैं आपही करि आपहीकै अर्थि लीन होय तब निश्चयसम्यक्चारित्रस्वरूप होय आपहीकूं ध्यावै, तबही सम्यग्ज्ञानी है याका फल निर्वाण है; ऐसैं जाननां ॥ ८३ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते संते कहैं हैं;—

गाथा—पुरिसायारो अप्पा जोई वरणाणदंसणसमग्गो।
जो झायदि सो जोई पावहरो हवदि णिद्दंदो ॥८४॥

संस्कृत—पुरुषाकार आत्मा योगी वरज्ञानदर्शनसमग्रः।
यः ध्यायति सः योगी पापहरः भवति निर्द्वन्द्वः ॥८४॥

अर्थ—यह आत्मा ध्यानकै योग्य कैसा है—पुरुषाकार है, बहुरि योगी है मन वचन कायके योगनिका जाकै निरोध है सर्वांग सुनिश्चल हैं, बहुरि वर कहिये श्रेष्ठ सम्यक्रूप ज्ञान अर दर्शनकरि समग्र है परिपूर्ण है केवलज्ञानदर्शन जाकै पाइये है, ऐसा आत्माकूं जो योगी ध्यानी मुनि ध्यावै है सो मुनि पापका हरनेंवाला है अर निर्द्वन्द्व है रागद्वेष आदि विकल्पनिकरि रहित है ॥

भावार्थ—जो अरहंतरूप शुद्ध आत्माकूं ध्यावै है ताका पूर्व कर्मका नाश होय है अर वर्त्तमानमैं रागद्वेषरहित होय है तब आगामी कर्मकूं नांही बांधै है ॥ ८४ ॥

आगैं कहैं है जो ऐसैं मुनिनिकूं प्रवर्त्तनां कह्या। अब श्रावकनिकूं प्रवर्त्तनेंकै अर्थि कहिये है;—

गाथा—एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु ।
संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं ॥८५॥

संस्कृत—एवं जिनैः कथितं श्रमणानां श्रावकाणां पुनः शृणुत ।
संसारविनाशकरं सिद्धिकरं कारणं परमं ॥८५॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार तौ उपदेश श्रमण जे मुनि तिनिकूं जिनदेवनैं कह्या है। बहुरि अब श्रावकनिकूं कहिये है सो सुनों, कैसा कहिये है—संसारका तौ विनाश करनेंवाला अर सिद्धि जो मोक्ष ताका करनेंवाला उत्कृष्ट कारण ऐसा उपदेश है ॥

भावार्थ—पहलैं कह्या सो तौ मुनिनिकूं कह्या अर अब आगें कहिये है सो श्रावकनिकूं कहिये है, ऐसा कहिये है जातैं संसारका विनाश होय अर मोक्षकी प्राप्ति होय ॥ ८५ ॥

आगैं श्रावकनिकूं प्रथम कहा करनां, सो कहै है;—

गाथा—गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंप ।
तं जाणे झाइज्जइ सावय ! दुक्खक्खयट्ठाए ॥८६॥

संस्कृत—गृहीत्वा च सम्यक्त्वं सुनिर्मलं सुरगिरेरिव निष्कंपम् ।
तत् ध्याने ध्यायते श्रावक ! दुःखक्षयार्थं ॥८६॥

अर्थ—प्रथम तौ श्रावकनिकूं सुनिर्मल कहिये भलै प्रकार निर्मल अर मेरुवत् निःकंप अचल अर चल मलिन अगाढ दूषणरहित अत्यंत निश्चल ऐसा सम्यक्त्वकूं ग्रहण करि तिसकूं ध्यानविषैं ध्यावनां, कौन आर्थि—दुःखका क्षयकै अर्थि ध्यावनां ॥

भावार्थ—श्रावक पहलै तौ निरतिचार निश्चल सम्यक्त्वकूं ग्रहण-करि जाका ध्यान करै जा सम्यक्त्वकी भावनातैं गृहस्थकै गृहकार्यसंबंधी आकुलता क्षोभ दुःख होय है सो मिटि जाय है, कार्यके विगडनें सुधर-

नेमैं वस्तुके स्वरूपका विचार आवै तब दुःख मिटै है। सम्यग्दृष्टीकै ऐसा विचार होय है—जो वस्तुका स्वरूप सर्वज्ञनैं जैसा जान्यां है तैसा निरन्तर परिणमै है सो होय है, इष्ट अनिष्ट मानि दुःखी सुखी होनां निष्फल है। ऐसे विचारतैं दुःख मिटै है यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है जातैं सम्यक्त्वका ध्यान करना कह्या है ॥ ८६ ॥

आगैं सम्यक्त्वका ध्यानही की महिमा कहै है,—

गाथा—सम्मत्तं जो झायइ सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि ॥८७॥

संस्कृत—सम्यक्त्वं यः ध्यायति सम्यग्दृष्टिः भवति सः जीवः।
सम्यक्त्वपरिणतः पुनः क्षपयति दुष्टाष्टकर्माणि ॥८७॥

अर्थ—जो श्रावक सम्यक्त्वकूं ध्यावै है सो जीव सम्यग्दृष्टी है बहुरि सम्यक्त्वरूप परिणया संता दुष्ट जे आठ कर्म तिनिका क्षय करै है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वका ध्यान ऐसा है जो पहलैं सम्यक्त्व न भया होय तौऊ याका स्वरूप जानि याकूं ध्यावै तौ सम्यग्दृष्टी होजाय है। बहुरि सम्यक्त्व भये याका परिणाम ऐसा है जो संसारके कारण जे दुष्ट अष्ट कर्म तिनिका क्षय होय है, सम्यक्त्व होतैं ही कर्मनिकी गुणश्रेणी निर्जरा होनें लगि जाय है, अनुक्रमतैं मुनि होय तब चारित्र अर शुक्लध्यान याकें सहकारी होंय तब सर्व कर्मका नाश होय है ॥ ८७ ॥

आगैं याकूं संक्षेपकरि कहै है;—

गाथा—किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणइ सम्ममाहप्पं ८८

संस्कृत—किं बहुना भणितेन ये सिद्धाः नरवराः गते काले।
सेत्स्यंति येऽपि भव्याः तज्जानीत सम्यक्त्वमाहात्म्यम्

अर्थ—आचार्य कहै है जो—बहुत कहनेंकरि कहा साध्य है जे नर-प्रधान अतीतकालविषैं सिद्ध भये अर आगामी कालविषै सिद्ध होंयगे सो सम्यक्त्वका माहात्म्य जानो ॥

भावार्थ—इस सम्यक्त्वका ऐसा माहात्म्य है जो अष्टकर्मका नाश करि जे मुक्तिप्राप्त अतीतकालमैं भये हैं तथा आगामी होंयगे ते इस सम्यक्त्वतैं ही भये है अर होंयगे, तातैं आचार्य कहै हैं जो बहुत कहनेकरि कहा! यह संक्षेपकरि कह्या जानो जो—मुक्तिका प्रधान कारण यह सम्यक्त्वही है। ऐसा मति जानो जो गृहस्थकै कहा धर्म है सो यह सम्यक्त्वधर्म ऐसा है जो सर्व धर्मनिके अंगनिकूं सफल करै है ॥८८॥

आगैं कहै है जो—निरन्तर सम्यक्त्व पालै है ते धन्य है—

गाथा—ते धण्णा सुकयत्था ते सूरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं ॥८९॥

संस्कृत—ते धन्याः सुकृतार्थाः ते शूराः तेऽपि पंडिता मनुजाः।
सम्यक्त्वं सिद्धिकरं स्वप्नेऽपि न मलिनितं यैः ॥८९॥

अर्थ—जिनि पुरुषनितैं मुक्तिका करनेवाला सम्यक्त्व है ताकूं स्वप्नावस्थाविषैं भी मलिन न किया अतीचार न लगाया ते पुरुष धन्य हैं ते ही मनुष्य हैं ते ही भले कृतार्थ हैं ते ही शूरवीर हैं ते ही पंडित हैं ॥

भावार्थ—लोकमैं कछू दानादिक करै तिनिकूं धन्य कहिये है तथा विवाहादिक यज्ञादिक करैं हैं तिनिकूं कृतार्थ कहै हैं युद्धमैं पाछा न होय ताकूं शूरवीर कहैं हैं, बहुत शास्त्र पढै ताकूं पंडित कहै हैं। ये सारे कहनेके हैं जो मोक्ष का कारण सम्यक्त्व ताकूं मलिन न करैं हैं निरतिचार पालैं हैं ते धन्य हैं ते ही कृतार्थ हैं ते ही शूरवीर है तेही पंडित हैं ते ही मनुष्य हैं; या विना मनुष्य पशुसमान है, ऐसा सम्यक्त्वका माहात्म्य कह्या ॥८९॥

आगैं शिष्य पूछ्या जो सम्यक्त्व कैसाक है? ताके समाधानकूं या सम्यक्त्वके बाह्य चिह्न बतावै है,—

गाथा—हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं॥ ९०॥

संस्कृत—हिंसारहिते धर्मे अष्टादशदोषवर्जिते देवे।
निर्ग्रंथे प्रवचने श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वम्॥ ९०॥

अर्थ—हिंसारहित धर्म, अठारह दोषरहित देव, निर्ग्रंथ प्रवचन कहिये मोक्षका मार्ग तथा गुरु इनिविषैं श्रद्धान होतैं संतैं सम्यक्त्व होय है॥

भावार्थ—लौकिकजन तथा अन्यमती जीवनिकी हिंसा करि धर्म मानैं हैं, अर जिनमतमैं अहिंसा धर्म कह्या है ताहीकूं श्रद्धै अन्यकूं नांही श्रद्धै सो सम्यग्दृष्टी है। लौकिक अन्यमतीनिनैं मानें हैं ते सर्व देव क्षुधादि तथा रागद्वेषादि दोषनि करि संयुक्त हैं तातैं वीतराग सर्वज्ञ अरहंत देव सर्वदोषनिकरि रहित है ताकूं देव मानै श्रद्धै सो सम्यग्दृष्टी है। इहां दोष अठार कहे ते प्रधानता अपेक्षा कहे हैं ते उपलक्षणरूप जाननें, इनि सारिखे अन्यभी जानि लेनें। बहुरि निर्ग्रंथ प्रवचन कहिये मोक्षमार्ग सोही मोक्षमार्ग है, अन्यलिंगतैं अन्यमती श्वेतांबरादिक जैनाभास मोक्ष मानैं हैं सो मोक्षमार्ग नांही है। ऐसा श्रद्धै सो सम्यग्दृष्टी है, ऐसा जाननां॥९०॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते कहैं हैं;—

गाथा—जहजायरूवरूवं सुसंजयं सव्वसंगपरिचत्तं।
लिंगं ण परावेक्खं जो मण्णइ तस्स सम्मत्तं॥९१॥

संस्कृत—यथाजातरूपरूपं सुसंयतं सर्वसंगपरित्यक्तम्।
लिंगं न परापेक्षं यः मन्यते तस्य सम्यक्त्वम्॥९१॥

अर्थ—मोक्षमार्गका लिंग भेप ऐसा है यथाजातरूप तौ जाका रूप है, बाह्य परिग्रह वस्त्रादिक किंचित्मात्रभी जामैं नांही है; बहुरि सुसंयत कहिये सम्यक्प्रकार इन्द्रियनिका निग्रह अर जीवनिकी दया जामैं पाइये ऐसा संयम है; बहुरि सर्वसंग कहिये सर्वही परिग्रह तथा सर्व लौकिक जननिकी संगतितैं रहित है; बहुरि जामैं परकी अपेक्षा कछू नांही है मोक्षके प्रयोजन सिवाय अन्य प्रयोजनकी अपेक्षा नांही है। ऐसा मोक्ष-मार्गका लिंग मानै श्रद्धै तिस जीवकै सम्यक्त्व होय है ॥

भावार्थ—मोक्षमार्गमैं ऐसाही लिंग है, अन्य अनेक भेप हैं ते मोक्ष-मार्गमैं नांही हैं ऐसा श्रद्धान करै ताकै सम्यक्त्व होय है। इहां परा-पेक्ष नांही—ऐसा कहनें तैं जनाया है जो—ऐसा निर्ग्रंथ रूप भी जो काहू अन्य आशयतैं धारै तौ वह भेप मोक्षमार्ग नांही; केवल मोक्षहीकी अपेक्षा जामैं होय ऐसा होय ताकूं मानै सो सम्यग्दृष्टी है ऐसा जाननां ॥ ९१ ॥

आगैं मिथ्यादृष्टीके चिह्न कहैं हैं;—

गाथा—कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो हु ॥९२॥

संस्कृत—कुत्सितदेवं धर्मं कुत्सितलिंगं च वन्दते यः तु।
लज्जाभयगारवतः मिथ्यादृष्टिः भवेत् सः स्फुटम् ९२

अर्थ—कुत्सित देव जो क्षुधादिक अर रागद्वेपादि दोषनिकरि दूपित होय सो, अर कुत्सित धर्म जो हिंसादि दोपनिकरि सहित होय सो, कुत्सितलिंग जो परिग्रहादिकरि सहित होय सो, इनिकूं जो वंदै पूजै सो तो प्रगट मिथ्यादृष्टी है। इहां विशेष कहै है जो भले हितकरनेंवाले मानिकरि वंदै पूजै सो तौ प्रगट मिथ्यादृष्टी है, परन्तु जो लज्जा भय गारव इनि कारणनि करि भी वंदै पूजै सो भी प्रगट मिथ्यादृष्टी है। तहां लज्जा तौ ऐसैं—जो लोक इनिकूं वंदै पूजै है हम नांही पूजैंगे तौ

लोक हमको कहा कहैं गे ? हमारी या लोकमैं प्रतिष्ठा जायगी ? ऐसैं तौ लज्जाकरि वंदै पूजे। बहुरि भय ऐसैं जो–इनिकूं राजादिक मानैं हैं, हम न मानैंगे तौ हम ऊपरि कछू उपद्रव आवैगा ऐसैं भयकरि वंदै पूजे। बहुरि गारव ऐसैं जो–हम बडे हैं महंत पुरुप हैं, सर्वहीका सन्मान करैं हैं इनिकार्यनिमैं हमारी वडाई है, ऐसैं गारवकरि वंदनां पूजनां होय है। ऐसैं मिथ्यादृष्टीके चिह्न कहे ॥ ९२ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते संते कहैं हैं;—

गाथा—सपरावेक्खं लिंगं राई देवं असंजयं वंदे।
माणइ मिच्छादिट्ठी ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्ती ॥९३॥

संस्कृत—स्वपरापेक्षं लिंगं रागिणं देवं असंयतं वन्दे।
मानयति मिथ्यादृष्टिः न स्फुटं मानयति शुद्धसम्यक्त्वी ९३

अर्थ—स्वपरापेक्ष तौ लिंग जो कछूं आप लौकिक प्रयोजन मनमैं धारि भेप ले सो स्वापेक्ष है, बहुरि काहू परकी अपेक्षातैं धारै काहूके आग्रहतैं तथा राजादिकका भयतैं धारै सो परापेक्ष है। बहुरि रागी देव जाकै स्त्री आदिका राग पाइये, बहुरि संयमरहित इनिकूं ऐसैं कहै जो मैं बंदूं हूं; तथा तिनिकूं मानैं श्रद्धै सो मिथ्यादृष्टी है। बहुरि शुद्धसम्यक्त्व भये संतैं तिनिकूं न मानैं है, श्रद्धै नांही, वंदै पूजै नांही ॥

भावार्थ—ये कहे तिनिसूं मिथ्यादृष्टीकै प्रीति भक्ति उपजै है, जो निरतीचार सम्यक्त्ववानहै सो इनिकूं न मानै है ॥ ९३ ॥

गाथा—सम्माइट्ठी सावय धम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि।
विवरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ ९४ ॥

संस्कृत—सम्यग्दृष्टिः श्रावकः धर्मं जिनदेवदेशितं करोति।
विपरीतं कुर्वन् मिथ्यादृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ ९४ ॥

अर्थ—जो जिनदेवका उपदेश्या धर्म करै है सो सम्यग्दृष्टी श्रावक है, बहुरि जो अन्यमतका उपदेश्या धर्म करै है सो मिथ्यादृष्टी जाननां ॥ ९४ ॥

भावार्थ—ऐसैं कहनेंतैं इहां कोई तर्क करै जो—यह तौ अपनां मत पोषनेंकी पक्षपातमात्र वार्त्ता कही ? ताकूं कहिये है, जो—ऐसैं नांही है, जामैं सर्व जीवनिका हित होय सो धर्म है सो ऐसा अहिंसारूप धर्म जिनदेवहीनैं प्ररूप्याहै, अन्यमतमैं ऐसा धर्मका निरूपण नांही, ऐसैं जाननां ॥ ९४ ॥

आगैं कहै है जो—मिथ्यादृष्टी जीव है सो संसारविषैं दुःखसहित भ्रमै है,—

गाथा—मिच्छादिट्ठी जो सो संसारे संसरेइ सुहरहिओ ।
जम्मजरमरणपउरे दुक्खसहस्साउलो जीवो ॥ ९५ ॥

संस्कृत—मिथ्यादृष्टिः यः सः संसारे संसरति सुखरहितः ।
जन्मजरामरणप्रचुरे दुःखसहस्राकुलः जीवः ॥९५॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टी जीव है सो जरा मरणनिकरि प्रचुर भया अर दुःखनिके हजारानिकरि व्याप्त जो संसार ताविषैं सुखकरि रहित दुःखी भया भ्रमैं है ॥

भावार्थ—मिथ्याभावका फल संसारमैं भ्रमण करनां हीहै, सो यह संसार जन्म जरा मरण आदि हजारां दुःखनि करि भऱ्या है, तिनिदुःखनिकूं मिथ्यादृष्टी या संसारमैं भ्रमता संता भोगवै है । इहां दुःखतौ अनंतां हैं हजारा कहनें तैं प्रसिद्ध अपेक्षा बहुलता जनाई है ॥ ९५ ॥

आगैं सम्यक्त्व मिथ्यात्व भावके कथनकूं संकोचै है;—

गाथा—सम्म गुण मिच्छ दोसो मणेण परिभाविऊण तं कुणसु ।
जं ते मणस्स रुच्चइ किं बहुणा पलविएणं तु ॥९६॥

संस्कृत—सम्यक्त्वे गुण मिथ्यात्वे दोषः मनसा परिभाव्य तत् कुरु
यत् ते मनसे रोचते किं बहुना प्रलपितेन तु ॥९६॥

अर्थ—हे भव्य! ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वके गुण अर मिथ्यात्वके दोष तिनिकूं अपनें मन करि भावनाकरि अर जो अपना मनकूं रुचै प्रियलागै सो कर, बहुत प्रलापरूप कहनेंकरि कहा साध्य है। ऐसैं आचार्यनैं उपदेश किया है॥

भावार्थ—ऐसैं आचार्यनैं कह्या है जो—बहुत कहनेकरि कहा? सम्यक्त्व मिथ्यात्वके गुण दोष पूर्वोक्त जांनि जो मनमैं रुचै सो करो। तहां ऐसा उदशेका आशय है जो—मिथ्यात्वकूं छोडो सम्यक्त्वकूं ग्रहण करो यातैं संसारका दुःख मेटि मोक्ष पावो ॥ ९६ ॥

आगैं कहै है जो मिथ्यात्व भाव न छोड्या तब बाह्य भेषतैं कछू नांही है;—

गाथा—बाहिरसंगविमुक्को णा वि मुक्को मिच्छभाव णिग्गंथो।
किं तस्स ठाणमउणं ण वि जाणदि अप्पसमभावं ९७

संस्कृत—बहिः संगविमुक्तः नापि मुक्तः मिथ्याभावेन निर्ग्रंथः।
किं तस्य स्थानमौनं न अपि जानाति आत्मसमभावं ९७

अर्थ—जो बाह्य परिग्रहतैं रहित अर मिथ्याभावसहित निर्ग्रंथ भेष धारण किया है सो परिग्रह रहित नांही है ताकै ठाण कहिये खड़ा होय कायोत्सर्ग करनेंकरि कहा साध्य है? अर मौन धारै ताकरि कहा साध्य है? जातैं आत्माका समभाव जो वीतराग परिणाम ताकूं न जानै है॥

भावार्थ—जो आत्माका शुद्ध स्वभावकूं जांनि सम्यग्दृष्टी होय है। अर मिथ्याभावसहित परिग्रह छोडि निर्गन्थ भी भया है, कायोत्सर्ग करनां मौन धारनां इत्यादि बाह्य क्रिया करै है तौ ताकी क्रिया मोक्षमा-

गैमैं सराहनेंयोग्य नांही है जातैं सम्यक्त्वविना बाह्य क्रियाका फल संसारही है ॥ ९७ ॥

आगैं आशंका उपजे है जो सम्यक्त्वविना बाह्यलिंग निष्फल कह्या तहां जो बाह्यलिंग मूलगुण विगाडै ताकै सम्यक्त्व रहै कि नांही? ताका समाधानकूं कहै है;—

गाथा—मूलगुणं छित्तूण य बाहिरकम्मं करेइ जो साहू।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणलिंगविराहगो णियदं ॥

संस्कृत—मूलगुणं छित्वा च बाह्यकर्म करोति यः साधुः।
सः न लभते सिद्धिसुखं जिणलिंगविराधकः नियतं ॥

अर्थ—जो मुनि निर्ग्रंथ होय मूलगुण धारण करै है तिनिकूं छेदनकरि बिगाडकरि केवल बाह्यक्रियाकर्म करै है सो सिद्धि जो मोक्ष ताका सुखकूं नांही पावै है जातैं ऐसा मुनि जिनलिंगका विराधक है ॥

भावार्थ—जिन आज्ञा ऐसी है जो–सम्यक्त्वसहित मूलगुण धारि धन्य जे साधु क्रिया हैं ते करैं हैं। तहां मूलगुण अट्ठाईस कहे हैं–पांच महाव्रत ५ पांच समिति ५ पंचइंद्रियनिका निरोध ५ छह आवश्य ६ भूमिशयन १ स्नानका त्याग १ वस्त्रका त्याग १ केशलोंच १ एकवार भोजन १ खड़ा भोजन १ दंतधावनका त्याग १ ऐसैं अट्ठाईस मूलगुण हैं तिनिकूं विराधकरि अर कायोत्सर्ग मौन तप ध्यान अध्ययन करै है तौ तिनि क्रियानिकरि मुक्ति न होय है। जातैं जो ऐसैं श्रद्धान करै जो–हमारै सम्यक्त्व तौ है ही, बाह्य मूलगुण विगडै तौ विगडौ हम मोक्षमार्गीही हैं— तौ ऐसी श्रद्धातैं तौ जिन आज्ञा भंग करनेंतैं सम्यक्त्वकाभी भंग होयहै तब मोक्ष कैसैं होय अर कर्मके प्रबल उदयतैं चारित्र भ्रष्ट होय। अर जिन आज्ञा है तैसा श्रद्धान रहै तौ सम्यक्त्व रहै है, अर मूलगुण विनां केवल सम्यक्त्वहीतैं मुक्ति नांही, अर सम्यक्त्वविना केवल क्रियाहीतैं

मुक्ति नांही; ऐसैं जाननां । इहां कोई पूछै—मुनिकै स्नानका त्याग कह्या अर हम ऐसैं भी सुनै हैं जो चांडाल आदिका स्पर्श होय तौ दंडस्नान करै है ? ताका समाधान जो—जैसैं गृहस्थ स्नान करै है तैसैं स्नान करनेंका त्याग हैं जातैं यामैं हिंसाकी बहुलता है, बहुरि मुनिकै ऐसा स्नान है जो—कमंडलुमैं प्रासुकजल रहै ताकरि मंत्र पढ़ि मस्तकपरि धारामात्र देहैं अर तिसदिन उपवास करैं हैं सो ऐसा स्नान है सो नाममात्र स्नान है; इहां मंत्र अर तपस्नान प्रधान है जलस्नान प्रधान नांही, ऐसैं जाननां ॥९८॥

आगैं कहै है जो आत्मस्वभावतैं विपरीत बाह्य क्रियाकर्म है सो कहा करै ? मोक्षमार्गमैं तौ कछू भी कार्य न करै है;—

गाथा—किं काहिदि बहिकम्मं किं काहिदि बहुविहं च खवणं तु
किं काहिदि आदावं आदसहावस्स विवरीदो ॥ ९९ ॥

संस्कृत—किं करिष्यति बहिः कर्म किं करिष्यति बहुविधं च क्षमणं तु ।
किं करिष्यति आतापः आत्मस्वभावात् विपरीतः ९९

अर्थ—आत्मस्वभावतैं विपरीत प्रतिकूल बाह्यकर्म जो क्रियाकांड सो कहा करैगा ? कछू मोक्षका कार्य तौ किंचिन्मात्रभी नांही करैगा, बहुरि बहुत अनेक प्रकार क्षमण कहिये उपवासादि बाह्यतप सो भी कहा करैगा ? कछू भी नांही करैगा, बहुरि आतापनयोगआदि काय-क्लेश सो कहा करैगा ? कछू भी नांही करैगा ॥

भावार्थ—बाह्य क्रियाकर्म शरीराश्रित है अर शरीर जड है आत्मा चेतन है, तहां जडकी क्रिया तौ चेतनकूं कछू फल करै है नांही जैसा चेतनाका भाव जेती क्रियामैं मिलै है ताका फल चेतनकूं लागै है। तहां चेतनका अशुभ उपयोग मिलै तब तौ अशुभकर्म बंधै, अर शुभयोग मिलै तब शुभकर्म बंधै, अर जब शुभ अशुभ दोऊतैं रहित उपयोग

होय तव कर्म न बंधै, पहले कर्म बंधे तिनिकी निर्जरा करि मोक्ष करै है। ऐसैं चेतना उपयोगकै अनुसार फलै, तातैं ऐसैं कह्या है जो बाह्य क्रियाकर्मतैं तौ कछू मोक्ष होय है नांही, शुद्ध उपयोग भये मोक्ष होय है। तातैं दर्शन ज्ञान उपयोगका विकार मेटि शुद्ध ज्ञान चेतनाका अभ्यास करनां मोक्षका उपाय है ॥ ९९ ॥

आगैं याही अर्थका फेरि विशेष कहै हैं;—

गाथा—जदि पढदि बहुसुदाणि य जदि काहिदि बहुविहं य चारित्तं।
तं बालसुद्धं चरणं हवेइ अप्पस्स विवरीदं ॥१००॥

संस्कृत—यदि पठति बहुश्रुतानि च यदि करिष्यति बहुविधं च चारित्रं।
तत् बालश्रुतं चरणं भवति आत्मनः विपरीतम् १००

अर्थ—जो आत्मस्वभावतैं विपरीत बाह्य बहुत शास्त्रानकूं पढैगा बहुरि बहुत प्रकार चारित्रकूं आचैरगा तौ ते सर्वही बालश्रुत अर बाल-चारित्र होयगा। जो आत्मस्वभावतैं विपरीत शास्त्रका पढनां अर चारित्रका आचरनां ये सर्वही बालश्रुत बालचारित्र हैं अज्ञानीकी क्रिया है जातैं ग्यारह अंग नव पूर्व पर्यन्त तौ अभव्यजीवभी पढै है अर बाह्य मूल-गुणरूप चारित्रभी पालै है तौऊ मोक्षकै योग्य नांहीं, ऐसैं जाननां ॥१००॥

आगै कहै है जो—ऐसा साधु मोक्ष पावै है;—

गाथा—वेरग्गपरो साहू परदव्वपरम्मुहो य जो होदि।
संसारसुहविरत्तो सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो ॥१०१॥
गुणगणविहूसियंगो हेयोपादेयणिच्छिओ साहू।
झाणज्झयणे सुरदो सो पावइ उत्तमं ठाणं ॥१०२॥

संस्कृत—वैराग्यपरः साधुः परद्रव्यपराङ्मुखश्च यः भवति ।
संसारसुखविरक्तः स्वकशुद्धसुखेषु अनुरक्तः ॥१०१॥
गुणगणविभूषितांगः हेयोपादेयनिश्चितः साधुः ।
ध्यानाध्ययने सुरतः सः प्राप्नोति उत्तमं स्थानम् १०२

अर्थ—जो साधु ऐसा होय सो उत्तमस्थान जो लोकशिखरपरि सिद्ध क्षेत्र तथा मिथ्यात्वआदि चौदह गुणस्थाननितैं परैं शुद्धस्वभाव रूप स्थान सो पावै है। कैसा भया प्रथम तौ वैराग्यविषैं तत्पर होय संसार देह भोगतैं पहलैं विरक्त होय मुनि भया तिसही भावनायुक्त होय; बहुरि परद्रव्यतैं पराङ्मुख होय जैसें वैराग्य भया तैसैंही परद्रव्यका त्यागकरि तिसतैं पराङ्मुख रहै; बहुरि संसारसंबंधी इंद्रियनिकै द्वारै विषयनितैं सुखसा होय है तातैं विरक्त होय, बहुरि अपनां आत्मीक शुद्ध कषायनिके क्षोभ रहित निराकुल शांतभावरूप ज्ञानानंद ताविषै अनुरक्त होय, लीन होय वारंवार तिसहीकी भावना रहै। बहुरि गुणके गणकरि विभूषित है आत्मप्रदेशरूप अंग जाका, मूलगुण उत्तरगुणनिकरि आत्माकूं अलंकृत शोभायमान किये है, बहुरि हेय उपादेय तत्त्वका निश्चय जाकै होय, निज आत्मद्रव्य तौ उपादेय है अर अन्य परद्रव्यके निमित्ततैं भये अपनें विकारभाव ते सर्व हेय हैं, ऐसा जाकै निश्चय होय, बहुरि साधु होय आत्माके स्वभावके साधनेंविषै नीकैं तत्पर होय बहुरि धर्म शुक्लध्यान अर अध्यात्मशास्त्रनिकूं पढि ज्ञानकी भावनाविषैं तत्पर होय सुरत होय भलै प्रकार लीन होय। ऐसा साधु उत्तमस्थान जो मोक्ष ताकूं पावै है॥ १०१–१०२॥

भावार्थ—मोक्षके साधनेंके ये उपाय हैं अन्य कछू नांही है ॥ १०१–१०२॥

आगैं कहै है—जो सर्वतैं उत्तम पदार्थ शुद्ध आत्माहै सो या देह-

धमैं तिष्टै है ताकूं जानो;—

गाथा—णविएहिं जं णविज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं ।
थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह ॥१०३॥

संस्कृत–नतैः यत् नम्यते ध्यायते ध्यातैः अनवरतम् ।
स्तूयमानैः स्तूयते देहस्थं किमपि तत् जानीत १०३

अर्थ—हे भव्यजीव हौ ! तुम या देहविषैं जो तिष्ठया ऐसा कछू क्यों है ताहि जानो, कैसा है—लोकमैं नमनें योग्य इंद्रादिक हैं तिनि-करि तौ नमनें योग्य अर ध्यावनें योग्य है, वहुरि जे स्तुति करनें योग्य तीर्थंकरादिक हैं तिनिकै स्तुति करनें योग्य है, ऐसा कछू है सो या देहहीविषैं तिष्ठै है ताकूं यथार्थ जानो ॥

भावार्थ—शुद्ध परमात्मा है सो यद्यपि कर्मकरि आच्छादित है तौऊ भेदज्ञानीनिकै या देहहीविषैं तिष्टताहीकूं ध्याय करि तीर्थंकरादि भी मोक्ष पावै है, यातैं ऐसा कह्या है जो—लोकमैं नमनें योग्य तौ इंद्रादिक हैं अर ध्यावनें योग्य तीर्थंकरादिक हैं तथा स्तुति करनें योग्य तीर्थंकरादिक हैं ते भी जाकूं नमैं हैं ध्यावैं हैं जाकी स्तुति करैं हैं ऐसा वचन कछू वचनकै अगोचर भेदज्ञानीनिकै अनुभवगोचर परमात्मा वस्तु है ताका स्वरूप जानो ताकूं नमो ध्यावो, बाहरि काहेकूं हेरो; ऐसा उपदेश है॥१०३

आगैं आचार्य कहै है जो—अरहंतादिक पंच परमेष्ठी हैं ते भी आत्माविषैं ही हैं तातैं आत्मा ही शरण है;—

गाथा—अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी ।
ते वि हु चिट्ठहि आधे तम्हा आदा हु मे सरणं १०४

संस्कृत–अर्हन्तः सिद्धा आचार्या उपाध्यायाः साधवः पंच
परमेष्ठिनः ।

ते अपि स्फुटं तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा स्फुटं मे शरणं ॥ १०४ ॥

अर्थ—अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय अर साधु ये पंच परमेष्टी हैं ते भी आत्माविषैं ही चेष्टारूपहैं आत्माकी अवस्थाहैं, तातैं मेरै आत्माहीका शरणा है, ऐसैं आचार्य अभेदनय प्रधानकरि कह्या है ॥

भावार्थ—ये पांच पद आत्माहीके हैं जब यह आत्मा घातिकर्मका नाश करै है तब अरहंतपद होय है, वहुरि सो ही आत्मा अघाति कर्मनिका नाशकरि निर्वाणकूं प्राप्त होय है तब सिद्धपद कहावै है, वहुरि जब शिक्षा दीक्षा देनेवाला मुनि होय है तब आचार्य कहावै है, वहुरि पठनपाठनविषैं तत्पर ऐसा मुनि होय है तब उपाध्याय कहावै है, अर जब रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्गकूं केवल साधैही तब साधु कहावै है; ऐसैं पांचूं पद आत्माहीमै हैं। सो आचार्य विचारै है जो या देहमैं आत्मा तिष्ठै है सो यद्यपि कर्मआच्छादित है तौऊ पांचूं पदयोग्य है, याहीकूं शुद्धस्वरूप ध्यावे पांचूं पदका ध्यान है तातैं मेरै या आत्माहीका शरणा है ऐसी भावनां करी है, अर पंचपरमेष्ठीका ध्यानरूप अंतमंगल जानाया है ॥ १०४ ॥

आगैं कहै है जो अंतसमाधिमरणमैं च्यारि आराधनाका आराधन कह्या है सो येभी आत्माहीका चेष्टा है तातैं आत्माहीका मेरै शरणां है;—

गाथा—सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं (य) सत्तवं चेव।
चउरो चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ॥१०५॥

संस्कृत—सम्यक्त्वं सज्ज्ञानं सच्चारित्रं सत्तपः चैव।
चत्वारः तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा स्फुटं मे शरणं १०५

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र अर सम्यक् तप ये च्यारि आराधना हैं तेभी आत्माविषैंही चेष्टारूप हैं, ये च्यारूं आत्माहीकी

अवस्था हैं, तातैं आचार्य कहै है मेरै आत्माहीका शरणा है ॥ १०५ ॥

भावार्थ—आत्माका निश्चयव्यवहारात्मक तत्त्वार्थश्रद्धानरूप परिणाम सो सम्यग्दर्शन है, बहुरि संशय विमोह विभ्रम इनिकरि रहित अर निश्चयव्यवहारकरि निजस्वरूपका यथार्थ जाननां सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि तत्वार्थनिकूं जानि रागद्वेषादिकसूं रहित परिणाम सो सम्यक्चारित्र है; बहुरि अपनी शक्ति अनुसार सम्यग्ज्ञानपूर्वक कष्ट आदरि स्वरूपका साधनां सो सम्यक्तप है; ऐसैं ये च्यारूंही परिणाम आत्माके है तातैं आचार्य कहै है मेरै आत्माहीका शरण है, याहीकी भावनामैं च्यारूं आयगये। अंतसल्लेखनामैं च्यारि आराधनाका आराधन कह्या है, तहां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारनिका उद्योत उद्यवन निर्वहण साधन निस्तरण ऐसैं पंचप्रकार आराधना कह्या है, सो आत्माके भावनेमैं च्यारूं आयगये, ऐसैं अंतसल्लेखनाकी भावना याहीमैं आयगई ऐसैं जाननां। तथा आत्माही परममंगलरूप है ऐसा भी जनाया है ॥ १०५ ॥

आगैं यह मोक्षपाहुडग्रंथ पूर्ण किया ताका पढनें सुननें भावनेंका फल कहै है;—

गाथा—एवं जिणपण्णत्तं मोक्खस्स य कारणं सुभत्तीए।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सुक्खं १०६

संस्कृत—एवं जिनप्रज्ञप्तं मोक्षस्य च कारणं सुभक्त्या।
यः पठति शृणोति भावयति सः प्राप्नोति शाश्वतं सौख्यं ॥ १०६ ॥

अर्थ—एवं कहिये ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार जिनदेवनैं कह्या ऐसा मोक्षपाहुड ग्रंथ है ताहि जो जीव भक्तिभावकरि पढै है याकी बारंबार चिंतव-

नरूप भावना करै है तथा सुनै है सो जीव शाश्वता सुख जो नित्य अतीन्द्रिय ज्ञानानंदमय सुख ताहि पावै है ॥

भावार्थ—मोक्षपाहुडमैं मोक्ष अर मोक्षका कारणका स्वरूप कहा है अर जे मोक्षका कारणका स्वरूप अन्यप्रकार मानै हैं तिनिका निषेध किया है तातैं या ग्रंथके पढनें सुननें तैं ताका यथार्थ स्वरूपका ज्ञान श्रद्धान आचरण होय है तिस ध्यानतैं कर्मका नाश होय अर ताकी बारंबार भावना करनेंतैं ताविषैं दृढ होय एकाग्रध्यानकी सामर्थ्य होय है, तिस ध्यानतैं कर्मका नाश होय शाश्वता सुखरूप मोक्षकी प्राप्ति होय है। तातैं या ग्रंथकूं पढनां सुननां निरन्तर भावना राखनी यह आशय है ॥ १०६ ॥

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यनैं यह मोक्षपाहुडग्रंथ संपूर्ण किया। याका संपेक्ष ऐसा—जो यह जीव शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप है तौऊ अनादिहीतैं पुद्गल कर्मके संयोगतैं अज्ञान मिथ्यात्व रागद्वेषादिक विभावरूप परिणमै है तातैं नवीनकर्मबंधके संतानकरि संसारमैं भ्रमै है। तहां जीवकी प्रवृत्तिके सिद्धान्तमैं सामान्यकरि चौदह गुणस्थान निरूपण किये हैं—तिनिमैं मिथ्यात्वके उदयकरि मिथ्यात्वगुणस्थान होय है, अर मिथ्यात्वकी सहकारिणी अनंतानुबंधी कषाय है ताके केवल उदयकरि सासादन गुणस्थान होय है, अर सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोऊके मिलापरूप मिश्रप्रकृतिके उदयकरि मिश्रगुणस्थान होय है; इनि तीन गुण स्थाननिमैं तौ आत्मभावनाका अभावही है। बहुरि जब काललब्धिके निमित्ततैं जीवाजीव पदार्थनिका ज्ञान श्रद्धान भये सम्यक्त्व होय तब या जीवकूं अपनां परका अर हिताहितका हेय उपादेयका जाननां होय है तब आत्माकी भावना होय है तब अविरतनाम चौथा गुणस्थान होय है अर जब एकदेश परद्रव्यतैं निवृत्तिका परिणाम होय है तब जो एकदेश-

चारित्ररूप पांचमां गुणस्थान होय है ताकूं श्रावकपद कहिये, बहुरि सर्वदेश परद्रव्यतैं निवृत्तिरूप परिणाम होय तब सकलचारित्ररूप छट्ठा गुणस्थान कहिये, यामैं कछू संज्वलन चारित्र मोहका तीव्र उदयतैं स्वरूपके साधनेविषैं प्रमाद होय है तातैं ताका नाम प्रमत्तैं है; इहांतैं लगाय ऊपरिके गुणस्थानवालेकूं साधु कहिये है। बहुरि जब संज्वलन चारित्र मोहका मंद उदय होय तब प्रमादका अभाव होय तब स्वरूपके साधनें-विषैं बडा उद्यम होय तब याका नाम अप्रमत्त ऐसा सातवां गुणस्थान है, यामैं धर्मध्यानकी पूर्णता है। बहुरि जब इस गुणस्थानमैं स्वरूपमैं लीन होय तब सातिशय अप्रमत्त होय है श्रेणीका प्रारंभ करै है तब यातैं ऊपरी चारित्रमोहका अव्यक्त उदयरूप अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्म-सांपराय नाम धारक ये तीन गुणस्थान होय हैं। चौथासूं लगाय दशमां सूक्ष्मसांपरायतांई कर्मकी निर्जरा विशेषताकरि गुणश्रेणीरूप होय है। तब यातैं ऊपरि मोहकर्मका अभावरूप ग्यारमां बारमां उपशांतकषाय क्षीणकषाय गुणस्थान होय है। ता पीछैं तीन घातिया कर्म रहे तिनिका नाशकरि अनंत चतुष्टय प्रगट होय अरहंत होय है तहां सयोगी जिन नाम गुणस्थान है, इहां योगकी प्रवृत्ति है। बहुरि योगनिका निरोध करि अयोगीजिन नामा चौदमा गुणस्थान होय है, तहां अघातिकर्मकाभी नाश-करि अर लगताही अनंतर समय निर्वाणपदकूं प्राप्त होय है, तहां संसा-रका अभावतैं मोक्ष नाम पावै है। ऐसैं सर्व कर्मका अभावरूप मोक्ष होय है, ताका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कहे तिनिकी प्रवृत्ति चौथे गुणस्थान सम्यक्त्व प्रगट होनेंतैं एकदेश कहिये, तहांतै लगाय आगै जैसैं जैसैं कर्मका अभाव होय तैसैं तैसैं सम्यग्दर्शनादिकी प्रवृत्ति बधती जाय अर जैसैं जैसैं इनिकी प्रवृत्ति बधै तैसैं तैसैं कर्मका अभाव होता जाय जब घातिकर्मका अभाव होय तब तेरह चौदह गुणस्थान

अरहंत होय तब जीवनमुक्त कहावै अर चौदाह गुणस्थानके— अंत रत्नत्रय की पूर्णता होय है तातैं अघाति कर्मकाभी नाश होय अभाव होय तब साक्षात् मोक्ष होय तब सिद्ध कहावै। ऐसैं मोक्षका अर मोक्षके कारणका स्वरूप जिन आगमतैं जानि अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षका कारण कह्या है ताकूं निश्चय व्यवहाररूप यथार्थ जानि सेवनां अर तप भी मोक्षका कारण है सो भी चारित्रमैं अन्तर्भूत करि त्रयात्मकही कह्या है। ऐसैं इनि कारणनितैं प्रथम तौ तद्भवही मोक्ष होय है। अर जेतैं कारणकी पूर्णता न होय ता पहली कदाचित् आयुकर्मकी पूर्णता होय तौ स्वर्गविषैं देव होय है तहां भी यह वांछा रहै जो यह शुभोपयोगका अपराध है इहांतैं चयकरि मनुष्य होऊंगा, तब सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्गकूं सेय मोक्षप्राप्त होऊंगा, ऐसी भावना रहै है तब तहांतैं चय मोक्ष पावै है। अर अवार इस पंचमकालमैं द्रव्य क्षेत्र काल भावकी सामग्रीका निमित्त नांही तातैं तद्भव मोक्ष नांही तौऊ जो रत्नत्रयकूं शुद्धताकरि सेवै तौ इहांतैं देव पर्याय पाय पीछैं मनुष्य होय मोक्ष पावै है। तातैं यह उपदेश है जैसैं बनैं तैसैं रत्नत्रयकी प्राप्तिका उपाय करनां, तहां भी सम्यग्दर्शन प्रधान है ताका उपाय तौ अवश्य चाहिये, तातैं जिनागमकूं समझि सम्यक्त्वका उपाय अवश्य करनां योग्य है ऐसैं इस ग्रंथका संक्षेप जानो॥

छप्पय।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवकारण जानूं
ते निश्चय व्यवहाररूप नीकैं लखि मानूं।
सेवो निशदिन भक्तिभाव धरि निजबल सारू,
जिन आज्ञा सिर धारि अन्यमत तजि अघकारू॥

इस मानुषभवकूं पायकै अन्य चारित मति धरो
भविजीवनिकूं उपदेश यह गहिकरि शिवपद संचरो ॥१॥

दोहा।

वंदूं मंगलरूप जे अर मंगलकरतार।
पंच परम गुरु पद कमल ग्रंथ अंत हितकार ॥ २ ॥

इहां कोई पूछै–जो ग्रंथनिमैं जहां तहां पंचणमोकारकी महिमा बहुत लिखी, मंगलकार्यमैं विघ्नके मेटनेंकूं यही प्रधान कह्या, अर यामैं पंच परमेष्ठीकूं नमस्कार है सो पंचपरमेष्ठीकी प्रधानता भई, पंचपरमेष्ठीकूं परम गुरु कहे तहां याही मंत्रकी महिमा तथा मंगलरूपपणा अर यातैं विघ्नका निवारण अर पंचपरमेष्ठीकै प्रधानपणां अर गुरुपणां अर नमस्कार करनें योग्यपणां कैसें है? सो कहनां।

ताका समाधानरूप कछूक लिखिये है:–तहां प्रथम तो पंचणमोकार मंत्र है, ताके पैंतीस अक्षर हैं, सो ये मंत्रके बीजाक्षर हैं तथा इनिका जोड सर्व मंत्रनितैं प्रधान है, इनि अक्षरनिका गुरु आम्नायतैं शुद्ध उच्चारण होय तथा साधन यथार्थ होय तब ये अक्षर कार्यमैं विघ्नके निवारणेंकूं कारण हैं तातैं मंगलरूप हैं। जो 'मं' कहिये पाप ताकूं गालै ताकूं मंगल कहिये तथा 'मंग' कहिये सुखकूं ल्यावै दे ताकूं मंगल कहिये सो यातैं दोऊ कार्य होय हैं। उच्चारणतैं विघ्न टलैं हैं, अर्थ विचारे सुख होय है, याही तैं याकूं मंत्रनिमैं प्रधान कह्या है, ऐसैं तौ मंत्रके आश्रय महिमा है। बहुरि पंचपरमेष्ठीकूं नमस्कार यामैं है–ते पंचपरमेष्ठी अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये हैं सो इनिका स्वरूप तौ ग्रंथनिमैं प्रसिद्ध है, तथापि कछू लिखिये है:—तहां यहु अनादिनिधन अकृत्रिम सर्वज्ञकी परंपराकरि सिद्ध आगममैं कह्या है ऐसा षट्द्रव्यस्वरूप

लोक है, तामैं जीवद्रव्य अनंतानंत हैं अर पुद्गलद्रव्य तिनितैं अनंतानंत गुणे हैं, बहुरि एक एक धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य हैं, बहुरि काल द्रव्य असंख्यात द्रव्य हैं। तहां जीव तौ दर्शनज्ञानमयी चेतना स्वरूप है। अर पांच अजीव हैं ते चेतनारहित जड हैं—तहां धर्म अधर्म आकाश काळ ये च्यारि द्रव्य तौ जैसैं हैं तैसैं तिष्ठैं हैं तिनिकै विकारपरिणति नांही; बहुरि जीव पुद्गलद्रव्यके परस्पर निमित्त नैमित्तिकभावतैं विभावपरिणति है तामैं भी पुद्गल तौ जड है ताकै विभावपरिणतिका दु:ख सुखका संवेदन नांही, अर जीव चेतन है याकै सुख दु:खका संवेदन है। तहां जीव अनंतानंत हैं तिनिमैं केई तौ संसारी हैं, केई संसारतैं निवृत्त होय सिद्ध भये हैं। तहां संसारी जीव हैं तिनिमैं केई तौ अभव्य हैं तथा अभव्यसारिखे हैं ते दोऊ जातिके संसारतैं निवृत्त कबहू न होय है तिनिकै संसार अनादिनिधन है; बहुरि केई भव्य हैं ते संसारतैं निवृत्त होय सिद्ध होय हैं, ऐसैं जीवनिकी व्यवस्था है। अब इनिकै संसारकी उत्पत्ति कैसैं है सो कहै है—तहां जीवनिकै ज्ञानावरणादि आठ कर्मनिका अनादिबंधरूप पर्याय है तिसबंधके उदयके निमित्ततैं जीव रागद्वेषमोहादि विभावपरिणतिरूप परिणमै हैं, तिस विभाव परिणतिके निमित्ततैं नवीन कर्मबंध होय है, ऐसैं इनिके संतानतैं जीवकै चतुर्गतिरूप संसारकी प्रवृत्ति होय है तिस संसारमैं चतुर्गतिविषैं अनेक प्रकार सुखदु:खरूप भया भ्रमै है; तहां कोई काल ऐसा आवै जो मुक्त होनां निकट आवै तब सर्वज्ञके उपदेशका निमित्त पाय अपनां स्वरूपकूं अर कर्मबंधका स्वरूपकूं अर आपमैं विभावका स्वरूपकूं जानै इनिका भेद ज्ञान होय तब परद्रव्यकूं संसारके निमित्त जानि तिनितैं विरक्त होय अपने स्वरूपका अनुभवका साधन करै दर्शनज्ञानरूप स्वभावविषैं स्थिर होनेंका साधन करै तब याकै

वाह्यसाधन हिंसादिक पंच पापनिका त्यागरूप निर्ग्रंथपद सर्व परिग्रहका त्यागरूप निर्ग्रन्थ दिगंवर मुद्रा धारै पांच महाव्रत पांच समितिरूप तीन गुप्तिरूप प्रवर्त्तै तव सर्व जीवनिकी दया करनेंवाले साधु कहावै, तामैं तीन पदवी होय—जो आप साधु होय अन्यकूं साधुपदकी शिक्षादीक्षा देय सो तौ आचार्य कहावै, अर साधु होय जिनसूत्रकूं पढै पढावै सो उपाध्याय कहावै, अर जो अपनें स्वरूपका साधनमें रहै सो साधु कहावै अर जो साधु होय अपनें स्वरूपका साधनका ध्यानका वलतैं च्यारि घाति कर्मनिका नाशकरि केवलज्ञान केवलदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्यकूं प्राप्त होय सो अरहंत कहावै, तव तीर्थंकर तथा सामान्यकेवली जिन इंद्रादिककरि पूज्य होय तिनिकी वाणी खिरै जिसतैं सर्व जीवनिका उपकार होय अहिंसा धर्मका उपदेश होय सर्व जीवनिकी रक्षा करावै यथार्थ पदार्थनिका स्वरूप जनाय मोक्षमार्ग दिखावै ऐसी अरहंत पदवी होय है; बहुरि जो च्यारि अघाति कर्मकाभी नाशकरि सर्व कर्मनितैं रहित होय सो सिद्ध कहावै। ऐसैं ये पांच पद हैं, ते अन्य सर्व जीवनितैं महान हैं तातैं पंच परमेष्ठी कहावैं हैं तिनिके नाम तथा स्वरूपके दर्शन तथा स्मरण ध्यान पूजन नमस्कारतैं अन्य जीवनिकै शुभपरिणाम होय हैं तातैं पापका नाश होय है, वर्त्तमानका विघ्न विलय होय है, आगामी पुण्यका वंध होय है तातैं स्वर्गादिक शुभ-गति पावै है। अर इनिकी अज्ञानुसार प्रवर्त्तनेंतैं परंपराकरि संसारतैं निवृत्तिभी होय है तातैं ये पंच परमेष्ठी सर्व जीवनिके उपकारी परमगुरु हैं, सर्व संसारी जीवनिकै पूज्य हैं। इनि सिवाय अन्य संसारी जीव हैं ते राग द्वेष मोहादि विकारनिकरि मलिन हैं, ते पूज्य नांहीं, तिनिकै महानपणां गुरुपणां पूज्यपणां नांही, आपही कर्मनिके वशि मलिन तव अन्यका पाप तिनितैं कैसैं कटै। ऐसैं जिनमतमैं इनि पंच परमेष्ठीका महानपणां प्रसिद्ध है अर न्यायके वलतैंभी ऐसैंही सिद्ध होय है जातैं जे

संसारके भ्रमणतैं रहित होय तेही अन्यकै संसारका भ्रमण मेटनेकूं कारण होय जैसैं जाकै धनादि वस्तु होय सो ही अन्यकूं धनादिक दे अर आप दरिद्री होय तब अन्यका दरिद्र कैसैं मेटैं, ऐसैं जाननां। ऐसैं जिनकूं संसारके विघ्न दुःख मेटनें होय अर संसारका भ्रमणका दुःखरूप जन्म मरणतैं रहित होनां होय ते अरहंतादिक पंच परमेष्ठीका नाम मंत्र जपो, इनिके स्वरूपका दर्शन स्मरण ध्यान करो, तातैं शुभ परिणाम होय पापका नाश होय, सर्व विघ्न टलैं परंपराकरि संसारका भ्रमण मिटै कर्मका नाश होय मुक्तिकी प्राप्ति होय, ऐसा जिनमतका उपदेश है सो भव्य जीवनिकै अंगीकार करनें योग्य है।

इहां कोई कहै—अन्यमतमैं ब्रह्मा विष्णु शिव आदिक इष्ट देव मानैं हैं तिनिके विघ्न टलते देखिये हैं तथा तिनिके मतमैं राजादि बडे बडे पुरुष देखिये हैं तिनिके भी ते इष्ट हैं सो विघ्नादिकका मेटनेंवाले हैं तैसैं तुमारे भी कहौ, ऐसैं क्यों कहो जो ये पंचपरमेष्ठीही प्रधान हैं अन्य नांही? ताकूं कहिये, रे भाई! जीवनिके दुःख तौ संसार भ्रमणका है अर संसारके भ्रमणका कारण राग द्वेष मोहादिक परिणाम है अर रागादिक वर्त्तमानमैं आकुलतामयी दुःखस्वरूप हैं तातैं ते ब्रह्मादिक इष्ट दव कहे ते तौ रागादिक काम क्रोधादिकरि युक्त हैं, अज्ञान तपके फलतैं केई जीव सर्व लोकमैं चमत्कारसहित राजादिक बडी पदवी पावै ताकूं लोक बडा मानि लोक ब्रह्मादिक भगवान कहनें लगिजाय, कहै जो—ये परमेश्वर ब्रह्मका अवतार है सो ऐसे मानें तौ कछू मोक्षमार्गी तथा मोक्षरूप होय नांही, संसारीही रहैं हैं। ऐसैंही अन्यदेव सर्व पदवी वाले जाननें ते आपही रागादिककरि दुःखरूप हैं जन्ममरण करि सहित हैं ते परका संसारका दुःख कैसैं मेटैंगे। अर तिनिके मतमैं विघ्नका टलनां अर राजादिक बडे पुरुष होते कहे सो ये तौ जीवनिकै पूर्वैं कछू शुभ कर्म बंधेथे

तिनिका फल है, पूर्वजन्ममैं किंचित् शुभ परिणाम कियाथा तातैं पुण्य-कर्म बंध्याथा ताका उदयतैं कछू विघ्न टलै है अर राजादिक पदवी पावै है सो पूर्वै कछु अज्ञानतप किया होय ताका फल है सो ये तौ पुण्यपाप-रूप संसारकी चेष्टा है, यामैं कछू बडाई नांही; बडाई तौ जो है जातैं संसारका भ्रमण मिटै सो तौ वीतराग विज्ञान भावनिहीतैं मिटैगा, सो तिस वीतराग विज्ञान भावनियुक्त पंच परमेष्ठी हैं तेही संसारका भ्रमण के दुःख मेटनेंकूं कारण हैं। वर्त्तमानमैं कछू पूर्व शुभ कर्मका उदयतैं पुण्यका चमत्कार देखि तथा पापका दुःख देखि भ्रम नहीं उपजावनां, पुण्य पाप दोऊ संसार हैं तिनितैं रहित मोक्ष है, सो संसारतैं छूटि मोक्ष होय तैसाही उपाय करनां। अर वर्त्तमानकाभी विघ्न जैसा पंचपरमेष्ठीका नाम मंत्र ध्यान दर्शन स्मरणतैं मिटैगा तैसा अन्यके नामादिकतैं तौ न मिटैगा जातैं ये पंचपरमेष्ठी ही शांतिरूप है केवल शुभ परिणामनिहीकूं कारण हैं। बहुरि अन्य इष्टके रूप हैं ते तौ रौद्ररूप हैं तिनिका तौ दर्शन स्मरण है सो रागादिक तथा भयादिकका कारण है, तिनितैं तौ शुभ परिणाम होता दीखै नांही। कोईकै कदाचित् कछू धर्मानुरागके वशतैं शुभपरिणाम होय तौ सो तिनितैं तौ न भया कहिये, वा प्राणीकै स्वाभा-विक धर्मानुरागके वशतैं होय है। तातैं अतिशयवान शुभपरिणामका कारण तौ शांतिरूप पंच परमेष्ठीहीका रूप है तातैं याहीका आराधन करनां, वृथा खोटी युक्ति सुनि भ्रम नहीं उपजावनां, ऐसैं जाननां ॥

इतिश्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित मोक्षप्राभृतकी।
जयपुरनिवासि पं. जयचन्द्रजीछावड़ाकृत-
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥ ६ ॥

॥ श्री ॥

अथ लिंगपाहुड ।

—:o:—

(७)

अथ लिंगपाहुडकी वचनिका लिखिए है;—

दोहा ।

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय ।
कर्म नाशि शिवसुख लियो वंदूं तिनिके पांय ॥१॥

ऐसैं मंगलकै अर्थि जिनि मुनिनिनैं शिवसुख पाया तीनिकूं नमस्कार करि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृत प्राकृत गाथाबंध लिंगपाहुडनाम ग्रंथ है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है;—तहां प्रथमही आचार्य मंगलकै अर्थि इष्टकूं नमस्कारकरि ग्रंथ करनेंकी प्रतिज्ञा करै हैं;—

गाथा—काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं ।
वोच्छामि समणलिंगं पाहुडसत्थं समासेण ॥१॥

संस्कृत—कृत्वा नमस्कारं अर्हतां तथैव सिद्धानाम् ।
वक्ष्यामि श्रमणलिंगं प्राभृतशास्त्रं समासेन ॥१॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो—मैं अरहंतनिकूं नमस्कार करि अर तैसैं ही सिद्धनिकूं नमस्कार करि अर श्रमण लिंगका है निरूपण जामैं ऐसा पाहुडशास्त्र है ताहि कहूंगा ॥

भावार्थ—इस कालमैं मुनिका लिंग जैसा जिनदेवनैं कह्या है तैसामैं विपर्यय भया ताका निषेध करनेंकूं यह लिंगके निरूपणका शास्त्र आचार्यनैं रच्या है, ताकी आदिमैं घातिकर्मका नाशकरि अनंत चतुष्टय

पाय अरहंत भये तिनिनैं यथार्थ श्रमणका मार्ग प्रवर्त्तीया अर तिस लिंगकूं साधि सिद्ध भये; ऐसैं अरहंत सिद्ध तिनिकूं नमस्कारकरि ग्रंथ करनेंकी प्रतिज्ञा करी है ॥ १ ॥

आगै कहै है जो–लिंग बाह्यभेष है सो अंतरंगधर्मसहित कार्यकरी है;—

गाथा—धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती ।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो ॥२॥

संस्कृत—धर्मेण भवति लिंगं न लिंगमात्रेण धर्मसंप्राप्तिः ।
जानीहि भावधर्मं किं ते लिंगेन कर्त्तव्यम् ॥२॥

अर्थ—धर्मकरि सहित तौ लिंग होय है वहुरि लिंगमात्रहीकरि धर्मकी प्राप्ति नांहीं है, तातैं हे भव्यजीव ! तू भावरूप धर्म है ताहि जांनि अर केवल लिंगहीकरि तेरै कहा कार्य होय है, कछू भी नांही ॥

भावार्थ—इहां ऐसा जानो जो–लिंग ऐसा चिह्नका नाम है सो बाह्य भेष धारै सो मुनिका चिह्न है सो ऐसा चिह्न जो अंतरंग वीतराग स्वरूप धर्म होय तौ ता सहित तौ यह चिह्न सत्यार्थ होय है अर तिस वीतरागस्वरूप आत्माका धर्म विना लिंग जो बाह्य भेष तिस मात्रकरि धर्मकी संपत्ति जो सम्यक् प्राप्ति सो नांही है, तातैं उपदेश किया है जो अंतरंग भावधर्म जो रागद्वेष रहित आत्माका शुद्ध ज्ञान दर्शन रूप स्वभाव सो धर्म है ताहि हे भव्य ! तू जांनि; अर इस बाह्य लिंग भेष मात्रकरि कहा कार्य है कछुभी नांही । वहुरि इहां ऐसाभी जानना जो–जिनमतमैं लिंग तीन कहै है–एक तौ मुनिका यथाजात दिगंबर लिंग १ दूजा उत्कृष्ट श्रावकका २ तीजा आर्यकाका ३ इनितीनूंही लिंगनि कूं धारि भ्रष्ट होय अर जो कुक्रिया करै ताका निषेध है । तथा अन्य

मतके केई भेष है तिनिकूं भी धारि जो कुक्रिया करै सो भी निंदाही पावै, तातैं भेषधारि कुक्रिया न करनां ऐसा जनाया है ॥ २ ॥

आगैं कहै है जो जिनका लिंग जो–निर्ग्रंथ दिगंबररूप ताहि ग्रहण-करि जो कुक्रिया करि हास्य करावै सो पापबुद्धि है;—

गाथा—जो पावमोहिदमदी लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
उवहसइ लिंगिभावं लिंगिम्मिय णारदो लिंगी ॥३॥

संस्कृत—यः पापमोहितमतिः लिंगं गृहीत्वा जिनवरेन्द्राणाम्।
उपहसति लिंगिभावं लिंगिषु नारदः लिंगी ॥३॥

अर्थ—जो जिनवरेन्द्र कहिये तीर्थंकरदेवका लिंग नग्न दिगंबररूपकूं ग्रहण करि अर लिंगीपणांका भावकूं उपहसै है हास्यमात्र गिनै है; सो कैसा है–लिंगी कहिये भेषी तिनिविषैं नारद लिंगी है तैसा है। अथवा या गाथाका चौथा पादका पाठान्तर ऐसा है–"लिंग णासेदि लिंगीणं" याका अर्थ—यह जो लिंगी जो अन्य केई लिंगका धारी तिनिका लिंगकूं भी नष्ट करै है, ऐसा जनावै है जो लिंगी सर्व ऐसेही हैं, कैसा है लिंगी—पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ॥

भावार्थ—लिंगधारी होय अर पापबुद्धिकरि किछू कुक्रिया करै तब तानैं लिंगीपणां हास्यमात्र गिण्यां, किछू कार्यकारी गिण्या नांही। लिंगीपणा तौ भावशुद्धतैं सोहै था सो भाव विगडे तब बाह्य कुक्रिया करनैं लग्या तब यानैं तिस लिंगकूं लजाया अर अन्य लिंगीनिका लिंगकूं भी कलंक लगाया, लोक कहनें लगे–जो लिंगी ऐसेही होय हैं। अथवा जैसैं नारदका भेष है तामैं वह स्वइच्छानुसार स्वच्छंद जैसैं प्रवर्तै है तैसैं यह भी भेषी ठहऱ्या। तातैं आचार्य ऐसा आशय धारि कह्या है जो–जिनेन्द्रका भेषकूं लजावनां योग्य नांही ॥ ३ ॥

आगैं लिंग धारि कुक्रिया करै ताकूं प्रगट कहै हैं;—

गाथा—णच्चदि गायदि तावं वायं वाएदि लिंगरूवेण ।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥४॥

संस्कृत—नृत्यति गायति तावत् वाद्यं वादयति लिंगरूपेण ।
सः पापमोहितमतिः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥४॥

अर्थ—जो लिंगरूप करि नृत्य करै है गावै है वादित्र वजावै है, सो कैसा है—पापकरि मोहित है वुद्धि जाकी ऐसा है, सो तिर्यंचयोनि है, पशु है; श्रमण नांही ॥

भावार्थ—लिंग धारि भाव विगाडि नाचनां गावनां वजावनां इत्यादि क्रिया करै सो पापवुद्धि है पशु है अज्ञानी है, मनुष्य नांही, मनुष्य होय तौ श्रमणपणां राखै। जैसैं नारद भेषधारी नाचै गावै है वजावै है तैसैं यह भी भेषी भया तब उत्तमभेपकूं लजाया, तातैं लिंग धारि ऐसा होनां युक्त नांही ॥ ४ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—सम्मूहदि रक्खेदि य अट्टं झाएदि वहुपयत्तेण ।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥५॥

संस्कृत—समूहयति रक्षति च आर्त्तं ध्यायति वहुप्रयत्नेन ।
सः पापमोहितमतिः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥५॥

अर्थ—जो निर्ग्रंथ लिंग धारि अर परिग्रहकूं संग्रहरूप करै है अथवा ताकी वांछा चिंतवन ममत्व करै है, वहुरि तिस परिग्रहकी रक्षा करै है ताका वहुत यत्न करै है, ताकै अर्थि आर्त्तध्यान निरन्तर ध्यावै है; सो कैसा है—पापकरि मोहित है वुद्धि जाकी ऐसा तिर्यंचयोनि है पशु है अज्ञानी है, श्रमण तौ नांही श्रमणपणांकूं बिगाडै है, ऐसैं जाननां ॥५॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—कलहं वादं जूवा णिच्चं बहुमाणगव्विओ लिंगी।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण ॥६॥

संस्कृत—कलहं वादं द्यूतं नित्यं बहुमानगर्वितः लिंगी।
व्रजति नरकं पापः कुर्वाणः लिंगिरूपेण ॥६॥

अर्थ—जो लिंगी बहुत मानकषायकरि गर्ववान भया निरंतर कलह करै है वाद करै है द्यूतक्रीडा करै है सो पापी नरककूं प्राप्त होय है, कैसा है लिंगी—पाप करि ऐसैं करता संता वर्त्तै है॥

भावार्थ—जो गृहस्थरूप करि ऐसी क्रिया करै है ताकूं तौ यह उराहनां नांही जातैं कदाचित् गृहस्थ तौ उपदेशादिकका निमित्त पाय कुक्रिया करता रह जाय तौ नरक न जाय। बहुरि लिंग धारि तिसरूपकरि कुक्रिया करै तौ ताकूं उपदेश भी न लागै, यातैं नरककाही पात्र होय है॥६॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—पाओपहदभावो सेवदि य अबंभु लिंगिरूवेण।
सो पावमोहिदमदी हिंडदि संसारकांतारे ॥७॥

संस्कृत—पापोपहतभावः सेवते च अब्रह्म लिंगिरूपेण।
सः पापमोहितमतिः हिंडते संसारकांतारे ॥७॥

अर्थ—जो पापकरि उपहत कहिये घात्या गया है आत्मभाव जाका ऐसा भया संता लिंगीका रूपकरि अब्रह्म सेवै है, सो पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ऐसा लिंगी संसाररूपी कांतार जो वन ताविषैं भ्रमै है॥

भावार्थ—पहले तौ लिंगधारण किया अर पीछैं ऐसा पाप परिणाम भया जो व्यभिचार सेवनें लग्या, ताकी पापबुद्धिका कहा कहना? ताका संसारमैं भ्रमण न क्यों न होय? जाकै अमृतहू जहररूप परिणमै ताकै

१ इस छंदका प्रथम द्वितीयपाद यति भंग है।

रोग जानेकी कहा आशा? तैसैं यह भया, ऐसेका संसार कटनां कठिन है ॥ ७ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—दंसणणाणचरित्ते उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण।
अट्टं झायदि झाणं अणंतसंसारिओ होदि ॥८॥

संस्कृत-दर्शनज्ञानचारित्राणि उपधानानि यदि न लिंगरूपेण।
आर्त्तं ध्यायति ध्यानं अनंतसंसारिकः भवति ॥८॥

अर्थ—यदि कहिये जो लिंगरूप करि दर्शन ज्ञान चारित्रकूं तौ उपधानरूप न किये धारण न किये अर आर्त्तध्यानकूं ध्यावै है तौ ऐसा लिंगी अनंतसंसारी होय है ॥

भावार्थ—लिंग धारण करि दर्शन ज्ञान चारित्रका सेवन करनां था सो तौ न किया अर परिग्रह कुटुंब आदि विपयनिका परिग्रह छोड्या ताकी फेरि चिंताकरि आर्त्तध्यान ध्यावनें लगा तब अनंतसंसारी क्यौं न होय? याका यह तात्पर्य है जो—सम्यग्दर्शनादिरूप भाव तौ पहले भये नांही अर किछू कारण पाय लिंग धार्या, ताकी अवधि कहा? पहली भाव शुद्ध करि लिंग धारनां युक्त है ॥ ८ ॥

आगैं कहै है जो-भावशुद्धि विना गृहस्थचारा छोड़े यह प्रवृत्ति होय है;—

गाथा—जो जोडेदि विवाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण ॥९॥

संस्कृत—यः योजयति विवाहं कृपिकर्मवाणिज्यजीवघातं च।
व्रजति नरकं पापः कुर्वाणः लिंगिरूपेण ॥९॥

अर्थ—जो गृहस्थनिके परस्पर विवाह जोडै है सणपण करावै है, बहुरि कृषिकर्म कहिये खेती वाहना किसानका कार्य अर वाणिज्य कहिये

व्यापार विणज वैश्यका कार्य अर जीवघात कहिये वैद्यकर्मके अर्थि जीवघात करनां अथवा धींवरादिकका कार्य इनि कार्यनिकूं करै है सो लिंगरूपकरि ऐसैं करता पापी नरककूं प्राप्त होय है ॥

भावार्थ—गृहस्थचारा छोडि शुभ भाव विना लिंगी भया था, याकी भावकी वासना मिटी नांही तब लिंगीका रूप धारि करिभी करनेंलगा आप विवाह न करै तौऊ गृहस्थनिकै सगपण कराय विवाह करावै तथा खेती विणज जीवहिंसा आप करै तथा गृहस्थनिकूं करावै, तब पापी भया संता नरक जाय। ऐसे भेष धारनेंतैं तौ गृहस्थही भला था, पदवीका पाप तौ न लागता, तातैं ऐसा भेष धारणां उचित नांही यह उपदेश है ॥ ९ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

गाथा—चोराण लाउराण य जुद्ध विवादं च तिव्वकम्मेहिं ।
जंतेण दिव्वमाणो गच्छदि लिंगी णरयवासं ॥१०॥

संस्कृत—चौराणां लापराणां च युद्धं विवादं च तीव्रकर्मभिः ।
यंत्रेण दीव्यमानः गच्छति लिंगी नरकवासं ॥१०॥

अर्थ—जो लिंगी ऐसैं प्रवर्त्तै है सो नरकवासकूं प्राप्त होय है जो चौरानिकै अर लापर कहिये झूंठ बोलनेंवालानिकै युद्ध अर विवाद करावै है बहुरि तीव्रकर्म जो जिनिमैं बहुत पाप उपजै ऐसे तीव्र कषायनिके कार्य तिनिकरि तथा यंत्र कहिये चौपडि सतरंज पासा हिंदोला आदि ताकरि क्रीडा करता संता वर्त्तै है, ऐसैं वरतता नरक जाय है। इहां 'लाउराणं का पाठांतर ऐसाभी है राउलाणं,' याका अर्थ—रावल कहिये राजकार्य करनेंवाले तिनिकै युद्ध विवाद करावै, ऐसैं जाननां ॥

१—मुद्रित सटीक संस्कृत प्रतिमें 'समाएण' ऐसा पाठ है जिसकी छाया 'मिथ्यावादिनां' इस प्रकार है।

भावार्थ—लिंग धारण करि ऐसे कार्य करै तौ सो नरक पावैही यामैं संशय नांही ॥ १० ॥

आगैं कहै है जो लिंग धारि लिंगयोग्य कार्य करता दुःखी रहै है तिनि कार्यनिका आदर नांही करै है, सो भी नरकमैं जाय है;—

गाथा—दंसणणाणचरित्ते तवसंजमणियमणिच्चकम्मम्मि ।
पीडयदि वट्टमाणो पावदि लिंगी णरयवासं ॥११॥

संस्कृत—दर्शनज्ञानचारित्रेषु तपः संयमनियमनित्यकर्मसु ।
पीड्यते वर्त्तमानः प्राप्नोति लिंगी नरकवासम् ११

अर्थ—जो लिंगधारणकरि इनि क्रियानिविषैं करता बाध्यमान होय पीडा पावै है दुःखी होय है सो लिंगी नरकवासकूं पावै है। ते क्रिया कहा ? प्रथम तौ दर्शन ज्ञान चारित्र तिनिविषैं इनिका निश्चय व्यवहार-रूप धारण करनां, बहुरि तप अनशनादिक बारह प्रकार तिनिका शक्तिसारू करनां, बहुरि संयम-इंद्रिय मनका वशि करनां जीवनिकी रक्षा करनी, नियम कहिये नित्य किछू त्याग करनां, बहुरि नित्यकर्म कहिये आवश्यक आदि क्रियाका कालकी काल नित्य करनां; ये लिंगकै योग्य क्रिया हैं; इनि क्रियानिविषैं करता दुःखी होय है, सो नरक पावै है ॥

भावार्थ—लिंगधारणकरि ये कार्य करनें थे तिनिका तौ निरादर करै अर प्रमाद सेवै, लिंगकै योग्य कार्य करता दुःखी होय, तब जानिये-याकै भावशुद्धिपूर्वक लिंगग्रहण नांही भया। अर भाव बिगडै ताका फल तौ नरकही होय, ऐसैं जाननां ॥ ११ ॥

आगैं कहै है जो भोजनविषैं भी रसनिका लोलुपी होय सो भी लिंगकूं लजावै है;—

गाथा—कंदप्पाइय वट्टइ करमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं।
मायी लिंगविवाई तिरिक्खजोणी ण समणो ॥१२॥

संस्कृत—कंदर्पादिषु वर्त्तते कुर्वाणः भोजनेषु रसगृद्धिम्।
मायावी लिंगव्यवायी तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः १२

अर्थ—जो लिंग धारि करि भोजनविषैं भी रसकी गृद्धि कहिये अति आसक्तता ताहि करता वर्त्तै है सो कंदर्प आदिकविषैं वर्त्तै है, कामसेवनकी वांछा तथा प्रमाद निद्रादिक जाकै प्रचुर वढै है तब 'लिंगव्यवायी' कहिये व्यभिचारी होय है, मायावी कहिये कामसेवनकै अर्थि अनेक छल करनां विचारै है; जो ऐसा होय है सो तिर्यंचयोनि है पशुतुल्य है मनुष्य नांही याहीतैं श्रमण नांही ॥

भावार्थ—गृहस्थचारा छोडि आहारविषैं लोलुपता करनैं लग्या तौ गृहस्थचारामैं अनेक रसीले भोजन मिलैं थे, काहेकूं छोड़े, तातैं जानिये है जो आत्मभावनाका रसकूं पहचान्या नांही तातैं विषयसुखकी ही चाहि रही तव भोजनके रसकी लारकै अन्य भी विषयनिकी चाहि होय तव व्यभिचार आदिमैं प्रवर्त्ति करि लिंगकूं लजावै; ऐसे लिंगतैं तौ गृहस्थचाराही श्रेष्ट है, ऐसैं जाननां ॥१२॥

आगैं फेरि याहीका विशेष कहै है;—

गाथा—धावदि पिंडणिमित्तं कलहं काऊण भुंजदे पिंडं।
अवरुपरुई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो ॥१३॥

संस्कृत—धावति पिंडनिमित्तं कलहं कृत्वा भुंक्ते पिंडम्।
अपरप्ररूपी सन् जिनमार्गी न भवति सः श्रमणः १३

अर्थ—जो लिंगधारी पिंड जो आहार ताकै निमित्त दोडै है, बहुरि आहारकै निमित्त कलह करि आहारकूं भुंजै है खाय है, बहुरि ताकै निमित्त अन्यतैं परस्पर ईर्षा करै है सो श्रमण जिनमार्गी नांही है ॥

भावार्थ—इस कालमैं जिनलिंगतैं भ्रष्ट होय पहले अर्द्धफलक भये पीछैं तिनिमैं श्वेतांवरादिक संघ भये तिनिनैं शिथिलाचार पोषि लिंगकी प्रवृत्ति विगाडी, तिनिका यह निषेध है। तिनिमैं अव भी केई ऐसे देखिये हैं जो—आहारकै आर्थि शीघ्र दोडै है ईर्यापथकी सुध नांही, वहुरि आहार गृहस्थका घरसूं ल्याय दोय च्यारि सामिल बैठि खाय तामैं वट-वारामैं सरस नीरस आवै तव परस्पर कलह करै वहुरि तिसके निमित्त परस्पर ईर्षा करै, ऐसैं प्रवर्त्तैं ते काहेके श्रमण ? ते जिनमार्गी तौ नांही कलिकालके भेषी हैं। तिनिकूं साधु मानैं हैं ते भी अज्ञानी हैं ॥१३॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

गाथा—गिण्हदि अदत्तदाणं परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं।
जिणलिंगं धारंतो चोरेण व होइ सो समणो ॥१४॥

संस्कृत—गृह्णाति अदत्तदानं परनिंदामपि च परोक्षदूषणैः।
जिनलिंगं धारयन् चौरेणेव भवति सः श्रमणः॥१४॥

अर्थ—जो बिना दिया तौ दान ले है अर परोक्ष परके दूषणनि-करि परकी निंदा करै है सो जिनलिंगकूं धारता संता भी चौरकी ज्यों श्रमण है ॥

भावार्थ—जो जिनलिंग धारि विना दिया आहार आदिकूं ग्रहण करै परकै देनेंकी इच्छा नांही किछू भयादिक उपजाय लेना तथा निरादरतैं लेनां, छिपिकरि कार्य करनां ये तौ चौरके कार्य हैं। यह भेप धारि ऐसैं करनेंलग्या तव चौरही ठहऱ्या तातैं ऐसा भेषी होनां योग्य नांही॥ १४

आगैं कहै है जो लिंग धारि ऐसैं प्रवर्त्तैं सो श्रमण नांही,—

गाथा—उप्पडदि पडदि धावदि पुढवीओ खणदि लिंगरूवेण।
इरियावह धारंतो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥१५॥

संस्कृत–उत्पतति पतति धावति पृथिवीं खनति लिंगरूपेण।
ईर्यापथं धारयन् तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१५॥

अर्थ—जो लिंग धारकरि ईर्यापथ सोधि करि चालना था तामैं सोधिकरि न चालै दौडता चालता संता उछलै गिरपडै फेरि उठिकरि दौडै बहुरि पृथ्वीकूं खोदै चालतैं ऐसा पगपटकै जो तामैं पथ्वी खुदि जाय ऐसैं चालै सो तिर्यंचयोनि है पशु अज्ञानी है, मनुष्य नांही ॥ १५ ॥

आगै कहै है जो बनस्पति आदि स्थावरजीवनिकी हिंसातैं कर्मबंध होय है ताकूं न गिनता स्वच्छंद होय प्रवर्तै है, सो श्रमण नांही;—

गाथा–बंधो णिरओ संतो सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि।
छिंददि तरुगण बहुसो तिरिक्खजोणी ण सो समणो॥

संस्कृत–बंधं नीरजाः सन् सस्यं खंडयति तथा च वसुधामपि।
छिनत्ति तरुगणं बहुशः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः॥

अर्थ—जो लिंग धारणकरि अर वनस्पति आदिकी हिंसातैं बंध होय है ताकूं नांही दूपता संता बंधकू न गिनता संता सस्य कहिये धान्य ताकूं खंडै है; बहुरि तैसैंही वसुधा कहिये पृथिवी ताहि खंडै है खोदै है, बहुरि बहुत बार तरुगण कहिये वृक्षनिकी समूह तिनिकूं छेदै है; ऐसा लिंगी तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है श्रमण नांही॥

भावार्थ—वनस्पति आदि स्थावरजीव जिनसूत्रमैं कहे है अर तिनिकी हिंसातैं कर्मबंध कह्या है ताकूं निर्दोप गिणता कहै है जो यामैं काहेका दोप है काहेका बंध है ऐसैं मानता तथा वैद्यकर्मादिककै निमित्त औषधादिककूं धान्यकूं तथा पृथ्वीकूं तथा वृक्षनिकूं खंडै है खोदै है छेदै है सो आज्ञानी पशु हैं, लिंग धारि श्रमण कहावै है सो श्रमण नांही है॥१६॥

आगैं कहै है जो लिंग धारणकरि स्त्रीनितैं राग करै है अर परकूं दूपण दे है सो श्रमण नांही;—

गाथा—रागो करेदि णिच्चं महिलावग्गं परं च दूसेइ।
दंसणणाणविहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो १७

संस्कृत—रागं करोति नित्यं महिलावर्गं परं च दूषयति।
दर्शनज्ञानविहीनः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१७॥

अर्थ—जो लिंग धारण करि स्त्रीनिके समूहनि प्रति तौ निरंतर राग-प्रीति करै है अर पर जो अन्य कोई निर्दोष है तिनिकूं दूषै है दूषण दे है कैसा है सो दर्शन ज्ञानकरि हीन है, ऐसी लिंगी तिर्यंचयोनि है पशुसमान है अज्ञानी है, श्रमण नांही ॥

भावार्थ—लिंग धारण करै ताकै सम्यग्दर्शन ज्ञान होय है, अर परद्रव्यनितैं राग द्वेष न करनां ऐसा चारित्र होय है। तहां जो स्त्रीसमूहनितैं तौ रागप्रीति करै है अर अन्यकूं दूषण लगाय द्वेष करै है व्यभिचारीकासा स्वभाव है तौ ताकै काहेका दर्शन ज्ञान? अर काहेका चारित्र? लिंगधारि लिंगकै करनेंयोग्य था सो न किया तब अज्ञानी पशु समानही है श्रमण कहावै है सो आपभी मिथ्यादृष्टी है अर अन्यकूं मिथ्यादृष्टी करनेंवाला है, ऐसेका प्रसंग युक्त नांही ॥ १७ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

गाथा—पव्वज्जहीणगहिणं णेहिं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।
आयारविणयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो १८

संस्कृत—प्रव्रज्याहीनगृहिणि स्नेहं शिष्ये वर्त्तते बहुशः।
आचारविनयहीनः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः॥१८॥

अर्थ—जा लिंगीकै प्रव्रज्या जो दीक्षा ताकरि रहित जे गृहस्थ तिनिपरि अर शिष्यनिविषैं स्नेह बहुत वर्त्तै अर आचार कहिये मुनिनिकी क्रिया अर गुरुनिका विनयकारि रहित होय सो तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है, श्रमण नांही है ॥

भावार्थ—गृहस्थनितैं तौ वार वार लालपाल राखै अर शिष्यनिसूं स्नेह बहुत राखै अर मुनिकी प्रवृत्ति आवश्यक आदि किछू करै नांही गुरुनिसूं प्रतिकूल रहै विनयादिक करै नांही ऐसा लिंगी पशुसमान है ताकूं साधु न कहिये ॥१८॥

आगैं कहै है जो लिंगधारि ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार प्रवर्त्तै है सो श्रमण नांही, ऐसा संक्षेपकरि कहै हैं;—

गाथा—एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।
बहुलं पि जाणमाणो भावविणट्ठो ण सो समणो ॥१९॥

संस्कृत—एवं सहितः मुनिवर ! संयतमध्ये वर्त्तते नित्यम्।
बहुलमपि जानन् भावविनष्टः न सः श्रमणः ॥१९॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्तप्रकार प्रवृत्तिसहित जो वर्त्तै है सो हे मुनिवर ! जो ऐसा लिंगधारी संयमी मुनिनिकै मध्यभी निरन्तर रहै है अर बहुत शास्त्रनिकूं भी जानता है तौऊ भावकरि नष्ट है, श्रमण नांही है ॥ १९ ॥

भावार्थ—ऐसा पूर्वोक्त प्रकारका लिंगी जो सदा मुनिनिमैं रहै है अर बहुत शास्त्र जानै है तौऊ भाव जो शुद्ध दर्शन ज्ञान चारित्ररूप परिणाम ताकरि रहित है, तातैं मुनि नांही, भ्रष्ट है, अन्य मुनिनिके भाव बिगाडनेवाला है ॥ १९ ॥

आगें फेरि कहै है जो स्त्रीनिका संसर्ग बहुत राखै सो भी श्रमण नांही है;—

गाथा—दंसणणाणचरित्ते महिलावग्गम्मि देहि वीसट्ठो।
पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो समणो २०

संस्कृत—दर्शनज्ञानचारित्राणि महिलावर्गे ददाति विश्वस्तः।
पार्श्वस्थादपि स्फुटं विनष्टः भावविनष्टः न सः श्रमणः ॥

अर्थ–जो लिंग धारि करि स्त्रीनिके समूहविषैं तिनिका विश्वासकरि तथा तिनिकूं विश्वास उपजाय दर्शन ज्ञान चारित्रकूं दे है तिनिकूं सम्यक्त्व वतावै है पढनां पढावनां ज्ञान देहै, दीक्षा दे है, प्रवृत्ति सिखावै है, ऐसैं विश्वास उपजाय तिनिमैं प्रवर्त्ते है सो ऐसा लिंगी पार्श्वस्थ तैं भी निकृष्ट है, प्रगट भाव करि विनष्ट है श्रमण नांहीं ॥

भावार्थ–लिंग धारि स्त्रीनिकूं विश्वास उपजाय तिनिसूं निरंतर पढनां पढावनां लाल पाल राखै ताकूं जानिये–याका भाव खोटा है। पार्श्वस्थ भ्रष्ट मुनिकूं कहिये है तिसतैं भी ये निकृष्ट है, ऐसेकूं साधु न कहिये ॥ २० ॥

आगैं फेरि कहै है;–

गाथा–पुंच्छलिघरि जो भुंजइ णिच्चं संथुणदि पोसए पिंडं।
पावदि वालसहावं भावविणट्ठो ण सो सवणो ॥२१॥

संस्कृत–पुंश्चलीगृहे यः भुंक्ते नित्यं संस्तौति पुष्णाति पिंडं।
प्राप्नोति बालस्वभावं भावविनष्टः न सः श्रमणः २१

अर्थ–जो लिंगधारी अर पुंश्चली जो व्यभिचारिणी स्त्री ताकै घर भोजन लेहै आहार करै है अर नित्य ताकी स्तुति करै है–जो यह बडी धर्मात्मा है याकै साधुनिकी वडी भक्ती है ऐसैं नित्य ताकूं सराहै ऐसैं पिंडकूं पालै है सो ऐसा लिंगी वालस्वभावकूं प्राप्त होय है, अज्ञानी है, भावकरि विनष्ट है, सो श्रमण नांही है ॥

भावार्थ–जो लिंग धारि व्यभिचारिणीका आहार खाय पिंड पालै ताकी नित्य सराहना करै, तब जानिये–यह भी व्यभिचारी है अज्ञानी है ताकूं लज्जाभी न आवै; ऐसैं भावकरि विनष्ट है मुनिपणाके भाव नांही, तब मुनि काहेका ? ॥ २१ ॥

आगैं इस लिंगपाहुडकूं संपूर्ण करै है अर कहै है जो—धर्मकूं यथार्थ पालै है सो उत्तम सुख पावै है;—

गाथा—इय लिंगपाहुडमिणं सव्वं बुद्धेहिं देसियं धम्मं।
पालेइ कट्ठसहियं सो गाहदि उत्तमं ठाणं ॥२२॥

संस्कृत—इति लिंगप्राभृतमिदं सर्वं बुद्धैः देशितं धर्मम्।
पालयति कष्टसहितं सः गाहते उत्तमं स्थानम् ॥२२॥

अर्थ—ऐसैं यह लिंगपाहुडकूं शास्त्र सर्वबुद्ध जे ज्ञानी गणधरादिक तिनिनैं उपदेश्या है ताकूं जानिकरि अर जो मुनि धर्मकूं कष्टसहित बडा जतन करि पालै है राखै है सो उत्तमस्थान जो मोक्ष ताहि पावै है॥

भावार्थ—यह मुनिका लिंग है सो बडा पुण्यका उदयतैं पाइये है ताकूं पायकरि फेरि खोटे कारण मिलाय ताकूं विगाडै है तौ जानिये यह वडा निर्भागी है—चिंतामणि रत्न पाय कौडी साटै गमावै है तातैं आचार्य उपदेश किया है—जो ऐसा पद पाय याकूं बडा यत्नसूं राखणां—कुसंगतिकरि विगाडैगा तौ जैसैं पहलैं संसारभ्रमणथा तैसैं फेरि संसारमैं अनंतकाल भ्रमण होयगा अर यत्नतैं पालैगा तौ शीघ्रही मोक्ष पावैगा; तातैं जाकूं मोक्ष चाहिये सो मुनिधर्मकूं पाय यत्नसहित पालो, परीषहका उपसर्गका उपद्रव आवै तौऊ चिगो मति यह श्रीसर्वज्ञदेवका उपदेश है॥ २२॥

ऐसैं यह लिंगपाहुड ग्रंथ पूर्ण किया ताका संक्षेप ऐसैं जो—इस पंचमकालमैं जिनलिंग धारि फेरि काल दुर्भिक्षके निमित्ततैं भ्रष्ट भये भेष विगाड्या अर्द्धफालक कहाये, तिनिमैं फेरि श्वेतांवर भये, तिनिमैं भी यापनीय भये, इत्यादिक होय शिथिलाचारके पोषनेंके शास्त्र रचि स्वच्छंद भये, तिनिमैं केतेक निपट निंद्य प्रवृत्ति करनेंलगे, तिनिका निषेधका मिषकरि सर्वके उपदेशकूं यह ग्रंथ है ताकूं समझिकरि श्रद्धान

करनां । ऐसे निंद्य आचरणवालेनिकूं साधु मोक्षमार्गी न माननें, तिनिकूं वंदन पूजन न करनां यह उपदेश है ॥

छप्पय ।

लिंग मुनीको धारि पाप जो भाव विगाडै
सो निंदाकूं पाय आपको अहित विथारै ।
ताकूं पूजै थुवै वंदना करै जु कोई
ते भी तैसे होइ साथि दुरगतिकूं लेई ॥
यातैं जे सांचे मुनि भये भाव शुद्धिमैं थिर रहे ।
तिनि उपदेश्या मारग लगे ते सांचे ज्ञानी कहे॥१॥

दोहा ।

अंतर बाह्य जु शुद्ध जे जिनमुद्राकूं धारि ।
भये सिद्ध आनंदमय वंदूं जोग संवारि ॥२॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यस्वामि विरचित
श्रीलिंगप्राभृतशास्त्रकी
जयपुरनिवासि पं. जयचन्द्रजीछावड़ाकृत-
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥ ७ ॥

अथ शीलपाहुड ।

—:०:—

[८]

अथ शीलपाहुडग्रंथकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है;—

दोहा ।

भवकी प्रकृति निवारिकै प्रगट किये निजभाव ।
है अरहंत जु सिद्ध फुनि वंदूं तिनि धरि चाव ॥१॥

ऐसैं इष्टके नमस्काररूप मंगलकरि शीलपाहुडनाम ग्रंथ श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृत गाथाबंधकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है। तहां प्रथम श्रीकुन्दकुन्दाचार्य ग्रंथकी आदिकै विपैं इष्टकूं नमस्काररूप मंगलकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करैं है;—

गाथा—वीरं विसालणयणं रत्तुप्पलकोमलस्समप्पावं ।
तिविहेण पणमिऊणं सीलगुणाणं णिसामेह ॥१॥

संस्कृत—वीरं विशालनयनं रक्तोत्पलकोमलसमपादम् ।
त्रिविधेन प्रणम्य शीलगुणान् निशाम्यामि ॥१॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो मैं वीर कहिये अंतिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमानस्वामी परम भट्टारक ताहि मन वचन कायकरि नमस्कारकरि अर शील जो निज भावरूप प्रकृति ताके गुणनिकूं अथवा शील अर सम्यग्दर्शनादिक गुण तिनिकूं कहूंगा; कैसे हैं श्रीवर्द्धमानस्वामी—विशालनयन हैं, तिनिकै बाह्य तौ पदार्थनिके देखनेंकूं नेत्र विशाल है विस्तीर्ण हैं सुन्दर हैं, बहुरि अंतरंग केवलदर्शन केवलज्ञानरूप नेत्र समस्त पदार्थनिकूं देखनेंवाले हैं; बहुरि कैसे हैं—रक्तोत्पलकोमलसमपादं'

कहिये रक्त कमल सारिखे कोमल जिनिके चरण हैं, ऐसे अन्यके नांही; तातैं सर्वकरि सराहनें योग्य हैं पूजनें योग्य हैं। बहुरि याका दूजा अर्थ ऐसा भी होय है—जो रक्त कहिये रागरूप आत्माका भाव उत्पल कहिये दूर करनां ताविषैं कोमल कहिये कठोरतादिदोषरहित अर सम कहिये राग द्वेष करि रहित पाद कहिये वाणीके पद जिनिके, कोमल हित मित मधुर राग द्वेषरहित जिनिके वचन प्रवर्त्तें हैं तिनितैं सर्वका कल्याण होय है ॥

भावार्थ—ऐसे वर्द्धमानस्वामीकूं नमस्काररूप मंगलकरि आचार्य शीलपाहुड ग्रंथ करनेंकी प्रतिज्ञा करी है ॥ १ ॥

आगैं शीलका रूप तथा यातैं गुण होय हैं सो कहैं हैं;—

गाथा—सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति ॥२॥

संस्कृत—शीलस्य च ज्ञानस्य च नास्ति विरोधो बुधैः निर्दिष्टः।
केवलं च शीलेन विना विषयाः ज्ञानं विनाशयंति २

अर्थ—शीलकै अर ज्ञानकै ज्ञानीनिनैं विरोध न कह्या है ऐसा नांही जहां शील होय तहां ज्ञान न होय अर ज्ञान होय तहां शील न होय। बहुरि इहां णवरि कहिये विशेष है सो कहै हैं—शील विना विषय कहिये इंद्रियनिके विषय हैं ते ज्ञानकूं विनाशैं हैं नष्ट करैं हैं ज्ञानकूं मिथ्यात्व रागद्वेषमय अज्ञानरूप करै है। इहां ऐसा जाननां जो—शीलनाम स्वभावका प्रकृतिका प्रसिद्ध है, तहां आत्माका सामान्यकरि ज्ञान स्वभाव है। तहां इस ज्ञानस्वभावमैं अनादिकर्म सयोगतैं मिथ्यात्व रागद्वेषरूप परिणाम होय हैं सो यह ज्ञानकी प्रकृति कुशीलनाम पावै है यातैं संसार निपजै है, तातैं याकूं संसार प्रकृति कहिये इस प्रकृतिकूं अज्ञानरूप कहिये

इस प्रकृतितैं संसार पर्यायविषैं आपा मानै है तथा परद्रव्यनिविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि करै है। बहुरि यह प्रकृति पलटै तब मिथ्यात्व का अभाव कहिये तब संसारपर्यायविषैं आपा न मानै है, परद्रव्यनिविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय अर इस भावकी पूर्णता न होय तेतैं चारित्रमोहका उदयतैं कछू रागद्वेष कषाय परिणाम उपजै ताकूं कर्मका उदय जानै, तिनि भावनिकूं त्यागनेयोग्य जानै, त्याग्या चाहै ऐसी प्रकृति होय तब सम्यग्दर्शनरूपभाव कहिये, इस सम्यग्दर्शनभावतैं ज्ञानभी सम्यक् नाम पावै और यथापदवी चारित्रकी प्रवृत्ति होय जेता अंशा रागद्वेष घटै तेता अंशा चारित्र कहिये ऐसी प्रकृतिकूं सुशील कहिये, ऐसैं कुशील सुशील शब्दका सामान्य अर्थ है। तहां सामान्यकरि विचारिये तौ ज्ञानही कुशील है अर ज्ञान ही सुशील है यातैं ऐसैं कह्या है जो ज्ञानकै अर शीलकै विरोध नाहीं बहुरि जब संसार प्रकृति पलटि मोक्ष सन्मुख प्रकृति होय तब सुशील कहिये, तातैं ज्ञानमैं अर शीलमैं विशेष कह्या जो ज्ञानमैं सुशील न आवै तौ ज्ञानकूं इंद्रियनिके विषय नष्ट करै ज्ञानकूं अज्ञान करैं तब कुशील नाम पावै। बहुरि इहां कोई पूछै—गाथामैं ज्ञान अज्ञानका तथा सुशील कुशीलका नाम तौ न कह्या, ज्ञान अर शील ऐसा ही कह्या है ताका समाधान—जो पूर्वै गाथामैं ऐसीप्रतिज्ञा करी जो मैं शीलके गुणनिकूं कहूंगा तातैं ऐसा जान्या जाय है जो आचार्यके आशयमैं सुशीलहीके कहनेका प्रयोजन है, सुशीलहीकूं शीलनाम करि कहिये, शीलविना कुशील कहिये। बहुरि इहां गुणशब्द उपकारवाचक लेनां तथा विशेषवाचक लेनां, शीलतैं उपकार होय है; तथा शीलका विशेष गुण है सो कहसी। ऐसैं ज्ञानमैं जो शील न आवै तौ कुशील होय इंद्रियनिके विषयनितैं आसक्ति होय तब ज्ञाननाम न पावै, ऐसैं जाननां। बहुरि व्यवहारमैं शीलनाम स्त्रीका संसर्ग वर्जनेंकाभी है सो विषयसेवनकाही

निषेध है, तथा परद्रव्यमात्रका संसर्ग छोडना, आत्मामैं लीन होना सो परमब्रह्मचर्य है। ऐसैं ये शीलहीके नामांतर जाननां ॥ २ ॥

आगैं कहै है जो–ज्ञान भयेभी ज्ञानका भावनां अर विषयनितैं विरक्त होनां कठिन है;—

गाथा—दुक्खेणेयदि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियमई व जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं ॥३॥

संस्कृत–दुःखेनेयते ज्ञानं ज्ञानं ज्ञात्वा भावना दुःखम्।
भावितमतिश्च जीवः विषयेषु विरज्यति दुःखम् ॥३॥

अर्थ—प्रथम तौ ज्ञान है सोही दुःखकरि प्राप्त होय है, बहुरि कदाचित् ज्ञानभी पावै तौ ताकूं जानि करि ताकी भावना करना वारंबार अनुभव करनां दुःखकरि होय है, बहुरि कदाचित् ज्ञानकी भावनासहित भी जीव होय तौ विषयनिकूं दुःखकरि त्यागै है ॥

भावार्थ—ज्ञानका पावनां फेरि ताकी भावना करनां फेरि विषयनिका त्यागनां ये उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं, अर विषयनिकूं त्यागे विना प्रकृति पलटी न जाय तातैं पूर्वं ऐसा कह्या है जो विषय ज्ञानकूं विगाडै है तातैं विषयनिका त्यागनां सोही सुशील है ॥ ३ ॥

आगैं कहै है जो यह जीव जेतैं विषयनिमैं प्रवर्त्तै है तेतै ज्ञानकूं नांही जानै है अर ज्ञानकूं जानें विना विषयनितैं विरक्त होय तौऊ कर्मनिका क्षय नांही करै है;—

गाथा—ताव ण जाणदि णाणं विसयबलो जाव वट्टए जीवो।
विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्मं ॥४॥

संस्कृत–तावत् न जानाति ज्ञानं विषयबलः यावत् वर्त्तते जीवः।
विषये विरक्तमात्रः न क्षिपते पुरातनं कर्म ॥ ४ ॥

अर्थ—जेतैं यह जीव विषयबल कहिये विषयनिकै वशीभूत हू वर्त्तै है तेतैं ज्ञानकूं नांही जानै है बहुरि ज्ञानकूं जानें विना केवलविषयनि-विषैं विरक्तमात्रहीकरि पूर्वैं बांधे जे कर्म तिनिका क्षय नांही करै है॥

भावार्थ—जीवका उपयोग क्रमवर्त्ती है अर स्वस्थस्वभाव है यातैं जैसा ज्ञेयकूं जानै तिसकाल तिसतैं तन्मय होय वर्त्तै है तातैं जेतैं विष-यनिमैं आसक्त भया वर्त्तै है तेतैं ज्ञानका अनुभव न होय इष्ट अनिष्ट-भावही रहै, बहुरि ज्ञानका अनुभवन भये विना कदाचित् विषयनिकूं त्यागै तौ वर्त्तमानविषयनिकूं तौ छोडै परन्तु पूर्व कर्म बांधे थे तिनिका तौ ज्ञानका अनुभवन भये विना क्षय होय नांही, पूर्व कर्मका बंधका क्षय करनेंमैं ज्ञानहीकी सामर्थ्य है, तातैं ज्ञानसहित होय विषय त्यागनां श्रेष्ठ है, विषयनिकूं त्यागि ज्ञानकी भावना करनां यही सुशील है॥४॥

आगैं ज्ञानका अर लिंगग्रहणका अर तपका अनुक्रम कहै है;—

गाथा—णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं।
संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थयं सव्वं॥५॥

संस्कृत—ज्ञानं चारित्रहीनं लिंगग्रहणं च दर्शनविहीनं।
संयमहीनं च तपः यदि चरति निरर्थकं सर्वम्॥५॥

अर्थ—ज्ञान तौ चारित्ररहित होय सो निरर्थक है, बहुरि लिंगका ग्रहण दर्शनकरि रहित होय सो निरर्थक है, बहुरि संयमकरि रहित तप होय तौ निरर्थक है ऐसैं ए आचरण करै तौ सर्व निरर्थक है॥

भावार्थ—हेय उपादेयका ज्ञान तौ होय अर त्यागग्रहण न करै तौ ज्ञान निष्फल होय, यथार्थ श्रद्धान विना भेष ले तौ निष्फल होय है, इन्द्रिय वश करनां जीवनिकी दया करनां यह संयम है या विनां कछू तप करै तौ अहिंसादिकका विपर्यय होय तब निष्फल होय; ऐसैं इनिका आचरण निष्फल होय है॥५॥

आगैं याहीतैं कहै है जो–ऐसैं किये थोडा भी करै तौ वडा फल होय है;—

गाथा—णाणं चरित्तसुद्धं लिंगग्गहणं च दंसणविसुद्धं ।
संजमसहिदो य तवो थोओ वि महाफलो होइ ॥६॥

संस्कृत–ज्ञानं चारित्रशुद्धं लिंगग्रहणं च दर्शनविशुद्धम् ।
संयमसहितं च तपः स्तोकमपि महाफलं भवति ॥६॥

अर्थ—ज्ञानतौ चारित्रकरि शुद्ध, अर लिंगका ग्रहण दर्शन करि शुद्ध, संयमसहित तप ऐसैं थोडाभी आचरै तौ महाफलरूप होय है ॥

भावार्थ—ज्ञान थोडाभी होय अर आचरण शुद्ध करै तौ वडा फल होय; वहुरि याथार्थश्रद्धापूर्वक भेपले तौ वडाफल करै जैसैं सम्यग्दर्शन-सहित श्रावकहीं होय तौ श्रेष्ठ, अर तिस विना मुनिका भेपभी श्रेष्ठ नांही; वहुरि इन्द्रिसंयम प्राणसंयम सहित उपवासादिक तप थोडाभी करै तौ वडा फल होय, अर विपयाभिलाष अर दयारहित वडा कष्ट सहित तप करै तौऊ फल नांहीं; ऐसैं जाननां ॥ ६ ॥

आगैं कहै है जो कोई ज्ञानकूं जानिकरिभी विपयासक्त रहै है तें संसारहींमैं भ्रमैं हैं;—

गाथा—णाणं णाऊण णरा केई विसयाइभावसंसत्ता ।
हिंडंति चादुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढा ॥ ७ ॥

संस्कृत—ज्ञानं ज्ञात्वा नराः केचित् विपयादिभावसंसक्ताः ।
हिंडंते चतुर्गतिं विपयेषु विमोहिता मूढाः ॥ ७ ॥

अर्थ—केई मूढ मोही पुरुप ज्ञानकूं जानिकरिभी विपयनिरूप भाव-निकरि आसक्त भये संते चतुर्गतिरूप संसारमैं भ्रमैं हैं जातैं विषयनि-करि विमोहित भये फेरिभी जगतमैं प्राप्त होसी तामैं भी विपय कपायनि-कार्ही संस्कार है ॥

भावार्थ—ज्ञान पाय विषय कषाय छोडनां भला है, नातरि ज्ञान अज्ञानतुल्यही है ॥ ७ ॥

आगैं कहै है जो ज्ञान पाय ऐसें करै तब संसार कटै;—

गाथा—जे पुण विसयविरत्ता णाणं णाऊण भावणासहिदा ।
छिंदंति चादुरगदिं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥ ८ ॥

संस्कृत—ये पुनः विषयविरक्ताः ज्ञानं ज्ञात्वा भावनासहिताः ।
छिन्दन्ति चतुर्गतिं तपोगुणयुक्ताः न सन्देहः ॥ ८ ॥

अर्थ—जे ज्ञानकूं जानिकरि अर विषयनितैं विरक्त भये संते तिस ज्ञानकी बारबार अनुभवरूप भावनासहित होय है ते तप अर गुण कहिये मूलगुण उत्तरगुणयुक्त भये संते चतुर्गतिरूप जो संसार है ताहि छेदै हैं काटैं हैं, यामैं संदेह नांही ॥

भावार्थ—ज्ञान पाय विषयकषाय छोडि ज्ञानकी भावना करै, मूलगुण उत्तरगुण ग्रहणकरि तप करै सो संसारका भावकरि मुक्तिप्राप्त होय—यह शीलसहितज्ञानरूप मार्ग है ॥ ८ ॥

आगैं ऐसें शीलसहित ज्ञानकरि जीव शुद्ध होय है ताका दृष्टान्त कहै है;—

गाथा—जह कंचणं विसुद्धं धम्मइयं खडियलवणलेवेण ।
तह जीवो वि विसुद्धं णाणविसलिलेण विमलेण ॥९॥

संस्कृत—यथा कांचनं विशुद्धं धमत् खटिकालवणलेपेन ।
तथा जीवोऽपि विशुद्धः ज्ञानविसलिलेन विमलेन ॥९॥

अर्थ—जैसैं कांचन कहिये सुवर्ण है सो खडिय कहिये सुहागा अर लूण इनिका लेपकरि विशुद्ध निर्मल कांतियुक्त होय है तैसैं जीव है सो भी विषयकषायनिके मलकरि रहित निर्मल ज्ञानरूप जलकरि पखाल्या कर्मनिकरि रहित विशुद्ध होय है ॥

भावार्थ—ज्ञान है सो आत्माका प्रधान गुण है परन्तु मिथ्यात्व विषयनितैं मलिन है यातैं मिथ्यात्वविषयनिरूप मलकूं दूरिकरि याकी भावना करै याका एकाग्रकरि ध्यान करै तौ कर्मनिका नाश करै, अनंत-चतुष्टय पाय मुक्त होय शुद्ध आत्मा होय है; तहां सुवर्णका दृष्टान्त है सो जाननां ॥९॥

आगैं कहै है जो ज्ञान पाय विषयासक्त होय है सो ज्ञानका दोष नांही है, कुपुरुषका दोष है;—

गाथा—णाणस्स णत्थि दोसो कप्पुरिसाणो वि मंदबुद्धीणो ।
जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंति ॥१०॥

संस्कृत—ज्ञानस्य नास्ति दोषः कापुरुषस्यापि मंदबुद्धेः ।
ये ज्ञानगर्विताः भूत्वा विषयेषु रज्जन्ति ॥१०॥

अर्थ—जे पुरुष ज्ञानगर्वित होयकरि ज्ञानमदकरि विषयनिविषैं रंजित होय हैं सो यह ज्ञानका दोष नांही है ते मंदबुद्धि कुपुरुष हैं तिनिका दोष है ॥

भावार्थ—कोई जानैगा कि ज्ञानकरि बहुत पदार्थनिकूं जानै तब विषयनिमैं रंजायमान होय है सो यह ज्ञानका दोष है; तहां आचार्य कहै है—ऐसैं मति जानो—ज्ञान पाय विषयनिमैं रंजमान होय है सो यह ज्ञानका दोष नांही है—यह पुरुष मंदबुद्धि है अर कुपुरुष है ताका दोष है, पुरुषका होणहार खोटा होय तब बुद्धि बिगडजाय तब ज्ञानकूं पाय अर ताका मदमैं छकि जाय विषय कषायनिमैं आसक्त होय सो यह दोष पुरुषका है, ज्ञानका नांही । ज्ञानका तौ कार्य वस्तुकूं जैसा होय तैसा जनायदेनाही है पीछै प्रवर्त्तनां पुरुषका कार्य है, ऐसैं जाननां ॥ १० ॥

आगैं कहै है—पुरुषकै ऐसैं निर्वाण होय है;—

गाथा—णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाणं जीवाण चरित्तसुद्धाणं ॥११॥

संस्कृत—ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन।
भविष्यति परिनिर्वाणं जीवानां चारित्रशुद्धानाम् ११

अर्थ—ज्ञान दर्शन तप ये सम्यक्त्व भावसहित आचरे होय तब चारित्रकरि शुद्ध जीवनिकै निर्वाणकी प्राप्ति होय है॥

भावार्थ—सम्यक्त्वकरि सहित ज्ञान दर्शन तप आचरै तब चारित्र शुद्ध होय राग द्वेप भाव मिटि जाय तब निर्वाण पावै, यह मार्ग है॥११॥

आगैं याहीकूं शीलप्रधानकरि नियमकरि कहै हैं;—

गाथा—सीलं रक्खंताणं दंसणसुद्धाणदिढचरित्ताणं।
णत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं ॥१२॥

संस्कृत—शीलं रक्षतां दर्शनशुद्धानां दृढचारित्राणाम्।
अस्ति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम् ॥१२॥

अर्थ—जे पुरुप विपयनिविपैं विरक्त है चित्त जिनिका ऐसे हैं अर शीलकूं राखते संते हैं अर दर्शनकरि शुद्ध हैं अर दृढ है चारित्र जिनिका ऐसे पुरुषनिकै ध्रुव कहिये निश्चयतैं नियमतैं निर्वाण होय है॥

भावार्थ—जो विषयनितैं विरक्त होनां है सो ही शीलकी रक्षा है, ऐसैं जे शीलकी रक्षा करैं हैं तिनिहीकै सम्यग्दर्शन शुद्ध होय है अर चारित्र अतीचाररहित शुद्ध दृढ होय है ऐसे पुरुषनिकै नियमकरि निर्वाण होय है। अर जे विश्रयनि विषैं आसक्त हैं तिनिकै शीलबिगडै तब दर्शन शुद्ध न होय चारित्र शिथिल होय तब निर्वाणभी न होय, ऐसैं निर्वाण मार्गमैं शीलही प्रधान है॥ १२॥

आगैं कहै है जो कदाचित् कोई विषयनिसूं विरक्त न भया अर मार्ग विषयनितैं विरक्त होनेंरूपही कहै है ताकूं मार्गकी प्राप्ति होयभी है, अर जो विषयसेवनेंकूंही मार्ग कहै है तौ ताकै ज्ञानभी निरर्थक है;—

गाथा—विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं ।
उम्मग्गं दरिसीणं णाणं पि णिरत्थयं तेसिं ॥१३॥

संस्कृत—विषयेषु मोहितानां कथितो मार्गोऽपि इष्टदर्शिनां ।
उन्मार्गं दर्शिनां ज्ञानमपि निरर्थकं तेषाम् ॥१३॥

अर्थ—जे पुरुष इष्ट मार्गके दिखावनेंवाले ज्ञानी हैं अर विषयनितैं विमोहित हैं तौऊ तिनिकै मार्गकी प्राप्ति कही है, वहुरि जे उन्मार्गके दिखावनेंवाले हैं तिनिका तौ ज्ञान पावनांभी निरर्थक है ॥

भावार्थ—पूर्वैं कह्याथा जो ज्ञानकै अर शीलकै विरोध नांही है अर यह विशेष है जो ज्ञान होय अर विषयासक्त होय ज्ञान विगडै तब शील नांही । अव इहां ऐसैं कह्या है जो—ज्ञान पाय कदाचित् चारित्रमोहके उदयतैं विषय न छूटै तौ जातैं तिनिमैं विमोहित रहै अर मार्गकी प्ररूपणा विषयनिका त्यागरूपही करै ताकै तौ मार्गकी प्राप्ति होयभी है वहुरि जो मार्गहीकूं कुमार्गरूप प्ररूपण करै विषय सेवनेंकूं सुमार्ग वतावै तौ ताका तौ ज्ञान पावनां निरर्थकही है, ज्ञान पायभी मिथ्यामार्ग प्ररूपै ताकै ज्ञान काहेका ? ज्ञान मिथ्याज्ञान है । इहां आशय यह सूचै है जो—सम्यक्त्व सहित अविरत सम्यग्दृष्टी है सो तौ भला है जातैं सम्यग्दृष्टी कुमार्ग प्ररूपै नांही, आपकै चारित्रमोहका उदय प्रबल होय तेतैं विषय छूटै नांही तातैं अविरत है; अर सम्यग्दृष्टी न होय अर ज्ञानभी बडा होय कछू आचारणभी करै विषयभी छोडै अर कुमार्ग प्ररूपै तौ भला नांही ताका ज्ञान अर विषय छोडनां निरर्थक है, ऐसैं जाननां ॥ १३ ॥

आगैं कहै है जो उन्मार्गके प्ररूपण करनेंवाले कुमतकुशास्त्रकी जे प्रशंसा करैं हैं ते वहुत शास्त्र जानैं हैं तौऊ शीलव्रतज्ञानकरि रहित तिनिकै आराधना नांही;—

गाथा—कुमयकुसुदपसंसा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
सीलवदणाणरहिदा ण हु ते आराधया होंति ॥१४॥

संस्कृत—कुमतकुश्रुतप्रशंसकाः जानंतो बहुविधानि शास्त्राणि।
शीलव्रतज्ञानरहिता न स्फुटं ते आराधका भवंति ॥१४॥

अर्थ—जे बहुत प्रकार शास्त्रानिकूं जानते संते हैं अर कुमत कुशास्त्रके प्रशंसा करनेंवाले हैं ते शील अर व्रत अर ज्ञान इनिकरि रहित हैं ते इनिका आराधक नांही हैं ॥

भावार्थ—जे वहुत शास्त्रनिकूं जानि ज्ञान तौ बहुत जानैं हैं अर कुमत कुशास्त्रनिकी प्रशंसा करै हैं तौ जानिये याकै कुमतसूं अर कुशास्त्रसूं राग है प्रीति है तब तिनिकी प्रशंसा करै हैं—तौ ये तौ मिथ्यात्वके चिह्न हैं, अर जहां मिथ्यात्व है तहां ज्ञान भी मिथ्या है अर विषयकषायनितैं रहित होय ताकूं शील कहिये सो भी ताकै नांही है, अर व्रत भी ताकै नांही है, कदाचित् कौऊ व्रताचरण करै है तौऊ मिथ्याचारित्ररूप है; तातैं सो दर्शन ज्ञान चारित्रका आराधनेंवाला नांही है, मिथ्यादृष्टी है ॥१४॥

आगैं कहै है जो रूपसुंदरादिक सामग्री पावै अर शील रहित होय तौ ताका मनुष्यजन्म निरर्थक है;—

गाथा—रूवसिरिगव्विदाणं जुव्वणलावण्णकंतिकलिदाणं।
सीलगुणवज्जिदाणं णिरत्थयं माणुसं जम्म ॥१५॥

संस्कृत—रूपश्रीगर्वितानां यौवनलावण्यकांतिकलितानाम्।
शीलगुणवर्जितानां निरर्थकं मानुषं जन्म ॥१५॥

अर्थ—जे पुरुष यौवन अवस्था सहित हैं अर बहुतनिकूं प्रिय लागैं ऐसा लावण्य ताकरि सहित है अर शरीरकी कांति प्रभाकरि मंडित हैं ऐसे, अर सुन्दररूप लक्ष्मी संपदाकरि गर्वित हैं मदोन्मत्त हैं अर शील अर गुणनिकरि वर्जित हैं तिनिका मनुष्यजन्म निरर्थक है ॥

भावार्थ—मनुष्यजन्म पाय शीलकरि रहित हैं विषयनिमैं आसक्त रहैं, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जे गुण तिनिकरि रहित हैं, अर यौवन अवस्थामैं शरीरकी लावण्यता कांतिरूप सुंदर धन संपदा पाय इनिका गर्वकरि मदोन्मत्त रहैं तौ तिनिनैं मनुष्यजन्म निष्फल खोया; मनुष्यजन्ममैं तौ सम्यग्दर्शनादिकका अंगीकार करनां अर शील संयम पालनेंयोग्य था सो अंगीकार किया नांही तब निष्फलही गया कहिये। बहुरि ऐसा भी जना या है जो पहली गाथामैं कुमत कुशास्त्रकी प्रशंसा करनें वालेका ज्ञान निरर्थक कह्याथा तैसैं इहां रूपादिकका मद करै तौ यह भी मिथ्या त्वका चिह्न है सो मद करै सो मिथ्यादृष्टी ही जाननां। तथा लक्ष्मी रूप यौवन कांतिकरि मंडित होय अर शीलरहित व्यभिचारी होय तौ ताकी लोकमैं निंदाही होय है ॥

आगैं कहै है जो बहुत शास्त्रनिका ज्ञान होतैं भी शीलही उत्तम है;—

गाथा—वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु।
वेदेऊण सुदेसु य तेव सुयं उत्तमं सीलं ॥१६॥

संस्कृत—व्याकरणछन्दोवैशेषिकव्यवहारन्यायशास्त्रेषु।
विदित्वा श्रुतेषु च तेषु श्रुतं उत्तमं शीलम् ॥१६॥

अर्थ—व्याकरण छंद वैशेषिक व्यवहार न्यायशास्त्र ये शास्त्र बहुरि श्रुत कहिये जिनागम इनिविषैं तिनि व्याकरणादिककूं अर श्रुत कहिये जिनागमकूं जानिकरिभी इनिविषैं शील होय सो ही उत्तम है ॥

भावार्थ—व्याकरणादिशास्त्र जानै अर जिनागमकूंभी जानै तौऊ तिनिमैं शीलही उत्तम है शास्त्रनिकूं जानि अर विषयनिमैं ही आसक्त है तौ तिनि शास्त्रनिका जाननां वृथा है उत्तम नांही॥

आगैं कहै है जो–शील गुणकरि मंडित है ते देवनिकै भी वल्लभ हैं;—

गाथा—सीलगुणमंडिदाणं देवा भवियाण वल्लहा होंति।
सुदपारयपउरा णं दुस्सीला अप्पिला लोए॥१७॥
संस्कृत—शीलगुणमंडितानां देवा भव्यानां वल्लभा भवंति।
श्रुतपारगप्रचुराः णं दुःशीला अल्पकाः लोके॥१७॥

अर्थ—जे भव्य प्राणी शील अर सम्यग्दर्शनादिक गुण अथवा शील सो ही गुण ताकरि मंडित हैं तिनिका देवभी वल्लभ होय है तिनिकी सेवा करनेंवाले सहायी होय हैं। बहुरि जे श्रुतपारग कहिये शास्त्रके पार पहुंचे हैं ग्यारह अंग तांई पढ़े हैं ऐसे बहुत हैं अर तिनिमैं केंई शीलगुणकरि रहित हैं दुःशील हैं विषय कषायनिमैं आसक्त हैं तौ ते लोकविषैं 'अल्पका' कहिये न्यून हैं ते मनुष्य लोकनिकै भी प्रिय न होय है तब देव कहांतैं सहायी होय॥

भावार्थ—शास्त्र बहुत जानै अर विषयासक्त होय तौ ताका कोई सहायी न होय, चोर अर अन्यायीकी लोकमैं कोई सहाय न करै; अर शील गुणकरि मंडित होय अर ज्ञान थोडाभी होय तौ ताकै उपकारी सहायी देवभी होय हैं तब मनुष्य तौ सहायी होयही होय, शीलगुणवान सर्वकै प्यारा होय है॥ १७॥

आगैं कहै है जिनिकै शील है सुशील है तिनिका मनुष्यभवमैं जीवनां सफल है भला है;—

गाथा—सव्वे विय परिहीणा रूवविरूवा वि वदिदसुवया वि ।
सीलं जेसु सुसीलं सुजीविदं माणुसं तेसिं ॥१८॥

संस्कृत–सर्वेऽपि च परिहीनाः रूपविरूपा अपि पतित-
सुवयसोऽपि ।
शीलं येषु सुशीलं सुजीविदं मानुष्यं तेषाम् ॥ १८ ॥

अर्थ—जे सर्व प्राणीनिमैं हीन हैं कुलादिककरि न्यून हैं अर रूप-करि विरूप हैं सुन्दर नांही हैं बहुरि पतितसुवयसः कहिये अवस्थाकरि सुन्दर नांही हैं वृद्ध होय गये हैं अर जिनिविषैं शील सुशिल है स्वभाव उत्तम है कषायादिककी तीव्र आसक्तता नांहीं है तिनिका मनुष्यपणां सुजीवित है जीवनां भला है ॥

भावार्थ—लोकमैं सर्वसामग्रीकरि जे न्यून हैं अर स्वभाव उत्तम है विषयकषायनिमैं आसक्त नांहीं हैं तौ ते उत्तमहीं हैं तिनिका मनुष्य-भव सफल है तिनिका जीतव्य प्रशंसा योग्य है ॥ १९ ॥

आगैं कहै है जो–जे ते भले उत्तम कार्य हैं ते सर्व शीलके परि-वार हैं;—

गाथा—जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे ।
सम्मद्दंसण णाणं तओ य सीलस्स परिवारो ॥१९॥

संस्कृत—जीवदया दमः सत्यं अचौर्यं ब्रह्मचर्यसंतोषौ ।
सम्यग्दर्शनं ज्ञानं तपश्च शीलस्य परिवारः ॥१९॥

अर्थ—जीवदया इंद्रियनिका दमन सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य संतोष सम्यग्दर्शन ज्ञान तप ये सर्व शीलके परिवार हैं ॥

भावार्थ—शील ऐसा स्वभावका तथा प्रकृतिका नाम प्रसिद्ध है तहां मिथ्यात्वसहित कषायरूप ज्ञानकी परणति है सो तौ दुःशील है

याकूं संसारप्रकृति कहिये, बहुरि यह प्रकृति पलटै अर सम्यक् प्रकृति होय सो सुशील है याकूं मोक्षसन्मुख प्रकृति कहिये। ऐसैं सुशीलके जीवदयादिक गाथामैं कहे ते सर्वही परिवार है जातैं संसारप्रकृति पलटै तब संसारदेहसूं वैराग्य होय अर मोक्षसूं अनुराग होय तब सम्यग्दर्शनादिक परिणाम होय तब जेती प्रकृति होय सो मोक्षकै सन्मुख होय, यही सुशील है सो जाकै संसारको ओड आवै है तब यह प्रकृति होय है अर यह प्रकृति न होय तेतैं संसारभ्रमण है ही, ऐसैं जाननां ॥ १९ ॥

आगैं शील है सो ही तप आदिक है ऐसैं शीलकी महिमा कहै है;—

गाथा—सीलं तवो विसुद्धं दंसणसुद्धीय णाणसुद्धी य।
सीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणां ॥२०॥

संस्कृत—शीलं तपः विशुद्धं दर्शनशुद्धिश्च ज्ञानशुद्धिश्च।
शीलं विषयाणामरिः शीलं मोक्षस्य सोपानम् ॥२०॥

अर्थ—शील है सो ही विशुद्ध निर्मल तप है, बहुरि शील है सो ही दर्शनकी शुद्धिता है, बहुरि शील है सो ही ज्ञानकी शुद्धता है, बहुरि शील है सो ही विषयनिका शत्रु है, बहुरि शील है सो ही मोक्षकी पैडी है ॥

भावार्थ—जीव अजीव पदार्थनिका ज्ञानकरि तामैंसूं मिथ्यात्व अर कषायनिका अभाव करनां सो सुशील है सो यह आत्माका ज्ञानस्वभाव है सो संसारप्रकृति मिटि मोक्षसन्मुख प्रकृति होय तब या शीलहीके तप आदिक सर्व नाम हैं—निर्मल तप शुद्ध दर्शन ज्ञान विषय कषायनिका मेटनां मोक्षकी पैडी ये सर्व शीलके नामके अर्थ हैं, ऐसा शीलका माहात्म्य वर्णन किया है बहुरि केवल महिमाही नांही है इनि सर्व भावनिकै अविनाभावीपणां जनाया है ॥ २० ॥

आगैं कहै है जो विषयरूप विष महा प्रवळ है;—

गाथा—जह विसयलुद्ध विसदो तह थावर जंगमाण घोराणं ।
सव्वेसिंपि विणासदि विसयविसं दारुणं होई ॥२१॥

संस्कृत—यथा विषयलुब्धः विषदः तथा स्थावरजंगमान् घोरान् ।
सर्वान् अपि विनाशयति विषयविषं दारुणं भवति २१

अर्थ—जैसें विषयनिका सेवनां विष है सो जे विषयनिकै विषैं लुब्धजीव हैं तिनिकूं विषका देनेवाला है तैसें ही जे घोर तीव्र स्थावर जंगम सर्वनिका विष है सो प्राणीनिका विनाश करै है तथापि तिनि सर्वनिका विषनिमैं विषयनिका विष उत्कृष्ट है तीव्र है ॥

भावार्थ—जैसें हस्ती मीन भ्रमर पतंग आदि जीव विषयनिकरि लुब्ध भये विषयनिकै वश भये हते जाय हैं तैसैंही स्थावरका विष मोहरा सोमल आदिक अर जंगमका विष सर्प आदिकका विष इनिका भी विषकरि प्राणी हते जाय हैं परन्तु सर्व विषनिमैं विषयनिका विष अतितीव्र ही है ॥२१॥

आगैं इसहीका समर्थनकूं विषयनिका विषका तीव्रपणां कहै है जो—विषकी वेदनातैं तौ एकवार मरै है अर विषयनितैं संसारमैं भ्रमैं हैं;—

गाथा—वारि एक्कम्मि यजम्मे सरिज्ज विसवेयणाहदो जीवो ।
विसयविसपरिहया णं भमंति संसारकांतारे ॥ २२ ॥

संस्कृत—वारे एकस्मिन् च जन्मनि गच्छेत् विषवेदनाहतः जीवः
विषयविषपरिहता भ्रमंति संसारकांतारे ॥ २२ ॥

अर्थ—विषकी वेदनाकरि हत्या जो जीव सो तौ एकजन्मविषैंही मरै है बहुरि विषयरूप विषकरि हते गये जीव हैं ते अतिशयकरि संसाररूप वनविषैं भ्रमैं हैं ॥

भावार्थ—अन्य सर्पादिकके विषतैं विषयनिका विष प्रबल है इनिकी आसक्ततातैं ऐसा कर्मबंध होय है जातैं बहुत जन्म मरण होय है ॥२२॥

आगैं कहै है जो विषयनिकी आसक्ततातैं चतुर्गतिमैं दुःख ही पावैं हैं;—

गाथा—णरएसु वेयणाओ तिरिक्खए माणुएसु दुक्खाइं।
देवेसु वि दोहग्गं लहंति विसयासता जीवा ॥ २३ ॥

संस्कृत—नरकेषु वेदनाः तिर्यक्षु मानुषेषु दुःखानि।
देवेषु अपि दौर्भाग्यं लभंते विषयासक्ता जीवाः २३

अर्थ—विषयनिविषैं आसक्त जे जीव हैं ते नरकनिविषैं अत्यंतवेदनाकूं पावै हैं, अर तिर्यंचनिविषैं तथा मनुष्यनिविषैं दुःखनिकूं पावैं, बहुरि देवनिविषैं उपजैं तौ तहां भी दुर्भाग्यपणां पावै नीच देव होय ऐसैं चतुर्गतिनिविषैं दुःखही पावैं हैं ॥

भावार्थ—विषयासक्त जीवनिकूं कहूं ही सुख नांही है परलोकमैं तौ नरक आदिके दुःख पावैंही हैं अर या लोकमैं भी इनिके सेवनेंविषैं आपदा कष्ट आवै है तथा सेवातैं आकुलता दुःखही है, यह जीव भ्रमतैं सुख मानै है, सत्यार्थ ज्ञानी तौ विरक्तही होय है ॥ २३ ॥

आगैं कहै है जो—विषयनिके छोडनेंमैं भी कछू हानि नांही है;—

गाथा—तुसधम्मंतवलेण य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि।
तवसीलमंत कुसली खपंति विसयं विस व खलं ॥२४॥

संस्कृत—तुषधमद्वलेन च यथा द्रव्यं न हि नराणां गच्छति।
तपः शीलमंतः कुशलाः क्षिपंते विषयं विषमिव खलं ॥

अर्थ—जैसैं तुषनिके चलानेंकरि उडावनेंकारे मनुष्यनिको कछू द्रव्य नांही जाय है तैसैं तप अर शीलवान् जे पुरुष हैं ते विषयनिकूं खलकी ज्यौं क्षेपैं हैं दूर गेरैं हैं ॥

भावार्थ—जो ज्ञानी तप शीलसहित हैं तिनिकै इंद्रियनिके विषय खलकीज्यौं हैं जैसैं सांठेनिका रस काढिले तब खल चूंसे नीरस होय तब डारि देनें योग्यही होय तैसैं विषयनिकूं जाननां, रस था सो तौ ज्ञानीनिनैं जानि लिया तब विषयतौ खलवत् रहे तिनिके त्यागनेंमैं कहा हानि? कछू भी नांही। धन्य हैं वे ज्ञानी—जिनिनैं विषयनिकूं ज्ञेयमात्र जानि आसक्त न होय हैं। अर जे आसक्त होय हैं ते तौ अज्ञानी ही हैं जातैं विषय हैं ते तौ जडपदार्थ हैं सुख तौ तिनिके जाननें से ज्ञानमैं ही था, अज्ञानी आसक्त होय विषयनिमैं सुख मान्या जैसैं श्वान सूखा हाड चावै तब हाडकी अणी मुख तालवामैं चुभै तब तालवा फाटि तामैंसूं रुधिर स्रवै तब अज्ञानी श्वान जाणैं जो यह रस हाडमैंसूं नीसन्या है तब तिस हाडिकूं फेरि फेरि चावै अर सुख मानै तैसैं अज्ञानी विषयनिमैं सुख मानि फेरि फेरि भोगवै है, अर ज्ञानीनिनैं अपनें ज्ञानहीमैं सुख जान्या है तिनिकै विषयनिके छोडनेंमैं खेद नांही है, ऐसैं जाननां ॥ २४ ॥

आगैं कहै है जो प्राणी शरीरके अवयव सर्व सुन्दर पावै तौऊ सर्व अंगनिमैं शील है सो ही उत्तम है;—

गाथा—वट्टेसु य खंडेसु य भद्देसु य विसालेसु अंगेसु ।
अंगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं ॥२५॥

संस्कृत—वृत्तेषु च खंडेषु च भद्रेषु च विशालेषु अंगेषु ।
अंगेषु च प्राप्तेषु च सर्वेषु च उत्तमं शीलं ॥२५॥

अर्थ—प्राणीके देहविषैं केई अंग तौ वृत्त कहिये गोल सुघट सराहनें योग्य होय है, केई अंग खंड कहिये अर्द्धगोल सारिखे सराहनेंयोग्य होय हैं, केई अंग भद्र कहिये सरल सूधे सराहनेंयोग्य होय हैं, अर केई अंग विशाल कहिये विस्तीर्ण चौडे सराहनेंयोग्य होय हैं—ऐसैं सर्वही

अंग यथास्थान सुन्दर पावते संतैंभी सर्व अंगनिमैं यहु शीलनामा अंग है सो उत्तम है, यह न होय तौ सर्वही अंग शोभा न पावै, यह प्रसिद्ध है ॥

भावार्थ—लोकविषैं प्राणी सर्वांगसुन्दर होय अर दुःशील होय तौ सर्व लोककै निंदाकरनें योग्य होय ऐसैं लोकमैं भी शीलहीकी शोभा है तौ मोक्षमैं भी शीलही प्रधान कह्या है; जे ते सम्यग्दर्शनादिक मोक्षके अंग हैं ते शीलहीके परिवार हैं ऐसैं पहिले कह आये हैं ॥

आगैं कहै है—जो कुमतिकरि मूढ भये हैं ते विषयानेमैं आसक्त हैं कुशीलहैं संसारमैं भ्रमैं हैं;—

गाथा—पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहि विसयलोलेहिं।
संसारे भमिदव्वं अरयघरट्टं व भूदेहिं ॥२६॥

संस्कृत—पुरुषेणापि सहितेन कुसमयमूढैः विषयलोलैः।
संसारे भ्रमितव्यं अरहटघरट्टं इव भूतैः ॥२६॥

अर्थ—जे कुसमय कहिये कुमत तिनिकरि मूढ हैं सो ही अज्ञानी हैं बहुरि ते विषयनिविषैं लोलुपी हैं आसक्त हैं ते संसारविषैं भ्रमैं हैं. कैसे भये भ्रमैं हैं—जैसैं अरहटविषैं घड़ी भ्रमैं तैसैं भये भ्रमैं हैं तिनिकरि सहित अन्य पुरुषकै भी संसारविषैं दुःखसहित भ्रमण होय है

भावार्थ—कुमती विषयासक्त मिथ्यादृष्टी आपतौ विषयनिकूं भले मांनि सेवैं हैं। केई कुमती ऐसेभी हैं जो ऐसैं कहैं हैं जो सुन्दर विषय सेवनेमैं ब्रह्म प्रसन्न होय है यह परमेश्वरकी बडी भक्ति है ऐसैं कहिकरि अत्यंत आसक्त होय सेवैं हैं, ऐसा ही उपदेश अन्यकूं देकरि विषयनिमैं लगावै है, ते आप तौ अरहटकी घडीकी ज्यौं संसारमैं भ्रमैं ही हैं तहां अनेकप्रकार दुःख भोगवैं हैं परन्तु अन्य पुरुषकूंभी तहां लगाय भ्रमावैं हैं तातैं यह विषय सेवनां दुःखहीकै अर्थि है दुःखहीका कारण है, ऐसैं

जानि कुमतीनिका प्रसंग न करनां, विषयासक्तपणां छोडनां यातैं सुशी-लपणां होय है ॥ २६ ॥

आगैं कहै है जो कर्मकी गांठि विषय सेयकरि आपही बांधी है ताकूं सत्पुरुष तपश्चरणादिककरि आपही काटै है;—

गाथा—आदेहि कम्मगंठी जा बद्धा विसयरागरागेहिं[1] ।
तं छिन्दंतिं कयत्था तवसंजमसीलयगुणेण ॥२७॥

संस्कृत—आत्मनि कर्मग्रंथिः या बद्धा विषयरागरागैः ।
तां छिन्दंति कृतार्थाः तपः संयमशीलगुणेन ॥२७॥

अर्थ—जे विषयनिके रागरंगकरि आपही कर्मकी गांठि बांधी है ताकूं कृतार्थ पुरुष उत्तम पुरुष तप संयम शील इनितैं भया जो पुण्य ताकरि छेदैं हैं खोलैं हैं ॥

भावार्थ—जो कोई आप गांठि घुलाय बांधै ताकै खोलनेंका विधान भी आपही जानै, जैसैं सुनार आदि कारीगर आभूषणादिककी संधिकै टांका ऐसा झालै जो वह संधि अदृष्ट होय जाय तब तिस संधिकूं टाकेका झालनेंवालाही पहचानिकरि खोलै तैसैं आत्मा अपनेंही रागादिक भावकरि कर्मनिकी गांठि बांधी है ताहि आपही भेदज्ञानकरि रागादिककै अर आपकै जो भेद है तिस संधिकूं पहचानि तप संयम शीलरूप भाव-रूप शस्त्रनिकरि तिस कर्मबंधकूं काटै, ऐसा जानि जे कृतार्थ पुरुष हैं अपनें प्रयोजनके करनेंवाले हैं ते इस शील गुणकूं अंगीकार करि आत्माकूं कर्मतैं भिन्न करैं हैं, यह पुरुषार्थ पुरुषनिका कार्य है ॥ २७ ॥

आगैं कहै है जो शीलकरि आत्मा सोभै है याकूं दृष्टान्तकरि दिखावै है;—

गाथा-उदधीव रदणभरिदो तवविणयंसीलदाणरयणाणं ।
सोहेतो य ससीलो णिव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥ २८ ॥

---

१ संस्कृत प्रतिमें—'विषयरायमोहेहिं' ऐसा पाठ है छाया 'विषय राग मोहैः' है ॥

संस्कृत—उदधिरिव रत्नभृतः तपोविनयशीलदानरत्नानाम्।
शोभते च सशीलः निर्वाणमनुत्तरं प्राप्तः ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसैं समुद्र रत्ननिकरि भऱ्या है तौऊ जलसहित सोभै है तैसैं यह आत्मा तप विनय शील दान इनि रत्ननिमैं शीलसहित सोभै है जातैं जो शीलसहित भया तानैं अनुत्तर कहिये जातैं परै और नांही ऐसा निर्वाणपदकूं पाया ॥

भावार्थ—जैसैं समुद्रमैं रत्न बहुत हैं तौऊ जलहीतैं समुद्र नाम पावै है तैसैं आत्मा अन्य गुणनिकरि सहित होय तौऊ शीलकरि निर्वाणपद पावै, ऐसैं जाननां ॥ २८ ॥

आगैं जे शीलवान पुरुष हैं ते ही मोक्ष पावैं हैं यह प्रसिद्धिकरि दिखावै है;—

गाथा—सुणहाण गद्दहाण य गोपसुमहिलाण दीसदे मोक्खो।
जे सोधंति चउत्थं पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहिं ॥२९॥

संस्कृत—शुनां गर्दभानां च गोपशुमहिलानां दृश्यते मोक्षः।
ये शोधयंति चतुर्थं दृश्यतां जनैः सर्वैः ॥ २९ ॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो—ये सर्व जन देखो—स्वान गर्दभ इनिमैं बहुरि गऊ आदि पशु अर स्त्री इनिमैं काहूकै मोक्ष होनां दीखै है? सो तौ दीखता नांही, मोक्ष तौ चौथा पुरुषार्थ है यातैं जो चतुर्थ जो पुरुषार्थ ताहि सोधैं है हेरै है ताहीकै मोक्ष होनां देखिये है ॥

भावार्थ—धर्म अर्थ काम मोक्ष ये च्यार पुरुषकेही प्रयोजन कहे हैं यह प्रसिद्ध है, याहीतैं इनिका नाम पुरुषार्थ है ऐसा प्रसिद्ध है। तहां इनिमैं चौथा पुरुपार्थ मोक्ष है ताकूं पुरुषही सोधै अर पुरुषही ताकूं हेरि ताकी सिद्धि करै, अन्य स्वान गर्दभ बैल पशु स्त्री इनिकै मोक्षका सोधनां

प्रसिद्ध नांही जो होय तौ मोक्षका पुरुपार्थ ऐसा नाम काहेकूं होय । इहां आशय ऐसा जो मोक्ष शीलतैं होय है, जे स्वान गर्दभ आदिक हैं ते तौ अज्ञानी हैं कुशीली हैं, तिनिका स्वभाव प्रकृतिही ऐसी है जो पलटि-करि मोक्ष होनें योग्य तथा ताके सोधने योग्य नांही है, तातैं पुरुपकूं मोक्षका साधन शीलकूं जानि अंगीकार करनां; सम्यग्दर्शनादिक हैं ते शीलहीके परिवार पूर्वैं कहे ही हैं ऐसैं जाननां ॥ २९ ॥

आगैं कहै है जो शील विना ज्ञानही करि मोक्ष नांही, याका उदाहरण कहैं हैं;—

गाथा—जइ विसयलोलएहिं णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो ।
तो सो सच्चइपुत्तो दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं ३०

संस्कृत—यदि विषयलोलैः ज्ञानिभिः भवेत् साधितः मोक्षः ।
तर्हि सः सात्यकिपुत्रः दशपूर्विकः किं गतः नरकं ३०

अर्थ—जो विषयनिविषैं लोल कहिये लोलुप आसक्त अर ज्ञानसहित ऐसा ज्ञानीनिनैं मोक्ष साध्या होय तौ दर्शपूर्वका जाननेंवाला रुद्र नरककूं क्यों गया ॥

भावार्थ—कोरा ज्ञानहीसूं मोक्ष काहूनैं साध्या कहिये तौ दश पूर्वका पाठी रुद्र नरक क्यों गया तातैं शीलविना कोरा ज्ञानहीतैं मोक्ष नांही, रुद्र कुशील सेवनेंवाला भया, मुनि पदतैं भ्रष्ट होय कुशील सेया तातैं नरकमैं गया, यह कथा पुराणनिमैं प्रसिद्ध है ॥ ३० ॥

आगैं कहै है शीलविना ज्ञानहीतैं भावकी शुद्धिता न होय है;—

गाथा—जइ णाणेण विसोहो सीलेण विणा बुहेहिं णिद्दिठो ।
दसपुव्वियस्स भावो यणु किं पुणु णिम्मलो जादो ३१

संस्कृत—यदि ज्ञानेन विशुद्धः शीलेन विना बुधैर्निर्दिष्टः ।
दशपूर्विकस्य भावः च न किं पुनः निर्मलः जातः ३१

अर्थ—जो शीलविना ज्ञानहीकरि विसोह कहिये विशुद्ध भाव पंडितां कह्यो होय तौ दश पूर्वका जाननेंवाला जो रुद्र ताका भाव निर्मल क्यौं न भया, तातैं जानिये है भाव निर्मल शीलहीतैं होय है ॥

भावार्थ—कोरा ज्ञान तौ ज्ञेयकूं जनावैही है तातैं मिथ्यात्व कषाय होय तब विपर्यय होय जाय तातैं मिथ्यात्वकषायका मिटनां सो ही शील है, ऐसैं शीलविना ज्ञानहीतैं मोक्ष सधै नांही, शीलविना मुनि होय तौऊ भ्रष्ट होय जाय है तातैं शीलकूं प्रधान जाननां ॥ ३१ ॥

आगैं कहै है जो नरकमैंभी शील होय जाय अर विषयनिकरि विरक्त होय तौ तहांतैं निकसिकरि तीर्थंकरपद पावै है;—

गाथा—जाए विसयविरत्तो सो गमयदि णरयवेयणा पउरा ।
ता लेहदि अरुहपयं भणियं जिणवड्ढमाणेण ॥३२॥

संस्कृत—यः विषयविरक्तः सः गमयति नरकवेदनाः प्रचुराः ।
तत् लभते अर्हत्पदं भणितं जिनवर्द्धमानेन ॥३२॥

अर्थ—जो विषयनितैं विरक्त है सो जीव नरकमैं बहुत वेदना है ताकूं भी गमावै है तहां भी अतिदुःखी न होय है तौ तहांतैं निकसि करि तीर्थंकर होय है यह जिनवर्द्धमान भगवाननें कह्या है ॥

भावार्थ—जिनसिद्धांतमैं ऐसैं कह्या है जो—तीसरी पृथ्वीतैं निकसि तीर्थंकर होय है सो यह भी शीलहीका माहात्म्य है तहां सम्यक्त्व सहित होय विषयनितैं विरक्त भया भली भावना भावै तब नरक वेदनाभी अल्प होय अर तहांतैं निकसि अरहंतपद पाय मोक्ष पावै, ऐसा विषयनितैं विरक्त भाव सो ही शीलका माहात्म्य जानो, सिद्धांतमैं ऐसैं कह्या है जो सम्यग्दृष्टीकै ज्ञान अर वैराग्यकी शक्ति नियमकरि होय है सो वैराग्यशक्ति है सो ही शीलका एकदेश है, ऐसैं जाननां ॥ ३२ ॥

आगैं या कथनकूं संकोचै है;—

गाथा—एवं बहुप्पयारं जिणेहि पच्चक्खणाणदरसीहिं ।
सीलेण य मोक्खपयं अक्खातीदं य लोयणाणेहिं ३३

संस्कृत–एवं बहुप्रकारं जिनैः प्रत्यक्षज्ञानदर्शिभिः ।
शीलेन च मोक्षपदं अक्षातीतं च लोकज्ञानैः ॥३३॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार तथा अन्य प्रकार बहुत प्रकार जिनदेवनैं कह्या है जो–शीलकरि मोक्षपद है, कैसा है मोक्षपद–अक्षातीत है, इंद्रियनिकरि रहित अतीन्द्रिय ज्ञान सुख जामैं पाइये है। बहुरि कहनेवाले जिनदेव कैसे हैं–प्रत्यक्ष ज्ञान दर्शन जिनकै पाइये है बहुरि लोकका जिनकै ज्ञान है ॥

भावार्थ—सर्वज्ञ देवनैं ऐसैं कह्या है जो शीलकरि अतीन्द्रिय ज्ञान सुख रूप मोक्षपद पाइये है सो भव्यजीव या शीलकूं अंगीकार करो, ऐसा उपदेशका आशय सूचै है, बहुत कहां तांई कहिये एताही बहुत प्रकार कह्या जानो ॥ ३३ ॥

आगैं कहै है जो इस शीलकरि निर्वाण होय ताकूं बहुत प्रकार वर्णन कीजिये सो कैसैं ताका कहनां ऐसैं है;—

गाथा—सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयार मप्पाणं ।
जलणो वि पवणसहिदो डहंति पोरायणं कम्मं ॥३४॥

संस्कृत—सम्यक्त्वज्ञानदर्शनतपोवीर्यपंचाचाराः आत्मनाम् ।
ज्वलनोऽपि पवनसहितः दहंति पुरातनं कर्म ॥३४॥

अर्थ—सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन तप वीर्य ये पंच आचार हैं सो आत्माका आश्रय पायकरि पुरातन कर्मनिकूं दग्ध करैं हैं, जैसैं अग्नि है सो पवन सहित होय तब पुराणे सूखे इंधनकूं दग्ध करै तैसैं ॥

भावार्थ—इहां सम्यक्त्व आदि पंच आचारतौ अग्निस्थानीय हैं अर आत्माका शुद्ध स्वभाव है ताकूं शील कहिये सो यह आत्माका स्वभाव पवनस्थानीय है सो पंच आचार रूप पवनका सहाय पाय पुरातन कर्मबंधकूं दग्धकरि आत्माकूं शुद्ध करैं ऐसैं शीलही प्रधान है। पांच आचारमैं चारित्र कह्या है अर इहां सम्यक्त्व कहनेंमैं चारित्रही जाननां विरोध न जाननां ॥ ३४ ॥

आगें कहै है जो ऐसैं अष्ट कर्मनिकूं जिनिनैं दग्ध किये ते सिद्ध भये हैं;—

गाथा—णिद्दड्ढअट्ठकम्मा विसयविरत्ता जिदिंदिया धीरा।
तवविणयसीलसहिदा सिद्धा सिद्धिं गदिं पत्ता ॥३५॥

संस्कृत—निर्दग्धाष्टकर्माणः विषयविरक्ता जितेंद्रिया धीराः।
तपोविनयशीलसहिताः सिद्धाः सिद्धिं गतिं प्राप्ताः ॥३५॥

अर्थ—जो पुरुष जीते हैं इंद्रिय जिनूंनैं याहीतैं विषयनितैं विरक्त भये हैं, बहुरि धीर हैं परीषहादि उपसर्ग आये चिगै नांही हैं, बहुरि तप विनय शील इनिकरि सहित हैं ते दूरि किये हैं अष्ट कर्म जिनूंनैं ऐसे होय सिद्धिगति जो मोक्ष ताकूं प्राप्त भये हैं, ते सिद्ध ऐसा नाम कहावैं है ॥

भावार्थ—इहां भी जितेंद्रिय विषयविरक्तता ये विशेषण शीलहीकी प्रधानता दिखावैं हैं ॥ ३५ ॥

आगें कहै है जो लावण्य अर शील युक्त है सो मुनि सराहनें योग्य होय है;—

गाथा—लावण्णसीलकुसलो जम्ममहीरुहो जस्स सवणस्स।
सो सीलो स महप्पा भमित्थ गुणवित्थरं भविए ॥३६॥

संस्कृत—लावण्यशीलकुशलः जन्ममहीरुहः यस्य श्रमणस्य ।
सः शीलः स महात्मा भ्रमेत् गुणविस्तारः भव्ये ॥३६॥

अर्थ—जिस मुनिका जन्मरूप वृक्ष है सो लावण्य कहिये अन्यकूं प्रियलागै ऐसा सर्व अंग सुन्दर तथा मन वचन कायकी चेष्टा सुन्दर अर शील कहिये अंतरंग मिथ्यात्व विषयकरि रहित परोपकारी स्वभाव इनि दोऊनिविषैं प्रवीण निपुण होय सो मुनि शीलवान् है महात्मा है ताके गुणनिका विस्तार लोकविषैं भ्रमै है फैलै है ॥

भावार्थ—ऐसे मुनिका गुण लोकमैं विस्तरै है सर्व लोकके प्रशंसा योग्य होय है इहां भी शीलहीकी महिमा जाननी, अर वृक्षका स्वरूप कह्या जैसैं वृक्षकै शाखा पत्र पुष्प फल सुन्दर होय अर छायादिककरि रागद्वेष रहित सर्व लोकका समान उपकार करै तिस वृक्षकी महिमा सर्व लोक करै तैसै मुनिभी ऐसा होय सो सर्वकै महिमा करनें योग्य होय है ॥ ३६ ॥

आगैं कहै है जो ऐसा होय सो जिनमार्गविषैं रत्नत्रयकी प्राप्तिरूप बोधि पावै है;—

गाथा—णाणं झाणं जोगो दंसणसुद्धीय वीरियायत्तं[1] ।
सम्मत्तदंसणेण य लहंति जिणसासणे बोहिं ॥३७॥

संस्कृत—ज्ञानं ध्यानं योगः दर्शनशुद्धिश्च वीर्यायत्ताः ।
सम्यक्त्वदर्शनेन च लभंते जिनशासने बोधिं ॥३७॥

अर्थ—ज्ञान ध्यान योग दर्शनकी शुद्धता ये तौ वीर्यकै आधीन हैं अर सम्यग्दर्शनकरि जिनशासनकै विषैं बोधिकूं पावैं हैं, रत्नत्रयकी प्राप्ति होय है ॥

---

१ मुद्रित संस्कृत प्रतिमें ' वीरियावत्तं ' ऐसा पाठ है जिसकी छाया ' वीर्यत्वं ' है ॥

भावार्थ—ज्ञान कहिये पदार्थनिकूं विशेपकरि जाननां, ध्यान कहिये स्वरूपविपैं एकाग्र चित्त होनां, योग कहिये समाधि लगावनां, सम्यग्दर्शनकूं निरतिचार शुद्ध करनां, येतौ अपनां वीर्य जो शक्ति ताकै आधीन हैं जेता बनै तेता होय अर सम्यग्दर्शनकरि बोधि जो रत्नत्रय ताकी प्राप्ति होय, याके होतैं विशेप ध्यानादिक भी यथा शक्ति होयही है अर शक्ति भी यातैं वधै है। ऐसैं कहनेंमैं भी शीलहीका माहात्म्य जाननां, रत्नत्रय है सो ही आतमाका स्वभाव है ताकूं शीलभी कहिये ॥ ३७ ॥

आगैं कहै है जो–यह प्राप्ति जिनवचनतैं होय है;—

गाथा—जिणवयणगहिदसारा विसयविरत्ता तपोधणा धीरा।
सीलसलिलेण ण्हादा ते सिद्धालयसुहं जंति ॥३८॥

संस्कृत–जिनवचनगृहीतसारा विषयविरक्ताः तपोधना धीराः।
शीलसलिलेन स्नाताः ते सिद्धालयसुखं यांति ॥३८॥

अर्थ—जिनवचनकरि ग्रहण किया है सार जिनिनैं बहुरि विषयनितैं विरक्त भये हैं, वहुरि तपही है धन जिनिकै, बहुरि धीर हैं ऐसे भये संते मुनि शीलरूप जलकरि न्हायें शुद्ध भये ते सिद्धालय जो सिद्धनिके वसनेंका मन्दिर ताके सुखनिकूं पावैं हैं ॥

भावार्थ—जे जिनवचनकरि वस्तुका यथार्थ स्वरूप जानि ताका सार जो अपनां शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति ताका ग्रहण करैं हैं ते इंद्रियनिके विपयनितैं विरक्त होय तप अंगीकार करैं हैं मुनि होय हैं, तहां धीरवीर होय परीपह उपसर्ग आये चिगैं नांही तव शील जो स्वरूपकी प्राप्तिकी पूर्णतारूप चौरासी लाख उत्तरगुणकी पूर्णता सो ही भया निर्मल जल ताकरि स्नान करि सर्व कर्ममलकूं धोय सिद्ध भये, सो मोक्षमंदिरविपैं तिष्ठि करि तहां परमानंद अविनाशी अतीन्द्रिय अव्याबाध सुखकूं भोगवैं

हैं, यह शीलका माहात्म्य है। ऐसा शील जिनवचनतैं पाइये है जिनागमका निरन्तर अभ्यास करनां यह उत्तम है॥ २८॥

आगैं अंतसमयमैं सल्लेखना कही है तहां दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारि आराधनाका उपदेश है सो ये शील हांतैं प्रगट होय हैं, ताकूं प्रगटकरि कहैं हैं;—

गाथा—सव्वगुणखीणकम्मा सुहदुक्खविवज्जिदा मणविसुद्धा।
पप्फोडियकम्मरया हवंति आराहणा पयडा॥ ३९॥

संस्कृत—सर्वगुणक्षीणकर्माणः सुखदुःखविवर्जिताः मनोविशुद्धाः
प्रस्फोटितकर्मरजसः भवंति आराधनाः प्रकटाः॥३९॥

अर्थ—सर्व गुण जे मूलगुण उत्तरगुण तिनिकरि क्षीण भये हैं कर्म जामैं, बहुरि सुख दुःखकरि विवर्जित हैं, बहुरि मन है विशुद्ध जामैं, बहुरि उडाये हैं कर्मरूप रज जानैं ऐसी आराधना प्रगट होय है॥

भावार्थ—पहलैं तौ सम्यग्दर्शनसहित मूलगुण उत्तरगुणनिकरि कर्मनिकी निर्जरा होनेंतैं कर्मकी स्थिति अनुभाग क्षीण होय है, पीछैं विषयनिकै द्वारै किछू सुख दुःख होय था ताकरि रहित होय है, पीछैं ध्यानविषैं तिष्ठि श्रेणी चढै तब उपयोग विशुद्ध होय कषायनिका उदय अव्यक्त होय तब दुःख सुखकी वेदना मिटै, बहुरि पीछैं मन विशुद्ध होय क्षयोपशम ज्ञानकै द्वारै किछू ज्ञेयतैं ज्ञेयान्तर होनेंका विकल्प होय है सो मिटिकरि एकत्ववितर्क अविचारनामा शुक्लध्यान बारमां गुणस्थानकै अंत होय है यह मनका विकल्प मिटि विशुद्ध होनां है, बहुरि पीछैं घातिकर्मका नाश होय अनंत चतुष्टय प्रकट होय है यह कर्मरजका उडना है; ऐसैं आराधनाकी संपूर्णता प्रकट होनां है। जे चरम शरीरी हैं तिनिकै तौ ऐसैं आराधना प्रकट होय मुक्तिकी प्राप्ति होय है। बहुरि अन्यकै आराधनाका एकदेश होय अंतमैं तिसकूं आराधानकरि स्वर्गविषैं

प्राप्त होय, तहां सागरांपर्यंत सुख भोगि तहांतैं चय मनुष्य होय आराधनांकूं संपूर्ण करि मोक्ष प्राप्त होय है, ऐसैं जानना, यह जिनवचनका अर शीलका माहात्म्य है ॥ ३९ ॥

आगैं ग्रंथकूं पूर्ण करै हैं तहां ऐसैं कहै हैं जो—ज्ञानतैं सर्व सिद्धि है यह सर्वजनप्रसिद्ध है सो ज्ञान तौ ऐसा होय ताकूं कहिये है;—

गाथा—अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं ।
सीलं विसयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं ॥४०॥

संस्कृत—अर्हति शुभभक्तिः सम्यक्त्वं दर्शनेन सुविशुद्धं ।
शीलं विषयविरागः ज्ञानं पुनः कीदृशं भणितं ॥४०॥

अर्थ—अरहंतविषैं भली भक्ति है सो तौ सम्यक्त्व है, सो कैसा है—सम्यग्दर्शनकरि विशुद्धहै तत्वार्थनिका निश्चय व्यवहारस्वरूप श्रद्धान अर बाह्य जिनमुद्रा नग्न दिगंबररूपका धारण तथा ताका श्रद्धान ऐसा दर्शनकरि विशुद्ध अतीचार रहित निर्मल है ऐसा तौ अरहंतभक्तिरूप सम्यक्त्व है, बहुरि शील है सो विषयनितैं विरक्त होना है बहुरि ज्ञान भी यह ही है और यातैं न्यारा ज्ञान कैसा कह्या है? सम्यक्त्व शील विना तौ ज्ञान मिथ्याज्ञानरूप अज्ञान है ॥

भावार्थ—यह सर्व मतनिमैं प्रसिद्ध है जो ज्ञानतैं सर्व सिद्धि है अर ज्ञान होय है सो शास्त्रनितैं होय है। तहां आचार्य कहै है जो—हम तौ ताकूं ज्ञान कहैं हैं जो सम्यक्त्व अर शील सहित होय, यह जिनागममैं कही है, यातैं न्यारा ज्ञान कैसा है यातैं न्यारा ज्ञानकूं तौ हम ज्ञान कहैं नांही, इनि विना तौ अज्ञानही है, अर सम्यक्त्व शील होय सो जिनागमतैं होय। तहां जाकरि सम्यक्त्व शील भये तिसकी भक्ति न होय तौ सम्यक्त्व कैसैं कहिये, जाके वचनतैं यह पाइये ताकी भक्ति होय

तब जानिये याकै श्रद्धा भई, बहुरि सम्यक्त्व होय तब विषयनितैं विरक्त होय ही होय जो विरक्त न होय तौ संसार मोक्षका स्वरूप कहा जान्यां ? ऐसैं सम्यक्त्व शील भये ज्ञान सम्यक्ज्ञान नाम पावै है। ऐसैं इस सम्यक्त्व शीलके संबंध तैं ज्ञानकी तथा शास्त्रकी बडाई है। ऐसैं यह जिनागमहै सो संसारतैं निवृत्तिकरि मोक्षप्राप्त करनेंवाला है, सो जयवंत होहु। वहुरि यहु सम्यक्त्वसहित ज्ञानकी महिमा है सो ही अंतमंगल जाननां ॥ ४० ॥

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत शीलपाहुड ग्रंथ समाप्त भया ॥

याका संक्षेप तौ कहते आये जो—शील नाम स्वभावका है सो आत्माका स्वभाव शुद्ध ज्ञान दर्शनमयी चेतनास्वरूप है सो अनादिकर्मके संयोगतैं विभावरूप परिणमैं है ताके विशेष मिथ्यात्व कषाय आदि अनेक हैं तिनिकूं राग द्वेष मोह भी कहिये तिनिके भेद संक्षेपकरि चौरासीलाख किये हैं, विस्तारकरि असंख्यात अनंत होय हैं तिनिकूं कुशील कहिये, तिनिका अभावरूप संक्षेपकरि चौरासीलाख उत्तरगण हैं तिनिकूं शील कहैं हैं; यह तौ सामान्य परद्रव्यके संबंधकी अपेक्षा शील कुशीलका अर्थ है। बहुरि प्रसिद्ध व्यवहारकी अपेक्षा स्त्रीके संगकी अपेक्षा कुशीलके अठारह हजार भेद कहे हैं तिनिका अभाव ते शीलके अठरा हजार भेद हैं, तिनिकूं जिन आगम तैं जांनि पालनें। लोकमैं भी शीलकी महिमा प्रसिद्ध है जे पालै हैं ते स्वर्ग मोक्षके सुख पावैं हैं तिनिकूं हमारा नमस्कार है ते हमारै भी शीलकी प्राप्ति करो, यह प्रार्थना है ॥

छप्पय।

आन वस्तुके संग राचि जिनभाव भंग करि,
वरतै ताहि कुशीलभाव भाखे कुरंग धरि।

ताहि तजैं मुनिराय पाय निज शुद्धरूप जल,
धोय कर्मरज होय सिद्धि पावै सुख अविचल ॥
यह निश्चय शील सुब्रह्ममय व्यवहारैं तियतज नमै।
जो पालै सबविधि तिनि नमूं पाऊं जिन भव न जनम मैं॥

दोहा।

नमूं पंचपद ब्रह्ममय मंगलरूप अनूप।
उत्तम शरण सदा लहूं फिरि न परूं भवकूप ॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यस्वामि प्रणीत शीलप्राभृतकी
जयपुरनिवासि पं. जयचन्द्रजी छावड़ाकृत-
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥ ८ ॥

वचनिकाकारकी प्रशस्ति ।

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाबंध पाहुडग्रंथ हैं तिनिमैं ये पाहुड हैं तिनिकी यह देशभाषामय वचनिका लिखी है। तहां छह पाहुडकी तौ टीका टिप्पण हैं तिनिमैं टीका तौ श्रुतसागरकृत है अर टिप्पण पहलैं काहू औरनैं किया है तिनिमैं केई गाथा तथा अर्थ अन्य-प्रकार हैं तहां मेरै विचारमैं आया तिनिका आश्रयभी लिया है अर जैसैं अर्थ मोकूं प्रतिभास्या तैसैं लिख्या है। अर लिंगपाहुड अर शीलपाहुड इनि दोऊ पाहुडनिकी टीका टिप्पण मिल्या नांही तातैं गाथाका अर्थ जैसैं प्रतिभासमैं आया तैसैं लिख्या है। अर श्रुतसागरकृत टीका षट्-पाहुडकी है तामैं ग्रंथांतरकी साखि आदि कथन बहुत है सो तिस टीकाकी यह वचनिका नांही है, गाथाका अर्थ मात्र वचनिका करि भावार्थमैं मेरी प्रतिभासमैं आया तिस अनुसार लेय अर्थ लिख्या है। अर प्राकृत व्याकरण आदिका ज्ञान मोनैं विशेष है नांही तातैं कहूं व्याकर-णतैं तथा आगमतैं शब्द अर अर्थ अपभ्रंश भया होय तहां बुद्धिमान पंडित मूलग्रंथ विचारि शुद्ध करि वांचियो, मोकूं अल्पबुद्धि जांनि हास्य मति करियो, क्षमा करियो, सत्पुरुषनिका स्वभाव उत्तम होय है, दोष देखि क्षमा ही करैं हैं।

बहुरि इहां कोई कहै—तुम्हारी बुद्धि अल्प है तौ ऐसे महानग्रंथकी वचनिका क्यौं करी ? ताकूं ऐसैं कहनां जो इस कालमैं मोतैं भी मंद-बुद्धि बहुत हैं तिनिके समझनेंके अर्थि करी है यामैं सम्यग्दर्शनका दृढ करनां प्रधानकरि वर्णन है तातैं अल्पबुद्धी भी वांचैं पढैं अर्थका धारण करैं तौ तिनिकै जिनमतका श्रद्धान दृढ होय, यह प्रयोजन जांनि जैसैं अर्थ प्रतिभासमैं आया तैसैं लिखा है. अर जे बडे बुद्धिमान हैं ते मूलग्रंथकूं वांचि पढिही श्रद्धान दृढ करैंगे, मेरै कछु ख्याति लाभ पूजाका

तौ प्रयोजन है नांहीं धर्मानुरागतैं यह वचनिका लिखी है, तातैं बुद्धिमाननिकै क्षमाही करनेंयोग्य है।

अर इस ग्रंथकी गाथाकी संख्या ऐसैं है:—प्रथम दर्शनपाहुडकी गाथा ३६। सूत्रपाहुडकी गाथा २७। चारित्रपाहुडकी गाथा ४५। बोधपाहुडकी गाथा ६१। भावपाहुडकी गाथा १६५। मोक्षपाहुडकी गाथा १०६। लिंगपाहुडकी गाथा २२। शीलपाहुडकी गाथा ४०। एवं पाहुड आठकी गाथाकी संख्या ५०२ हैं।

छप्पय।

जिनदर्शन निर्ग्रंथरूप तत्वारथ धारन,
सूतर जिनके वचन सार चारित व्रत पारन।
बोध जैनका जांनि आनका सरन निवारन,
भाव आतमा बुद्ध मांनि भावन शिव कारन॥
फुनि मोक्ष कर्मका नाश है लिंग सुधारन तजि कुनय।
धरि शील स्वभाव संवारनां आठ पाहुडका फल सुजय॥

दोहा।

भई वचनिका यह जहां सुनो तास संक्षेप।
भव्यजीव संगति भली मेटै कुकरमलेप॥ २॥
जयपुर पुर सूवस वसै तहां राज जगतेश।
ताके न्याय प्रतापतैं सुखी ढुढाहर देश॥ ३॥
जैनधर्म जयवंत जग किछु जयपुरमैं लेश।
तामधि जिनमंदिर घणे तिनिको भलो निवेश॥ ४॥
तिनिमैं तेरापंथको मंदिर सुंदर एव।
धर्मध्यान तामैं सदा जैनी करै सुसेव॥ ५॥

पंडित तिनिमैं बहुत हैं मैं भी इक जयचंद ।
प्रेर्यां सबकै मन कियो करन वचनिका मंद ॥ ६ ॥
कुन्दकुन्द मुनिराजकृत प्राकृत गाथा सार ।
पाहुड अष्ट उदार लखि करी वचनिका तार ॥ ७ ॥
इहां जिते पंडित हुते तिनिनैं सोधी येह ।
अक्षर अर्थ सुवांचि पढ़ि नहि राख्यो संदेह ॥ ८ ॥
तौऊ कछु प्रमादतैं बुद्धिमंद परभाव ।
हीनाधिक कछु अर्थ है सोधो बुध सतभाव ॥ ९ ॥
मंगलरूप जिनेंद्रकूं नमस्कार मम होहु ।
विघ्न टलै शुभबंध है यह कारन है मोहु ॥ १० ॥
संवतसर दश आठ सत सतसठि विक्रमराय ।
मास भाद्रपद शुक्ल तिथि तेरसि पूरन थाय ॥ ११ ॥

इति वचनिकाकारप्रशस्ति ।

जयतु जिनशासनम् ।

शुभमिति ।